Ph.D THESIS

समकालीन हिंदी उपन्यासों में लघु संस्कृतियाँ : एक विश्लेषणात्मक अध्ययन

SAMAKALEEN HINDI UPANYASOM MEIN LEGHU SANSKRITIYAN : EK VISHLESHANATMAK ADHYAYAN

Thesis submitted to

COCHIN UNIVERSITY OF SCIENCE AND TECHNOLOGY

For the Degree of

DOCTOR OF PHILOSOPHY

In

HINDI

Under the Faculty of Humanities

By

SREEJINA. P.P

DEPARTMENT OF HINDI

COCHIN UNIVERSITY OF SCIENCE AND TECHNOLOGY

COCHIN – 682 022

NOVEMBER 2017

CERTIFICATE

This is to certify that this thesis entitled ***"SAMAKALEEN HINDI UPANYASOM MEIN LEGHU SANSKRITIYAN : EK VISHLESHANATMAK ADHYAYAN"*** *is a bonafide record of research work carried out by* ***Ms.SREEJINA.P.P*** *under my supervision for Ph.D.(Doctor of philosophy) Degree and no part of this has hitherto been submitted for a degree in any other university. All the relevant corrections and modifications suggested by the audience during the pre-synopsis seminar and recommended by the Doctoral committee of the candidate has been incorporated in this thesis.*

Prof.(Dr.)N.MOHANAN

Department of Hindi
Cochin University of Science and Technology
Kochi- 682 022
Place: Kochi
Date:

DECLARATION

I here by declare that the work presented in this thesis entitled ***"SAMAKALEEEN HINDI UPANYASOM MEIN LEGHU SANSKRITIYAN:EK VISHLESHANATMAK ADHYAYAN",*** *based on the original work done by me under the guidance of* ***Prof.(Dr.)N.MOHANAN,*** *Department of Hindi, Cochin university of science & Technology, Cochin- 682 022 and no part of this thesis has been included in any other thesis submitted previously for the award of any degree in any other university.*

SREEJINA. P.P

Research Scholor

Department of hindi
Cochin university of science & technology
Cochin-22
Date :

पुरोवाक

भारत एक 'बहुजातीय', 'बहुधार्मिक' एवं 'बहुसांस्कृतिक' देश है जहाँ विभिन्न संस्कृतियाँ एक साथ विकसित हो रही हैं| लेकिन भारतीय संस्कृति से तात्पर्य हमेशा ही 'अभिजात संस्कृति' ही रहा है| इस अभिजात संस्कृति को'कुलीन संस्कृति'या'मनुवादी संस्कृति' भी कहा जा सकता है| यह अभिजात संस्कृति सुविधा संपन्न एवं सवर्ण वर्चस्ववादियों की संस्कृति है| इसे वैदिक संस्कृति का विकसित रूप माना जा सकताहै| यह अपने समानांतर चलने वाली जन संस्कृति को हमेशा नज़रअंदाज़ करती रही है| अभिजात वर्ग ने भारत के बहुसंख्यक वंचित जन समूह को अधिकार विहीन बनाकर पशुतुल्य जीवन जीने को बाध्य किया| इन्होंने मनुस्मृति के कठोर नियमों का पालन करके, भाग्य और पुनर्जन्म पर आधारित सोच को मज़बूत किया| परिणाम स्वरुप समाज का बड़ा हिस्सा सदियों की दासता को अपनी नियति मानकर चलता रहा| इनमें 'दलित', 'आदिवासी' और अन्य हशिएकृत समाज आते हैं जैसे 'सिक्ख','जैन,' 'बौद्ध,' 'पारसी,' 'ऐंग्लो इंडियन','ईसाई', 'मुस्लिम', 'लिंग अल्पसंख्यक' आदि| इन लोगों की अपनी अलग संस्कृति है जो 'मुख्यधारा' या 'अभिजात संस्कृति' से एकदम भिन्न है| इन लोगों की संस्कृति "लघु संस्कृति" नाम से जानी जाती हैं| ये लोग सामाजिक-आर्थिक-राजनैतिक सभी दृष्टियों से पिछडे हैं|

वर्तमान समाज विकासोन्मुख है| विकास की चकाचौंध ने देश के वंचित जन समुदाय को परावलंबी बना दिया है| वे अपनी सांस्कृतिक अस्मिता खोकर दिन-ब-दिन पराश्रय जीवन जीने केलिए मजबूर हैं| इनकी संस्कृति, स्वत्व या अस्मिता खतरे में हैं| आज दलितों व पिछडे जन समूहों में

नई चेतना का उदय हुआ है| वे सत्ता में भागीदारी, समता, प्रतिष्ठा एवं सम्मान की मांग करने लगे हैं| वैश्वीकरण के इस दौर में वे नया इतिहास निर्मित कर रहे हैं| परिणामतः साहित्य में नये-नये विमर्श भी उभरकर आने लगे हैं|

उत्तर-आधुनिकता केन्द्रवाद के तोड़कर विकेन्द्रीयतावाद को महत्त्व देती है| वह केंद्र से परिधि की ओर चली गयी है| इसलिए सांस्कृतिक अध्ययन, 'सबाल्टर्न स्टडी'(अधीनस्थों का अध्ययन),'नारीवाद', 'लिंग एवं नस्ल' समस्या', 'दलित-दमितों की पीड़ा' आदि को जगह मिली हैं| ये सचमुच राष्ट्रवाद की कट्टरता की वजह से हाशिए पर फ़ेंक दिए गए लोग हैं| समकालीन हिंदी उपन्यासकारों ने इन 'लघु संस्कृतियों' के संघर्ष भरे जीवन याथार्थ को अपनी रचानाओं में व्यक्त किया है| इनकी सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक और राजनैतिक पहलुओं के अध्ययन-विश्लेषण के उद्देश्य से **"समकालीन हिंदी उपन्यासों में लघु संस्कृतियाँ : एक विश्लेषणात्मक अध्ययन"** शीर्षक शोध विषय को चुन लिया गया है| विस्तृत अध्यन-विश्लेषण के लिए शोध-विषय को पाँच अध्यायों में विभक्त किया गया है- :

पहला अध्याय है - " संस्कृति एवं लघु संस्कृति : स्वरुप एवं विकास "

संस्कृति एक तरह से परिष्करण की प्रक्रिया है| वह हमारे बाह्य और आतंरिक स्तरों का परिष्कार करके उदात्त भावनाओं को सुरक्षित रखती है| भारतीय समाज में धर्म, जाति, नस्ल एवं लिंग के आधार पर वर्गीकृत समाज की संस्कृति 'लघु सस्कृति' है| इस अध्याय में संस्कृति एवं लघु संस्कृति के अर्थ, परिभाषा एवं स्वरुप पर विचार करते हुए, प्राचीन पाषण काल से

लेकर नव उपनिवेश काल तक की भारतीय संस्कृति एवं उसकी विकास यात्रा पर विचार किया गया है|

दूसरा अध्याय है - " समकालीन हिंदी उपन्यास का परिदृश्य"

इस अध्याय में समकालीनता और समकालीन परिदृश्य पर विचार करते हुए समकालीन हिंदी उपन्यास एवं उसकी मुख्य प्रवृत्तियों जैसे – 'नव-औपनिवेशिक व उपभोक्तावादी संस्कृति का विरोध', 'दलित विमर्श', 'स्त्री विमर्श', 'वृद्ध विमर्श', 'पारिस्थितिक विमर्श', 'विस्थापन', 'सांप्रदायिक विमर्श', 'गांधी चिन्तन', 'आंचलिकता', 'आदिवासी- जनजाति विमर्श', और 'अन्य अल्पसंख्यक विमर्शों' पर सोदाहरण विचार किया गया है|

तीसरा अध्याय है - " समकालीन हिंदी उपन्यासों में दलित संस्कृति"

दलित जो सदियों से शोषण के शिकार हो रहे हैं और वर्तमान युग में भी वे इससे मुक्त नहीं हो पाए हैं| इस युग में वे अपने ऊपर हो रहे शोषणों के विरुद्ध आवाज़ उठाने लगे हैं| समकालीन हिंदी उपन्यासों में इनके जीवन यथार्थ एवं प्रतिरोध का चित्रण हुआ है| इस अध्याय में समकालीन हिंदी उपन्यासों में चित्रित दलित शोषण जैसे- 'आर्थिक', 'सामाजिक' एवं 'राजनैतिक शोषण', 'दलित नारियों का यौन शोषण', 'श्रम एवं शैक्षणिक शोषण', 'जातिगत भेदभाव' आदि पर विचार करते हुए 'दलितों में आए जागरण', 'अस्मिता बोध एवं प्रतिरोध पर भी सोदाहरण चर्चा की है| इसके साथ उनकी सांस्कृतिक विशेषताओं जैसे-'रहन-सहन','विश्वास व अंधविश्वास', 'लोक गीत', 'भाषा' आदि मुद्दों पर भी प्रकाश डालने का प्रयास किया गया है|

चौथा अध्याय है - “ समकालीन हिंदी उपन्यासों में आदिवासी संस्कृति”

आदिम युग से जंगलों में निवास करने के कारण इन्हें “वनवासी”, “गिरिजन” आदि नामों से अभिहित किया गया है| उपनिवेश काल की वन नीति के कारण इस युग में भी आदिवासी अपनी ज़मीन से बेदखल हो रहे हैं| समाज में खदान-उद्योगों का विस्तार, विकास परियोजनायें आदि के कारण लाखों आदिवासी जंगल से विस्थापित हो गए हैं| इन स्थितियों को देखने, समझने एवं आदिवासियों के दर्द को दर्ज करने का प्रयास समकालीन हिंदी उपन्यासों में हुआ है| इस अध्याय में उन पर हो रहे ‘आर्थिक’, ‘सामजिक’, ‘राजनैतिक’ शोषणों, ‘विस्थापन’, ‘पर्यावरण प्रदूषण’, ‘शहरीकरण’ जैसी अनगिनत समस्याओं तथा ‘आदिवासी जागरण’, ‘अस्मिता’एवं ‘प्रतिरोध’ पर प्रकाश डाला गया है| आदिवासियों का ‘रहन–सहन’, ‘देवी-देवता’, अंधविश्वास’, ‘घर’, ‘भोजन’, ’लोक गीत’, ’लोक नृत्य’, ‘लोक कथा’, ‘त्योहार-पर्व’, ‘भाषा’, आदि सांस्कृतिक पहलूओं की भी चर्चा की गयी है|

पांचवाँ अध्याय है - “ समकालीन हिंदी उपन्यासों में अन्य लघु संस्कृतियाँ”

इस अध्याय में ‘धर्म’, ‘नस्ल’, ’लिंग’ आदि के आधार पर शोषित अन्य हाशिएकृतों की सामजिक,संस्कृतिक पहलूओं पर अलग से विचार किया गया है| इनमें ‘मुस्लिम’, ‘ऐंग्लो-इंडियन’,’मारवाड़ी’,‘कंजर – बेडिया’ और ‘नट-जनजातियों’, और ‘लिंग -अल्पसंख्यकों’(हिजड़े एवं समलैंगिक),पर चर्चा की गई है | इन अल्पसंख्यकों की समस्यायें एवं सांस्कृतिक विशेषतायें मुख्यधारा से भिन्न होने के साथ-साथ एक दूसरे भी भिन्न हैं| समकालीन हिंदी

उपन्यासों में प्रत्येक अल्पसंख्यकों के जीवन को विस्तार से चित्रित किया गया है | इस अध्याय में उपर्युक्त मुद्दों का विश्लेषणात्मक अध्ययन किया गया है |

अंत में “उपसंहार” है| इसमें समकालीन हिंदी उपन्यासों में अभिव्यक्त लघु संस्कृतियों के अध्ययन विश्लेषण से उभरे निष्कर्षों को प्रस्तुत किया गया है|

मेरे शोध विशेषज्ञ प्रो॰ डॉ॰ आर. शशिधरन जी के प्रति मैं अपनी कृतज्ञता प्रकट करती हूँ| उनकी प्रेरणा एवं प्रोत्साहन मुझे निरंतर मिलते रहे हैं |

हिंदी विभाग के अन्य पूज्य गुरुजनों को भी मैं धन्यवाद देती हूँ| इसके साथ मेरे शोध में सहयोग देने वाले कुमारन वयालेरी जी और मेरे परम पूज्य गुरुवर पी .राघवन जी को मैं इस वक्त सप्रेम स्मरण करती हूँ |

हिंदी विभाग के कार्यालय एवं पुस्तकालय के पूर्व कर्मचारी आदरणीय बालकृष्णन जी और अषरफ जी के प्रति भी मैं धन्यवाद अदा करती हूँ|

प्रस्तुत शोध कार्य की शुरुआत से लेकर अंतिम घडी तक बिना हिचक के हर कदम, हर पल मेरे साथ दिए मेरे अपने प्रिय मित्रों विशेषकर संध्या,कनकलता ,अनिता ,कविता, रम्या, अजिता,चैतन्या, सजना और मेरे अन्य शुभचिंतकों के प्रति भी मैं आभार प्रकट करती हूँ| इस अवसर पर मैं अपने परम पूज्य माता–पिताओं व भाई-बहनों के प्रति भी हृदयवत् आभार अर्पित करती हूँ| इन्होंने हर प्रतिकूलाताओं में मेरा साथ दिया और मेरा कदम डगमगाने से बचाया| इन लोगों की प्यार,उपदेश, और प्रोत्साहन से मैं इस मुकाम पर खडी हूँ|

मैं उस परम शक्ति के सामने नतमस्क हूँ, जिनकी कृपा के बिना मेरा काम अधूरा ही रह जाता था|

मैं उन ज्ञात-अज्ञात लेखकों के प्रति भी आभारी हूँ जिनकी रचानाओं से शोध कार्य की नई दिशाओं का संकेत मिला है|

मैं यह शोध प्रबंध विद्वानों के सामने सविनय प्रस्तुत कर रही हूँ| इसकी खामियों व त्रुटियों केलिए क्षमाप्रार्थी हूँ|

सविनय
श्रीजिना . पी.पी
हिंदी विभाग
कोच्चिन विज्ञान व प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय

कोच्चिन - 682022
तारीख :-

विषय सूची

पहला अध्याय 1- 99

संस्कृति एवं लघु संस्कृति : स्वरुप एवं विकास

संस्कृति: अर्थ – संस्कृति:परिभाषा, संस्कृति और सभ्यता, भारतीय संस्कृति : विशेषताएं – पुरातनता – आध्यात्मिकता – समन्वय की भावना – सर्वजन हिताय,सर्वजन सुखाय – लघु संस्कृति – अल्पसंख्यक: अर्थ, लघु संस्कृति : स्वरुप, भारत का इतिहास, प्राचीन पाषाण काल, प्राचीन पाषाण काल का पूर्वार्द्ध – प्राचीन पाषाण काल का उत्तरार्द्ध – नवीन पाषाण काल – धातु युग – सिन्धु घाटी की सभ्यता – वैदिक संस्कृति – उत्तर- वैदिक संस्कृति – महाभारत-रामायण काल – बौद्ध संस्कृति – जैन संस्कृति – मुसलामानों से पहले भारत – उपनिवेश काल – भारत में उपनिवेश – मुसलमान आगमन – सिक्ख धर्म – यूरोपीय आगमन और भारत – अंग्रेज़ और भारत – समकालीन भारतीय संस्कृति – नव – उपनिवेशकालीन संस्कृति – उत्तर आधुनिक कालीन संस्कृति – भूमंडलीकरण और संस्कृति – बाजारवादी संस्कृति – उपभोक्तावादी संस्कृति – पॉपुलर कल्चर – निष्कर्ष|

दूसरा अध्याय 101- 171

समकालीन हिंदी उपन्यास का परिदृश्य

समकालीनता – आधुनिकता – समकालीनता व आधुनिकता : अन्तः संबंध– समकालीन हिंदी उपन्यास का परिदृश्य – समकालीन हिन्दी उपन्यास की प्रमुख प्रवृत्तियाँ – नव-औपनिवेशिक प्रवृत्तियाँ –

उपभोक्तावादी संस्कृति का प्रतिरोध – स्त्री विमर्श – दलित विमर्श – साम्प्रदायिकता – आंचलिकता – विस्थापन – पारिस्थितिक सजगत – आदिवासी-जनजाति विमर्श – वृद्ध विमर्श – गांधी चिंतन – अन्य लघु संस्कृतियाँ – मुस्लिम – मारवाड़ी – एंग्लो-इन्डियन – हिजड़े एवं समलैंगिक – निष्कर्ष|

तीसरा अध्याय 173 - 262

समकालीनहिंदी उपन्यासों में दलित संस्कृति

दलित शोषण – आर्थिक विपन्नता एवं गरीबी – श्रम शोषण – जातिगत भेदभाव – अशिक्षा – राजनैतिक शोषण – दलित नारी – दलित नारी: यौन शोषण – दलित जागरण – दलित अस्मिता – दलित प्रतिरोध – दलित नारी प्रतिरोध – धर्म परिवर्तन – सांस्कृतिक विशेषताएं – अंधविश्वास – देवी-देवता संबंधी विश्वास – रहन –सहन- लोक नृत्य एवं गीत – उत्सव-पर्व एवं तीज-त्यौहार – दलित भाषा – ग्रामीण बोली – ग्रामीण आंचलिक शब्द – मुहावरे – निष्कर्ष|

चौथा अध्ययय 263 - 428

समकालीन हिंदीउपन्यासों में आदिवासी संस्कृति

आदिवासी शोषण – आर्थिक शोषण – श्रम शोषण – ज़मीन का शोषण – विस्थापन – शारीरिक शोषण – शैक्षणिक शोषण – आदिवासी नारी : यौन शोषण – राजनैतिक शोषण – सरकारी अधिकारियों की उपेक्षा – पर्यावरण प्रदूषण – शहरीकरण –

आदिवासी जागरण – आदिवासी अस्मिता – आदिवासी प्रतिरोध – आदिवासी नारी एवं प्रतिरोध – प्रतिरोध की भाषा – आदिवासी संस्कृति – देवी-देवता – पितरों के प्रति श्रद्धा – अंधविश्वास – नामकरण – बीमारी – बाबा और ओझा – डायन – बलि-प्रथा- लोक गीत – लोक नृत्य – लोक कथा – आदिवासी त्योहार-पर्व – मुर्गा लड़ाई – आदिवासी घर – भोजन – शादी – हाट-बाज़ार – पंजायत-लाॅबीर– आंचलिक भाषा – आंचलिक शब्दावली – निष्कर्ष|

पाँचवाँ अध्याय 429 - 611

समकालीनहिंदी उपन्यासों में अन्य लघु संस्कृतियाँ

मुस्लिम - सांप्रदायिकता और मुस्लिम – हिन्दुत्ववादी राजनीति एवं मुस्लिम – विस्थापन और मुस्लिम – कट्टर धार्मिकता एवं मुस्लिम – मुसलमान नारी : यौन शोषण – आर्थिक शोषण – श्रम शोषण – मुस्लिम: जातिगत भेदभाव – हिंदू-मुस्लिम एकता – मुस्लिम प्रतिरोध – मुस्लिम नारी और प्रतिरोध – मुस्लिम संस्कृति – नमाज़ – हज्ज – तलाक एवं बहुपत्नीत्व – पर्दा प्रथा – लोक कथा – त्योहार – बकरीद(ईद-उल-जुहा) – मुहर्रम – रमजान – भाषा – शब्द – **खानाबदोश जनजातियाँ (कंजर,बेडिया,नट)** - कंजर-बेडिया जनजाति- जनजातीय महिला एवं यौन शोषण – जनजाति प्रतिरोध – कंजर-बेडिया संस्कृति – सिर ढंकना/मत्था ढकाई – लोक गीत – लोक नृत्य – रहन-सहन – देवी-देवता – वेश-भूषा – भाषा – आंचलिक शब्द – नट जनजाति – आर्थिक शोषण – नट नारी: यों शोषण – नट जनजाति-प्रतिरोध – देवी-देवता – लोक कथा –

शादी– लोक गीत – रहन-सहन – वेश-भूषा – भाषा – आंचलिक शब्द –**मारवाड़ी**– मारवाड़ी एवं व्यापार – मारवाड़ी समाज में स्त्री – मारवाड़ी स्त्री प्रतिरोध – समाज में छुआछूत – मारवाड़ी संस्कृति – विश्वास/अंधविश्वास – रहन-सहन –**एंग्लो-इंडियन**– भारत से विस्थापन – अन्य समस्याएँ – एंग्लो-आदिवासी सम्बन्ध – एंग्लो-मुस्लिम सम्बन्ध – एंग्लो-इंडियन्स और अस्तित्व – एंग्लो विद्रोह – एंग्लो एवं राजनीति – एंग्लो-संस्कृति – रहन-सहन – त्योहार – अन्य समारोह – शराब – भाषा – शब्द –**लिंग अल्पसंख्यक** – **हिजड़ा**– जेंडर समस्या –पारिवारिक विस्थापन - सामाजिक घृणा – अशिक्षा – यौन शोषण – वेश्यावृत्ति – बुढापा – अस्तित्व एवं संघर्ष – हिजड़ा एवं प्रतिरोध – हिजड़ा संस्कृति – हिजड़ों का मंगलकारी रूप – देवी-देवता – मृत्यु संस्कार – त्यौहार एवं पर्व – रहन-सहन – नाच-गाना – लोक कथा – रीति-रिवाज़:चुनरी रस्म – गुरु – गिरिया – हिजड़ों से जुड़े हुए शब्द –**समलैंगिक** -समाजिक उपेक्षा – पारिवारिक घृणा – गे और संघर्ष – लेस्बियन और संघर्ष – लड़कों का यौन शोषण – समलैंगिक और मानवाधिकार – निष्कर्ष|

उपसंहार 613 - 615

परिशिष्ट 617

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची 619 - 656

पहला अध्याय

संस्कृति एवं लघु संस्कृति : स्वरुप एवं विकास

संस्कृति एवं लघु संस्कृति: स्वरुप एवं विकास

संस्कृति एक तरह से परिष्करण की प्रक्रिया है। इस परिष्करण के अंतर्गत बाह्य एवं आंतरिक दोनों आते हैं। मनुष्य के सूक्ष्म विचार, कल्पना, भावना आदि का संस्कार उसकी चेष्टा, आचरण, कर्म आदि के परिष्कार में व्यक्त होता है और फिर चेष्टा, आचरण आदि बाह्याचार की परिष्कृति उसके अंतर्जगत पर प्रभाव डालती है। संस्कृति, इसप्रकार मनुष्य की सहज प्रकृति के परिमार्जन से संबंध रखता हैं। इसलिए हजारीप्रसाद द्विवेदीजी ने संस्कृति को मनुष्य की विविध साधनाओं की सर्वोत्तम परिणति माना है। संस्कृति मानव की प्राकृतिक प्रवृत्तियों का परिष्कार कर उसमें उदात्त भावनाओं को उद्‌भूत कर , उसे सच्चे आर्थों में मानव बना देने का कार्य करती है।

संस्कृति : अर्थ

संस्कृति शब्द का अर्थ क्या है? इस पर विभिन्न पाश्चात्य तथा भारतीय विद्वानों तथा साहित्यकारों ने विचार किया है। भारत में अंग्रेजी के कल्चर शब्द के समानार्थी रूप में 'संस्कृति' के प्रयोग किया जाता है। 'संस्कृति' शब्द 'सम' उपसर्ग पूर्वक 'कृ' धातु से 'क्तिन्' प्रत्यय लगाकर बनाया है, जिसका अर्थ है – संशोधन करना, सुधारना, उत्तम करना, पवित्र करना, सुसज्जित करना, सुसंपन्न करना , संचित करना आदि। पाश्चात्य 'कल्चर' शब्द लैटिन भाषा के 'कुलतुरा' [CULTURA] शब्द से निष्पन्न हुआ है जो पूजा करना, कृषि संबंधी कार्य आदि के बोध कराता है। इसका लाक्षणिक अर्थ है – मनुष्य का बौद्धिक तथा मानसिक वृत्तियों को विकसित करना।

कॉंलरिज ने संस्कृति के लिये 'कल्टीवेशन' शब्द का प्रयोग किया जो मानव के मानसिक एवं व्यवहारिक जीवन के आर्जित गुणों का द्योतक है। इसी को जॉंन स्टुअर्ट मिल ने 'कल्चर' कहा है। मैथ्यू अर्नल्ड के अनुसार संस्कृति (कल्चर) जीवनगत परिपूर्णता, सौन्दर्य और प्रकाश है। सौन्दर्य से ह्रदय पक्ष की मधुरता और प्रकाश से बुद्धिपक्ष की उज्ज्वलता का भाव प्रकट होता है। टी. एस. इलियट ने सामान्य जीवन प्रक्रिया को ही 'संस्कृति' माना है।

'कल्चर' विज्ञान के उन प्रयोगों के लिए भी व्यवह्रत होता है जो कृषि, जीवाणु-संवर्धन आदि के लिए दिये जाते हैं। इस कारण महादेवीजी ने संस्कृति को इसका पर्याय नहीं माना है। आचार्य नरेंद्र देव ने संस्कृति को मानव चित्त की खेती कहा है। आज से 8000 वर्ष पूर्व गँगा की घाटी में धान की रोपण की शुरुआत हुई थी। भारतीय संस्कृति की भी शुरुआत लगभग इसी समय हुई। संस्कृति खेती की तरह एक सतत प्रक्रिया है। कृषि में जिस प्रकार ज़मीन जोतकर, तपाकर, फिर सींचकर, धान बोकर फसल उगाते हैं, फिर फसल को काटकर ज़मीन को उलटता है और कभी उसे सोने देता है उसी प्रकार संस्कृति भी अनेक प्रकार के ताप सहकर अपना स्वरुप विकसित करती है। उसमें हमेशा एक उर्वरता रहती है। विभिन्न संस्कृतियों के आ मिलने पर भी वह अपना अस्तित्व या उर्वरता नष्ट नहीं करती।

रेमेंड विलियम्स ने संस्कृति को जीवन की समग्र पद्धति का द्योतक माना है जो सामाजिक जीवन के विभिन्न क्रिया-कलापों को व्यक्त करती है। उन्होंने 'कल्चर एण्ड सोसाइटी' नामक अपने ग्रंथ में संस्कृति शब्द के विभिन्न

अर्थों पर प्रकाश डाला है। उन्होंने लिखा है – "It came to mean first, 'a general state or habit of the mind; having close relations with the idea of human perfection. second, it came to mean 'the general state of intellectual development, in a society as a whole'. Third it came to mean 'the general body of the arts'. Fourth, later in the centuary, it came to mean 'a whole way of life, material, intellectual and spiritual'. It came also as we know, to be a word which often provoked either hostility or embrassment."[1] वे संस्कृति से समाज का स्वरुप मानते हैं।

संस्कृति शब्द का संबंध संस्कार से है जिसका अर्थ है – संशोधन करना, उत्तम बनाना, परिष्कार करना आदि। यू. आर. अनंतमूर्ति के अनुसार भारतियों के पास पहले 'संस्कार' शब्द था, जिसमें कई अर्थ निहित हैं – "हमारे पास केवल एक शब्द है 'संस्कार' जिसमें कई समृद्ध अर्थ निहित हैं, जिनका प्रयोग जाति-विशेष के लोगों पर वैयक्तिक स्तर पर ही होता है। सामूहिक स्तर पर नहीं। यह काम केवल 'संस्कृति' शब्द ही कर सकता है। अतः नई आवश्यकताओं के आधार पर ही 'संस्कृति' और 'कल्चर' ने नए अर्थ ग्रहण किए।"[2] गुलाब राय ने भी संस्कृति का संबंध संस्कार से माना है। उन्होंने लिखा है "संस्कृति शब्द का संबंध संस्कार से है जिसका अर्थ है

---

[1] Raymond Williams – culture & society, introduction, XVI

[2] यू. आर. अनंतमूर्ति – किस प्रकार की है यह भारतीयता? , पृ : ८८

संशोधन करना, उत्तम बनाना, परिष्कार करना। .... संस्कार व्यक्ति के भी होते हैं और जाति के भी। जातीय संस्कारों को ही संस्कृति कहते हैं । संस्कृति एक समूहवाचक शब्द है।"[1] इसप्रकार संस्कृति का अर्थ अच्छा बनना, अच्छा व्यवहार करना और अच्छे विचारों का प्रादुर्भाव होना है। मानव और पशु को एक दुसरे से अलग करने वाला तत्व 'संस्कृति' है। हमारे अन्दर जो पशुता और कलुष है उसे दूर करके अपने संस्कारों को सुंदर बनाने के लिए जो कर्म या प्रयास हम करते हैं, तथा जिन संस्कारों से हमारे अंदर एक सांस्कृतिक चेतना का निर्माण होता है वही हमारी संस्कृति है।

संस्कृति : स्वरुप एवं परिभाषा

संस्कृति की तुलना गतिशील नदी से कर सकते हैं। वह भिन्न- भिन्न देश-काल, जाति, धर्म, जलवायु तथा भूगोल से विकसित मनवा समूह की व्यक्त और अव्यक्त प्रवृत्तियों का परिष्कार करती है और उस परिष्कार से उत्पन्न विशेषताओं को सुरक्षित रखती है। संस्कृति की भी समय-समय पर मरम्मत करनी पड़ती है। परिवर्तन संस्कृति का एक सहज स्वभाव है। उसमें निरंतर संस्कार और परिष्कार की धारणा निहित है। वह पुरातन मूल्यों को पुष्ट करते हुए नवीन मूल्यों को जन्म देती है। संस्कृति और समाज एक दुसरे का पूरक है |एक का परिवर्तन दूसरे को प्रभावित करता है। अज्ञेयजी ने लिखा है -"अब संस्कृति समाज को स्थायित्व देती है, वह असंदिग्ध है, लेकिन

[1] गुलाबराय - मेरे निबन्ध (जीवन और जगत) पृ : 199

फिर भी संस्कृति न निरी स्थिति है, न निरी स्थितिशीलता है। वह एक गत्यात्मक प्रक्रिया भी है।"[1] इसप्रकार संस्कृति विकासशील है। जयशंकर प्रसाद जी ने संस्कृति की सौन्दर्यबोध पर प्रकाश डालते हुए लिखा है- "संस्कृति मन्दिर, गिरजा और मस्जिद-विहीन प्रांतों में अंतः प्रतिष्ठित होकर सौन्दर्यबोध की बाह्य सत्ताओं का सृजन करती है। संस्कृति का सामूहिक चेतना से मानसिक शील और शिष्टाचारों से, मनोभावों से मौलिक संबंध है। धर्मों पर भी इसका चमत्कारपूर्ण प्रभाव दिखाई देता है। इरानी खलीफाओं के ही कला और विद्याप्रेम तथा सौन्दर्यानुभूति ने जो – उनकी मौलिक संस्कृति द्वारा उनमें विद्यमान थी-मरुभूमि के एकेश्वरवाद को सौन्दर्य से सजाकर स्पेन और ईजिप्ट तक उसका प्रचार किया जिससे वर्तमान यूरोपीय सौन्दर्य बोध अपने को अछूता ना रख सका। संस्कृति सौन्दर्य बोध के विकसित होने की मौलिक चेष्टा है।"[2] भारतीय संस्कृति सामासिक संस्कृति है। इसमें कई जातियाँ आईं और इसमें विहीन हो गयीं।

संस्कृति हमारी वैचारिक एवं व्यवहारिक जीवन शैली का वह आईना है, जिसके भीतर से गुजरकर हम खुद को देख पाते हैं। हजारीप्रसाद द्विवेदी जी ने चिंतन-मनन के मूर्त रूप को संस्कृति मानते हुए उसमें मन्दिर, मूर्ती, चित्रकला, कविता, नाटक, संगीत, धर्म, शिष्टाचार आदि को स्थान दिया है। उन्होंने लिखा है- "मैं उनको ही भारतीय संस्कृति में गिनता हूँ जो सर्वोत्तम है।

---

[1] कृष्णदत्त पालीवाल (सं) - साहित्य, संस्कृति और स्माज्परिवर्तन की प्रक्रिया, पृ : 29

[2] जयशंकर प्रसाद - काव्य और कला तथा अन्य निबंध, पृ : 28

अर्थात मनुष्य को पशु-सुलभ धरातल से अधिक से अधिक ऊपर उठाने में और मानवता के सिंहासन पर अधिक दृढ़तापूर्वक बैठाने में समर्थ हैं। जो बातें मनुष्य को जड़ता की ओर और पशु सुलभ स्वार्थ, लोभ-मोह, और जुगुप्सित आचरण की ओर ले जाने वाली हैं, उन्हें मैं संस्कृति का प्रतिपंथी मानता हूँ। इस श्रेष्ट मानवीय प्राप्ति को भारतीय संस्कृति इस लिए कहता हूँ कि वे भारतीय संदर्भ में भारतीय मनीषियों द्वारा पुरस्कृत हैं। इसलिए नहीं कि किसी अन्य देश की इसी श्रेणी से वे भिन्न या विरुद्ध हैं।"[1] शंभुनाथ जी ने 'मानवीय होना' ही किसी व्यक्ति के सुसंस्कृत होने की एकमात्र शर्त माना है। उन्होंने लिखा है -"संस्कृति बहुत सारी चीजों को लेकर बनी एक संपूर्णता है जो समाज की विरासत के रूप में मनुष्य प्राप्त करता है। उन चीजों में प्रमुख हैं – ललित कलाएँ, साहित्य, लोक विश्वास, आचरण, रीति-रिवाज, संगीत और परिष्कृत होती चली आ रही अनगिनत परंपराएँ। कहा जाता है कि पर्यावरण का वह हिस्सा, जो मनुष्य ने बनाया है, संस्कृति है। वह सब संस्कृति है, जो मनुष्य के पास जिवंत रूप से है। मनुष्य जो सोचता है और करता है, वह संस्कृति है।"[2] संस्कृति आत्ममंथन की माँग रखती है। मनुष्य की तरह वह भी साकांक्ष होती है। भाषा, साहित्य, कला, उपासना, पद्धति, साधना पद्धति आदि को समझे बिना हम संस्कृति को भी नहीं समझ सकते।

---

[1] हजारीप्रसाद द्विवेदी – भाषा, साहित्य और देश , पृ : 188
[2] शंभुनाथ – भारतीय अस्मिता और हिंदी, पृ : 169

संस्कृति जीवन की पवित्रता में हैं। यह मानव की प्राकृतिक प्रवृत्तियों का परिष्कार कर उसमें उदात्त भावनाओं का संचार करके उसे सच्चे अर्थों में मानव बना देता है। इस प्रकार संस्कृति ही वह चीज़ है जो मानव मन में मानवीय तत्वों को उभारकर उसे विश्व का उत्कृष्टतम प्राणी बना देती है। जिसके पास श्रेष्ट संस्कृति है, वह विश्व में अपना अलग अस्तित्व बनाने में सफल होता है। भारतीय संस्कृति इसका ज्वलंत उदाहरण है।

संस्कृति और सभ्यता

संस्कृति और सभ्यता एक दुसरे से बिलकुल भिन्न हैं। संस्कृति अंतर्मुखी है जिसका संबंध अंतर से हैं, आत्मा के श्रंगार से है। जबकि सभ्यता भौतिक है वह बाह्य आभूषण है। यदि सभ्यता शारीर है तो संस्कृति उसकी आत्मा है। कॉलरिज ने संस्कृति एवं सभ्यता में अंतर करते हुए संस्कृति के अर्थ में 'कल्टिवेशन' का प्रयोग किया था। आज भी सुसंस्कृत व्यक्ति को 'कल्टिवेटेड मैन' कहा जाता है।

मनुष्य के मन और बुद्धि को परिष्कृत करना ही संस्कृति का चरम उद्देश्य है। जबकि सभ्यता उस मानसिक और बौद्धिक परिप्रेक्ष्य में बनी जीवन-प्रणाली है। मन या आत्मा और बुद्धि की दुष्टि से सुसंस्कृत व्यक्ति कभी भी बाह्य रूप में असभ्य नहीं हो सकता। महादेवी वर्मा ने लिखा है -"सभ्यता और संस्कृति में भी अर्थ भेद है। सभ्यता मानव के बाह्य आचरण से संबंध रखती है क्योंकि उसका मूल अर्थ सभा की सदस्यता में निहित है, अंतर्जगत के संवेगों में नहीं। व्यवहार में सभ्य व्यक्ति का अंतर्जगत असंस्कृत हो सकता

है, परन्तु अंतर्जगत में संस्कृत व्यक्ति बाह्य रूप में भी असभ्य नहीं हो सकता।"[1] कुछ लोग ग्रामीण व्यक्ति को असभ्य और शहरी व्यक्ति को सभ्य मानते हैं। ऐसा कहना ठीक नहीं है। संस्कृति ग्रामीण तथा नागरिक दोनों में निहित हो सकती है। धोती-कुर्ता पहननेवाले ग्रामीण भी संस्कारवान हो सकते हैं और बुशर्ट और पैंट पहननेवाले भी। क्योंकि संस्कृति जीवन की पवित्रता और आत्मा के परिष्कार में है, न कि वेश-भूषा के परिष्कार में। हमारा उठना, बैठना, व्यवहार करना, वेश-भूषा, खान-पान, आदि में शालीनता होनी चाहिए। समाज में रहने के कारण प्रत्येक व्यक्ति को इसमें ध्यान रखना पड़ता है| समाज के प्रत्येक व्यक्ति का अपना अलग अस्तित्व होता है एवं बाह्याचार भी। किन्तु संस्कृति में या सांस्कृतिक मूल्यों में परिवर्तन नहीं आता है। त्याग, मैत्री, सहिष्णुता, अहिंसा, सत्यवादिता आदि मूल्यों में कभी परिवर्तन नहीं होता है। हजारीप्रसाद द्विवेदी ने लिखा है- "सभ्यता मनुष्य के बाह्य प्रयोजनों को सहजलभ्य करने का विधान है और संस्कृति प्रयोजनातीत आंतर आनंद की अभिव्यक्ति।"[2] संस्कृति किसी मानव की उपज न होकर खोजमात्र है, जबकि सभ्यता उसकी उपज है।

वर्तमान समाज में भौतिक समृद्धि अवश्य बढ़ रही है, पर उसी मात्रा में आध्यात्मिकता घटती जा रही है। मोटरें, कल-कारखाने, रोकैट, ऊँचे-ऊँचे मकान, विदेशी कंपनियाँ ,विदेशी कपडे, खाना-पीना आदि का आधिक्य है। लेकिन आपसी सहयोग ,रिश्तों की आत्मीयता, सहिष्णुता, त्याग,

---

[1] महादेवी वर्मा – भारतीय संस्कृति के स्वर, पृ : 77

[2] हजारीप्रसाद द्विवेदी – अशोक के फूल, पृ : 73

परदुःखकातरता आदि प्रतिदिन घटती जा रही है। व्यक्ति बाह्य रूप से सभ्य है, आंतरिक रूप से असंस्कृत। संस्कृति-सभ्यता के बीच का संघर्ष दुनिया की सबसे बड़ी चुनौती है। सभ्यता को संस्कृति की ओर मोड़ना वर्तमान समय की माँग है।

भारतीय संस्कृति : विशेषताएँ

भारत एक विशाल देश है जो दुनिया के सामने एक मिसाल है। दुनिया के देशों में से आकार की दृष्टि से भारत सातवें स्थान पर है तो जनसंख्या की दुष्टि से दुसरे। भारत एक ऐसा देश है जहाँ भौगोलिक जलवायु, जीवन पद्धतियों, भाषाओं और रुचियों की असीम विभिन्नताओं का अपूर्व संगम देखने को मिलता है। असीमित अनेकतायें होते हुए भी यहाँ आश्चर्यजनक एकता मौजूद है। इन विशेषताओं ने भारतीय संस्कृति के आधार भूमि को निर्मित करने में अहम भूमिका निभाई है। इनसे हमारी संस्कृति एक जिवंत संस्कृति बनी है।

किसी देश की भौगोलिक परिवेश वहाँ की संस्कृति को निरन्तर प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से प्रभावित करता है भारत अनेक नदियों, पहाड़ियों, मरू भूमियों, में विभक्त है। इसकी विस्तृत क्षेत्रफल के कारण यहाँ विभिन्न प्रादेशिक भाषाओं, सामाजिक रीति-रिवाज़ों, रहन-सहन, की पद्धतियों, वेश-भूषाओं, खान-पानों का विकास हुआ है। इसी वैविध्य ने सहिष्णुता को जन्म दिया है जो हमारी संस्कृति की महत्वपूर्ण कड़ी है। इसलिए आचार्य रामचन्द्र शुक्ला जी ने भारतीय संस्कृति को “विरुद्धों का सामंजस्य” कहा है। महादेवी

वर्मा जी ने लिखा है- "भारत ऐसा व्यक्तित्व संपन्न राष्ट्र है, जिसके प्राकृतिक परिवेश में मानव जीवन की विशिष्ट संस्कार पद्धति रही है। जीवन के परिष्कार क्रम में, मनुष्य को जो महत्वपूर्ण उपलब्धियाँ मिली हैं, उन्हें स्थूल रूप से धर्म, दर्शन, साहित्य, कला, शासन, नीति, आचार, शास्त्र के शीर्षकों में विभाजित कर सकते हैं। परन्तु ये भिन्न जान पड़ने वाली उपलब्धियाँ एक ही संस्कृति शरीर के अवयव होने के कारण मूलतः एक ही कही जायेंगी। इसी कारण इन सबकी समग्रता भारतीय संस्कृति की संज्ञा में अंतर्निहित है।"[1] भारतीय संस्कृति की कई प्रमुख विशेषतायें हैं। उनमें मुख्य है -:

पुरातनता

भारत, मिश्र, इराक, यूनान, मेसोपोटामिया और चीन को विश्व की पुरातन एवं महानतम संस्कृतियाँ माने जाते हैं। भारतीय संस्कृति ईसाई युग के अभ्युदय से पहले ही विकसित हुआ था। देश के विभिन्न आंचलों जैसे मद्रास के पल्लावरम, चिंगलपेट, वेल्लौर, कश्मीर में पहलगाम, तमिलनाडु में अट्टिरामपक्कम, मध्य प्रदेश में नर्मदा घाटी, महाराष्ट्र में नेवासा, कर्नाटक में हुसंगी आदि स्थलों में की गई पुरातात्विक खुदाइयों से प्राप्त अवशेष चिन्ह इसकी पुरातनता की ओर इशारा करते हैं। इसप्रकार मानव इतिहास के प्रारंभ से ही भारतवर्ष मानव-समूहों का क्षेत्र रहा है। हडप्पा तथा मोहनजोदडों में भारतीय संस्कृति की प्राचीनता एवं सर्वोत्कृष्टता का प्रणाम मिलते हैं। भारतीय संस्कृति की समृद्धि व पुरातनता का प्रमाण यूनानी

---

[1] महादेवी वर्मा - हिमालय, पृ : 13-14

राजदूत मेगेस्थनीज़ (ईसा पूर्व तीसरी शती) व चीनी तीर्थ यात्री फाह्यान (5वी शती) के वृत्तांतों और ईसा पूर्व तीसरी शती के अशोक कालीन शिलालेखों से मिलते हैं।

आध्यात्मिकता :

आध्यात्मिक दृष्टि भारतीय संस्कृति की मूलाधार है। इस अध्यात्मिक भावना के अनुसार इस संसार से परे भी एक संसार है। उन्हें सदा परलोक का ध्यान बना रहता है। भारतीय जीवन का चरम लक्ष्य मोक्ष है। भारत की वर्णाश्रम व्यवस्था और चार पुरुषार्थ (धर्म, अर्थ, काम,मोक्ष) आदि मानव को अध्यात्मिक तौर पर विकसित करते हैं। ये मोक्ष प्राप्ति में सहायक साधन हैं। भारतीय संस्कृति तपोवन संस्कृति है जिसमें आत्मा का विस्तार रूप की विधान है। सभी प्राणियों में आत्मा का निवास होता है। इसी भावना से गाँधीजी की सर्वोदय भावना को बल मिला। भारतीय मनीषी 'सर्वों भवन्तु सुखिनः सर्वे सन्तु निरामयः' की पाठ पढ़ाते थे। इस प्रकार नश्वर शरीर का तिरस्कार, परलोक, सत्य, अहिंसा, तप आदि मूल्यों को हमारी संस्कृति में प्रतिष्ठा मिली है। भारतीय एक अनंत अज्ञात शक्ति में विश्वास रखते थे। कार्य-कारण संबंध से चल रहे इस ब्रह्माण्ड का एक कर्ता, नियंता और संहारकर्ता भी है। भारतीय संस्कृति में ब्रह्म के कई रूप हैं। धार्मिक व दार्शनिक आदर्शों की प्रतिष्टा करते हुए ही भारत में काव्य, शिल्प, ललित-कलाएँ, नृत्य, नाट्य आदि की प्रवृत्तियाँ समाज में सम्मानित हो सकी थी।

समन्वय की भावना

'अनेकता में एकता और एकता में अनेकता' भारतीय संस्कृति का प्राणतत्व है। समन्वय का अर्थ अच्छी तरह संबंध होना है। भारत ने हमेशा दूसरे देशों, धर्मों, संप्रदायों व सिद्धांतों को समादर की दृष्टी से देखा है। इसलिए भारतीय संस्कृति को एक महासागर कहा जा सकता है जिसमें विभिन्न दिशाओं से आकर अनेक सांस्कृतिक नदियाँ लीन हो गयी। उसने जड़ता को त्यागकर नविन विचारों को ग्रहण किया। प्राचीन भारत में मानव की विभिन्न नस्लें यहाँ आ बसीं। इनमें कुछ प्रमुख नस्लें थीं -प्रोटो आस्ट्रेलायड, निग्रेटों, काकेशायड, नार्डिक, मंगोलायड एवं मेडिटेरियन। ऐतिहासिक काल में अनेक नृजातीय समूह के लोग इण्डो आर्यन, पारसीक, चीनी, हिन्द-यवन, शक, कुषाण, सीथियन, हूण, अरब, तुर्क, मंगोल, पुर्तगाल, फ्रेंच, डेनिस, अंग्रेज आदि आये। कालांतर में ये सब भारतीय समाज में इस तरह घुल मिल गयी कि वर्तमान समय में यह पहचान कर पाना लगभग असंभव सा है कि कौन सा भारतीय नस्ल का है और कौन सा बाहरी। नस्ल या प्रजाति के समान हमारे धर्म में भी विभिन्नता है। हिन्दू धर्म के अगणित रूपों और संप्रदायों के अतिरिक्त बौद्ध, जैन, सिक्ख, इस्लाम, ईसाई, यहूदी आदि धर्म हैं। यहाँ के निवासियों की भाषा की भी विविधता है। विभिन्न जातियों और प्रांतों के लोग भिन्न-भिन्न भाषाएँ और बोलियाँ बोलते हैं। भारत में पंजाबी, सिंधी, गुजराती, हिंदी, मराठी, बंगला, उडिया, उर्दू,

असमिया, तमिल, तेलुगू, कन्नड़, मलयालम आदि प्रमुख भाषाओं के साथ 150 बोलियाँ भी हैं।

देश में सामाजिक रुढियों, परम्पराओं, विश्वासों में अंतर है। रहन-सहन, खान-पान, वेश-भूषा, रीति-रिवाज़, दृष्टिकोण सब भिन्न हैं। भारत के विभिन्न भागों की वेश-भूषा, अचार-विचार, आदि भौगोलिक विशेषताओं व जलवायु के अनुकूल भिन्न है। भारत के इस विविधता रुपी आवरण में उसकी अखण्ड मौलिक एकता छिपी है। यही वह सबसे बड़ी विशेषता है जो भारत को दुसरे देशों से श्रेष्ठ बनाता है।

सर्वजन हिताय, सर्वजन सुखाय

भारतीय संस्कृति में सभी लोगों के हित एवं सुख की उत्कट भावना दिखाई पड़ती है। भारत के ब्राहमण, जैन, बौद्ध सभी धर्मों ने दूसरों के कष्ट दूर करने तथा उसके लिए तन,मन, धन, से प्रयत्न करने का उपदेश देते हैं। 'जियो और जीने दो'की अवधारणा को मुख्य आधार बनाने वाली भारतीय संस्कृति मानव प्रेम में आस्था रखती है। 'वसुधैव कुटुम्बकम' की महान भावना के अनुसार पूरी धरती एक कुटुम्ब है और यहाँ के सभी चराचर एक दुसरे से संबंध रखते हैं। वे सब एक ही परिवार के सदस्य हैं । नरेन्द्र मोहन ने लिखा है- "इस संस्कृति में तात्विक दृष्टी से न कोई भारतीय है और न कोई अभारतीय ,न कोई हिन्दू है न मुसलमान; न सिक्ख न ईसाई, न जैन और न पारसी- सब मानव हैं। इन सबकी जाति यदि कोई है तो वह मानव की जाति है। इसमें न कोई ब्राह्मण है न शूद्र; न आर्य न अनार्य, न क्षेत्र का भेद, न भाषा

का भेद। जो भी भेद प्रतीत होते हैं वे केवल सतही, बिलकुल ऊपरी भेद हैं। .... यही है भारतीय संस्कृति की पहचान, यही है इस संस्कृति का आधार, यही इस संस्कृति की ऋत सत्ता, यही है इस संस्कृति का दर्शन और यही है इसकी शक्ति।"[1] इसप्रकार सभी भेद-भावों को अनदेखा कर सबको मानव मात्र के रूप में देखने का दुष्टिकोण भारतीय संस्कृति के सनातन मूल्य हैं।

भारतीय संस्कृति की और भी अनेक विशेषताएँ हैं। भारतीय आशावादी जीवन दृष्टि में विश्वास रखते हैं। वे भाग्यवाद का निषेध करके कर्म पर विश्वास करते हैं। हमारी संस्कृति में प्रकृति का महत्वपूर्ण स्थान है। प्रकृति प्रदत्त जड़-चेतन में देवत्व का आरोपण करके उपासना करते हैं। हमारा विश्वास है कि पाप कर्म से देवता रुष्ट होते हैं और सजा देते हैं जबकि पुण्य कर्म से देवता प्रसन्न रहते हैं उन्हें स्वर्ग मिलता है| भारत के पर्व-त्योहारों का भी सांस्कृतिक महत्व है। इतने सारे देवी-देवतायें होने के कारण वर्ष का शायद कोई ऐसा दिन नहीं जिस दिन कोई तीज-त्यौहार न मनाया जाता हो। भारतीय मूर्तिपूजा के साथ-साथ अनेक कर्मकांडों में भी विश्वास रखते हैं। देवताओं को प्रसन्न करने के लिए देवऋण, ऋषियों व ब्राह्मणों के लिए ऋषिऋण, माता-पिता तथा पूर्वजों के लिए पितृऋण अतिथियों के लिए अतिथिऋण, पशु-पक्षियों को भोजन करने के लिए भूतऋण आदि को प्रत्येक व्यक्ति का कर्तव्य माने जाते हैं। इन सबको हम आदर की दृष्टी से देखते हैं।

---

[1] नरेन्द्र मोहन – भारतीय संस्कृति, पृ : 57

उपर्युक्त विशेषताओं के कारण ही हमारी संस्कृति चिरंजीवी बनी है। दुनिया में कई संस्कृतियाँ जो भारतीय संस्कृति के साथ विकसित हुई थीं , लुप्त हो गयी हैं। हमारी संस्कृति जाति, धर्म, देश, काल आदि का अतिक्रमण करके, अनेक उतार-चढ़ावों को लांघकर अपना अलग अस्तित्व बनाया है। उसे किसी एक काल सीमा तक, युग, जाति विशेष या समाज विशेष तक सिमित नहीं रख सकते। संस्कृति एक देश विशेष की उपज होती है। उस देश के निवासियों के आचार-विचार, रहन-सहन, रीति-रिवाज, जीवन प्रणाली, देश के भौतिक वातावरण आदि से संस्कृति का स्वरुप निखरता है। संस्कृति का यह सौन्दर्य ही राष्ट्र को वैश्विक स्तर पर प्रमाणित करता है। भारतीय संस्कृति इस दृष्टी से महानतम व श्रेष्ठ संस्कृति साबित होती है।

लघु संस्कृति

भारत एक बहुजातीय एवं बहुसांस्कृतिक देश है। यहाँ जाति, धर्म, भाषा, एवं लिंग के आधार पर कुछ लोगों को हाशिए पर रखा गया है। ये संख्या में कम होने के साथ सभी दृष्टी से पिछड़े एवं गरीब हैं। इन्हें 'अल्पसंख्यक' कहते हैं। भारतीय संविधान में इनको आरक्षण दिया गया है। इन अल्पसंख्यकों की संस्कृति को 'लघु संस्कृति' कह सकते हैं। इनमें दलित, आदिवासी, खानाबदोश जनजातियाँ, मुस्लिम, ईसाई, पारसी, बौद्ध, जैन, सिख्ख, आंग्लों इंडियन, हिजडे एवं समलैंगिक आदि आते हैं। इनकी संस्कृति मुख्यधारा संस्कृति से भिन्न है। भारतीय सांस्कृति हमेशा ही मुख्यधारा की या अभिजात वर्ग की संस्कृति रही है। उसने वरेण्य वर्ग को स्थान देकर बाकी

को 'अन्य' में रखा है। लेकिन भारतीय संस्कृति इन हाशिएकृतों की भी संस्कृति है। कृष्णदत्त पालीवाल ने भारतीय संस्कृति को मिश्र संस्कृति मानते हुए लिखते हैं -"पश्चिमी संस्कृति 'आत्म' और 'अन्य' के भेद और अलगाव पर केन्द्रित रही है, लेकिन भारतीय संस्कृति में हूण हों, कुषाण हों, कोल-किरात-निषाद हों, सूफी हों, मुसलमान हों, कोई भी हों, 'अन्य' नहीं है। भारतीय संस्कृति किसी को पराया नहीं रहने देती है। उसका आधार हिंसा और अलगाव नहीं है। प्रेम, अहिंसा और बंधुता है। यद्यपि जाति प्रथा ने इस संस्कृति को कलंकित किया है, लेकिन इसकी आंतरिक लय (प्रेम) को कभी खंडित नहीं होने दिया है। यह 'घायल सभ्यता- संस्कृति' जरूर है, लेकिन मृत सभ्यता-संस्कृति नहीं हैं, क्योंकि उच्चमूल्यों के सभी तार अभी भी इसमें जीवंतगति से धडक रहे हैं।"[1] इस प्रकार हम कह सकते हैं कि संस्कृतियों की दुनिया में कोई बहुसंख्यक या अल्पसंख्यक अथवा 'मुख्य' एवं 'अन्य' नहीं है। भारत में अल्पसंख्यक नाम से अभिहीत समाज भारत की सामजिक-सांस्कृतिक मिटटी के बने हैं। सबसे छोटी सांस्कृतिक इकाई भी राष्ट्रीय संस्कृति के योगफल की समृद्धि में अपना योगदान देती है।

भूमंडलीकरण के इस युग में हाशियाकरण बहुत तेज़ी से चल रहा है। भूमंडलीकरण ने संस्कृति के भूमंडलीकरण को प्रोत्साहित किया है| विकास के तेज रफ़्तार में अल्पसंख्यक समाज अपनी अस्मिता को बचाए रखने के लिए निरंतर संघर्ष कर रहे हैं।

---

[1] कृष्णदत्त पालीवाला - सृजन का अंतर्पाठ, उत्तर आधुनिक विमर्श, पृ : 150

अल्पसंख्यक : अर्थ

अल्पसंख्यक शब्द अंग्रेजी के 'माइनौरिटी' [Minority] शब्द के समानार्थी शब्द है। शाब्दिक दृष्टी से 'माइनौरिटी' शब्द लैटिन भाषा के 'Minor' और 'ity' का यौगिक रूप है, जिसका अर्थ है समग्र को बनानेवाले दो समूहों में संख्या की दृष्टी से अपेक्षाकृत छोटा समूह। अल्पसंख्यक दूसरों की तुलना में संख्यात्मक दृष्टी से कम होते हैं। जाति, धर्म, लिंग, भाषा, नस्ल आदि के आधार पर बहुसंख्यक आबादी से अलग पहचान रखते हैं। भारतीय संविधान में दलित आदिवासी, सिख्ख, जैन, बौद्ध, पारसी, मुस्लिम, ईसाई, आंग्लों इंडियन, हिजड़े, एवं समलैंगिकों को अल्पसंख्यक माना गया है। संविधान में इन्हें अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजाति तथा अन्य पिछड़े वर्ग के श्रेणी में रखकर आरक्षण देते आ रहे हैं। भारतीय संविधान के अनुच्छेद 29 (11), अनुच्छेद (30), अनुच्छेद 350 A और 350 (B) में ही 'अल्पसंख्यक' शब्दावली का प्रयोग किया गया है।

लघु संस्कृति : स्वरुप

भारत एक बहुजातीय एवं बहुधर्मी राष्ट्र होने के कारण कई संस्कृतियाँ यहाँ हैं। ये अपना स्वतन्त्र विकास करती हैं। किसी भी देश की संस्कृति उसकी अपनी है यह हम पूर्ण रूप से नहीं कह सकते। क्योंकि दुनिया भर में हर युग में किसी-न-किसी साम्राज्यवादी शक्तियों का हमला हुआ है। उनके शासन काल में उनकी संस्कृति उस देश की संस्कृति के साथ घुलमिल जाती

है। धीरे-धीरे मूल संस्कृति में परिवर्तन आता है और नई संस्कृति जन्म लेती है। भारत में कई विदेशी शक्तियों का आगमन हुआ था। भारत ने उनकी संस्कृति की श्रेष्ठता को स्वीकार किया है। साम्राज्यवाद के माध्यम से ईसाई, इस्लाम, पारसी, धर्म यहाँ आ गया था। वे यहाँ की मिट्टी में पनपकर अपनी जड़ें समा ली है। उन्हें अल्पसंख्यक, पिछडे या विदेशी कहकर मुख्यधारा समाज से दूर रखा गया। इनकी संस्कृति 'लघु संस्कृति' है। मनुस्मृति के द्वारा दलित हजारों साल पहले ही मुख्यधारा से उपेक्षित हो गए थे। आज लिंग-अल्पसंख्यक भी सामने आ गया है। मुख्यधारा समाज से भिन्न विशेषताओं के कारण ये भी उपेक्षित हो गये।

भारत में लोकतंत्र है और लोकतंत्र में बहुमत को मान्यता मिलती है। उसमें सबको समानता की दृष्टी से देखने का दृष्टिकोण होता है। लेकिन भारत में इन सबके बावजूद बहुसंख्यक और अल्पसंख्यक भेदभाव है। आज संख्या के साथ-साथ सामाजिक,आर्थिक,राजनीतिक एवं सांस्कृतिक पिछडेपन के कारण कई साधारण लोग मुख्यधारा समाज की नज़र में उपेक्षित हो गए हैं। - "लोकतंत्र में कोई राजा नहीं होता यहाँ बहुमत की पूजा होती है। सत्ता का यह नया समीकरण ही उन वर्गों में भय और असुरक्षा के बीज पैदा करता है, जिनकी संख्या थोड़ी होती है और इस कारण जो राजनैतिक सत्ता में बराबर के हिस्सेदार नहीं हो सकते। जाति, धर्म,भाषा, रंग कोई भी तत्व इस तरह की भवना पैदा करने के लिए काफी होते हैं। इस लोकतांत्रिक व्यवस्था को सुचारू रूप से चलाने के लिए हमेशा यह कहा जाता है कि अल्पसंख्यकों के

हितों की विशेष रूप से सुरक्षा होनी चाहिए।"[1] लोकतंत्र में भिन्नताओं की स्वीकृति, विशिष्टताओं का संरक्षण और नागरिक अधिकारों की मान्यता मिलनी चाहिए। समाज में जितनी भी भिन्नतायें है सब मानव द्वारा निर्मित है। भारत जैसे बहुसांस्कृतिक देश में सांस्कृतिक विविधता खतरों से घिरी है। भारत के संदर्भ में हिन्दू बहुसंख्यक और बाकी सब अल्पसंख्यक है।- "In the Indian context contemporary multiculturalist, discussion invariably focuses on the Hindu majority and minorities such as muslims, Christians, Sikhs, and so on." [2] इस प्रकार का अलगाववादी या पृथकतावादी सोच राजनीति का खेल है।

आर्यों द्वारा बनाये गये चातुवर्ण्य व्यवस्था ने जाति व्यवस्था की शुरुआत की। इसने शूद्रों को निम्न स्तर का माना। बाद में आए बौद्ध और जैन धर्म भारत में ही जन्म लिया है। किन्तु इनके अनुयायियों की संख्या यहाँ कम थे। सिक्खों के साथ भी ऐसा ही हुआ। अरब काल में मुस्लिम यहाँ अधिक संख्या में पाये जाते थे। मुगल साम्राज्य के पतन के साथ वे भी यहाँ के अल्पसंख्यक हो गये। उपनिवेश काल में आए ईसाईयों, पारसियों व यहूदियों के संपर्क से यहाँ अंग्लों-इंडियन, पारसी आदि का जन्म हुआ। इसके साथ लिंग अल्पसंख्यक भी हैं जो समाज की स्त्रीलिंगी-पुल्लिंगी अवधारणा के बाहर रहते हैं। इनमें हिजड़े एवं समलौंगिक आते हैं। इन सबको संविधान ने

---

[1] राजकिशोर – आज़ादी एक अधूरा शब्द है, पृ : 60

[2] Rajeev Bhargava, Amiya kumar Bagchi & R. Sudharshan [Editors] - Multiculturalisam, Liberalism and democracy, Page : 383

आरक्षण देकर आगे ले आने तथा मुख्य धारा समाज से जोड़ने का प्रयास कर रहे हैं। राष्ट्रीय अल्पसंख्यक आयोग भी इसमें महत्वपूर्ण कार्य कर रहा है। अम्बेडकर ने अल्पसंख्यक आरक्षण की आवश्यकता को संख्यात्मक दृष्टी से ही नहीं अपितु आर्थिक-सामाजिक-सांस्कृतिक दृष्टिकोण से भी माना। क्योंकि अल्पसंख्यक विशिष्ट राज्य में बहुसंख्यक होते हैं। जैसे सिख्ख पंजाब में, ईसाई नागालैण्ड में, मुस्लिम कश्मीर में बहुसंख्यक हैं। किन्तु राष्ट्र के स्तर पर वे अल्पसख्यक हैं। संख्या की दुष्टि से देखने पर यह विभाजन भ्रम पैदा करता है। भारत में कई जातियों व संस्कृतियों के होने के कारण किसी को शुद्ध, असली या मुख्य कहना गलत है। यह सोच जातीय-सामुदायिक कट्टरवादी सोच को प्रश्रय देकर प्रथकतावाद को जन्म देगा। पिछले कई सालों से जितना उथल-पुथल एवं उलटफेर समाज में हुआ सबके केंद्र में संस्कृति थी। शंभुनाथ जी ने ‘मुख्यधारा’ एवं ‘लघु संस्कृति’ के विभाजन को नकारते हैं। भारत जैसे बहुजातीय राष्ट्र में ‘मुख्यधारा’ के नाम पर कोई केंद्रीकृत धारा नहीं हो सकती। ये भिन्न-भिन्न संस्कृतियाँ एक दूसरे से संवाद करती हैं और एक दुसरे को समझने की कोशिश करती हैं। हर संस्कृति स्वतंत्र होते हुए भी एक दूसरे से जुडी हुई है। हर कहीं से जनजातीय संस्कृति को या अन्य अल्पसंख्यक संस्कृति को मुख्यधारा से जोड़ने की बात उभरकर आ रहे हैं। जब मुख्यधारा नाम की कोई चीज़ ही नहीं है तो यह विभाजन भी गलत है। उन्होंने लिखा है- “भारत में एक मुख्य धारा है और बाकी सभी अप-संस्कृतियाँ हैं, यह कहना सभी भारतीय विकास को गलत पटरी पर ले

जानेवाला मामला है।"[1] औपनिवेशिक काल में अंधराष्ट्रवादी सोच ने धर्म, जाति या अन्य अल्पसंख्यक संस्कृतियों के विरुद्ध ज़हर खोल दिया था। इस भारत में पृथकतावादी स्थितियाँ पैदा हुईं। स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात ये खाइयाँ और भी चौड़ी हुई। आगे भूमंडलीकरण व वैश्वीकरण ने बहुसांस्कृतिकता को नकारात्मक दृष्टी से देखकर उसे 'सांस्कृतिक भिन्नता' बनाया।

भूमंडलीकरण के दौर में भारत की संपन्न-समृद्ध सैकड़ों परंपराओं तथा विशिष्टताओं को कोई स्थान नहीं है। भारत जितना मुख्यधारा कहनेवालों का है उतना ही हाशिए पर थकेल दिए गए लोगों का है। शंभूनाथजी ने लिखा है -"भारत में आर्थिक विषमता है, आशांत इलाके हैं। धर्म,जाति क्षेत्रीयता, भाषा के स्तर पर वर्चस्व की आकांक्षाएँ हैं। समाज तनावों से भरा है। यह मानने से आपत्ति नहीं होनी चाहिए कि इतिहास उनका भी हो जो इतिहास नहीं बना पाते हैं, या अभी तक नहीं बना पाए हैं।"[2] वैश्वीकरण के इस दौर में दलित, आदिवासी, स्त्री और अन्य अल्पसंख्यक अपने ऊपर हुए जुल्मों का इतिहास खोज रही है। आज पिछड़ी जातियाँ और अल्पसंख्यक प्रतिरोध करने लगे हैं जो संविधान द्वारा इनको प्राप्त अधिकारों को निचले तबके तक पहुँचाने की कोशिश करते हैं। भूमंडलीकरण के प्रभाव स्वरुप उत्पन्न उपभोक्ता संस्कृति पश्चिमी आधुनिक शैली को स्वीकारने के पक्ष में है, जिसमें विवधता के लिए कोई स्थान नहीं है। बाज़ारवादी दौर में विकास की

---

[1] शंभुनाथ - भारतीय अस्मिता और हिंदी, पृ : 97

[2] वही , पृ : 279

चर्चा करने वाले दलित आदिवासी एवं अल्पसंख्यक शोषण पर चर्चा करने से कतराते हैं।

भारत आज सांस्कृतिक दृष्टी से संपन्न है तो उसमें बाहर से आए लोगों तथा उनकी संस्कृतियों का भी महत्वपूर्ण योगदान है। इस संस्कृति को बचाकर रखने के पीछे भारतीय इतिहास के पन्नों से दूर रहने वाले कुछ लोगों का भी हाथ है। वे आज भी इतिहास के पिछले पन्ने पर हैं। प्रगेतिहसिक काल से लेकर भूमंडलीकरण एवं बाज़ारवाद के इस युग तक का भारतीय इतिहास एवं संस्कृति की चर्चा करने पर उल्लिखित अल्पसंख्यकों के जन्म, विकास एवं संस्कृति का पता चलेगा। इसके लिए भारतीय इतिहास की चर्चा करना अनिवार्य है। आदिम जनजाति एवं शूद्रों से लेकर लिंग अल्पसंख्यक तक के लोगों का इतिहास इसी से पता चलेगा।

भारत का इतिहास :

इतिहास मनुष्य की सभ्यता एवं संस्कृति के विकास का रोचक विवरण है। किसी भी राष्ट्र तथा जाति की चेतना तथा आधार भूमि का पता लगाने के लिए उसके वर्तमान को तो देखना होता है, साथ ही इसके अतीत की खोज भी करनी होती है और उसके इतिहास का भी अध्ययन करना होता है। भूत से वर्तमान और उन दोनों से भविष्य को पृथक करने में इतिहास ही एकमात्र साधन होता है। केवल वर्तमान के आधार पर किसी भी व्यक्ति, जाति तथा राष्ट्र की पूर्णता संभव नहीं है। वर्तमान को उज्ज्वल भविष्य में परिणत करने के लिए अतीत की उपलब्धियाँ प्रेरणा का कार्य करती हैं। इस

प्रकार संस्कृति के निर्माण में इतिहास का योगदान अपरिहार्य है। अज्ञेयजी का कहना है -"संस्कृति का एक ऐतिहासिक संदर्भ होता है जिसकी उपेक्षा नहीं हो सकती, उसी तरह यह भी सच है कि इतिहास का भी एक सांस्कृतिक संदर्भ है जिसकी उपेक्षा नहीं हो सकती। ऐतिहासिक संदर्भ खोकर संस्कृति मरुस्थल में भटकने लगती है, उसे दिशा-ज्ञान नहीं रहता। लेकिन सांस्कृतिक सन्दर्भ खोकर इतिहास तत्काल मर जाता है क्योंकि उसका संवेदन ही नष्ट हो जाता है।"[1] किसी देश का इतिहास वहाँ के निवासियों के राजनितिक, सामाजिक, सांस्कृतिक, धार्मिक और आर्थिक जीवन के विकास और परिवर्तन का लेखा-जोखा है। विश्व के जिन राष्ट्रों ने अज्ञात अतीत से अपने सांस्कृतिक गौरव को सुरक्षित बनाये रखा उसमें भारत का नाम अग्रणी है। प्रत्येक संस्कृति की एक प्रारंभिक दशा होती है। व्यक्तियों के सामूहिक जीवन के विकास के साथ-साथ संस्कृति का भी विकास होता है। मानव या संस्कृति की इस विकास प्रक्रिया में प्रत्येक देश की भौगोलिक दशा के साथ मानव की बुद्धि-विवेक, परिश्रम, संघर्ष आदि सहायक साधन का काम करते हैं- "भारतीय संस्कृति सिर्फ अतीत का अवशेष न होकर एक जिवंत समाज व्यवस्था में प्रवाहमान थी और प्रवाह विशिष्ट भौगोलिक परिवेश में दो हजार वर्ष की ऐतिहासिक निरंतरता में विराजमान था। इतिहास के प्रहारों द्वारा क्षत-विक्षत, जगह-जगह रूँधा हुआ, भ्रष्ट, मैला, विकृत फिर भी क्रियाशील अपने बिंबों और प्रतीकों में प्राणवान, लाखों लोगों के जीवन में रचा-बसा,

---

[1] अज्ञेय - केंद्र और परिधि, पृ : 233

उनके जीवन और उनकी मृत्यु को लगातार एक अर्थवत्ता देता हुआ ..... उसमें वे सब मैले और पवित्र तत्व मौजूद थे जिससे एक जिवंत सभ्यता का चरित्र बनता है।"[1] भारत जो एशिया का एक विशाल उपमहाद्वीप है, प्राकृतिक व भौगोलिक विभिन्नता और जलवायु की विविधता से संपन्न है। ये विविधतायें भारतीय जनजीवन, भाषा, विश्वास, आचार-विचार, रहन-सहन, वेश-भूषा आदि में विभिन्नता उत्पन्न की हैं। अधिक वर्षा और उपजाऊ भूमि ने भारत को कृषि-प्रधान देश बना दिया है। हिमालय की उत्तुंग श्रेणियों, पूर्वी सीमा के सघन वन और पर्वतमालायें तथा दक्षिण के पूर्वी और पश्चिमी समुद्री तटों तथा मरुस्थल ने भारत को एशिया के अन्य देशों से अलग कर दिया। इन विविधताओं ने भारत को कई प्रदेशों में विभाजित कर दिया। इसप्रकार भारत का इतिहास एक श्रृंखलाबद्ध परिपूर्ण इकाई नहीं है; वरन् विभिन्न भागों के स्वतन्त्र-व्यक्तिगत विकास का सामूहिक इतिहास है।

भारतीय संस्कृति के इतिहास का विश्लेषण करने पर पता चलता है कि प्रारंभिक युग में मनुष्य अज्ञानान्धकार और बर्बरता में डूबा हुआ था। उसके बाद वह अपनी बुद्धि एवं विवेक से अन्धकार को हटाकर बाहर आ गया। उसके विकास के इस लंबी अवधि को 'प्राग ऐतिहासिक काल' कहते हैं। इस काल को ही विद्वानों ने 'पाषाण काल' और 'धातु काल' में विभाजित किया है। प्रत्येक काल का विभाजन उन पदार्थों के नाम पर किया गया, जिन पदार्थों से बने हुए औजार, हथियार और दैनिक व्यावहारिक जीवन की

---

[1] अशोक बाजपेयी (सं) – पूर्वाग्रह (मई–जून 1987), पृ : 5

वस्तुएँ मानव उपयोग में लाते थे। इन औजारों, हथियारों और वस्तुओं की बनावट, सुंदरता, आकर्षण आदि के आधार पर मानव सभ्यता के विकास के युग निश्चित किए गए। फलस्वरूप 'पाषाण युग' और 'धातु युग' को भी विभाजित किया गया। पाषाण युग को 'प्राचीन पाषाण काल' [Palaeolithic age] और 'नवीन पाषाण काल' [Neolithic age] कहते हैं। प्राचीन पाषण काल को 'पूर्वार्द्ध' और 'उत्तरार्द्ध' में तथा धातु युग को 'ताम्र' व 'काँस्य' और 'लौह' काल में विभक्त किया गया है।

प्राचीन पाषाण काल :

आज से लगभग दस हज़ार साल पहले भारत घने जंगलों से ढँका हुआ था। आदिम मानव जातियाँ तथा इनके कबीले गुफाओं-कंदराओं में रहते थे। उनके पास सिर्फ पत्थरों के औजार थे। प्रतिकूल प्राकृतिक परिस्थिति में वे इन औजारों से शिकार करते थे तथा जंगली जानवरों से अपने को बचाते थे। इसप्रकार पत्थर ही उनका एकमात्र आश्रय था -"The term palaeolithic is derived from two Greek words meaning old stone. This name is applied to the earliest people, as the only evidence of their existence is furnished by a number of rude stone implements."[1] भारत में पाषाण काल की सभ्यता की खोज सन् 1863 से प्रारंभ होती है। इस वर्ष जिआलाँजी सर्वे विभाग के प्रासिद्ध अधिकारी ब्रसफूट ने मद्रास के पास पल्लावरम में पूर्व पाषाण काल का एक औजार प्राप्त किया। इसके बाद

[1] R.c Majumdar, H.C Raychaudhri and Kalikinkar Datta - An advanced History of india, Page : 9

मध्यप्रदेश, उत्तरप्रदेश, उड़ीसा, बीहार, दक्षिण भारत के मद्रास, वेल्लोर, तिरुवल्ली, हैदराबाद आदि स्थानों के उत्खनन से पाषाणकालीन अवशेष प्राप्त हुए हैं। इस काल के मनुष्य पहाड़ियों की कदंराओं व गुफाओं में रहते थे। इन खोजों व प्रमाणों से यह तथ्य निर्विवाद रूप से पता चलता है कि मानव के इतिहास के आरंभ काल से ही भारत मनुष्य की लीला भूमि रही है। यहाँ से वह धीरे-धीरे अपनी सभ्यता एवं संस्कृति में विकास करता गया। पुरातत्वशास्त्री पाषाण युग के आदिम मानव जाति को 'निग्रटो' कहते हैं। ये लोग दक्षिण अफ्रिका से भारत तथा उसके आगे पुर्व दक्षिण देशों में भी फ़ैल गए थे। अंडमान-निकोबार, आसाम के पर्वतीय क्षेत्र की कुछ आदिवासी जनजातियाँ, त्रावणकोर-कोचीन की पहाड़ियों में पाई जाने वाली टोडा जाति आदि इस 'निग्रटो' जाति के उत्तराधिकारिणी माने जाते हैं। ये आदिम जनजातियाँ हमारी संस्कृति को बड़ा योगदान दिया है -"मानव सभ्यता और संस्कृति को इन जातियों ने भी कुछ दिया है, मुख्यतः खाद्य के क्षेत्र में। कौन-सी वनस्पति कहने योग्य है और कौन-सी खाने से मनुष्य मर जाता है, इसका निर्णय इन लोगों ने अपने अनुभवों द्वारा किया।"[1] मानव सभ्यता के क्रमिक विकास में हाजारों-लाखों साल लगे हैं। इस क्रमिक विकास की चर्चा आगे किया जाएगा।

---

[1] गजानन माधव 'मुक्तिबोध' – भारत: इतिहास और संस्कृति, पृ : 18

प्राचीन पाषाण काल का पूर्वार्द्ध :

भारत का आदि निवासी पूर्व-पाषाण युगीन मनुष्य था। इस युग के मानव हड्डियों और पत्थरों के अत्यन्त सादे और भौंडे औजारों का उपयोग करते थे। इसलिए इसे पाषाण काल का पूर्वार्द्ध कहा जाता है। दिनकर जी ने लिखा है -"प्रस्तर युग भारत से बाहर नहीं, भारत में भी बीता था। प्राचीन प्रस्तर युग के निशान भारत में भी मद्रास, बम्बई, उड़ीसा, पंजाब, गुजरात आदि क्षेत्रों के, कम-से-कम दस स्थानों में मिलते हैं, जो इस बात के प्रमाण है कि इस देश में मनुष्य अत्यन्त प्राचीन काल में भी रहते थे।"[1] कुछ विद्वानों ने इसे लगभग छः लाख वर्ष पूर्व से लेकर पचास हजार वर्ष पूर्व का युग माना है। आदि मानव का असभ्य जीवन प्रकृति पर निर्भर था। वह कृषि-कर्म, अग्नि, बर्तन व धातुओं के उपयोग से अनभिज्ञ था। वह वन के फल-फूल, कंद-मूल तथा पशुओं के माँस, मछलियाँ आदि खाता था। वह शिकार करने, हिंसक पशुओं से लड़ने के लिए पाषाण के हथियार व औजार बनाता था। यह एक क्रांतिकारी कदम था। हिंसक पशुओं के आक्रमणों से बच पाने के लिए वे धीरे-धीरे समूह में रहने लगे और सामूहिक जीवन बिताने लगे। प्रारंभ में नग्नावस्था में घूमने वाले ये लोग वृक्ष की छाल, पत्ते या पशुओं की खाल से अपने शरीर को ढँकने लगे। वे मृतकों के शरीर को पशु-पक्षियों के लिए मैदान में फेंक देते थे।

---

[1] रामधारी सिंह दिनकर – संस्कृति के चार अध्याय, पृ : 33

प्राचीन पाषाण काल का उत्तरार्द्ध :

यह लगभग पचास हजार वर्ष पूर्व से पच्चीस हजार वर्ष पूर्व तक माना जाता है। मनुष्य की नई-नई आवश्यकताओं ने सभ्यता का नया विकसित रूप धारण किया। वे पहाड़ों की गुफाओं में और सरिताओं, झीलों के तटों पर, वृक्षों की टहनियों, पत्तों और घास से बनी झोपड़ियों में रहते थे। वे छोटे-बड़े समूहों में रहते थे। ये अग्नि का उपयोग जानते थे। वन से प्राप्त फल-फूल और कंद-मूल आदि उनकी खाद्य सामग्रियाँ थीं। वे भी पेड़ों की छालों, पशुओं की खालों से शरीर ढँक लेते थे। इस युग में वे कृषि व पशु-पालन से अनभिज्ञ होते हुए भी मछली, भैंस, गाय, घोड़ा, बैल, कुत्ता, आदि से परिचित थे। आखेट ही उनका मुख्य व्यवसाय था। वे मृतकों को दफ़नाते और उन पर समाधि बनाते थे। वे प्रकृति के पूजक थे। उनका विश्वास था कि चट्टानों और वृक्षों में देवताओं का निवास है। इनको प्रसन्न करने के लिए वे जीवों का बलि और भोजन-पानादि प्रदान करते थे। गुफाओं की भित्तियों पर अंकित रेखाचित्रों से इनके कलात्मक प्रवृत्तियों का पता चलता है। इस प्रकार इस युग में विकासोन्मुख मानव सभ्यता की सीढ़ियाँ चढने लगता है।

नवीन पाषाण काल [Neolithic Age]

नविन पाषण काल आज से लगभग बीस हजार वर्ष पुर्व से लेकर छः हज़ार वर्ष पूर्व तक रहा -"The men belonged to this age are called Neolithic. This term is also derived from two Greek words meaning New Stone. The singnificance of this name lies in the

fact that in this age also men had to depend solely on stone implements, and were ignorant of any metals except gold."[1] इस काल के उत्तरार्द्ध में प्राचीन नदी, घाटियों की सभ्यता का उदय हो गया है। दिनकर जी ने इस युग के बारे में लिखा है -"प्राचीन प्रस्तर युग से जब मानव प्राणी नविन प्रस्तर युग में पहुँचा, तब जीवन निर्वाह के लिए उसने अलग-अलग रास्ते अपनाए। कुछ लोग पशुपालन और कृषि में लगे, कुछ लोग मछली मारकर जीवनयापन करने लगे और कुछ लोगों ने जंगलों में और पहाड़ों में रहकर पहले की भाँती शिकारी जीवन बिताना ही पसंद किया।"[2] प्राचीन काल की तुलना में इन्होंने चिकने पत्थरों, हड्डियों, सींगों, और काष्ठ के असंख्य आकर्षक और सुव्यवस्थित अस्त्र-शस्त्र बनाते थे। वे उपकरणों को पाँलिश करते थे। वे गेहू, जौ, बाजरा, मक्का, शाक-सब्जी आदि को उत्पन्न करते थे। वे वस्त्र निर्माण करने के साथ-साथ पेड़-पौधों के द्रवों और धातुओं के रसों की सहायता से कपड़ों को रंगने भी लगे थे। पहिए का आविष्कार इस युग की क्रांतिकारी घटना थी। सामान ढोने तथा सवारी के लिए वे पशुओं और कालांतर में बैलगाड़ियों का उपयोग करने लगे। नदियों के तटों पर रहने वाले मनुष्य नावों का उपयोग करते थे। भवन-निर्माण, मिट्टी के बर्तन व हथियारों का निर्माण चित्रकला आदि से उसकी कला-कौशल झलकती है।

---

[1] R.C Majumdar, H.C Raychaudhary and Kalikinkar Datt - An Advanced History of India, page : 11

[2] रामधारी सिंह दिनकर - संस्कृति के चार अध्याय, पृ : 34

मानव एक ओर बैद्धिक विकास करते रहे तो दूसरी ओर अन्धविश्वासी भी होते गये। वे प्राकृतिक शक्तियों में देवता का आरोप करके उनकी उपासना करते थे। वे मृत्युपर्यन्त जीवन में आस्था रखते थे। भूत-प्रेत संबंधी विश्वास, वृक्ष एवं प्राकृतिक शक्तियों की पूजा, आत्मा की अमरता में विश्वास आदि इन्हीं की देन है। इस युग में मनुष्य कबीलों और परिवारों में रहने लगे थे। इससे सहयोग एवं सहकारिता की भावना को बल मिला। यही से 'समाज' का अंकुश हुआ। आर्थिक असमानता एवं विभिन्न व्यवसायों के आधार पर समाज में 'वर्ग' बनने लगे। वर्ग के संचालन हेतु 'नेता' और परिवार के संचालन हेतु 'पिता' की महत्ता मानी जाने लगी| इसप्रकार वर्तमान संस्कृति व सभ्यता में निहित कई तत्वों का जनक अथवा प्रवर्तक नवीन पाषाण काल के मानव थे।

इस युग के आदिम मानव को 'प्रोटो आस्ट्रेलाँइड' अर्थात 'आदि आग्नेयाभ' कहते हैं। प्राचीन भारतीय साहित्य में आदि आग्नेयाभ को 'नाग' तथा 'निषाद' कहा गया है। यह जाति आफ्रिका व भारत से लेकर आस्ट्रेलिया तक पायी जाती है। भारत में इनके उत्तराधिकारी हैं मध्यप्रदेश की आदिवासी जातियाँ, जो मुंडा-भाषा परिवार की विभिन्न बोलियाँ बोलती हैं। इनके अलावा 'कोल', 'संथाल', 'भील' भी इनके वंशज हैं। सभ्य जातियों के आक्रमण के कारण इन्हें भागकर पहाड़ों व जंगलों में छिपना पड़ा। मुंडा भाषा परिवार से रूई, बैंगन, पान, हाथी, कुम्हड़ा, केला, मोर, चिड़िया आदि

के पर्याय जो संस्कृत भाषा में हैं, हमें मिली हैं। आज भी ये जनजातियाँ सभ्यता के संपर्क से दूर रहने के कारण पिछड़ी हुई हैं।

धातु युग :

मनुष्य ने अपनी पाषाणकालीन सभ्यता में अधिक उन्नति की और सैकड़ों वर्षों के बाद धातुओं का प्रयोग सीख गया। पहले वे स्वर्ण की ओर आकृष्ट हुए जिससे केवल आभूषण बनाते थे। बाद में ताँबें के उपयोग करके, बर्तन, हथियार, दैनिक व्यवहार की सामग्रियाँ बनाने लगे। बाद में टीन के सम्मिश्रण से काँसे की सुदृढ़ और कठोर धातु निर्मित की जाने लगी। ताँबे और काँसे के अधिक उपयोग से इस युग को 'ताम्र' और 'काँस्य काल' [Copper & Bronze Age] कहते हैं। मोहनजोदडो-हड़प्पा में ताँबे और काँसे की विविध वस्तुएँ प्राप्त हुई हैं। इस युग में बड़ी-बड़ी नदियों के किनारे नागरिक सभ्यता के विकसित होने की मजबूत सबूतें मिली हैं।

उत्तर भारत में ताँबे के बाद 'लौह काल' आरंभ होता है। ताँबे-काँसे के स्थान पर लोहे की प्रधानता से इस काल को 'लौह काल' कहते हैं। लेकिन दक्षिण भारत में पाषाण युग के बाद सीधे 'लौह-काल' प्रारंभ होता है। वहाँ ताँबे-काँसे का प्रयोग नगण्य था। इस युग में सोना-चाँदी, टीन, सीसा आदि का भी प्रयोग होता था। इस प्रकार इन धातुओं के उपयोग ने मानव जीवन में कई सुविधाएँ उत्पन्न की और सभ्यता तथा संस्कृति की गति और विकास में खूब वृद्धि की। इस विकास के बारे में मुक्तिबोध ने लिखा है -"जिस प्रकार विज्ञान के विकास ने और उसके द्वारा निर्माण किए गए भाप-इंजन, स्टीम-

बोट, बिजली आदि साधनों ने दुनिया को मध्य युग के अंधकार से खींचकर आधुनिक युग में लाकर खड़ा कर दिया और समाज-रचना को भी बदल डाला, उसी प्रकार नव-पाषाणयुगीन मानव ने मनुष्य को असभ्यावस्था से निकालकर, सभ्यता के किनारे खड़ा कर दिया। उसने भी उतनी ही बड़ी क्रान्ति की थी जितनी की आधुनिक विज्ञान ने की।"[1] इस प्रकार आधुनिक भारतीय संस्कृति एवं सभ्यता के रूपायन में नविन-पाषाण युग ने महत्वपूर्ण योगदान दिया है।

सिन्धु घाटी सभ्यता :

मनुष्य की सभी श्रेष्ठ संस्कृतियों का जन्म नदी-घाटियों में बसे ग्रामों व नगरों से हुआ है। मिश्र में नील नदी के किनारे, इराक में यूफ्रेटीज-टायग्रिस नदियों के तट पर, मेसोपोटेमिया में दजला और फरात नदियों के किनारे और भारत में सिन्धु नदी की उपत्यकाओं में प्राचीन सभ्यताओं का आविर्भाव हुआ। - "More than 4000 years ago there flourished in the north western parts of the indo-pakistan subcontinent a civilization which, deriving its name from the main river of the region, is known as the Indus civilization."[2] खेतीबारी पर आधारित ये सभ्यताएँ अपने ग्राम और नगर नदियों के किनारे बसाए गये। नदी घाटियों की उपजाऊ भूमि, कोमल मिट्टी और अधिक पैदावार, वर्षा की अधिकता और

[1] गजानन माधव 'मुक्तिबोध' – भारत : इतिहास और संस्कृति, पृ : 22
[2] A. L. Basham [Editor] - A cultural History of India , page : 11

चरागाहों की सुविधा, यातायात की सुविधा आदि कई अनुकूल परिस्थितियों के कारण नदी घाटियों में मानव सभ्यता खूब फूली-फूली।

आजकल के पाकिस्तान के अंतर्गत सिंध प्रान्त के 'लरकाना' जिले में सिन्धु नदी के किनारे मोहनजोदडो नामक स्थान पर भव्य नगर था। इस नगर के चार सौ मील दूर उत्तर की ओर पंजाब के 'मोंटगोमरी' जिले में रवी नदी के किनारे हडप्पा नामक स्थान पर एक और नगर था। ये दोनों नगर और आसपास का क्षेत्र विशाल सभ्यता से समृद्ध था। उन दिनों पूरे क्षेत्र की जलवायु अधिक अनुकूल थी। यह क्षेत्र वनों से आच्छादित था और वर्षा भी खूब मिलती थी। इन स्थानों से प्राप्त भग्नावशेषों से साबित होता है कि यह ऋग्वेदकालीन सभ्यता से पूर्व जन्मी है। इसका काल प्रसार लगभग 3250 और 2750 ई. पू. के बीच माना है। इसका क्षेत्र काफ़ी विस्तृत था और कई बातों में यह इराक (सुमेरिया-बाबिलोनिया) की सभ्यताओं से बढकर थी। यह सभ्यता नगर सभ्यता है| ग्राम्य सभ्यता नहीं| कई विद्वान इस सभ्यता का जनक आर्यों को मानते हैं तो कई लोग आर्येतरों को। इस संबंध में आज भी विवाद चल रहे हैं। इस सभ्यता के नगर-निवेश सुव्यवस्थित गृह निर्माण, सड़कें, जल, निकास के लिए ढँकी हुई पक्की नालियों की सुंदर व्यवस्था मूर्तिकला, मुहर निर्माण कला, विशिष्ट चित्राक्षर लिपि आदि काफी प्रसिद्द हैं। पकाई ईटों से बनी मकानें दो मज़िले होते थे। घरों के चार-पाँच कमरे, रसोईघर, स्नानघर भी होते थे। सडकों का निर्माण सुनियोजित ढंग से था। इससे छोटी-छोटी गलियाँ व शाखाएँ निकलती थी। सड़कों के किनारे कूड़ा-

कचडा फेंकने के लिए गड्ढे या कूड़ेदान की व्यवस्था थी। घरों की नालियाँ सड़क के किनारे की बड़ी नालियों में गिरती थी।

इनके भोजन में गाय, शूकर, भेड का मांस, जल-जंतुओं का मांस, मछली, मुर्गी, कछुआ आदि के साथ-साथ गेहूँ, दूध, नारियल, मिठाइयाँ, अनार, नींबू आदि थे। ये लोग सूती और ऊनी कपड़ों का प्रयोग करते थे। अमीर लोग सोने-ताँबे के आभूषण पहनते थे तो निर्धन व साधारण लोग अस्थियों, सीपों व पक्की मिट्टी के आभूषण पहनते थे। वे दर्पण, कंघी, काजल, सुरमा, सिंदूर आदि का उपयोग करते थे। मछली तथा जंगली पशुओं का आखेट शतरंज, गोलियों का खेल, जुआ, नृत्य, संगीत आदि आमोद-प्रमोद व मनोरंजन के लिए करते थे। उत्खनन से प्राप्त मूर्तियों, मुहरों, बर्तनों, खिलौनों आदि से विभिन्न कला-कौशलों का ज्ञान होता है। कृषि, पशुपालन, उद्योग-धंधे, व्यापार आदि इनके आर्थिक जीवन को सुदृढ़ बनाया।

इस समाज में जाति, वर्ग या वर्ण प्रथा नहीं थी। समाज की मुख्य इकाई परिवार थी। यह मातृप्रधान समाज था। समाज में पुरोहित, पदाधिकारी, राजकीय कर्मचारी, वैद्य, व्यवसायी, कृषक आदि थे। समाज चार भागों में विभक्त था 1.विद्वान (इनमें पुरोहित, वैद्य, ज्योतिषी आते हैं) 2.योद्धा और सैनिक तथा राजकीय अधिकारी (ये नगर सुरक्षा तथा प्रशासन से संलग्न लोग थे।) 3.व्यवसायी (व्यापारी व उद्योगपति वर्ग) 4.श्रमिक लोग (इनमें नौकर-चाकर तथा श्रम करके जीवन-निर्वाह करने वाले लोग थे।)

वर्तमान हिन्दू धर्म में सैन्धव्य सभ्यता के अनेक अंश प्रतिबिम्बित हैं। इनके विभिन्न धार्मिक धारणाएँ, क्रियाविधियाँ, विश्वास परंपराएँ आदि के क्रमिक विकास ने वर्तमान हिन्दू धर्म को जन्म दिया है। सिन्धु सभ्यता के बहुदेववाद, लिंग पूजा, पशुपति शिव की पूजा, मातृ देवी की पूजा, वृक्ष-पूजा, पशु-नाग-यक्ष-जल आदि की पूजा, साकार मूर्ती-पूजा आदि को आर्यों ने अपना लिया जो हिन्दू धर्म में आज भी विद्यामान है। हिन्दू दर्शन शास्त्र की अमरता की धारणा, परलोक व पुनर्जन्म की दार्शनिक भावना आदि भी इनकी देन है। इसप्रकार सिन्धु घाटी सभ्यता का हिन्दू धर्म से अविछिन्न संबंध है। सिन्धु घाटी से जो नर-कंकाल प्राप्त हुए थे, उनमें से अधिकांश नर -कंकाल भूमध्य सागरीय जाति अथवा द्रविड़ों की थी। आर्यों ने जब इन पर आक्रमण किया तब ये इधर-उधर भाग गये। उनसे रंगभेद के आधार पर शूद्र जाति बनी। जो लोग दक्षिण चले गये थे वहाँ अपना उपनिवेश बनाया। इसके साथ इन्होंने श्रीलंका, दक्षिण-पूर्वी एशिया, आदि को भी आबाद किया। संस्कृत साहित्य में द्रविड़ों को 'द्रामिल' कहा जाता रहा जिनका बदला हुआ रूप है 'तामिल'। दक्षिण भारत में तमिल,तेलुगु, कन्नड़, और मलयालम इनकी प्रधान भाषाएँ हैं। इन्होंने आर्य संस्कृति में कई परिवर्तन करके अपना लिया। उन्होंने भारतीय संस्कृति को सर्प, शिव, वृक्ष इत्यादि देवी-देवतायें प्रदान कीं। इनका परिवार मातृसत्तात्मक था। वे कला-कौशल, वाणिज्य-व्यापार में प्रवीण होने के कारण इन्हें ही सिन्धु घाटी सभ्यता के स्थापक

मानते हैं। लेकिन इसको साबित करने के लिए कोई ठोस प्रमाण अभी तक नहीं मिली है।

सिन्धु घाटी सभ्यता का नाश कैसे हुआ इस पर विद्वानों में मतभेद है| कई विद्वान एवं इतिहासकार आर्यों के बर्बर आक्रमणों को इसका कारण मानते हैं। खुदाई से प्राप्त मुर्तियों, कंकालों तथा अन्य वस्तुओं के अवशेषों से पता चलता है कि इनको बुरी तरह तोड़-फोड़ दिया गया था। आर्यों ने इस उपजाऊ भूमि पर अधिकार करने के लिए इस महान सभ्यता को नष्ट किया था। कुछ इतिहासकार बाढ़ एवं घनघोर बर्षा को इस सभ्यता के विनाश का कारण मानते हैं। मोहनजोदड़ो और लोत्तल से प्राप्त अवशेषों से इनको सबूत मिले हैं। जो भी हो, सिन्धु घाटी सभ्यता का नाश अचनाक नहीं हुआ था।

वैदिक संस्कृति :

भरतीय संस्कृति के विकास में अपनी प्राचीनता और व्यापक प्रभाव के कारण वैदिक संस्कृति का अत्यधिक महत्वपूर्व स्थान है। वैदिक युग वह आधारशिला है जिस पर भरतीय संस्कृति, सभ्यता और इतिहास का विशाल भवन निर्मित हुआ है। इस संस्कृति के निर्माता को ऋग्वेद में 'आर्य' कहा गया है। आर्यों के मूल स्थान और आगमन को लेकर इतिहासकारों में मतभेद है। इतिहास, भाषा विज्ञान, पुरातत्व सामग्री, शारीर-रचनाशास्त्र और शब्दार्थ विकास शास्त्र आदि के आधार पर आर्यों की आदि भूमि के संबंध में चार संप्रदाय प्रचलित हुए हैं। भाषा विज्ञान के आधार पर कुछ विद्वान उनका मूल स्थान यूरोप मानते हैं। कुछ लोग एशिया, मध्य एशिया आर्कटिक प्रदेश या

ध्रुव प्रदेश और भारत को भी मूल स्थान मानते हैं। अधिकांश विद्वान आर्यों को बाहर से आए विदेशी मानते हैं। उन्होंने भारत के सीमांत प्रदेश पर आक्रमण करके सैन्धव सभ्यता को नष्ट किया। इस सभ्यता के बाद ही 'आर्य' संस्कृति का प्रादुर्भाव होता है।

भारत में आर्यों के आगमन की कोई निश्चित तिथि नहीं है। इनका प्राचीनतम प्रसिद्ध ग्रंथ है 'ऋग्वेद', जिसमें कुल 1028 सूक्त हैं। यह सहिता दस मंडलों में विभक्त है। लगभग सभी सूक्तों में प्राकृतिक देवताओं की स्तुति की गई है। इन सूक्तों से आर्यों के रहन-सहन, आचार-विचार, दान-विसर्जन, युद्ध आदि पर प्रकाश पडता है। ऋग्वेद का रचनाकाल 1000 ई. के लगभग माना है। सैन्धव सभ्यता का जन्म ई. पू. 2500 वर्ष में होने के कारण कुछ विद्वान आर्यों का भारत में प्रविष्ट होने का समय 2500 वर्ष ई.पू. तथा 1000 ई.पू. के मध्य मानते हैं। मैक्समूलर ने ऋग्वेदिक सूक्तों की रचना का प्रारंभकाल 1200-1000 ई.पू. माना है। इसका रचना स्थल सप्त सिंधु प्रदेश था। प्रारंभ में आर्यों का प्रसार इसी प्रदेश में हुआ था। यह सप्तसिंधु आधुनिक अफगानिस्थान से लेकर गँगा नदी के पश्चिमी क्षेत्र तक विस्तृत है। यहीं से वे धीरे-धीरे दक्षिण की ओर अग्रसर हुए। प्रारंभ में वे अपने कबीलों के पारस्परिक संघर्ष और अन्य अनार्यों से संघर्ष में व्यस्त थे। ऋग्वेद में इन सबका वर्णन है।

आर्य एक ही परिवार,समूह, जन, अथवा कबीले के नहीं थे। वे अनेक जनों, कबीलों में विभक्त थे। वे अलग-अलग समय पर कृषि भूमि की खोज

करते-करते भारत आ गये। अनु, द्रुह्यु, यदू, तुर्वस, पुरु आदि मुख्य कबीले थे। आर्यों के आगमन के समय भारत में यहाँ के मूल निवासियों अथवा अनार्यों के कई राज्य थे। आर्य कबीलों को इन अनार्यों से युद्ध करना पडा। इन अनार्यों को 'दस्यू' अथवा 'दास' कहते थे। शारीरिक-सामाजिक-सांस्कृतिक भिन्नताओं के कारण ये निरंतर लड़ते थे।

समाज की इकाई परिवार होती थी जो पितृसत्तात्मक था। फिर भी महिलाओं का सम्मान करते थे। पुत्र-पुत्री को समान अधिकार प्राप्त था। कन्याओं को उच्च शिक्षा के साथ ललित कलाओं की भी शिक्षा दी जाती थी। विश्ववारा, घोवा, अपाला, सिकता आदि उस युग की विदुषियाँ थीं। विवाह को पवित्र मानते थे जिसके लिए वर-वधु की स्वीकृति अनिवार्य थी। कन्याओं को अपना जीवन साथी चुनने की पूर्ण स्वतंत्रता थी। वे लोग आभूषण प्रिय थे और सिले हुए कपडे पहनते थे। वे मांसाहारी थे। युद्ध, नृत्य, गुड़-दौड़, रथ-दौड़, आखेट, मल्लयुद्ध आदि मुख्य मनोरंजन थे। वे नैतिक आदर्शों को महत्व देते थे।

बैदिक युग में ही उन चार वर्णों का विकास प्रारंभ हुआ जो बाद में भारतीय समाज की एक महत्वपूर्ण विशेषता बनी। प्रारंभ में आर्य-अनार्य ये दो वर्ग ही थे। इनके बीच निरंतर संघर्ष होता था। आर्यों ने युद्ध कर्म तथा अन्य कर्म करने के लिए कर्म एवं श्रम के आधार पर लोगों को विभाजित किया। आर्य धर्म की सुरक्षा, मन्त्र रचना, मंत्र संरक्षण, राष्ट्रकल्याण, देवी-देवताओं की स्तुति आदि के लिए पुरोहित रखे गये जो बाद में 'ब्राह्मण'

कहलाये। युद्धों में भाग लेने वाले, युद्ध विद्या में निपुण, राष्ट्र और धन-जन की रक्षा करने वाले, विविध राजकीय और प्रशासकीय कार्यों में संलग्न रहने वालों को 'क्षत्रिय' नाम से संबोधित किया गया। आर्यों के समाज में शेष लोग वाणिज्य, कृषि, पशुपालन तथा अन्य व्यवसाय करते थे जिन्हें 'वैश्य' कहा जाता था। युद्ध में पराजित अनार्य जो आर्यों के समाज के अंग बन गये थे, 'दास' या 'दस्यु' कहलाए। ये निम्नस्तर के कार्य के लिए नियोजित किये गये। ऋग्वेद के नौ मंडलों में ब्राह्मण, क्षत्रिय एवं वैश्यों का उल्लेख मिलता है। दसवाँ मंडल के 'पुरुषसूक्त' में वर्ण विभाजन का आलंकारिक वर्णन हुआ है। वर्णों की उत्पत्ति ईश्वरप्रदत्त मानी गयी। पुरुषसूक्त के अनुसार वर्णों की उत्पत्ति ईश्वरकृत मानी गयी। इसके अनुसार वर्णों की उत्पत्ति विराट पुरुष से हुई है। मनु ने भी 'ब्रहत्म' से वर्ण की उत्पत्ति मानी है। महाभारत के अनुसार सांसारिक प्रगति के लिए ब्राह्मणों के साथ अन्य तीन वर्णों को जन्म दिया है। इससे भिन्न कुछ लोगों के अनुसार गुण के आधार पर वर्ण विभाजन हुआ है। विष्णुपुराण के अनुसार ब्राहमण सत्त्वगुण से युक्त है, क्षत्रिय रजोगुण से, वैश्य रजोगुण और तमोगुण के संयोग से और शूद्र तमोगुण से उत्पन्न है। कुछ लोग इस विभाजन को कर्म के आधार पर मानते हैं। ऐसे लोगों का सिद्धांत यह है कि पूर्वजन्म में अच्छे कर्म करने पर उच्च वर्ण में और निम्न कार्य करने पर निम्न वर्ण में जन्म लेते हैं।

इतिहासकारों का मानना है कि आर्यों ने इस वर्ण विभाजन का आश्रय इसलिए लिया क्योंकि वे भारत के विभिन्न जातियों को एक सूत्र में बांधकर

रखना चाहते थे। जातिप्रथा जो आज भी समाज में कायम है, आर्यों की देन है। पर उस समय जाति प्रथा उतना निंदनीय या अभिशाप नहीं था। रामधारी सिंह दिनकर ने लिखा है -"उन दिनों भारत में ऐसे लोगों की भरमार थी, जिनमें कुछ तो पूर्ण रूप से सभ्य और कुछ केवल अर्ध-सभ्य, कुछ धनी और कुछ गरीब थे; कुछ ऐसे थे जो ऊँची बातें समझ सकते थे और कुछ ऐसे जिन्हें ऊँची बातों से कोई सरोकार नहीं था। साथ ही इनमें से प्रत्येक जाति के पास अपनी कथा-कहानियाँ, अपने देवी-देवता, अपने रस्म-रिवाज़ और अपने धर्म थे। इन्हीं नाना प्रकार के लोगों को एक समाज में बांधने का भारी काम आर्यों के आगे था, जिसे पूरा करने के लिए उन्होंने जाति प्रथा का आश्रय लिया।"[1] प्रारंभ में जाति-प्रथा उतना कठोर नहीं था जितना आज। उस समय ब्राह्मण शुद्र के बीच में विवाह होता था। ऋग्वेद में कहीं भी शूद्रों को निंदनीय नहीं माना। न ही उनके संसर्ग को अपवित्र माना। वर्णाश्रम से अनेक जातियाँ उत्पन्न हुईं। उनके बीच ऊंच-नीच का भेद बढ गया। वर्तमान समाज में जातिभेद इतना बढ़ गया है कि प्रत्येक व्यक्ति को जाति के आधार पर अस्पृश्य और निंदनीय मानने लगे हैं।

उत्तर वैदिक संस्कृति

ऋग्वेदिक काल में आर्य अफगानिस्तान से लेकर गंगा घाटी तक विस्तृत थे। लेकिन बढ़ती जन्संख्या के कारण आर्य, अनार्यों पर आक्रमण करके सप्तसिंधू प्रदेश से दक्षिण-पूर्व की ओर बढ़े। धीरे-धीरे संपुर्ण उत्तरी

[1] रामधारी सिंह दिनकर - संस्कृति के चार अध्याय, पृ : 59-60

भारत पर हमला किया और वह प्रदेश 'आर्यवर्त' कहलाये। दक्षिण के प्रदेश को वे 'दक्षिणापथ' कहते थे। उनका इस क्षेत्र विस्तार की भावना ने तत्कालीन सामाजिक-राजनितिक- सांस्कृतिक जीवन को प्रभावित किया। इस युग में यजुर्वेद, सामवेद, और अथर्ववेद तथा सूत्रग्रंथों की रचना हुई। विद्वानों के मतानुसार ई.पू. सन् 1200 से ई.पू. सन् 200 वर्ष की अवधी में ही इन ग्रंथों को रचना हुई है।

इस युग में वर्ण व्यवस्था में कठोरता आ गई। चारों वर्णों के कर्तव्यों, अधिकारों व स्थितियों में विभेद किया जाने लगा। इस युग में ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य के साथ शूद्र वर्ण का विकास हुआ। ब्राह्मणों को पवित्र मानने लगे। इस युग में क्षत्रियों ने दर्शन एवं वेदों के अध्ययन में रूचि दिखायी और ब्राह्मणों से तर्क-वितर्क में भी भाग लेने लगे। इसप्रकार क्षत्रिय अपने आपको ब्राह्मणों के पद तक ऊँचा उठा लिया था। समाज में ब्राह्मणों और क्षत्रियों को छोडकर सभी आर्य, वैश्य कहलाये। वैश्यों का स्थान इनसे निम्न था। धन संपन्न वैश्यों को राजसभा में बड़ा सम्मान मिलता था। इस युग तक आते-आते शूद्रों की स्थिति अत्यन्त दयनीय हो गई। उन्हें सभी सुख-सुविधाओं एवं अधिकारों से वंचित रखा गया। यज्ञ और अन्य धार्मिक कार्यों में अस्पृश्य माने जाने लगा। इस युग में कई अनार्यों और आदिम जातियों के संपर्क में आकर शूद्रों में कई जातियाँ उत्पन्न हुईं। इनमें चाण्डाल, पौल्कस, उग्र, मागध, वैदेहक आदि शूद्रों के मुख्य वर्ग थे। ऐत्तरेय ब्राह्मण में शूद्रों को अन्य व्यक्तियों का सेवक कहा गया है। कालांतर में ब्राह्मणों की प्रभुता और प्रतिष्ठा बढ़ गई।

एक ही वर्ण के लोग व्यवसायों और कर्मो के अनुसार छोटे-छोटे वर्गों में विभक्त हो गये।

इस युग में नवीन धार्मिक विचारधाराओं, क्रिया-विधियों और परंपराओं का प्रादुर्भाव हुआ। यजुर्वेद ने यज्ञों को बढ़ावा दिया। इसके साथ अश्वमेध यज्ञ और पशु बलि को भी महत्व मिला। वे प्रेतात्माओं, जादू-टोनों में विश्वास करने लगे। इन सबने समाज में ब्राह्मणों का महत्व बढ़ा दिया। ऋग्वेद कालीन सादगी, सरलता नष्ट होकर जटिल कर्मकाण्ड एवं आडम्बर युक्त धर्म प्रचलित हो गये। इस युग में ब्रह्मा, विष्णु और महेश जैसे नए देवताओं का प्रादुर्भाव हुआ। वे मृत्यु, उत्पत्ति एवं पालन करने वाले देवता थे। ऋषि-मुनियों ने जंगलों में जाकर तपस्या करने लगे आरण्यवासी मुनियों ने आरण्यकों और उपनिषदों की रचना की। ऋषियों के बीच सृष्टि, जगत, आत्मा, ब्रह्मांड और उसका सृष्टा, प्रकृति, परमात्मा आदि को लेकर गंभीर चर्चाओं एवं वाद-विवादों से भारत में नये-नये दर्शन बने जो आज भी मील के पत्थर के रूप में विद्यमान है। वे हैं- सांख्य, योग, न्याय, वैशेषिक, मीमांसा, वेदान्त, तर्कशास्त्र आदि। इस युग में प्रचलित कर्म सिद्धांत जो व्यक्ति के कर्मों के अनुसार उसके पुनर्जन्म को मानते हैं काफी लोकप्रिय हुए। वैदिक परंपरा के विरोधी जैन और बौद्ध धर्म ने कर्म सिद्धांत को मान्यता दी है। इस युग में जिस प्राकृत भाषा का प्रचलन था, उससे आगे चलकर शौरसेनी, मागधी, महाराष्ट्री आदि का विकास हुआ था। इस प्रकार उत्तर-वैदिक काल में हमारे धर्म, दर्शन, नीति, आचार-विचार, मत-विश्वास आदि की प्रधान रूपरेखा

निश्चित एवं स्पष्ट हो गई। इस युग में वैदिक संस्कृति हिन्दू संस्कृति में परिवर्तित होने लगी। जाति व्यवस्था पहले से ज्यादा मज़बूत हो गई। हिन्दू धर्म को वर्तमान रूप में परिणत करने में इस युग का महत्वपूर्ण हाथ है।

महाभारत – रामायण काल :

महाभारत और रामायण आर्यों के दो बड़े महाकाव्य हैं। प्रत्येक मानव जाति में अपने-अपने वीरों की कथाएँ, प्राचीन महत्वपूर्ण घटनाएँ आदि पीढ़ी-दर-पीढ़ी कहानी या किस्से के रूप में चली आती हैं। प्राचीन काल में यह राजाओं को गाया करते थे या गहा के रूप में सुनाया करते थे। इन्हें अनुश्रुति कहते हैं। इसमें वास्तविक इतिहास के साथ कल्पना का योग भी होता है। वाल्मीकि द्वारा रचित 'रामायण' अनुश्रुतियों पर आधारित है। इसमें ईसा. के 500 वर्ष पूर्व के समाज का चित्रण हुआ है। व्यास कृत 'महाभारत' का आख्यान भी इसा के 500 वर्ष पूर्व बना। संस्कृत साहित्य में रामायण को 'आदि काव्य' और महाभारत को 'इतिहास पुराण' माना गया है। रामायण आर्यों के दक्षिण भारत में प्रवेश करने के इतिहास का विवेचन करता है तो महाभारत महत्वहीन गृह कलह से भारत में आए आर्यों की समस्याओं का चित्रण। इन दोनों महाकाव्यों में वर्णित धर्म, आचार-विचार, संस्थाएँ, प्रथाएँ, प्रणालियाँ और आदर्श सदियों से हमारे सांस्कृतिक जीवन को प्रभावित कर रहे हैं।

रामायण महाभारत से छोटी है। इसमें चित्रित कथा इस प्रकार है -: कोसल के उत्तराधिकारी राजा राम है। उनकी सौतेली माता, अपने पुत्र को

राजा बनाने के लिए राम को चौदह साल का वनवास दिलाती है। इस निर्वासन से राम-लक्ष्मण और सीता दक्षिण भारत के वनों में पहुँचते हैं। वहाँ तीनों सन्यासी का जीवन बिताने लगते हैं। तब राक्षसों का राजा रावण सीता का अपहरण करता है। राम ने वानरों के नेता हनुमान की सहायता से सीता को मुक्त करते हैं। राजधानी वापस आकर सीता को अपनी पवित्रता सिद्ध करने के लिए अग्नि-परीक्षा देनी पड़ती है। बाद में राम राजा बनते हैं और उनका शासन समृद्धि एवं न्याय के लिए विख्यात होता है। आज भी आदर्श राज्य का वर्णन करने के लिए 'राम राज्य' का प्रयोग करते हैं। इसमें जिन्हें राक्षस बताया गया है वे काशी के पूर्व में रहते थे और वहाँ भोजपुरी का प्रचलन है। वानर, वन्य जीवन बिताने वाले हैं। रामायण के समाज में सभ्यता अपनी प्रौढ़ अवस्था में थी। इसके संदर्भ में रामविलास शर्मा ने लिखा है -"लंका नगर के वैभव का जो वर्णन रामायण में किया गया है, उससे प्रतीत होता है, मागधों में कुछ लोगों ने काफ़ी धन एकत्रित किया था। भवन निर्माण में वे विशेष कुशल थे।"[1] रामायण मे राम, रावण और हनुमान के माध्यम से तीन संस्कृतियों के समन्वय को प्रस्तुत किया है। दिनकर जी ने लिखा है -"वानरों और राक्षसों के विषय में अब भी यह अनुमान प्रायः ग्राह्य हो चला है कि ये लोग प्राचीन विन्ध्य-प्रदेश और दक्षिण भारत की आदिवासी आर्येतर जातियों के सदस्य थे।"[2] राम ऐसा एक चरित्र है जो ब्राह्मण धर्म में विष्णु के, बौद्ध धर्म में बोधिसत्व तथा जैन धर्म में आठवें बलदेव के रूप में

[1] रामविलास शर्मा - भारतीय संस्कृति और हिंदी प्रदेश, पृ : 653
[2] रामधारी सिंह दिनकर - संस्कृति के चार अध्याय, पृ : 76

प्रतिष्ठित हुए। रामायण में राम द्वारा शिव की प्रतिष्ठा, हनुमान का रूद्र का अवतार मानना आदि चित्रित करके शैव और वैष्णव मतों की दूरी को कम किया।

महाभारत संसार का लंबा महाकाव्य है। इसमें भूमि के अधिकारों के लिए कौरवों-पाण्डवों के बीच हुए युद्ध का वर्णन चित्रित है। कौरव धृतराष्ट्र के सौ पुत्र थे और उनकी राजधानी हस्तिनापुरी थी। पाण्डव धृतराष्ट्र के चचेरे भाई पांडू के पाँच पुत्र थे। धृतराष्ट्र के अँधा होने के कारण कुरुवंश के राजा पाण्डव बने। इससे पाण्डव एवं कौरवों में दुश्मनी हुई। धृतराष्ट्र ने राज्य विभाजन करके आधा भाग पाण्डवों को दिया और इन्द्रप्रस्थ (दिल्ली के निकट) राजधानी बनाकर शासन करने लगे। इससे क्रुद्ध होकर कौरव पाण्डवों को जुए खेलने को ललकारते हैं। जुए में पाण्डव हार गए और तेरह वर्ष वन में रहने पडे। इस अवधि के बाद वापस आने पर कौरवों ने पाण्डवों को राज्य नहीं दिया। इन दोनों के बीच अठारह दिन तक युद्ध होता है। पाण्डव विजय प्राप्त करके शासन करते हैं। अंत में वे राज्य का परित्याग करके एक भाई के पौत्र को सिंहासन पर बिठाकर हिमालय में चले जाते हैं। महाभारत में वर्णित घटनाओं से भारत के भौगोलिक विशेषताओं का पता चलता है। महाभारत-रामायण काल तक आते-आते चातुर्वर्ण्य व्यवस्था समाज का मूल आधार बन चुकी थी। रामायण में भी चारों वर्णों की उत्पत्ति ईश्वर से मानी गयी है। ब्राह्मणों को सर्वश्रेष्ठ स्थान प्राप्त था। वे वेदों का अध्ययन-अद्यापन, यज्ञ-हवन आदि करने के साथ-साथ कृषि, पशुपालन,

व्यापार आदि भी करते थे। इस युग में शूद्र सबसे हेय वर्ग था। वे वेदों-धर्म संहिताओं के अध्यापन से वंचित थे। इस युग में कर्म के आधार पर कुछ लोगों को सम्मान प्राप्त था। महाभारत के भीष्म पितामह जन्म से क्षत्रिय थे पर उन्हें अपने कर्म के कारण ब्राह्मणों के समान स्थान प्राप्त था। अच्छे कर्म करने पर शूद्र भी सम्मानित होते थे। इस युग में इन चार वर्णों के अतिरिक्त यवन, शक, किरात तथा असभ्य बर्बर जातियाँ भी थीं। समाज में वर्णाश्रम धर्म भी प्रचलित था। वे चार आश्रम हैं ब्रह्मचर्य, गृहस्थ आश्रम, वानप्रस्थ और संन्यास। रामायण और महाभारत में गृहस्थ आश्रम को काफ़ी महत्व दिया गया है। दोनों काव्यों में संन्यास आश्रम केवल ब्राहमण निभाते हैं।

महाकाव्य के युग में आर्य लोग पूर्व की ओर अधिक बढ़ गए थे और नवीन राज्य स्थापित कर लिए थे। इनसे प्राप्त जानकारियों से उस समय के विशाल राज्य कुरु, पांचाल, कोसाम्बी, कौशल, काशी,विदेही, आदि का पता चलता है। साम्राज्य विस्तार इस युग में सम्राटों का मुख्य लक्ष्य था। रामायण में राजा को सर्वश्रेष्ठ माना गया है। राजा के निरंकुश होने पर गद्दी से निकाल देता था। सुव्यवस्थित शासन के लिए अनेक पदाधिकारी थे। रामायण में ऐसे अठारह पदाधिकारियों का उल्लेख किया है। साधारणतया लोग गाँवों में रहते थे। राजा, व्यवसायी आदि नगरों में रहते थे। इस युग में नारी की स्थिति दयनीय थी। क्योंकि पुत्र की कामना लोग अधिक करते थे। फिर भी नारी को स्वतंत्रता पूर्वक भ्रमण करने, संगीत-नृत्य सीखने, वैदिक मंत्र पढ़ने का अधिकार था। रामायण में कौशल्या, तारा, और सीता वैदिक

मन्त्रों की ज्ञाता थीं। प्रतिभावान राणियाँ राजा को उपदेश देती थीं। धार्मिक क्रिया-विधियों में उन्हें पति के साथ बैठने की छूट थी। स्त्रियों का वध करना पाप समझा जाता था। इस युग में बाल-विवाह का आभाव था। वैवाहिक जीवन को समाज में प्रतिष्ठित माना जाता था। महाभारत में अपने कन्या का विवाह न करने वाले व्यक्ति को ब्रह्मघाती कहा गया है। इस युग में स्वयंवर प्रथा प्रचलित थी। सीता, सावित्री, दमयन्ती, द्रौपदी आदि ने अपने पति को स्वयं चुना था। समाज में बहुपत्नीप्रथा, वेश्यावृत्ति आदि भी प्रचलित थीं। इस युग में ज्योतिष, दर्शनशास्त्र, आयुर्वेद, शल्य, चिकित्सा, खगोल-विद्या आदि की खूब प्रगति हुई। लोग पशुपालन एवं कृषि के साथ वाणिज्य, एवं व्यवसाय करते थे। इसप्रकार महाकाव्यों से भारतीय संस्कृति को अनेक उपलब्धियाँ मिली हैं।

बौद्ध संस्कृति

बौद्ध धर्म भारत का ही नहीं, विश्व का एक महान धर्म रहा है। गौतम बुद्ध ने इस धर्म की स्थापना के द्वारा जीवन को एक नई दिशा प्रदान की। भारतीय संस्कृति व जीवन के विविध अंगों को ढालने में इसका महत्वपूर्ण योगदान रहा है। वैदिक या ब्राहमण धर्म के कर्मकाण्ड साधारण लोगों के लिए दुरूह था। इसकी तुलना में बौध धर्म सरल एवं सुबोध होने तथा जनता को दुःखों से मुक्त करके निवारण या मोक्ष देने पर बल देने के कारण अधिक लोकप्रिय हो गये। बौद्ध धर्म तीव्र हिन्दू संस्कृति के खिलाफ, उसके

बाह्यांडबर, पुरोहितवाद आदि के विरुद्ध जन्म लिया था। बुद्ध ने वैदिक धर्म की कुरीतियों एवं कमजोरियों पर प्रहार किया।

इस धर्म के सदाचार मूल्य, पवित्र जीवन, नैतिकता, जनसेवा, मन-वचन-कर्म की शुद्धि, अहिंसा, सत्यभाषण, इंद्रिय दमन, गुरुजनों का सम्मान आदि भारतीय संस्कृति के अभिन्न अंग बन गये। इन्होने ऊँच-नीच, स्त्री-पुरुष भेदभाव, छुआछूत जातिप्रथा, आदि का विरोध करके सभी को आद्यात्मिक प्रगति की ओर अग्रसर किया। इससे समाज में समानता, स्वतंत्रता, उदारता और सहनशीलता की भावनाएँ प्रसारित हुईं। कबीर, नानक और हरिदास जैसे निर्गुण संतों को जातिप्रथा के विरोध करने का साहस बुद्ध से मिला है। बुद्ध द्वारा प्रदत्त बौद्धिक स्वतंत्रता ने धर्म और समाज पर परंपराओं, रुढियों और अंधविश्वासों के बंधन टूटने तथा स्वतंत्रतापूर्वक सभी समस्याओं पर सोच-विचार करने का अवसर दिया। यही नहीं पाली भाषा में रचित बौद्ध साहित्य, बुद्ध प्रचारकों व धर्माचार्यों द्वारा बनाये गये स्तूपों – विहारों ने भारतीय कला एवं साहित्य को अनमोल योगदान दिया है। बौद्ध प्रचारकों के ज़रिए अप्रत्यक्ष रूप में भारतीय संस्कृति नेपाल, जापान, कोरिया, मध्य एशिया, सुमात्रा, मलया, तिबत्त, लंका, चीन, जावा, कम्बोडिया, सुमात्रा आदि विदेशों में प्रसारित हुईं। बुद्ध ने जातिवाद का विरोध किया। इसके साथ ब्राह्मणों के कर्मकाण्ड का बहिष्कार किया। .....”बौद्ध – विहारों के निर्माण से शिक्षा का प्रसार बढा, क्योंकि ब्राह्मणों के अतिरिक्त ये अब शिक्षा

के सोत्र बन गये। इससे भी अधिक महत्वपूर्ण बात यह थी कि, चूँकि वे समाज के हर वर्ग के स्त्री-पुरूषों को भिक्षुणी तथा भिक्षु बना लिया करते थे इसलिए, शिक्षा केवल कुछ उच्चस्थ लोगों तक ही सीमित नहीं रही। इस बात को दृष्टि में रखते हुए कि ब्राह्मण रुढिवादिता धीरे-धीरे स्त्रियों की गतिविधियों पर प्रतिबंध लगाने का प्रयत्न कर रही थी, स्त्रियों को भिक्षुणियों के रूप में स्वीकार करना उनकी अवस्थिति के विचार से एक क्रांतिकारी कदम था।"[1] इस प्रकार बौद्ध धर्म ने उत्पीडित वर्गों को प्रभावित किया।

बुद्ध ने जाति प्रथा को चुनौती देकर जिस महान आन्दोलन का आरंभ किया वह आज भी चल रहा है। दिनकर जी ने लिखा है – "जाति प्रथा को शिथिल करके एवं वर्णाश्रम धर्म को चुनौती देकर बुद्ध और उनकी परंपरा के अन्य साधुओं ने ही भारत में वह अवस्था उत्पन्न की, जिसमें निर्गुनियाँ-संतों का मत फल-फूल सका। इस देश में विशाल मानवता का आन्दोलन बुद्ध का ही चलाया हुआ है और उनके समय से यह आन्दोलन बराबर चलता ही आ रहा है।"[2] उन्होंने धर्म को मानव धर्म बना डाला। बौद्ध धर्म द्वारा जाती प्रथा के विरोध करने पर भी समाज में वह कायम थी। बौद्ध ग्रंथों में ब्राह्मणों को कृषक, पशुपालक, सुनार, बुनकर, वैद्य, पूजारी, श्रमिक, आदि कार्य करते हुए बताया है तो क्षत्रियों को मालाकार, नलकार, कुम्भकार आदि व्यवसाय करते हुए बताया है। इन के अतिरिक्त चण्डाल, निषाद, दस्यु, आदिवासी आदि

---

[1] रोमिला थापर - भारत का इतिहास, पृ : 48
[2] रामधारी सिंह दिनकर - संस्कृति के चार अध्याय, पृ : 147

लोग थे। समाज में दास भी होते थे, परंतु उनके साथ छुआछूत जैसे अमानवीय व्यवहार नहीं करते थे। इस युग में वर्ण या जाति के अनुकूल व्यवसाय अपनाने की अनिवार्यता नहीं थी।

ब्राह्मणों के विरोध करने के कारण बौद्ध धर्म उसकी शत्रु बन गई। बौद्ध धर्म के क्षीण पड़ने के दो और कारण हैं। इसमें एक कारण यह है कि जनसाधारण उसे हिन्दू रूप देने के आग्रही थे और दूसरा भारत पर मुस्लिमों का आक्रमण। इन आक्रमणों से मंदिर, विहार, मठ आदि नष्ट हुए। हिन्दू धर्म तो जनसाधारण के दैनिक आचारों, अनुष्ठानों में जीवित थी। इसके विपरीत बौद्ध धर्म भिक्षुओं के संघ के ज़रिए प्रसारित हो रही थी। जब भिक्षुओं का संघ टूटा तो उन्हें हिन्दू धर्म में शामिल होना पड़ा। बौद्ध धर्म को अपना देश खाली करके विदेशों में जाना पड़ा।

बौद्ध धर्म एवं कला ने भारतीय संस्कृति को प्रभावित किया है और आज भी कर रहा है। ....."भारतीय संस्कृति बौद्ध धर्म की आभारी है, धर्म, दर्शन, कला, साहित्य हो या जीवन प्रणाली एवं सोच-विचार का ढंग सब पर बौद्ध धर्म का प्रभाव स्पष्ट रूप से दृष्टिगोचर होता है। बौद्ध धर्म को आदर प्रदान करते हुए भारत ने उसके प्रतीक को अपने राजचिह्न के रूप में अपनाया है। भारत की वैदेशिक नीति का प्रमुख आधार पंचशील भी बौद्ध

दर्शन से ग्रहण किया गया है।"[1] आज भी भारत बौद्ध द्वारा दिखाए सह-अस्तित्व एवं शांति के मार्ग पर लगातार बढ़ रहा है|

जैन संस्कृति

जैन शब्द संस्कृत के 'जिन' शब्द से निकला है, जिसका अर्थ है 'विजेता'। अर्थात जिसने अपनी इन्द्रियों और विषय वासनाओं पर नियंत्रण करके आध्यात्मिक विजय उपलब्ध की हो। जैन धर्म के संस्थापकों व प्रवर्तकों को 'तीर्थंकर' कहा गया है। यह 'तीर्थ' और 'कर' शब्द के योग से बना है। तीर्थंकर से तात्पर्य उस व्यक्ति से है जिसने विविध नियमों और उपनियमों से मनुष्य को भवसागर से पार ले जाये। वे जनता के पथ प्रदर्शक और गुरु होते हैं। जैन धर्म में चौबीस तीर्थंकर है। ऋषभ देव को प्रथम तीर्थंकर मानते हैं। तेइसवें तीर्थंकर पार्श्वनाथ और चौबीसवें तीर्थंकर वर्द्धमान महाबीर ऐतिहासिक महत्व रखते हैं।

जैन धर्म का संबंध सैन्धव्य सभ्यता से जोड़ते हैं। विद्वानों का मानना है कि इसका प्रादुर्भाव अनार्यों की धार्मिक विचारधाराओं और प्रणालियों से हुआ है। कुछ विद्वान इसका उदय ऋग्वेदिक काल में मानते हैं। इसके प्रणेता वर्द्धमान महावीर का जन्म 599-527ई. पू मानते हैं। वे बुद्ध के समकालीन

[1] डॉ. संतोष कुमार चतुर्वेदी - भारतीय संस्कृति, पृ : 84

थे जैनमत के दो संप्रदाय हैं – ‘श्वेताम्बर’ (जिसके भिक्षु श्वेत वस्त्र धारण करते हैं) और ‘दिगम्बर’ (जिसके भिक्षु पूर्णतः नग्न रहते हैं)। जैनमत के अनुसार मनुष्य स्वयं अपनी नियति का निर्माता है। वे सन्यास जीवन को श्रेष्ठ जीवन और अहिंसा को महानतम गुण मानते हैं। जीवन मृत्यु के चक्र से मुक्ति के लिए तीन सिद्धांतों का पलन अनिवार्य है – सत्य ज्ञान, सत्य विश्वास और सत्य-क्रिया। इन्हें जैनमत के तीन आभूषण कहा जाता है।

जैनमत के अनुसार सुख प्राप्ति का साधन, संपत्ति अर्जित करना न होकर कामनाओं पर विजय प्राप्त करना होता है। मनुष्य, पशु और वनस्पति सबके शारीर में आत्मा का निवास होता है। जैनमत के अनुसार मनुष्य का सर्वप्रथम लक्ष्य ज्ञान और ध्यान से मोक्ष प्राप्ति है। जैन धर्म के प्रचार ने वर्णभेद को कम कर दिया। जैन धर्म ईश्वर के अस्तित्व में विश्वास नहीं रखते। उन्होंने कर्म को विशेष महत्व दिया। इन्होने ब्राह्मणों के प्रभुत्व को अस्वीकार किया। वे वैदिक कर्मकाण्ड, यज्ञ एवं पशु बलि के घोर विरोधी थे। वे वेदों को प्रमाणिक ग्रंथ नहीं मानते।

जैन धर्म ने भारतीय संस्कृति के विविध पक्षों का विकास किया। इसने मूर्तिकला एवं वास्तुकला को प्रभावित किया। इन्होने कई मंदिर, मूर्तियाँ एवं धर्मस्तंभों का निर्माण किया। चित्तौड़ का स्तंभ, दक्षिण भारत के महावीर, आदिनाथ, पार्श्वनाथ की मूर्तियाँ, आदिनाथ के मंदिर आदि विशेष उल्लेखनीय हैं। जैन धार्मिक साहित्य काफ़ी विशाल एवं संपन्न है। ये पुस्तकें प्राकृत एवं

संस्कृत में लिखी गई। विमल सूरि ने 'पद्मचरित' प्राकृत में लिखा जो रामकथा पर आधारित ग्रंथ है। महाभारत की कथा के आधार पर देवप्रभ ने 'पाण्डवचरित' और 'शुभचंद्र ने 'पाण्डवपुराण' लिखा। वर्द्धमान महावीर ने जनसाधारण के ज्ञान के लिए अर्धमागधी में अपने उपदेश देते थे। जैन तीर्थकरों ने धर्म का स्वरूप आत्मनियंत्रण, सद्भावना, इन्द्रियों का दमन, सदाचार, करुणा, शील, प्रेम तथा सहानुभूति माना है। महावीर के अनुसार ज्ञान तथा धर्म प्राप्त करने का अधिकार केवल एक जाति या वर्ग को न मिलकर समस्त प्राणियों को मिलना चाहिए। इनके उपदेशों ने सांप्रदायिक सहिष्णुता एवं उदार विचारधारा अपनाने की सीख लोगों को दी। ...... "जैन मत तपस्या प्रधान मत है। उसमें अहिंसा, प्रेम तथा सदाचार पर ही ज़ोर दिया है। जैन धर्म अनीश्वरवादी मत है, उसमें ईश्वर को कोई स्थान नहीं। वे केवल 'सिद्ध' पुरुष के प्रति श्रद्धा अर्पित करते हैं। सिद्ध वह जिसने इन्द्रियों को जीत लिया हो और सर्वोच्च आध्यात्मिक दशा प्राप्त कर लि हो।"[1] जैन धर्म को राजाश्रय खूब मिला था। चन्द्रगुप्त मौर्य, नन्द वंश के राजा आदि ने जैन धर्म का आदर किया।

एक समय में अत्यंत प्रभावशाली जैन धर्म क्रमशः ह्रासग्रस्त होने लगा। इसका मुख्य कारण हैं भक्ति-प्रधान पौराणिक धर्म का उदय, जैन धर्म में जाति-व्यवस्था का प्रादुर्भाव और राजाश्रय का लुप्त होना।

---

[1] गजानन माधव 'मुक्तिबोध' – भारत, इतिहास और संस्कृति, पृ : 48

मुसलमानों से पहले भारत

मौर्य साम्राज्य, गुप्त वंश और उसके बाद हूणों का अधिपत्य आदि के बाद देश के छिन्न-भिन्न होने पर मुसलमान शासक आक्रमणकारी बनकर आये थे। मौर्य साम्राज्य से पहले शूद्र एवं जैनी राजाओं का शासन था। इसे 'नंदवंश' नाम से जाना जाता है। मौर्य वंशज चन्द्रगुप्त के पिता नन्द राजा के बंदी था। चन्द्रगुप्त ने चाणक्य से मिलकर नंदवंश का उन्मूलन करता है और मगध के सम्राट बन जाता है। इस समय 'सेलूक्कस' मौर्य साम्राज्य पर आक्रमण करता है। लेकिन चन्द्रगुप्त अपनी बेटी के साथ शादी करवाकर सेलूक्कस से संधि करता है। इनके बाद बिंबिसार का बेटा और चन्द्रगुप्त मौर्य का पौत्र अशोक राजा बनता है। वे धार्मिक सहिष्णु राजा थे। इन्होने बौद्ध धर्म के प्रचार के लिए कई कार्य किये। मौर्य शासन में चिकित्सा, व्याकरण, भाषा शास्त्र, अर्थ शास्त्र, धर्म शास्त्र, राष्ट्रमीमांसा आदि की रचना हुईं। अशोक ने कई स्तूप, गुफाओं व मठों का निर्माण किया। इस युग में पाली साहित्य काफ़ी प्रतिष्ठित थी। जाति व्यवस्था कायम थी। छोटे वर्णों के लोगों में विवाह करना बुरा समझा जाता था। अशोक ने अहिंसा को महत्व दिया, सभी धर्मों के प्रति सहिष्णुता दिखाई और मानवीयता बनाये रखने के लिए निरंतर प्रयत्न किया।

मौर्य साम्राज्य के बाद पाटलिपुत्र के निकट स्थित छोटे राजवंश, गुप्त वंश का शासन था। चन्द्रगुप्त प्रथम पहला शासक बना। उन्होंने उत्तर भारत

तथा दक्षिण भारत पर आक्रमण करके साम्राज्य विस्तार किया। उन्होंने काबूल, श्रीलंका, गान्धार आदि राज्यों के साथ भी संबंध रखा। वैष्णव धर्मावलंबी होने पर भी दूसरे धर्म के प्रति भी उदारता दिखाई। उसके बाद चंदगुप्त द्वितीय (विक्रमादित्य) राजा बन गे। उन्होंने भी साम्राज्य विस्तार करके पश्चिमी देशों से मैत्री भाव रखा। गुप्त वंश का अंतिम राजा स्कन्दगुप्त था। कला-साहित्य, संस्कृति के क्षेत्र में उन्नति करने के कारण इस काल को 'सुवर्ण काल' कहा गया। कालिदास के 'शाकुंतलम', 'मालविकाग्निमित्रम', 'विक्रमोर्वशीयम' आदि इस युग की उपलब्धियाँ हैं। पंचतंत्र की रचना, वायु पुराण, मत्स्य पुराण, विष्णुपुराण वराहमिह के ग्रंथ 'बृहदसंहिता' आदि भी इस युग के थे। वराहमिह, आर्यभट्ट , नवरत्न नाम से प्रसिद्ध पंडित, ब्राह्मगुप्त आदि इस युग के महान व्यक्तित्व थे। इस युग में संगीत, चित्रकला, मूर्तिकला आदि के क्षेत्र में काफ़ी उन्नति हो गई।

छठी शताब्दी में गुप्त साम्राज्य के पतन के बाद साम्राज्य छोटे-छोटे राज्यों में विभक्त हुए। उस समय 'वर्धन, साम्राज्य की स्थापना हुई। प्रभाकरवर्धन, राज्यवर्धन और फिर हर्षवर्धन राजा बने। इन्हें हूणों से युद्ध करना पड़ा। तोरामाण और उसके बेटे मिहिरकुल ने पंजाब, राजस्थान, मालवा आदि पर कब्ज़ा किया। मिहिरकुल शौवधर्मी था। उन्होंने बौद्धों पर आक्रमण किया। धर्म के नाम पर अत्याचार करने की प्रथा हूणों ने शुरू की। अंत में यशोधर्मन ने मिहिरकुल को हराकर वर्धन साम्राज्य की पुनःप्रतिष्ठा की। इस युग में कई बौद्ध मंदिर एवं पाठशालाएँ थीं। स्त्रियों की स्थिति

निंदनीय थी। बाल विवाह, पर्दा प्रथा, सतीप्रथा, विधवा विवाह का निषेध आदि बढ़ गया था। नालंदा विश्वविद्यालय को ज्यादा ख्याति मिली। लोगों का जीवन स्तर ऊँचा था।

हर्षवर्धन की मृत्यु के पश्चात साम्राज्य कई छोटे-छोटे राज्यों में विभक्त हो गये। सातवीं शती से बारहवीं शती तक उत्तर भारत में राजपूतों का युग था। वे अपने लिए अलग राज्य की स्थापना नहीं की। आपसी मतभेद के कारण उनकी एकता और शक्ति कम हो गई और साम्राज्य इस्लाम शासकों के अधीन में आ गये। जब तक भारत में एकता था तब तक मुसलमान शासक भी चुप थे। जब भारतवर्ष की एकता लुप्त होने लगी और राजा-महाराजा आपस में लड़ने लगे तब वे देश पर ज़ोर से चढ़ने लगे और बिना कोई दिक्कत के वे इस भूमि को अपनी सल्तनत बनाते चले।

उपनिवेश काल

एक देश या प्रदेश जब किसी बाहरी शक्ति के अधीन हो जाता है तो उस देश पर उसका शासन एवं नियंत्रण होता है। ऐसे देश या प्रदेश को 'उपनिवेश' (colony) कह सकते हैं। इससे प्रत्येक देश को अपना वर्चस्व, नियंत्रण एवं देशीयता नष्ट होती है। न्यू स्टैण्डर्ड एनसाइक्लोपीडिया के अनुसार – "किसी प्रदेश विशेष और उसके लोगों का शासन किसी अन्य देश

के द्वारा होता है उसे उपनिवेश कहते हैं।"[1] उपनिविश साम्राज्य का ही एक रूप है। साम्राज्य का विस्तार, आर्थिक लाभ, सत्ता प्राप्ति आदि साम्राज्यवाद का मुख्य लक्ष्य है। इसके लिए साम्राज्यवादी शक्तियाँ प्रत्येक देश में आकर व्यापार संबंध स्थापित करते हैं। इसके ज़रिए वे धीरे-धीरे उस देश का शोषण करते हैं। रामविलास जी ने लिखा है – "साम्राज्यवाद के निर्माण के लिए, उसे अस्तित्व में बनाए रखने के लिए उपनिवेश और पराधीन देश ज़रूरी हैं।"[2] प्रत्येक देश को अपने अधीन करने के लिए बाहरी शक्तियाँ यही तरीका आज भी अपना रही है। उपनिवेश मुख्यतः दो प्रकार के होते हैं – आवासीय उपनिवेश (settlement colony) और प्रशासनिक उपनिवेश (administrative colony)। आवासीय उपनिवेश में बाहरी आक्रमणकारी देश को परस्त करके, वहाँ रहकर उस देश पर शासन करते हैं। यह उपनिवेश का प्रत्यक्ष रूप है। प्रशासनिक उपनिवेश में आक्रमणकारी उपनिवेशित देश में बाहर से नियंत्रण एवं शासन करते हैं। वे उपनिवेशित राष्ट्र में नहीं रहते। वे बाहर रहकर कोने-कोने- का कार्य सँभालते हैं। नव उपनिवेशवाद में बहुराष्ट्रीय कंपनियाँ एवं साम्राज्यवादी शक्तियाँ यही कर रहे हैं। इसे प्रशासनिक उपनिवेश का नया रूप कह रकते हैं। भूमंडलीकरण के युग में विकसित देश एवं बहुराष्ट्रीय कंपनियाँ भारत जैसे विकासशील देशों में अपना बाज़ार स्थापित करके उसे अपने कब्ज़े में कर रहे हैं। वे अपना माल इसी

[1] New Standard Encyclopedia , Vo.IV, पृ : 458

[2] रामविलास शर्मा – गाँधी, अम्बेडकर, लोहिया और भारतीय इतिहास की समस्याएँ, पृ : 36

बाज़ार में बेचकर मुनाफा कमा रहे हैं। वे इन देशों के प्रशासन को धीरे-धीरे अपने अधीन कर रहे हैं।

उपनिवेशवादी शक्तियाँ प्रत्येक देश के राजनीतिक, प्रशासनिक, आर्थिक, सामाजिक एवं सांस्कृतिक क्षेत्र को अपने नियंत्रण में कर लेता है। द्वितीय महायुद्ध के अंत तक दुनिया भर में ब्रिटिश साम्राज्य का दबदबा रहा था। उसके बाद कई देश स्वतंत्र हुए जिनमें भारत भी था। उपनिवेशवाद के पीछे आभिजात वर्ग या शासक वर्ग की एकाधिकार या प्रभुत्व की भावना भी छिपी है। उपनिवेशी शक्तियाँ प्रत्येक देश के आर्थिक राजनैतिक गुलामी के साथ मानसिक गुलामी भी चाहता है। नवउपनिवेशवादी दौर में साम्राज्यवादी शक्तियाँ विज्ञापन एवं संचार माध्यमों के ज़रिए उपभोक्ताओं को निष्क्रिय बना दे रहा है। उपनिवेश का मतलब दूसरों की धरती को अपने अधीन करके, सम्पत्ति लूटना या संसाधनों का दोहन करना ही नहीं उसे मानसिक रूप से निष्क्रीय बनाना भी है।

भारत में उपनिवेश

भारत एशिया का एक ऐसा विशाल उपमहाद्वीप है जो भौगोलिक एवं प्राकृतिक विशेषताओं से सम्पन्न एवं समृद्ध राष्ट्र है। यहाँ की संपत्ति हडपने के लिए समय-समय पर बाहरी लोग आते रहे हैं। उन्होंने भारत को लूटने तथा यहाँ की संपत्ति पर एकाधिकार कायम करने के लिए यहाँ के निवासियों के

साथ निरंतर युद्ध किया। भारत को वे मुनाफा कमाने के स्रोत के रूप में देखते थे। उनका लक्ष्य वाणिज्य एवं व्यापर करके अपने देश को संपन्न बनाना था – "उपनिवेशकों की नज़र में भारत एक बाज़ार ही नहीं अजायबघर भी था। यह एक आकर्षक देश था, आश्चर्यजनक और शिकार करने योग्य। कैसे-कैसे अद्भुत धर्म, कितने गरीब लोग और कैसी-कैसी परंपराएँ। वे हमदर्दी से देखते थे, हालाँकि इसका भी एक हिमांत था। इसके बाद वे भारत को पश्चिम के अधीन रखा जाने वाला एक असभ्य देश ही समझते थे।"[1] कई विदेशी शक्तियों ने अपने उपनिवेश के ज़रिए भारत का शोषण किया था। 1947 तक भारत अंग्रेज़ों का उपनिवेश रहा था। भारत के स्वतंत्र होने के बाद भी वे यहाँ अपनी नींव बनाए रखना चाहते थे। - "उपनिवेशवाद एक सच्चाई है जिसका एक लंबा इतिहास है। इस दीर्घकालीन राजनीतिक एवं सांस्कृतिक व्यवस्था की जड़ों ने भारतीय समाज, संस्कृति तथा आर्थिक एवं विकास दृष्टि में व्यापक रूप से घुस-पैठ की है, लेकिन आज भी उसके प्रतिरोध का क्रियात्मक प्रयास नहीं शुरू हुआ है। औद्योगिक क्रांति के पश्चात साम्राज्यवादी शक्तियाँ मंडी की खोज में निकलने लगी थी। यह साम्राज्यों एवं उपनिवेशों की स्थापना का होतु निकला। साम्राज्यवाद की नृशंसता, कुरूपता तथा उसकी परिणतियों से देशी लोग परेशान होने लगे।"[2]

---

[1] शंभुनाथ - सभ्यता से संवाद, पृ : 9

[2] डॉ.वी.के.अब्दुल जलील (सं) - समकालीन हिन्दी उपन्यास : समय और संवेदना, पृ : 297

उपनिवेशवादी अपने उपनिवेश से कच्चा माल सस्ते दाम पर लाकर माल तैयार करके अपने उपनिवेश में वापस लाकर भरी मुनाफ़े के साथ बेचता है।

भारत में उपनिवेश की शुरुआत मौर्य साम्राज्य के पतन से मानते हैं। यहाँ सबसे पहले मुसलमान शासकों ने अपना उपनिवेश स्थापित किया। भारत और अरब के बीच व्यापार संबंध था। मुस्लिम शासक व्यापार के साथ-साथ धर्म प्रचार एवं साम्राज्य विस्तार के उद्देश्य से भारत आए थे। इसके बाद यूरोपीय शक्तियों व अंग्रेज़ों ने भारत में साम्राज्य स्थापित किया। सन् 1947 तक भारत ब्रिटीशों का उपनिवेश था।

मुसलमान आगमन

भारत में मुसलामानों ने आक्रमणकारियों के रूप में प्रवेश किया। इन्होने भारत के मंदिरों को तोड़कर, राजा-महाराजाओं की हत्या करके, हिंदुओं को धर्म परिवर्तन करके अपने साम्राज्य की स्थापना यहाँ की थी। भारत और मुस्लिम देशों के बीच सालों से मित्रता का संबंध कायम था। भारत का अरब प्रदेश, पेलेस्टाइन और मिश्र के बीच अच्छा व्यापारिक संबंध था। भारतीय समुन्द्रों में पहला मुस्लिम बेडा 636 ईसवीं में उमर की खिलाफ़त के समय प्रकट हुआ। उमर की खिलाफ़त के दौरान भारत के लिए भूमि के रास्ते खोजे गए और ढेर सारी जानकारी एकत्र की गई, जिसने अंत में 8वीं सदी में मुहम्मद बिन कासिम की सिंध विजय का मार्ग प्रशस्त किया। इस प्रकार समुद्री व्यापार जारी रहा और मुसलामानों ने दक्षिण भारत और

सीलोन के तटों पर तीन कस्बे स्थापित किए। सातवीं सदी में मुस्लिम अरब का मलाबार के तट पर बसने का प्रमाण मिलता है। नवीं सदी के खत्म होने के पहले ही मलाबार का राजा चेरामन पेरूमाल मुसलमान हो गया और मक्का भी गया। भारत में सबसे पहले उसी ने अरबों को अपना धर्म फ़ैलाने की सुविधा दी थी। ईरानी और अरब व्यापारी भारत के पश्चिमी तट पर विभिन्न बंदरगाहों में बड़ी तादाद में बस रहे थे और इस देश की महिलाओं से विवाह किया। धीरे-धीरे वे पूर्वी तट पर भी पहुँचने लगे और वे कई मस्जिद भी बनवाये। धर्म प्रचार भी करने लगे। उन्हें बहुत सम्मान प्राप्त था। वे 'माप्पिल्ला' के नाम से अभिहीत होते थे। जिसका अर्थ है – 'एक महान बच्चा' या 'दूल्हा'। केरल के राजाओं के संरक्षण में कालीकट, कन्नूर, मलबार जैसे प्रदेशों में बंदरगाह एवं मस्जिद बनवाये। उन्होंने धर्म परिवर्तन को भी प्रोत्साहित किया। उस समय राजा के आदेशानुसार मछुआरों के हर परिवार से एक या ज्यादा पुरुष सदस्य को मुस्लिम बनाया गया। वे दक्षिण भारत में प्रचार प्रसार करने के साथ-साथ उत्तर भारत भी पहुँचे। खलीफा उमर से शुरू हुई आक्रमण मुहम्मद बिन कासिम के नेतृत्व में शक्तिशाली बन गया। उसने हिन्दू शासकों को पराजित करके पूरी सिन्धु घाटी को रौंद डाला। मुल्तान तथा सिंध के प्रान्तों को साम्राज्य के अधीन कर लिया। हिन्दू शासकों द्वारा उनका मान सम्मान और स्वागत का प्रमाण मिलते हैं।

विलासिता के कारण अरब साम्राज्य का पतन हुआ उसके खिलाफ़त एक छोटी सी रियासत के रूप में रह गई। इसके स्थान पर जो राज्य खड़े हुए उनमें अधिकांश मुसलमान बने हुए ईरानियों के राज्य थे। स्कन्दगुप्त ने हूणों को एक बार देश से बाहर निकाल दिया था। उनकी मृत्यु के बाद वे वापस आकर मालवा में राज्य स्थापित कर दिया। तुर्क हूणों की एक शाखा थे जिसका असल नाम था असेना। तुर्क भी मुसलमान होने लगे थे। अरब साम्राज्य के पतन के बाद ये लोग सुलतान बन गये। इनके शासन काल में तुर्को ने ईरान का पूर्वी दरवाज़ा अपने पूर्वी प्रान्तों के भाई-बन्दों के लिए खोल दिया। इस प्रकार पूरी तुर्क-जाति मुस्लिम राज्य में घुस पड़ी। इनमें अलप्तगीन नामक सरकार गजनी में रियायत खड़ी कर ली। उनके बाद उनका दामाद सुबुक्तगीन गज़नी का राजा हुआ। इनका पुत्र है – महमूद गज़नवी जिसने सत्रह बार भारत पर चढ़ाई की और सोमनाथ मंदिर पर आक्रमण किया। गज़नी के बर्बरतापूर्ण शासन के बाद मुहम्मद गोरी, कुतुब्दीन ऐबक, फ़िरोजशाह खिलजी, गयासुद्दीन तुग्लक, खिज्र खान , बहलोल खान लोदी, आदि शासक बने। इसके बाद मुगलवंश की स्थापना होती है। भारतीय मुसलमानों के राजनीतिक इतिहास में मुग़ल साम्राज्य का महत्वपूर्ण स्थान है। मुग़ल सम्राट औरंगजेब की कूटनीति एवं अत्याचारों के कारण इस साम्राज्य के पतन की शुरुआत होती है। इस समय भारत में अंग्रेज़ों का आगमन शुरू हुआ था। सन् 1764 ई में मुगलों व अंग्रेज़ों के बीच बक्सर में युद्ध हुआ। इसमें अंगेज़ जीत जाते हैं। धीरे-धीरे वे समूचे भारत पर अधिकार जमाने लगे।

इन मुसलमान शासकों के कारण भारत के सामजिक – राजनीतिक – आर्थिक व सांस्कृतिक क्षेत्र काफ़ी प्रभावित हुए। इस्लाम धर्म ने मनुष्य-मनुष्य के बीच के भेदभाव को खत्म करने की कोशिश की। उसने मूर्तिपूजा व अन्धविश्वास का विरोध किया। भारत में हिन्दू लोग जात-पांत, छुआछूत, और धर्म के मिथ्या आडम्बरों को अधिक महत्व देते थे। वे मूर्तिपूजा में विश्वास रखते थे। वे अपने को सबसे श्रेष्ठ मानते थे। उनके अनुसार देश के बाहर कदम रखना पाप है। अक्बर ने सुजान सिंह हाड़ा को फौज लेकर काबूल जाने को कहा। उसने अपने दोनों बेटों को काबूल भेजकर संबंध विच्छेद किया। क्योंकि हिन्दू विश्वास के अनुसार देश के बाहर जाते ही वे जात से दूर हो जाते हैं। महमूद गज़नवी ने अनेक मंदिरों को तोडा था। हिंदुओं का विश्वास था कि सोमनाथ मंदिर को देवता की कृपा के कारण नहीं तोड़ पाएगा। यह खबर सुनते ही गज़नवी ने सोमनाथ पर आक्रमण कर लिया और पत्थर की देवता संबंधी विश्वास को तोड़ डाला। हिन्दू समाज में वेद विरोधी आन्दोलन इस्लाम के आने से पहले ही शुरू हुआ था। जब इस्लाम यहाँ आए तब ये लोग ही धर्म परिवर्तन का शिकार बना। उस समय भारत के लोग ब्राह्मण, क्षत्रिय, राजपूत, कायस्थ आदि जातियों में बंटे हुए थे, जिनके बीच हमेशा तनाव एवं संघर्ष रहता था। जाति भ्रष्ट लोगों को पुनः अपनी जाति में वापस आने का उपाय नहीं था। उनके अनुसार मुसलमानों के छूने से व्यक्ति मुसलमान बन जाता है। मुल्ला लोग उदार शासकों के मन में असहिष्णुता फैलाई थी। इब्नु-बतूता नामक यात्री ने मुसलमान शासकों द्वारा

हिंदुओं का जबरदस्ती धर्म परिवर्तन करने की प्रक्रिया पर भी प्रकाश डाला है। उस समय हिंदुओं को दास मानते थे। प्रारंभ में इस्लाम एक क्रांतिकारी धर्म था।

मुस्लिम विजय का भारतीय संस्कृति के विकास में जबरदस्त प्रभाव डाला। मुसलमान जब भारत आए तो काफ़ी आघात हिन्दू धर्म एवं संस्कृति को पहुँचा। धीरे-धीरे वे हिंदुओं के साथ घुलमिल गये, जिसने एक नई संस्कृति को जन्म दिया। यह पुर्णतः हिन्दू संस्कृति न थी और न ही मुस्लिम। - "प्रारंभिक सदियों में मुस्लिम तत्व विदेशी ही रहे, किंतु धीरे-धीरे उनका भारतीयकरण होता गया। एक ओर संकीर्णतावादी प्रवृत्ति, तो दूसरी ओर उदारवादी प्रवृत्ति, इन दोनों के बीच संघर्ष में उदार आदान-प्रदान ही की विजय होती गयी। इस्लाम का संस्पर्श पाकर, जन चेतना जाग उठी। भक्ति आन्दोलन देश भर में लहराने लगा।"[1] मुसलमान शासकों ने राज-काज में हिंदुओं को कर्मचारी के रूप में नियुक्त किया। बीजापुर के मुस्लिम दरबार में राज-काज मराठी भाषा में चलता रहा। मुस्लिम शासक हिन्दू मंदिरों और समाधियों के लिए दान देते थे। इस प्रकार दोनों के बीच गहरा संबंध रहा। दूसरी ओर मुसलमानों की संकीर्णतावादी प्रवृत्ति पर कई बार हिंदुओं पर अत्याचार भी किए। मुग़ल काल तक आते-आते हिन्दू-मुसलमानों की सांस्कृतिक मैत्री दृढ़ होती गई।

[1] गजानन माधव मुक्तिबोध – भारत : इतिहास और संस्कृति, पृ : 137

मुस्लिम संस्कृति का प्रभाव साहित्य धर्म, कला, भाषा, आदि में भी देख सकते हैं। दक्षिण व उत्तर के धार्मिक नेताओं ने प्राचीन धार्मिक तत्वों को नकारकर मुस्लिम धर्म के बीच समन्वय स्थापित करने की कोशिश की। कबीर, निंबार्क, शंकराचार्य, रामानुजाचार्य, वल्लभाचार्य जैसे क्रांतिकारी नेताओं पर मुसलामानों के एकेश्वरवाद, रहस्यवाद, सूफ़ी मत, मूर्तिपूजा एवं धार्मिक कर्मकांडों का विरोध आदि का प्रभाव पड़ा है। मुस्लिम दरबार में खिलजी और तुग्लक काल में अमीर खुसरो जैसे बहुमुखी प्रतिभा विद्यमान थे। राजसभाओं द्वारा उर्दु, फ़ारसी एवं संस्कृत भाषा को प्रोत्साहन मिला। शासक वर्ग कबीर, रैदास, नामदेव, नानक, दादू, तुकाराम आदि संतों-फकीरों के संसर्ग में रहते थे। -- "उन दिनों संगित, चित्रकला, भवन-निर्माण कला नई ऊँचाइयाँ छूने लगी। बड़े-बड़े किलों की मेहराबों में एक नयी सुकुमारता आ गयी। नये राग चलाये गये। भव्यता और कोमलता इन दोनों गुणों से संयुक्त होने लगी हमारी कला। मुसलामानों ने इन कलाओं को आत्मीय बनाकर उनमें नया रस डाला।"[1] अक्बर ने हिन्दू-मुस्लिम शैली में गोवर्धन में एक मंदिर बनवाया, जहाँगीर ने वृदावन में भी एक मंदिर बनवाया। वृन्दावन के 'गोविन्द देव' मंदिर में मण्डप के ऊपर मेहराबी छत से जो मेहराबें निकली हुई हैं वह मुस्लिम शैली का है। यहाँ के 'जुगलकिशोर मंदिर' के शिखर, मूर्तियाँ, दीवारें आदि में भी समान शैली देख सकते हैं। बुंदेलखंड के जैन मंदिर में मुस्लिम वास्तुकला का प्रभाव देख दकते हैं। हिन्दू और मुस्लिम

[1] गजानन माधव मुक्तिबोध – भारत : इतिहास और संस्कृति, पृ : 150

प्रतिभा के योग से भवन-निर्माण एवं वास्तुकला की एक नई शैली का विकास हुआ। दक्षिण भारत में मथुरा के तिरुमलाई, नायक का महल, तंजौर का महल, विजयनगर और चंद्रगिरी का मंदिर आदि पर भी प्रभाव देख सकते हैं। मृतक की याद में महासती और छतरी बनना मुस्लिम प्रभाव के कारण शुरू हुई थी। इस प्रकार मुसलमानों के शासन काल में हिन्दू, बौद्ध, जैन और सिक्खों द्वारा बनवाये सभी मंदिर, महल, छतरी, आदि पर हिदू-मुस्लिम वास्तु शैली का प्रभाव पड़ा है। बनारस का विश्वेश्वर मंदिर, अमृतसर में सिखों का सुवर्ण मंदिर, कलकत्ता का पैगोडा आदि महत्वपूर्ण उदाहरण हैं। चित्रकला में भी यह समन्वय देख सकते हैं। अक्बर के काल में विकसित नई शैली शाहजहाँ के शासन में चरमोत्कर्ष पर पहुँच गई। अक्बर ने फतेहपुर सीकरी की दीवारों को चित्रों से अलकृत किया तो बीकानेर व उदयपुर के हिन्दू राजाओं ने इसका अनुगमन किया। बाद में भारत में एक जैसी शैली व्याप्त हो गई।

साहित्य क्षेत्र में भी कई योगदान मुसलमानों ने दिया है। इनमें अमीर खुसरो प्रमुख है। हिन्दू अपना साहित्य डिंगल या अपभ्रंश में लिखते थे तो मुस्लिम फ़ारसी में। अमीर खुसरो ने पहली बार जन साधारण के लिए खड़ी बोली में रचनाएँ कीं। उन्होंने संगीत एवं वाद्य यंत्रों में नूतन आविष्कार किये। वे असाम्प्रदायिक मुसलमान थे। उन्होंने अपनी रचनाओं के माध्यम से भारत के प्रति देशप्रेम व्यक्त किया। प्रेममार्गी सूफ़ी कवियों ने अपनी अनुभूति को भारत की भाषा में लिखकर देशप्रेम व्यक्त किया। कबीर, खुसरो, जायसी,

रहीम, रसखान आदि ने भी साहित्य एवं भाषा को महत्वपूर्ण योगदान दिए हैं। सुन्दरदास नामक हिन्दू कवि को शाहजहाँ ने 'महकविराज' की उपाधि दी थी। महाभारत, अथर्ववेद, उपनिषद और अन्य भारतीय साहित्य का फारसी भाषा में अनुवाद हुआ था। जो हिन्दू नारियाँ मुगलों के साथ शादी की थीं उनको राजमहल में हिन्दू-विधि से रहने, हिन्दू देवी-देवताओं की पूजा करने आदि की अनुमति थी। अक्बर ने रानी जोधाबाई से शादी की थी। जोधाबाई ने महलों में होम और यज्ञ रखते थे।

इस्लाम के प्रभाव से हिन्दी, मराठी, गुजराती, बंगला आदि भाषाओँ में अरबी-फारसी शब्द मिल गए। इस्लाम के संपर्क से एक नई भाषा 'उर्दू' का जन्म हुआ। भारतीयों के रहन-सहन, वेश-भूषा, खान-पान आदि पर भी मुसलमानों का प्रभाव पड़ा। पाजामा, शेरवानी आदि मुसलमानों की देन है। इन शासकों ने असत-व्यस्त भारत की राजनीतिक एकता को मज़बूत किया। इन्होंने विदेशी देशों, अरब और ईरान आदि से संबंध रखने के कारण कई कलाकार एवं विद्वान् भारत पर आ गये। पूरे भारत पर वर्चस्व रखने पर भी दक्षिण भारत के मैसूर, तंजौर, मधुरा आदि पर पूर्ण रूप से अधिकार नहीं पा सके।

सिक्ख धर्म

सिक्ख धर्म पंजाब में 15वीं शती में उदित हुआ था। यह धर्म किसी भी प्रकार के भेदभाव को नहीं मानता था। भक्ति आन्दोलन से प्रभावित

होकर यह जन्म लिया था। मुग़ल शासकों के शासन काल में भारत में यह प्रचलित हुआ था। मुग़ल शासकों व सिक्खों के बीच निरंतर संघर्ष होता था।

सिक्ख धर्म के संस्थापक गुरु नानक है। वे निराकारवादी है। सूफियों का प्रभाव नानक पर पड़ा है। नानक की उपासना के चारों अंग (सरन-खंड, ज्ञान खंड, करम खंड तथा सच खंड) सूफियों के चार मुकामात (शरीअत, मारफ़त, उकबा और लाहुत) से निकले हैं। उनकी वेश-भूषा एवं रहन-सहन सूफियों जैसी थी। उनके अनुयायियों में हिंदुओं के साथ मुसलमान भी है। रामधारी सिंह दिनकर लिखते हैं – "…..यह मानना अधिक युक्तियुक्त है कि जैसे उन्नीसवीं सदी में हिंदुत्व ने अपनी रक्षा करने के लिए आर्य समाज और ब्रह्म समाज का रूप लिया था, वैसे ही इस्लाम से बचने के लिए उसने अपना निराकारवादी रूप प्रकट किया, जिसके महान व्याख्याता महात्मा नानक हुए।"[1] यह एक प्रगतिशील धर्म है। इसमें जात-पांत, मूर्तिपूजा, शराब, तम्बाकू, सति प्रथा, पर्दा प्रथा आदि का विरोध होता है।

सिक्ख शब्द संस्कृत भाषा के 'शिष्य' का रूपांतर है। सिक्खों के पूजनीय गुरु नानक ईशवर को अपना गुरु मानते हैं। सिक्ख धर्म गुरु का आदर करना सिखाता है। उन्होंने ईश्वर के निराकार एवं सर्वव्यापी रूप को माना है। उनके अनुसार सत्य और धर्म के द्वारा मन में ईश्वरीय प्रेम का निवास होता है। सिक्ख धर्म ने उच्च आदर्शों को समाज के सम्मुख प्रस्तुत

[1] रामधारी सिंह दिनकर - संस्कृति के चार अध्याय, पृ : 293

किया है। इस धर्म ने जात-पांत, तीर्थ, मूर्तिपूजा, शराब, तम्बाकू, पर्दा प्रथा आदि का विरोध किया। दिनकर जी इस धर्म के आदर्शों के बारे में यों लिखा है – “यह धर्म, आरंभ से ही व्यवहारिक भी रहा है एवं जिस वैराग्य को गुरु उच्च जीवन के लिए आवश्यक मानते थे, उसे वे गृहस्थों पर जबरदस्ती लादने के विरुद्ध थे।”[1] नानक सभी धर्मों को सहिष्णुता भरी दृष्टिकोण से देखते थे।

सिक्ख धर्म की युद्ध वीरता प्रसिद्ध है। इस्लाम शासक जहाँगीर ने अपने भाई खुसरो पर अत्याचार किया। अर्जुनदेव ने खुसरो को पाँच हज़ार रुपए देकर मदद की। इससे गुस्सा होकर जहाँगीर ने गुरु को दरबार में बुलाकर कई पीडायें दी। अंत में गुरु मर जाता है। इस घटना के बाद सिख धर्मावलंबियों ने शास्त्र का प्रयोग करने लगा। सर्वप्रथम गुरु हरगोविंद ने सेली फाड़कर गुरूद्वारे में डालकर राजा एवं योद्धा का परिधान धारण कर लिया। इस घटना के बाद इनका मुगल शासकों से शत्रुता बढ़ गई। इनके बीच निरंतर लड़ाई हुई। इसमें विजय प्राप्त करने पर सिक्खों को हिन्दू समाज ने आदर से देखने लगा। धर्मपरिवर्तन के लिए सहमति न देने के कारण औरंगजेब ने गुरु तेगबहादुर को भी मार डाला था। लेकिन गुरु गोविन्द सिंह का जहाँगीर के बेटे बहादुर शाह के साथ मैत्री का संबंध था। हिंदुत्व और इस्लाम के मिलने से जन्मे सिक्ख धर्म कालोतर में इस्लाम के विरुद्ध हिंदुत्व की तलवार बन गया। सिक्ख गुरुओं ने हिन्दू धर्म की रक्षा के

[1] रामधारी सिंह दिनकर - संस्कृति के चार अध्याय, पृ 293

लिए बलिदान करने के कारण वे हिंदुओं के प्रिय हो गये। इस कारण हिन्दू धर्म के जात-पांत, छुआछूत आदि इसमें भी है।

अंग्रेज़ों ने हिन्दू-सिक्ख मैत्री को नष्ट करने के लिए कई प्रयास किए। किताबें छपकर सिक्ख गुरुओं की भर्तसना की ताकि लोग उनसे घृणा करे। इस प्रकार आज हिन्दू-सिक्ख परस्पर लड़ने लगे हैं।

यूरोपीय आगमन और भारत

भारत धन और ज्ञान की दृष्टि से संपन्न देश रहा है। प्राचीन काल से ही यूरोपीय देशों के साथ भारत के व्यापारिक संबंध थे। भारत की अमूल्य संपत्ति की खबर सुनकर सन् 1492ई में कोलंबस नामक स्पेन का व्यापारी भारत ढूँढ़कर आया। उसने अमेरिका को भारत मान लिया। उस समय पुर्तगाली नाविक 'वास्को-दी-गामा' अपने भाई 'पाओलो डा' के साथ सन् 1498 ई में भारत की यात्रा करके कालीकट में पहुँच गये। वह लिस्बन से ग्यारह महीने की यात्रा करके भारत आया था। मलबार तट के सरदारों ने व्यापार करने के उद्देश्य से पुर्तगालियों का स्वागत किया। लेकिन इन वेदेशी व्यापारियों ने धीरे-धीरे भारत पर अधिकार जमा लिया। भारत के साथ व्यापारिक संबंध स्थापित करने के लिए फ़्रांस, होलैंड और इंग्लैंड के बीच होड़ प्रारंभ हो गई।

पुर्तगाली लोग आक्रमणकारी थे। उन्होंने गोवा में अपना किला सन् 1510 ई में बनवाये और अपना वर्चस्व कायम रखा। उन्होंने जबरदस्ती

लोगों को ईसाई बनाने पर विवश किया। इनकी अपमान या आलोचना करनेवालों को कठिन सजाएँ दी जाती थी। इसी समय होलैंड से डच लोग आकर पुर्तगालियों पर अधिकार किया। वे मसालों के व्यापार के लिए आये थे। डचों के बाद फ्रांसीसी लोग आए और भारतीय राजाओं से संधि संबंध बढ़ाया। पुर्तगाली ने बंदरगाह पर कब्ज़ा किया तो फ्रांसीसीयों ने इसके आगे आकर भारत के भीतर घुसने का पहला साहस किया। पुर्तगालवाले 15 वीं शती के अंत में आए तो होलैंड वालों ने 17 वीं शती में, फ्रांसीसी और अंग्रेज़ 18 वीं शती में आए। इस प्रकार भारत पर तीन-चार यूरोपीय शक्तियों का संघर्ष चलता रहा। इन यूरोपीय लोगों के संपर्क से भारत में ईसाई धर्म का प्रसार हुआ। इन विदेशी शक्तियों के संबंध से जन्मे बच्चे बाद में 'अंग्लो-इंडियन' कहने लगा।

इन यूरोपीय शक्तियों के आगमन ने भारत में ईसाई धर्म के प्रचार करने के साथ हमारी संस्कृति को भी प्रभावित किया। भारतीय संस्कृति को पुर्तगालियों से कई नए-नए शब्द मिले। इनमें प्रमुख हैं – कमरा, नीलाम, पादरी, मेज़, कुंजी, कमीज़, अलमारी, गिरजा आदि। उनकी दूसरी देन है हुक्का, तम्बाकू, गोभी, आलू आदि। भारत के फल-फूल पौधों का पहला दिवरण यूरोपीय भाषा में पुर्तगालियों ने लिखा और गोवा में पहला छापाखाना भी खोला। फ़्रांस के लोगों ने भारतीयों को यूरोपीय ढंग की सैनिक शिक्षा दी और भारतीयों के साथ अच्छा संबंध भी रखा था। होलैंड ने

पुर्तगालियों को और फ्रांसीसी व अंग्रेज़ों ने डचों को परास्त करके भारत में साम्राज्य बनाया। इन विदेशी शक्तियों से भारतीय संस्कृति में काफ़ी परिवर्तन भी आया।

अंग्रेज़ और भारत

अंग्रेज़ भारत में मुख्यतः व्यापार के लिए आये थे। उन्होंने व्यापार के लिए ईस्ट इंडिया कंपनी की स्थापना की जो बाद में अंग्रेज़ी साम्राज्य की स्थापना में सहायक हो गया। भारत के राजाओं की आपसी लड़ाई अंग्रेज़ों के लिए लाभदायक सिद्ध हुआ। भारत को अपने अधीन करने में उन्हें सौ साल लग गए। अंग्रेज़ों ने भारतीय समाज एवं संस्कृति को काफ़ी प्रभावित एवं परिवर्तन किया है – "अंग्रेज़ों ने प्राचीन भारतीय समाज व्यवस्था – सामन्त व्यवस्था – को बलपूर्वक नष्ट कर दिया। और उसके स्थान पर आधुनिक समाज व्यवस्था के विकास की नीव डाली; इसलिए नहीं कि भारत को वे नये युग में लाना चाहते थे, वरन इसलिए कि उसके बिना उनका स्वयं का अर्थ-तंत्र चल ही नहीं सकता था। इस प्रकार जाने-अनजाने ढंग से अंग्रेज़ों ने भारत में, बलपूर्वक ही क्यों न सही, आमूल सामाजिक क्रांति उपस्थित कर दी।"[1] सन् 1857 ई. तक भारत में ईस्ट इंडिया कंपनी का वर्चस्व रहा। सन् 1708 में ब्रिटिश संसद ने एक अधिनियम पारित करके कंपनी को भारत में

---

[1] गजानन माधव मुक्तिबोध – भारत : इतिहास और संस्कृति, पृ : 192

शासन करने का असीमित अधिकार दे दिए। सन् 1757 ई. में प्लासी युद्ध में सिराजुदौल्ला को परास्त करके अंग्रेज़ों का वर्चस्व स्थापित किया।

अंग्रेज़ों ने भारत के प्रत्येक राजाओं को युद्ध में परास्त करके साम्राज्य विस्तार किया। 19वीं शती के पूर्वार्द्ध में ही कंपनी ने लगभग संपूर्ण भारत को अपने अधीन कर लिया। भारत में राजा-महाराजाओं के बीच लड़ाई चल रही थी। भारतीय जनता में एकता कम थी। इसका फायदा उठाकर अंग्रेज़ों ने 'फूट डालो राज करो' की नीति अपनाई। इस प्रकार उन्हें यहाँ अपना वर्चस्व स्थापित करने के साथ-साथ भारतीय समाज को छिन्न-भिन्न करने में भी पर्याप्त सफलता मिली। इससे भारतियों के मन में अंग्रेज़ों के प्रति असंतोष बढ़ गया। 1857 के प्रथम स्वतंत्रता संग्राम भारतियों के मन में उत्पन्न आक्रोश का परिणाम था। इसमें हिन्दू और मुसलामानों ने ब्रिटिश उपनिवेश और संस्कृतिहीनता से परेशान होकर एकजुट होकर इसमें योगदान दिया था। उस समय सरकार और जनता के बीच सामंजस्य स्थापित करने के लिए हेनरी काटन और एलन आक्टेवियन ह्यूम के प्रयासों से भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस का गठन हुआ। इसकी स्थापना के बाद पंडित मदन मोहन मालवीय, लाला लजपत राय, गोपालकृष्ण गोखले, लोकमान्य तिलक, विपिन चन्द्र पाल, मोहनदास करमचंद गाँधी, अजमल खां, आदि स्वतंत्रता संग्राम में आगे आए।

भारत के स्वतंत्रता आन्दोलन में महात्मा गाँधी का आगमन राजनीतिक जागरण का कारण बन गया। भारत में अहिंसा, असहयोग आन्दोलन आदि के माध्यम से उन्होंने अपना प्रभाव दिखाया। उनके नेतृत्व में सशक्त आन्दोलन हुए। अदालतों का बहिष्कार, शिक्षा संस्थाओं का बहिष्कार, हड़ताल, विदेशी वस्तुओं का बहिष्कार, कर व्यवस्था का निषेध आदि गाँधीजी के नेतृत्व में हुए थे। गाँधीजी के नेतृत्व में सन् 1942 को भारत छोडो आन्दोलन हुआ। माउन्ट बाट्टन पद्धति के सिद्धांतों को अपनाकर 1947 को इंडियन इंडिपेंडेंस एक्ट पारित किया। इस व्यवस्था के अनुसार 15 अगस्त सन् 1947 को भारत और पाकिस्तान स्वतन्त्र राष्ट्र हुए। इस प्रकार भारत को आज़ादी मिल गयी। जवाहरलाल नेहरू स्वतंत्र भारत के प्रथम प्रधानमन्त्री हुए तो मुहम्मदाली जिन्ना पाकिस्तान के गवर्नर जनरल बन गए। और लियाक्त अली प्रधान मंत्री हुए। 26 जनवरी सन् 1950 को स्वतंत्र भारत के लिए अंबेडकर के नेतृत्व में नया संविधान लागू हुआ और भारत एक जनतंत्र राष्ट्र बन गए।

अंग्रेज़ों के आगमन से भारत की आर्थिक सामाजिक स्थितियों में कई परिवर्तन आए। उनके शासन में भारत में एकता आयी। भारत में कई गवर्नर जनरल एवं वैस्रोयी शासन करने लगे थे। वे कई परिवर्तन लाए । कांवालिस प्रभु ने व्यवस्थित पुलिस सेना स्थापित की, कर व्यवस्था में परिष्कार किया। हैस्टिंग प्रभु ने इनमें काफ़ी परिष्कार किया। उन्होंने समाचार पत्रों का प्रचार, सडक निर्माण, ग्राम समाज आदि शुरू किया। विलियम बेनिडिक्ट

भारत के सामाजिक-आर्थिक परिस्थिति में परिवर्तन लाया। आधुनिक शिक्षा व्यवस्था इन्होने प्रारंभ की। शिक्षा का माध्यम अंग्रेज़ी भाषा बनाकर भारत का प्रथम 'मेडिकल कॉलेज' कलकत्ता में स्थापित की। 1829 में विलियम बेनिडिक्ट ने सति प्रथा रोक दी। डलहौसी के शासन काल में सामाजिक आर्थिक दृष्टि से और भी प्रगति हुई। उन्होंने प्रत्येक रियासत में शिक्षा विभाग खोला, स्त्री शिक्षा को प्रश्रय दिया, तकनीकी शिक्षा एवं ऐतिहासिक अनुसंधान प्रारंभ की, सूचना-प्रसारण एवं यातायात की व्यवस्था में क्रन्तिकारी परिवर्तन लाये। नई सड़कें, रेल, तार एवं डाक व्यवस्था बाँध एवं सिचाई परियोजनाएँ, आदि प्रारंभ की। रिप्पण प्रभु ने प्रादेशिक भाषा, समाचार पत्र, चुनाव व निर्वाचन पद्धति आदि में परिष्कार किया। उन्होंने जाति व्यवस्था को कम किया। इस प्रकार भारत में प्रचलित अंधविश्वासों, रूढियों एवं अनाचारों को दूर करके सामजिक क्रांति ला दिया। सति प्रथा, दास प्रथा, ठगी एवं पिंडारियों का अंत, बाल विवाह, बाल हत्या आदि से भारत को मुक्त करने में इन शासकों का योगदान महत्वपूर्ण है। इन्होने समाज में मौजूद असामनताओं, अस्पृश्यताओं की कटु आलोचना की। ईसाई धर्म प्रचारकों ने कई दलित मुस्लिम व जनजातियों को ईसाई धर्म में परिवर्तित किया। राजस्थान की मारवाड़ी जाति विदेशों व अन्य अंग्रेज़ी उपनिवेशों में भी व्यापार-वाणिज्य करने में समर्थ हुए।

भारत में अंग्रेज़ी लोग व्यापार के लिए आए थे। बाद में वे यहाँ के शासक बन गए। राजनैतिक और आर्थिक शक्ति के बल पर कंपनी ने

आतंरिक व्यापार में भी हस्तक्षेप करना शुरू किया। ब्रिटिश बैंकों की शाखाएँ कलकत्ता में खोल दी गई। इसके साथ कंपनी के पास राजस्व एकत्र करने के अधिकार आने के बाद उसने बिना निवेश किए ही कपडा, चावल, चीनी, नमक, मसाले, आदि खरीद कर निर्यात करने लगे। वे स्वदेशी वस्तुओं, बंगाल के रेशमी वस्त्रों, सूती वस्त्रों पर प्रतिबंध लगाने लगे। इससे कई बुनकर कपडा बुनना बंद करके खेतिहर श्रमिक बन गए। बंगाल के भीषण अकाल ने भी भारतीय आर्थिक व्यवस्था को क्षति पहुँचाई। उन्होंने गाँव के किसानों का भी निरंतर शोषण किया। वे गाँवो में जमींदारों को प्रोत्साहन दिया ताकि उन्हें राजस्व एवं कर मिले। लार्ड विलियम बेन्टिंग और लार्ड कार्नवालिस ने इन जमींदारों को प्रश्रय दिया। ये जमींदार कृषकों से सीधे लगान वसूलने लगे थे। यूरोप में औद्योगिक क्रांति और भारतीय माल की उत्कृष्टता ने भारत के कृषि व्यवसाय को नष्ट करके अन्य उद्योगों की ओर ले गया। वस्त्र उद्योग भारत का प्रमुख उद्योग था। अंग्रेज़ों ने इंग्लैंड में भारतीय सूती कपड़ों के निर्यात पर रोक लगा दी और उसके आयात कर भी बढाया। उन्होंने भारतीय बुनकरों की स्थिति बिगाड़ दी। अंग्रेज़ों ने भारतीय बुनकरों पर कई तरह के दबाव डाले। इसी समय पूरा विश्व राष्ट्रीय बाज़ारों के बाद अन्तराष्ट्रीय बाज़ारों की खोज में निकल पड़ा। धीरे-धीरे बाज़ार का विस्तार और इसके लिए प्रतिस्पर्धा होने लगा।

ईसाई धर्म का प्रचार-प्रसार अंग्रेज़ों ने भी किया था। पुर्तगालियों से पहले ईसाई धर्म का भारत में आदर था। लेकिन पुर्तगालियों और बाद में

अंग्रेज़ों के दुर्व्यवहार ने इस आदर को थोडा कम किया। 19 वीं सदी के आरंभ काल में भारतीय समाज एवं हिंदुत्व जर्जर अवस्था में थी। ईसाई मिशनरियों ने धर्म परिवर्तन के द्वारा हिंदुत्व के भीतर अनादृत लोगों को आदर दिया। मिशनरियों ने कलकत्ते में बिशप कॉलेज, डफ कॉलेज और त्रिचिनापल्ली के विल्सन और एस.पी.जी कॉलेज आदि संस्थाओं के माध्यम से ईसाई धर्म का प्रचार करने लगे। इसके फलस्वरूप उनकी संख्या में वृद्धि हुई। अंग्रेज़ी शिक्षा के माध्यम से भारत के नवयुवक बौद्धिक विकास किया। इससे वे हिन्दू धर्म के कर्मकांडों, अंधविश्वासों, ऊँच-नीच के भेदभावों का विरोध करने लगे।

अंग्रेज़ों के नये-नये उद्योगों के सामने भारत के कुटीर उद्योग नष्ट होने लगे। इसके साथ नए अफसर वर्ग या मध्यवर्ग जन्म लिया जो अंग्रेज़ी भाषा एवं पाश्चात्य जीवन शैली को पसन्द करते थे। इस समय औद्योगिक क्रांति के कारण ब्रिटेन में उत्पन्न पूँजीवादी वर्ग ने भारत में ईस्ट इंडिया कंपनी के वर्चस्व को समाप्त करके अपना उद्योग खोलना चाहा। सन् 1813 में कंपनी का वर्चस्व ख़त्म होने के बाद उद्योगों के लिए धन देने वाली वित्तीय संस्थाएँ धीरे-धीरे बाज़ार पर नियंत्रण करने लगे। धीरे-धीरे भारत अंग्रेज़ों को कच्चे माल का निर्यात और कच्ची माल से बनी वस्तुओं का इंग्लैंड से आयात करनेवाली मंडी बन गयी जो आज भी ज़ारी है। इस युग में भारत में कई समाज-सुधारकों का दल आए जिन्होंने भारतीय समाज व्यवस्था एवं संस्कृति को गहराई से प्रभावित किया।

19 वीं शती के उत्तरार्ध में धर्म और समाज में कई सामाजिक सुधारकों व संगठनों के माध्यम से पुनर्जागरण आया। इस युग को 'नवजागरण काल' भी कहा जाता है। औपनिवेशिक वातावरण में घटित नवजागरण ने भारतीय नागरिकों को अतीत एवं पश्चिम के शिकंजे से बाहर ले आया। इसने भारतियों को पश्चिम की छाल से बाहर ले आकर आत्म पहचान के संघर्ष के लिए प्रेरित किया। उस समय समाज में हिन्दू, मुस्लिम, ईसाई, सिक्ख, मराठी, क्षत्रिय, यादव, दलित आदि के बीच जो भेदभाव था वह मिटने लगा। सामाजिक संगठनों ने सामाजिक कुरितियोंन पर प्रहार किया। आधुनिक भारतीय सांस्कृतिक जागरण के अग्रदूत राजा राममोहन राय ने बंगाल में सन् 1815 में 'आत्मीय सभा' की स्थापना की जिसका उद्देश्य हिंदुओं के अंधविश्वासों को दूर करना था। हिन्दू धर्म की रूढ़ियों का विरोध करने के लिए सन् 1828 में 'ब्रह्म समाज' की स्थापना की। इसने मूर्तिपूजा, जातिभेद, अस्पृश्यता, सति प्रथा, पर्दा प्रथा, छुआछूत आदि का विरोध किया। ईसाई धर्म को भी इन्होने प्रोत्साहन दिया। स्त्री शिक्षा, विधवा विवाह, बहुविवाह का विरोध आदि को भी प्रोत्साहित किया। ब्रह्म समाज से प्रेरित होकर सन् 1867 में केशवचंद्र सेन ने महाराष्ट्र में 'प्रार्थना समाज' की स्थापना की जिसका मुख्य उद्देश्य जाति प्रथा का विरोध, विधवा विवाह का समर्थन, स्त्री शिक्षा का प्रचार और बाल-विवाह का विरोध थे। उत्तर भारत में सन् 1875 में दयानंद सरस्वती ने 'आर्य समाज' की स्थापना की। इन्होने तत्कालीन समाज में व्याप्त कुरीतियों को नष्ट करने का प्रयास

किया। नारी स्वतंत्रता एवं नारी शिक्षा को समाजिक पुनर्जागरण की रीढ़ मानते हुए अनेक विद्यालयों की स्थापना की। सन् 1875 में रुसी महिला हेलेना पेत्रोवना ब्लेवास्की ने 'थियोसोफिकल सोसाइटी' की स्थापना न्युयोर्क में की। बाद में एनिब्सेंट ने भारत में इसका प्रचार-प्रसार किया। उस समय लोग आस्तिकता-नास्तिकता के बीच झटके खा रहे थे। हिन्दू धर्म के कर्मकांडों ने भी भारतीय समाज को शिथिल बना दिया। एनिबसेंट ने भारत में रहकर हिंदुओं को जगाने के साथ भारतीय संस्कृति के गौरव को विदेशों में भी ले गई। यह सोसाइटी सभी धर्मों में समन्वय चाहती है। स्वामी विवेकनन्द द्वारा सन् 1897 ई. में श्रीरामकृष्ण मिशन की स्थापना हुई। इससे भारतीयों में नवचेतना जाग उठी। इन्होने वेदान्त धर्म एवं भारतीय संस्कृति का प्रचार देश-विदेशों में किया। श्रीरामकृष्ण मिशन का उद्देश्य समाज सेवा था। उन्होंने भारतीय जनता में नए प्रगतिशील विचारों का प्रचार किया। इस प्रकार 19 वीं शती को भारतीय परिप्रेक्षय में समाज सुधार की शताब्दी मान सकते हैं। इन समाज सुधार आन्दोलनों ने धीरे-धीरे स्वाधीनता आन्दोलन से जुड़कर महत्वपूर्ण योगदान दिया – "धर्म सुधार से जुड़ा समाज सुधार आन्दोलन धीरे-धीरे धर्मनिरपेक्षता की ओर उन्मुख होता गया। सुधारकों के विचारों एवं आदर्शों को मान्यता मिली और आज हमारे भारतीय संविधान में किसी न किसी तरह समाहित हैं।"[1] इन सुधारकों का मुख्य लक्ष्य छुआछूत की समाप्ति और स्त्रियों की मुक्ति रही है।

---

[1] डॉ. संतोष कुमार चतुर्वेदी – भारतीय संस्कृति, पृ : 158

पहला अध्याय

समकालीन भारतीय संस्कृति

वर्तमान समाज भूमंडलीकरण के दौर से गुज़र रहा है। आज समुदाय और संस्कृति के आधार पर नए इतिहास रचे जा रहे हैं। अंग्रेज़ों के चले जाने के बाद भारतीय इतिहास का एक दौर खत्म हुआ। लेकिन नव-उपनिवेशवादी शक्तियाँ समकालीन भारत को अपने पकड़ में कर लिया है। उपनिवेशवाद ने हमारी भाषा, संस्कृति एवं समाज पर जो प्रभाव डाला उससे कहीं अधिक प्रभाव नव-उपनिवेशवादी साम्राज्यवादी शक्तियाँ डाल रहा है। हमारी संस्कृति धीरे-धीरे नष्ट होकर 'अपसंस्कृति' में परिवर्तित हो रहा है। सूचना प्रौद्योगिकी एवं बाज़ारू संस्कृति के साथ-साथ नए-नए इतिहास भी हमें प्रभावित कर रहा है। उसने भारत की सांस्कृतिक विविधता को सांस्कृतिक भिन्नता में परिणत किया है। जाति, धर्म, नस्ल आदि को संकुचित दृष्टि से देखने लगे हैं। हिंदुत्ववाद का हिन्दू धर्म के आदर्शों से, मुस्लिम कट्टरवाद का इस्लाम के उसूलों से, क्षत्रिय जातीयताओं को अपने क्षेत्र की कला, साहित्य और संस्कृति की श्रेष्ठ परंपराओं से कोई संबंध नहीं होता है। जाति , वर्ण, वर्ग, लिंग के आधार पर समाज में पाई जानेवाली खाइयों को आज बढ़ावा दे रहा है। इन भेदभावों को मिटाने की जगह इनका महिमामंडन कर रहा है। उपनिवेशकाल के 'फूट डालो राज करो' की नीति भूमंडलीकरण के युग में नए रूप में सक्रिय है।

नव-उपनिवेश कालीन संस्कृति

द्वितीय विश्वमहायुद्ध के बाद साम्राज्यवादी शक्तियों ने उपनिवेशवाद को तिलांजली देकर उसका नया रूप नव-उपनिवेशवाद को ग्रहण कर लिया। पुरानी साम्राज्यवादी शक्तियाँ आर्थिक एवं अन्य सहायताओं के बहाने उपनिवेशों के धन-दौलत लूटने लगे। वे इन देशों को अपने माल की मंडियों के रूप में, कच्चे माल के स्रोत के रूप में और अपनी पूँजी के निर्यात के अड्डों के रूप में बनाये रखते हैं। उन देशों पर राजनितिक, आर्थिक, सांस्कृतिक आक्रमण करके उन देशों के आन्तरिक मामलों में हस्तक्षेप करते हैं। नव-उपनिवेशवाद को बढावा देने में अमरीका अत्यंत सक्रियता और धूर्तता से काम लेता है। अमरीका अन्य साम्राज्यवादियों के उपनिवेशों तथा प्रभाव क्षेत्रों को हथियाने और विश्व भर में अपना प्रभुत्व स्थापित करने का षड्यंत्र रच रहे हैं। इसप्रकार नव-उपनिवेशवाद, उपनिवेशवाद का जीता-जागता उदाहरण है। उनके अद्योग, तंबाकू, तांबा उद्योग आदि अमरीका के कब्जे में था। साम्राज्यवाद कमजोर तो हुआ पर आज भी वह नव-उपनिवेशवाद का सहारा लेकर अपना अधिपत्य बनाये रखने की चेष्टा कर रहा है। इसका जाल भारत पर फैला रहा है। वे संहारक हथियारों के साथ आतंकवाद का भी सहारा ले रहे हैं। उनके विरोध में खड़ी राजनीतिक अस्मितामों को कुचलकर आगे बढ़ते हैं। वियतनाम, कंबोडिया, सूडान, कोरिया, इराक आदि में युध्द करते हैं। भारत के खिलाफ मुसलमान पाकिस्तानी भाइयों को लडाना उनका

अलग षड्यंत्र है। पहले साम्राज्यवादी शक्तियाँ साम्राज्य विस्तार एवं व्यापार के लिए विकासशील देशों को अपने अधीन कर लिया। आज मुनाफ़ा कमाने के लिए बहुराष्ट्रीय कंपनियों एवं ब्रांडों के माध्यम से पुनः इन देशों को अपने अधीन कर लिया। सांप्रदायिकता, आतंकवाद आदि फैलाकर लोगों को भयभीत करके अर्थ कमा रहे हैं। वे सारे मानवीय मूल्यों को भूल गए हैं।

उपनिवेशवाद में यूरोप का प्रत्यक्ष एवं आक्रमक साम्राज्यवाद है तो नव-उपनिवेश में परोक्ष सांस्कृतिक अधीनस्थता है। मीडिया,सूचना पौद्योगिकी,विज्ञापन आदि के ज़रिए उपनिवेश का परिष्कार करके अपना वर्चस्व स्थापित किया है। लगातार हुए विश्वयुद्धों से उत्पन्न संकट पर काबू पाने के लिए 1944 में ब्रैटनवुड सम्मेलन हुआ। इस सम्मलेन में नयी अंतराष्ट्रीय आर्थिक व्यवस्था का गठन करके आर्थिक विकास करने का निश्चय किया। तीसरी दुनिया के देशों को इससे राहत मिली। आई.एम.एफ और विश्व बैंक का जन्म इसी समय हुआ। अंतर्राष्ट्रीय मुद्राकोषों से ऋण लेकर अनुत्पादक खर्च में लगाकर इन अविकसित व विकासशील देशों को चूसने लगा। नरसिंह राव के शासन काल में भारत का द्वार विदेशी बहुराष्ट्रीय कंपनियों के लिए खोल दिया। उस समय से यहाँ बहुराष्ट्रीय कंपनियों की बाढ़ सी आ गई। आकर्षक पैकजों व विज्ञापनों के ज़रिए उत्पादों की ओर ग्राहकों को आकृष्ट किया। भारतीय विदेशी रंग-बिरंगी चीजों व ब्रांडों के प्रति आकृष्ट हुए। धीरे-धीरे भरत विदेशी कंपनियों का बाज़ार बन गया। इसप्रकार कला, संगीत, नृत्य, साहित्य, धर्म, संस्कृति, मानवीय संबंध सब

बिकाऊ बन गये। इस प्रक्रिया में संस्कृति भी एक उद्योग बन गया है। आज एक ब्रांड संस्कृति जन्म लिया है। ब्रांड आज भूमंडलीय बाज़ार की लोकप्रिय अवधारणा बन गयी है। ब्रांड उपभोक्ता को उत्पाद की गुणवत्ता की गांरटी देता है। इस बीच रिश्ते-नाते, सौहार्द, मानवीय मूल्य, नैतिकता सब बाज़ारू हो गये। शंभूनाथ जी ने लिखा है -"मनुष्य और मनुष्य के बीच पहले प्रत्यक्ष और सीधा संबंध था, अब वह बाजारू हो गया, क्योंकि हर मनुष्य, खरीददार और विक्रीकर्ता भर होकर रह गया और उसके स्वतंत्रता के अनुभव सिमट कर अंधेरी की चीख हो गये।"[1] इसप्रकार स्वतंत्र भारत में नवउपनिवेशवादी शक्तियाँ शासन कर रहे हैं।

नवउपनिवेशवाद ने संस्कृति को भी संकुचित कर दिया है। भारत जैसे बहुधर्मी देश में धर्म और संस्कृति को एक कर देने की खतरे हैं। अब संस्कृति के नाम पर हिन्दू संस्कृति, मुस्लिम संस्कृति, एवं ईसाई संस्कृति आदि की बात की जा रही है। अब जातिवाद निरंतर गहराता जा रहा है। राजनीति इस जातिवाद को हवा देकर मुनाफ़ा कमा रहा है। नवउपनिवेशवादी शक्तियाँ हाशियाकरण को प्रोत्साहित कर रहे हैं। इससे देश में असिहिष्णुता बढ़ रही है। सांस्कृतिक साम्राज्यवाद एवं सांस्कृतिक राष्ट्रवाद ने भारत के अल्पसंख्यकों को संकट में डाल दिया है।

नवउपनिवेशवाद ने भारत को एक नए सांस्कृतिक दोराहे पर खड़ा कर दिया है। अमित कुमार सिंह ने लिखा है -"भूमंडलीकरण के खेल में

---

[1] शंभूनाथ – तीसरा यथार्थ, पृ : 79

बहुराष्ट्रीय कंपनियों द्वारा बाज़ार के माध्यम से एक मूल्य व संस्कृति को परोसा जाता है। यह मूल्य निश्चित रूप से अमेरीकी जीवन शैली को अपना आदर्श मानता है। यह समूचे विश्व में संस्कृति के समरूपीकरण को प्रत्यक्ष व अप्रत्यक्ष प्रयास करता है।"[1] आज हमें नए सांस्कृतिक संकट से झूझना पड़ता है। आज का आदमी परंपरागत संस्कृति से मुक्त नहीं है और बंधा भी नहीं है। आज मूल्य बाज़ार द्वारा निर्धारित व संचालित हो रहा है। वह परंपरागत मूल्यों को तोड़ता है।

भारत में आर्थिक उदारीकरण के बाद एक नए मध्यवर्ग जन्म लिया है| इनके लिए संस्कृति के नाम पर उपभोक्तावाद की संस्कृति सर्व स्वीकृत संस्कृति हो गयी है| इस अपसंस्कृति ने मां-बाप, पति-पत्नी, बच्चे और अन्य मानवीय संबंधों को तोडा है| रिश्तों में दरार, तलाक, वृद्धो की दयनीय स्थिति आदि आम बात हो गई है। इस स्थिति में युवा पीढ़ी में मूल्यों व नैतिकताओं के प्रति उदासीनता उत्पन्न की है। इनमें अपने सांस्कृतिक मूल्यों का ज्ञान बिलकुल समाप्त होता जा रहा है। नवपूंजीवादी दुनिया में स्त्री का कोई अस्तित्व नहीं है| उपभोक्ता को रिझाने एवं अपना माल बेचने के लिए महिलाओं को प्रमुख साधन के रूप में प्रयोग किया जा रहा है। इस तरह आम लोगों का सौन्दर्यबोध बदल रहा है। आज वह सब हमारी संस्कृति का हिस्सा बनता जा रहा है जो कभी इसका हिस्सा न था। आज ऐसी एक संस्कृति पनप रही है जिसमें आदमी की अपनी रुची, प्रतिक्रियाएँ आदि सो जाते हैं।

---

[1] अमित कुमार सिंह – भूमंडलीकरण और भारत : परिदृश्य और विकल्प, पृ : 87

वर्तमान दौर में मूल्य संस्कृति नष्ट होकर भौतिक सुख सब कुछ बन गया है। इस अपसंस्कृति ने आदमी को सामाजिक चिंताओं से विमुख करके आत्मकेंद्रित बना दिया है। शंभूनाथ जी ने लिखा है -"संस्कृति को एक सुसंगत और तर्कसम्मत व्यवस्था देते हुए उसे अपने जीवन का अंग बनाने के प्रति जो वाकई गंभीर नहीं हैं, वे पश्चिम के नए सांस्कृतिक साम्राज्यवाद और सामुदायिक कट्टरवाद एकसाथ दोनों पहियों के नीचे हैं।"[1] इसप्रकार नवउपनिवेशवाद राजनितिक उपनिवेश के स्थान पर बाज़ार केन्द्रित उपनिवेश रहा। इसने भारतीय जन-मानस को भी अपना उपनिवेश बना दिया।

उत्तर आधुनिककालीन संस्कृति

आज सब कुछ 'उत्तर' हो गया है - उत्तर उपनिवेशवाद, उत्तर संरचनावाद, उत्तर औध्योगीकरण, उत्तर आधुनिकता आदि। 'उत्तर' से यह बोध होता है कि जो कुछ अब तक था इसके आगे विचारधाराएँ आ चुकी हैं। उत्तर आधुनिकता विविधता को स्वीकार करती है। उत्तर अधुनिकता आधुनिकता का अंत न होकर उसका एक नये रूप में आरंभ है। उत्तर आधुनिकता और भूमंडलीकरण को एक दुसरे के सहचर मानते हैं। बाज़ार एवं प्रौद्योगिकी ने इसमें उत्तर-आधुनिकतावाद की सहायता की है। शंभूनाथ जी ने आधुनिकता को उत्तर-आधुनिकता का विपर्यय माना है। आधुनिकता का वाहक पुराने उत्थानशील मध्यवर्ग था, जबकि उत्तरआधुनिकता का वाहक

[1] शंभूनाथ - भारतीय अस्मिता और हिंदी, पृ : 176

गलत उपायों से फैलते-फूलते नव्य कुबेरों का उपभोक्ता समाज है। उन्होंने यों कहा है- "उत्तर-अधुनिकतावाद नव-औपनिवेशिक विकास का सांस्कृतिक सह-संबंधी है, जिस तरह कभी आधुनिकीकरण यूरोपीय उपनिवेशवाद के इतिहास से जुडा था।"[1] उत्तर-आधुनिक युग में उपभोक्तावादी संस्कृति पनपने लगी| इस युग में ज़िंदगी का कोई परम्परागत और आधुनिक आदर्श एवं मूल्य सुरक्षित नहीं है। आधुनिक मानव बाहरी जरूरतों व भौतिक सुख-सुविधाओं के पीछे भागने लगे तो आंतरिक मूल्य बिखरने लगे। इस उपभोक्तावादी मानसिकता ने सैकड़ों हथियार और उपकरण जुटाने के भागदौड़ में मनुष्यत्व को खो दिया। प्रौद्योगिक विकास ने हर क्षेत्र पर अपना जाल बिछाया। धीरे-धीरे व्यक्ति निरर्थक हो गये और इलेक्ट्रानिक उपकरण सामने आ गई।- "उत्तर आधुनिकता हर तहर से उपकरण-विस्फोट से जन्मी वह अपघटना है, जिसे गरीबी के बावजूद हम सबको भुगतना है। केंद्र विसरण, आदर्शों का अंत, इतिहास का अंत, विज्ञान पर संशय अथवा विज्ञान की वैज्ञानिकता पर आपत्ति, प्रमाणिकता के स्थान पर आकर्षक संवेष्ठन, आवश्यकता से आगे अतिरिक्त पर बल, क्षण अमरत्व या अमरत्व की निरर्थकता, उत्सवधर्मिता, रचनात्मकता के स्थान पर यथावत यानी त्यलक्यल पर बल और शुद्ध उपयोगितावादी दृष्टिकोण आदि उत्तर आधुनिकता की प्रवृत्तियाँ हैं।"[2] टीवी, इन्टरनेट और अन्य मनोरंजक उपकरणों ने मानव को उत्सवधर्मी बनाया। नए-नए उपकरणों ने उसे संवेदनशून्य बना

[1] शंभूनाथ - संस्कृति की उत्तरकथा, पृ : 147
[2] कैलाश वाजपेयी - आधुनिकता का उत्तरोत्तर, पृ : 7

दिया। यह युद्ध एवं भूकंप को तटस्थ दृष्टी से देखने लगा मानो कोई सौंदर्य प्रतियोगिता देख रहा हो। दुनिया भर में पैसे का महत्व बढ़ गया तो नैतिकता का पतन हुआ। इसप्रकार उत्तर-आधुनिकता ने व्यक्ति चेतना को बुरी तरह झकझोर दिया है।

उत्तरआधुनिकता ने सांस्कृतिक बहुलताओं व भिन्नताओं को उकसाया। उत्तर-आधुनिकता ने हाशिएकृत वर्गों में अस्मिता बोध जगाया। उन्हें संघर्षशील बनाया। सुधीश पचौरी ने कहा है -"हमारे यहाँ दलित विमर्श, स्त्री विमर्श, अल्पसंख्यक विमर्श, धार्मिक विमर्श, विविध जाति विमर्श मूलतः अस्मितामूलक विमर्श है जो अपने भीतर-बाहर अनंत अंतर्विरोधों को, उपद्रवों को लिए-दिए व्यक्त होने लगे हैं, समाज को अपने ढंग से विभक्त और पुनः संगठित करने में लगे हैं।"[1] उत्तर-आधुनिक युग में विविधता को स्थान मिला है। इस युग में हाशिएकृत वर्गों,अल्पसंख्यक व लघु संस्कृतियों को आगे आते देख सकते हैं।

भूमंडलीकरण और संस्कृति

नव-उपनिवेशवादी सभ्यता का सबसे मज़बूत हथियार भूमंडलीकरण है। इसने बाज़ार केन्द्रित समाज का गठन करके पूरी दुनिया को एक 'मंडी' में बदल दिया। भूमंडलीकरण साम्राज्यवाद का नया रूप है| भूमंडलीकरण का सीधा संबंध विश्व बैंक, अन्तराष्ट्रीय मुद्राकोष, विश्व-व्यापार संगठन, बहुराष्ट्रीय कंपनियाँ, अमरीका और जी-7 के विकसित यूरोपीय देशों से है।

[1] सुधीश पचौरी - उत्तर आधुनिक समय और मार्क्सवाद, पृ : 91

जिस भूमंडलीकरण की प्रक्रिया भारत में चल रहा है उसकी शुरुआत भारत में 1986 की नरसिंहराव सरकार ने की थी। यह गेट्ट समझौते का परिणाम था। आज यह समझौता अविकसित तथा विकासशील राष्ट्रों के ऊपर अपने अधिकार को जमा लेने की गुप्त एजेंडा बन गई।

टेलिविज़न और विज्ञापन ही भूमंडलीय संस्कृति को शहर, गाँव एवं कस्बों में पहुँचाती है। सूरज पालिवाल ने लिखा है - "पूँजीवाद का उत्कर्ष ही भूमंडलीकरण हैं, जिसमें बड़ी और बहुराष्ट्रीय कंपनियाँ अपना जाल फैला रही है, उनमें सर्वमंगल की अवधारणा व्यर्थ है। पूँजिपति अपना हित पहले देखते हैं, वह अपना बाज़ार पहले तलाशता है और लोगों की इच्छा को अपनी तरह मोड़ता हैं।"[1] भूमंडलीकरण ने संस्कृति को भी संकुचित एवं विकृत कर दिया है। इस संकुचित मानसिकता ने 'फूट डालो राज करों' की नयी नीति का पालन किया है। भारत में इस्लाम व अल्पसंख्यक विरोधी आन्दोलन इसका परिणाम है। जनता की मानसिकता पर अमेरिका की स्वार्थ व विनाशकारी कब्जा है। भूमंडलीकरण इनका सशक्त हथियार है। इसलिए जगदीश्वर जी ने लिखा है -"भूमंडलीकरण वस्तुतः बहुराष्ट्रीय कंपनियों की शोषण एवं दोहन प्रक्रिया का विश्वव्यापी फिनोमिना है। कुछ लोग को हो सकता है इसमें सकारात्मक तत्व दिखाई दे किन्तु समग्रता में यह प्रतिगामी फिनोमिना है।"[2] भूमंडलीय संस्कृति ने स्थानीय संस्कृति का व्यवसायीकरण किया है।

---

[1] सूरज पालिवाल – हिंदी में भूमंडलीकरण का प्रभाव और प्रातिरोध, पृ : 23

[2] जगदीश्वर चत्रुवेदी – युद्ध, ग्लोबल संस्कृति और मीडिया, पृ : 211

आज दुनिया इतनी बड़ी मंडी हो गई है कि दुनिया छोटी हो गई है। वह घर पर बैठे-बैठे दुनिया को अपने पास बुला सकता है। इस प्रकार व्यापार में 'भूमंडलीय गाँव' या 'ग्लोबल विलेज' की अबधारणा जन्म लेती है। इस गाँव में चमचमाती गाड़ियाँ, शानदार घर, खाओं-पीओं-मौज करों की जीवन शैली देख सकते हैं। यह ग्लोबल गाँव साधारण लोगों, गरीबों, खदान मजदूरों, आदिवासियों, अल्पसंख्यकों और अंत्यजों को दुश्मन मानते हैं और उनकी अस्मिता पर कुठाराघात करते हैं।

भूमंडलीकरण ने एक नई व्यवस्था का निर्माण किया है जिसका लक्ष्य ज्यादा से ज्यादा उपभोक्ता को पैदा करके मुनाफ़ा कमाना है। इसका प्रभाव साहित्य, सिनेमा, कला, संगीत, नृत्य सबमें देख सकते हैं। विभिन्न देशों के विभिन्न सांस्कृतिक पृष्ठभूमी के लोगों में समान रूप से स्वीकृति प्राप्त सांस्कृतिक माल, कार्यक्रम, भोजन, पुस्तक, आदि इसके मानक बनते जा रहे हैं। स्टार वार, जुरासिक पार्क जैसी फिल्मों, एम.टी.वी और सी.एन.एन जैसी चैनलों, विदेशी पुस्तकों, मैकडोनाल्ड, बर्गर, पिज़ा, पेप्सी, कोकोकोला जैसी भोजनों आदि की स्वीकृति के द्वारा सारी दुनिया को विश्व बाज़ार से बांध दिया है। ये सब 'सार्वभौम माध्यम माल' है जिसका दुनिया के हर कोनों में स्वीकृति एवं माँग अधिक है। आज धर्म भी एक ब्रांड बन गया है। वह उपासना की चीज न होकर धंधा बन गया है। धर्म को प्रतिस्पर्धा बढ़ाने की चीज़ बनाकर, दुसरे धर्म के खामियों और बुराइयों को उभारकर धार्मिक विद्वेष पैदा करता है।

भूमंडलीकरण आज़ादी और आत्मनिर्भरता को छीनकर व्यक्ति को गुलाम एवं परनिर्भर बनाता है। जगदीश्वर चतुर्वेदी ने लिखा है- "भूमंडलीय वर्चस्व के तीन फिनोमिना मिलते हैं। ये हैं आर्थिक वर्चस्व, सांस्कृतिक वर्चस्व और माध्यम वर्चस्व| इन तीनों का बहुराष्ट्रीय निगमों का आर्थिक साम्राज्य से गहरा संबंध है। राजनितिक तौर पर अनुदारवादी राजनीति और सांस्कृतिक तौर पर यथास्थितिवादी संस्कृति से इनका गहरा संबंध है।"[1] भूमंडलीकरण का यह दौर उपर्युक्त बातों के कारण चमकदमक के साथ तनावों से भरा है। भूमंडलीय संस्कृति को जगदीश जी ने 'सांस्कृतिक एड्स' माना है। भूमंडलीकरण समाज में पूँजीवाद को पुनः प्रतिष्ठित किया है। - "भूमंडलीकरण और आर्थिक उदारीकरण का जो रास्ता अपनाया गया है वह वस्तुतः वंचितों को सामाजिक न्याय से दूर करने का प्रयास ही है। इसके माध्यम से पूँजिपति वर्ग सुविधाओं के साधनों पर एकाधिकार रखना चाहता है। शिक्षा स्वास्थ्य, भोजन, आवास एवं सूचना जैसी मूलभूत सुविधाओं से समाज के एक बहुत बड़े वर्ग को वंचित रखना चाहता है जिससे उसे काफ़ी सीमा तक सफलता भी मिली।"[2] पूँजीवाद झूठी व्यवस्था है जिसका लक्ष्य लाभ कमाना है।

बाज़ारवादी संस्कृति

उपनिवेश हो या नव-उपनिवेश उसका मुख्य आधार बाज़ार है। इसको प्रश्रय देने में मीडिया, समाचार पत्र, नये इलेक्ट्रॉनिक मीडिया,

---

[1] जगदीश्वर चतुर्वेदी – युद्ध, ग्लोबल संस्कृति और मीडिया, पृ : 422-423

[2] कुँवारपाल सिंह - साहित्य और हमारा समय, पृ : 93

विज्ञापन आदि का विशेष योगदान है। बाज़ार नशा पैदा करता है। शॉपिंग मौल, रेस्तराँ, आदि अन्य जगहों में हमें विदेशी ब्रांड एवं अन्य चीजें आसानी से उपलब्ध होते हैं। छोटे-छोटे नगरों में भी चकाचौध भरी डिपार्टमेंटल स्टोर्स है। यहाँ की चमक-धमक व्यक्ति के अंदर नए किस्म की भूख पैदा करता है। इस युग में सब बिकने योग्य या उपभोग वस्तु बन जाते हैं। इसमें कला-संगीत, नृत्य, भाषा, सौन्दर्य, प्रेम, साहित्य, धर्म, नारी का शरीर, संस्कृति आदि सब आते हैं।

सभ्यता के शुरूआती दौर में बाज़ार का विकास धीरे-धीरे हुआ जो आज की तरह संगठित न था। बाज़ार के आधुनिक रूप पूँजीवाद के विकास के साथ दुनिया के सामने आया। आज हमारे बाज़ार का नियंत्रण बहुराष्ट्रीय कंपनियों के हाथ में है। बाज़ार और उसकी संस्कृति भीतरी गाँवों तक घुस गई है। -"बाज़ार संस्कृति दिखावटी रूप से उपभोक्ता की चयन-क्षमता का जिक्र करती है, विरोधाभास तो यह है कि बाज़ार में जो बिकता है, उपभोक्ता उसे ही खरीदने को बाध्य हैं।"[1] बाज़ार ब्रांड के मध्य से उपभोक्ताओं को अपनी ओर आकृष्ट करके उन पर नई उपभोक्तावादी संस्कृति थोप रहा है। बाज़ार नव-साम्राज्यवादी शक्तियों का ताकतवर हथियार है। यह वह दानवी ताकत है कि व्यक्ति तथा समूचे राष्ट्र-शक्ति की स्वतंत्र सत्ता एवं अस्मिता को समाप्त कर अपने हाथ की कठपुतली बना लिया है। रोहिणी अग्रवाल ने बाज़ार की बढती पहुँच और ताकत पर यों विचार प्रकट किया है -"बाज़ार

---

[1] प्रभा खेतान – भूमंडलीकरण : ब्रांड संस्कृति और राष्ट्र, पृ ; 66

नव-साम्राज्यवादी ताकतों के अभ्युत्थान की कहानी है जो पूरे विश्व को मंडी में तब्दील कर डालना चाहती है - ज़रूरत पड़े तो कच्चे माल के आयात की मंडी, ज़रूरत का चेहरा बदले तो तैयार माल के खपत की मंडी।"[1] बाज़ार हमारी संस्कृति पर बुरी तरह से हावी है। वह हमारी संस्कृति को विकृत करता जा रहा है। उपभोक्ता मनुष्य के लिए परिवार, संबंध, समाज, मूल्य आदि से उपर है उपभोग। बाज़ार हमारी सर्जकता को छीनकर उसे केवल उपभोक्ता बनाने में जुडी हुई है। यहाँ सभी चीजें बिकने योग्य या उपभोग वस्तु बन गये हैं। कला, साहित्य, भाषा, सौन्दर्य, संस्कृति नारी देह सब बिकने योग्य 'माल' बन गई है। इन मालों का मूल्य बाज़ार निर्धारित करता है। जीवन का प्रत्येक क्षेत्र अब बाज़ार द्वारा संचालित हो रहा है। बाज़ार विज्ञापन के माध्यम से उपभोक्ताओं की बुद्धि एवं सोच को बदल रहा है। बार-बार विज्ञापनों का दोहराव हमारे मन में उस वास्तु-विशेष को पाने की लालसा पौदा कर देता है।

आज हर दिन हम कोई-न-कोई दिन मना रहे हैं। जैसे 'मदर्स डे', 'फादर्स डे', 'फ्रेंडशिप डे', 'वालेंटाइन्स डे', 'किस डे' आदि। छोटे-छोटे खुशियों को घर-परिवार में मनाने की बजाय बाहर जाकर बड़े-बड़े होटलों व रेस्तराओं में मनाने लगे हैं। हम क्या खायेंगे, कैसे और किस तरह खायेंगे सब बाज़ार तय कर रहा है। दाल-चावल-रोटी-सब्जी जैसे पारंपरिक भोजनों की बजाय बर्गर, पित्सा, कोकोकोला आदि खाने- पीने लगे हैं। ये सब बाज़ार का

---

[1] रोहिणी अग्रवाल – समकालीन कथा साहित्य : सरहदे और सरोकार, पृ : 12

मायाजाल है। इन फास्ट फुडों से मोटापा, और डायबीटीज़ के साथ अन्य खतरनाक बीमारियाँ होती है। आज लोग परंपरागत कपड़ों की जगह एडीडास, रिबौक जैसी ग्लोबल ब्रांड को खरीद रहे हैं। टी. वी, रेडियो,इंटरनेट आदि के द्वारा बहुराष्ट्रीय कंपनियाँ अपने उत्पादन को बेचने का षड्यंत्र रच रहे हैं। साइकिल, स्कूटर, मोटर साइकिल से लेकर टीवी, बाशिंग मशीन, आदि आम व्यक्ति के जीवन का अनिवार्य अंग बन चुकी है। आज नारी का देह एवं सौन्दर्य बिकने योग्य माल बन गई है। वह हमारे मूल्यों तथा संस्कृतियों को छीन ले रहा है। सौन्दर्यप्रतियोगिता जो आज का फैशन बन गया है उसका लक्ष्य सौन्दर्य के किसी नए आयाम की खोज न होकर मार्केटिंग है। यहाँ स्त्री देह के बल पर व्यापारी एवं अन्तराष्ट्रीय कंपनियाँ सौन्दर्य के बाजारीकरण करके मुनाफा लुटा रही है।

उपभोक्तावादी संस्कृति

उपभोक्तावाद भूमंडलीकरण की चरम परिणति है। उपभोक्तावाद मानवीय मूल्यों की जगह इन्द्रिय सुखवादी उपभोग को महत्व देता है। आज बाज़ार प्रत्येक व्यक्ति की आवश्यकताओं को नियंत्रित करता है। बाज़ार में फैशन पल-प्रतिपल बदलता रहता है। प्रत्येक व्यक्ति इस बदलते फैशन के अनुसार अपने को 'अपटुडेट' बनाए रखना चाहता है। बाज़ार तंत्र के आगे उसे हार मानना पड़ता है क्योंकि साधारण ग्राहक के पास इतना पैसा नहीं होता कि वह फैशन के बदलने के साथ अपने को बदले। अंत में उसे अवसाद

एवं निराशा ही मिलता है। यह व्यक्ति का आत्मविश्वास नष्ट करके उसे निष्क्रिय एवं गुलाम बना देता है। शंभूनाथ जी ने लिखा है - "उपभोक्ता संस्कृति न केवल प्राचीन महान परंपराओं को मनोरंजनात्मक मिक्श्चर में बदल देती हैं, बल्कि वह सुपरमैन की नई मिथकीय छवियां भी गढ़ती हैं, ताकि मनुष्य अपनी ताकत पर अंतिम रूप से खोकर सुपरमैन के इंतज़ार में बैठा रहे। ताकि वह नई-नई उपभोक्ता वस्तुओं को ही अपनी ताकत का चिह्न समझे।"[1] इस प्रकार प्रत्येक व्यक्ति बाज़ार के चुंगुल में इसप्रकार फँस जाता है कि अपना अस्तित्व खोकर केवल उपभोक्ता रह जाता है।

उपभोक्ता में ढोंग या मिथ्या ही यथार्थ बना जाता है। यह मुखौटों व छल-कपट से युक्त दुनिया का सृजन करता है। जो वस्तुएँ बाज़ार, टी.वी. या विज्ञापन के जरिए दिखाता है उसी को ग्राहक यथार्थ मान बैठता है। इस प्रकार अयथार्थ ही यथार्थ बनकर उपस्थित होते हैं। सौन्दर्य प्रतियोगितायें, फैशन, शिशु मेला, लोक कलाओं का प्रदर्शन आदि इसी उपभोक्तावाद के उत्पाद हैं। उपभोक्तावादी समाज में वस्तुओं का कोई उपयोगिता मूल्य नहीं होता, सिर्फ उपभोग मूल्य होता है। बाज़ार की कृत्रिम जरूरतों को वह सच्चाई मान लेता है। पहले ग्राहक चीजों की गुणवत्ता एवं आवश्यकता के अनुसार चीजें खरीदते थे। अब 'यूज़ एंड थ्रों' संस्कृति के कारण ऐसी चीजों की माँग बढ़ी है जो चमक-धमक भरी हों और अल्पकालिक हो।

[1] शंभूनाथ - संस्कृति की उत्तरकथा, पृ : 162

उपभोक्ता संस्कृति बाज़ार की ताकत से नियंत्रित और संचालित होती है। उपभोग संस्कृति लेन-देन की बाजारू प्रक्रिया से जन्म लेती है। इसमें 'खाओं-पीओं-ऐश करों' की नारा लगाया जाता है। यहाँ सामूहिक प्रतिबद्धता नहीं होती। इसमें आदमी खुद माल या ब्रांड बन जाता है। इसप्रकार वह बाज़ार तंत्र का शिकार बन जाता है। बाज़ार के रंग-बिरंगी चीजों के प्रति आकृष्ट होने वाले उपभोक्ता खुद मजेदार बनता जा रहा है। -"इस उपभोक्ता संस्कृति का सृजन विज्ञापन के माध्यम से होता है और विज्ञापन-संस्कृति संचार-माध्यम का परिणाम है। औद्योगिक समाजों की तुलना में उत्तर-आधुनिक समाज में विज्ञापन-संस्कृति एक 'अति अनुरूपणीय' [Hyper Simulated] संस्कृति है, जिसका अपना वजूद है, और जो किसी भी समूह के नियत्रण से परे है।"[1] उपभोक्तावाद व्यक्ति को लाचार, एवं निष्क्रिय बना देता है। इसमें बाज़ार हमारे उपर नियंत्रण करने लगता है। उपभोक्तावाद साम्राज्यवाद का नया रूप है। इसके परिणामस्वरुप समाज में हिंसा एवं बर्बरता बढ़ गई है।

पॉपुलर कल्चर

हर देश या जाति की अपनी एक संस्कृति होती है। वर्तमान भारत सांस्कृतिक प्रदुषण का सामना कर रहा है। विचार-व्यवहार, रहन-सहन, सपने, मूल्य, संबंध, आदि को बदल दिया है। संस्कृति में व्यक्ति एवं उसकी सृजनात्मकता को महत्वपूर्ण स्थान है। आज वह उपभोक्ता वस्तुओं के गुलाम

[1] प्रभा खेतान - भूमंडलीकरण : ब्रांड संस्कृति और राष्ट्र, पृ : 32-33

बन गये हैं। आज संस्कृति उद्योग बन गया है। इस युग में वह ग्लोबल को लोकल और लोकल को ग्लोबल बनाती है। पहले पोपुलर अथवा लोकप्रिय वह था जो लोगों को प्रिय हो। और जिसमें किसी मूल्य, गुणवत्ता या महत्व हो। बाज़ारवाद ने लोकप्रिय का अर्थ ही बदल दिया है। पहले ज़माने में बुद्ध, कबीर, गाँधी, अंबेडकर, नेहरु, आदि लोकप्रिय थे तो आज पॉप संगीत, विश्व सुंदरियाँ, अभिनेत्रियां, हत्यारे, डकैत, माफिया, आदि लोकप्रिय हो गए हैं। शंभूनाथ जी लिखते हैं - "आज लोकप्रिय वह है, जिसे बाज़ार और मीडिया लोकप्रिय बनाना चाहता है। लोकप्रियता प्रसिद्ध एक लोकनिरपेक्ष मामला बन गई है। नई स्थितियों में लोक एक आत्मसजग जनसमूह से धीरे-धीरे उपभोक्तावादी झुंड में बदल रहा है। उसकी बौद्धिक स्वतंत्रता छिन गई है।"[1]

सुधीश पचौरी जी ने 'पॉपुलर कल्चर को अमरता का भ्रम' माना है। पॉपुलारिटी अथवा लोकप्रियता क्षणभंगुर है। वह एक माया है। किसी व्यक्ति या चीज का 'पॉपुलर' बनने के लिए प्रतिभा या गुण की आवश्यकता नहीं रह गई। कोई भी विवाद में पड़ने पर भी लोकप्रिय जो जाता है। यह किसी भी व्यक्ति को एक पल में हीरो या स्टार बना देता है। जब तक आप लोगों का मनोरंजन करके बाज़ार का जेब भर देंगे तब तक आप लोकप्रिय बने रहेगें। संस्कृति का उद्योग बनने की सिलसिला 19 वीं शदी से शुरू हुआ था। मीडिया, संचार माध्यमों एवं तकनीकी विकास ने इसे उद्योग बनाया था। भारत में बाज़ार केन्द्रित एक सार्वभौम संस्कृति पनपने लगी। यह संस्कृति

---

[1] शंभूनाथ - भारतीय अस्मिता और हिंदी, पृ : 176

भारत की मूल्यों की जगह पश्चिमी चीजों का अंधानुकरण करने लगे, ब्रांड के पीछे भागने लगे। इस सार्वभौम संस्कृति को 'झुंड संस्कृति' या 'मॉस कल्चर' भी कहते हैं। यह संस्कृतिहीनता की संस्कृति है। संचार माध्यमों से उत्पन्न 'झुंड संस्कृति' नवीनता को उकसाती है तो सांप्रदायिक जातिवादी शक्तियों से उत्पन्न झुंड संस्कृति प्राचीनता को उकसाती है।

पॉप संगीत, कला, नृत्य, रैप, टीवी धारावाहिक, फैशन शो, खेल, फ़िल्मी दुनिया आदि सब 'पॉपुलर कल्चर' से प्रभावित है। भारत में कई खेल हैं। किन्तु बाज़ार की मुनाफा क्रिकेट से अधिक मिली तो वह पॉपुलर हो गया। नृत्य, संगीत, त्यौहार-पर्व आदि भारतीय संस्कृति के अभिन्न अंग थे। आज इन परंपरागत कलाओं में बाज़ार घुस गया है। ये आज हिंसा एवं सेक्स को भडकाते हैं। नृत्य-संगीत बिकाऊ माल बन गई है। गुजरात में 'दुर्गापूजा' काफी प्रसिद्द है। आज वह हिन्दू सांप्रदायिक शक्तियों के कब्जे में है। आज मेले में परंपरागत वाद्ययंत्रों, संगीतों के स्थान पर पश्चिमी वाद्ययंत्रों एवं 'गरबा' में रीमिक्य संगीत का प्रचलन है। इन मेलों का परंपरागत मूल्य नष्ट हो गया है। होली और दीपावली भी इसी तरह मनाने लगे हैं। पहले प्राकृतिक रंगों से होली खेलते थे तो आज बाज़ार में मिली चीनी पिचकारियों से। उसमें एकरूपता आ गई| फिल्म और टीवी ने अतिरंजित हिंसात्मक दृश्यों को तथा कामुकता को बढ़ावा दे रही है। अश्लीलता एवं कामोद्दीपन के लिए स्त्री के नग्न शरीर का इस्तेमाल हो रहा है। सौन्दर्यप्रतियोगिताओं व फैशन शो का लक्ष्य सौंदर्य के किसी नए आयाम को खोज करना न होकर मार्केटिंग

है। सुन्दर नारी देह ग्लैमर का प्रतिक है और उसका प्रयोग किसी ब्रांड को बेचने के लिए करता है।

इसप्रकार कला-संगीत आदि का उपयोगी मूल्य नष्ट होकर उसके मूल्यांकन का आधार 'विनिमय मूल्य' हो गया है। आज साधारण लोग भी जन्मदिन, शादी की सालगिरा, शादी, नामकरण आदि धूमधाम से मनाने लगे हैं। क्योंकि बाज़ार ने उसे प्रदर्शनप्रिय बना दिया है। ये पार्टियाँ, विदेशी पोशाक, खाना-पीना, नृत्य-संगीत, आदि में भरा पूरा रहता है। बाज़ार में कई चीजें आ गई हैं। वे इन पार्टियों के आयोजनों के ज़रिए अपना माल बेचते हैं। इसप्रकार हमारी संस्कृति विकृत बनती जा रही है। इलकट्रौनिक मीडिया की प्रगति ने संस्कृति को उपभोग की चीज़ बना दिया है -"समकालीन समूह संस्कृति समाज के जितने व्यक्ति हैं, उतने खडों में बाँट देती है। बच्चे, स्त्री, दलित, नौजवान, किसान, मजदूर सभी टेकनालौजी के उस जादू में खो जाते हैं, जो बर्फ में आग लगा सकती है। जो टेकनॉलाजी मनुष्य को कमज़ोर और खोखला करने के लिए किया जा रहा है।"[1] इसप्रकार अपसंस्कृति इतनी तेज़ी से बढ़ रही है कि मानव उसके हाथ की कठपुतली बन गयी है।

निष्कर्ष :

मानव जाती के विकास में संस्कृति का महत्वपूर्ण स्थान है। हर व्यक्ति का अपना एक विशिष्ट चरित्र है, जो उसे दूसरी संस्कृति से भिन्न बना देता है। विभिन्न संस्कृतियों के संगम से नवीन संस्कृतियाँ जन्म लेती हैं। संस्कृति

[1] शंभूनाथ - संस्कृति की उत्तर कथा, पृ : 179

समाज की प्राणशक्ति होती है और वह कला, साहित्य, धर्म, दर्शन, समाज और राजनीति सभी को प्रभावित करती है। संस्कृति के माध्यम से ही समाज के नवयुवक अपने देश की परंपरा-धर्म, दर्शन, इतिहास, ज्ञान-विज्ञान एवं विरासत से परिचित हो पते हैं। भारतीय संस्कृति विश्व संस्कृतियों से सबसे श्रेष्ठ है। वह असंख्य लघु संस्कृतियों की समग्रता का नाम है। भरत में विविध प्रजातियों और जातियाँ – आर्य, द्रविड़, शक, हूण, अरब, तुर्क, पठान, मंगोल आईं परन्तु कालान्तर में वे हिन्दू समाज में इतनी घुलमिल गई की उनका अलग अस्तित्व ही लुप्त हो गया। भारत में विविधता और विभिन्नता होते हुए भी आधारभूत अखण्ड मौलिकता है। साम्राज्यवादी शक्तियों ने बाज़ारवाद एवं भूमंडलीकरण के सहारे इस संस्कृति को नष्ट करने की लगातार कोशिश कर रहे हैं। भारत में सांस्कृतिक अतिक्रमण नई घटना नहीं है। पहले सांस्कृतिक निर्माण में जनता का योगदान था अब सब कुछ बाज़ार कर रहा है।

दूसरा अध्याय

समकालीन हिंदी उपन्यास का परिदृश्य

समकालीन हिन्दी उपन्यास का परिदृश्य

उपन्यास मानव जीवन को उसकी समग्रता में समझने और अभिव्यक्त करने का सशक्त माध्यम है |गोपालराय ने उपन्यास को एक बहरूपिया विधा माना है |उपन्यास में प्रवाह की जो संभावना है, विस्तृत कैनवाज़ है,उसको उपलब्धियों में बदलने का प्रयास उपन्यासकारों ने किया है |समकालीन समय कठिन संघर्षों एवं चुनौतियों का समय है| आज समाज में एक ऐसी जादूई परिस्थिति विध्यमान है,जिसमें एक ओर प्रगति और सक्रियता की चकाचौंध है तो दूसरी और पिछडेपन और जड़ता| बहुलाताओं और विविधाताओं से भरे जिस विद्रूप समय से हम गुज़र रहे हैं ,उसको बारीकी से प्रस्तुत करने का प्रयास समकालीन साहित्य में किया है | समकालीन परिवेश के प्रति संवेदनात्मक स्तर पर जुड़े बिना समकालीन उपन्यास लिखना असंभव है| आगे समकालीनता,समकालीन परिवेश एवं समकालीन उपन्यास पर चर्चा किया जाएगा|

समकालीनता

समकालीनता से तात्पर्य है उस वर्तमान समय का बोध जिसमें हम जी रहे हैं| समकालीन शब्द 'सम' उपसर्ग और 'कालीन' विशेषण के योग से बना है| 'सम' का अर्थ है- 'एक ही' या 'एक साथ'| कालीन का अर्थ है 'काल या समय में'| इस प्रकार समकालीन का अर्थ है 'एक ही समय में होनेवाले या रहनेवाले'|मानक हिन्दी शब्द कोश के अनुसार उत्पत्ति ,स्थिति आदि के आधार पर इसका अर्थ है –'एक ही समय में रहनेवाले' जैसे महराणा प्रताप

और अकबर | साहित्य के सन्दर्भ में एक ही कालखंड में होनेवाली घटना या प्रवृत्ति या समान संवेदनाओं से युक्त व्यक्तियों व साहित्यकारों के अर्थ में प्रयुक्त किया जाता है| समकालीन और समसामयिक शब्द अंग्रेजी के ‘कांटेम्पोरेरी (contemporary) के पर्याय के रूप में प्रयुक्त हुआ है |अंग्रेज़ी में इसका अर्थ –एक ही समय में रहने या होने से है और वही अर्थ हिन्दी के ‘समकालीन’ से भी ध्वनित होता है| समकालीनता बहुआयामी है | प्रत्येक युग की अपनी समकालीनता रही है |

अपने समय बोध को व्यक्त करने वाली रचना ही समकालीन है | इसप्रकार वह रचनाकार समकालीन बन जाता है जो परिवर्तनशील सामाजिक यथार्थ को रचनात्मक अभिव्यक्ति देता है| स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद समाज में हुई राजनीतिक,सामाजिक विसंगतियों की ओर लोग निष्क्रिय थे |डॉ. विश्वम्भरनाथ उपाध्याय जैसे लेखक समकालीनता में निहित प्रतिरोधी चेतना,एवं संघर्ष को महत्वपूर्ण तत्व माना है |वे समकालीनता को शोषक वर्गों का ध्वंस और उनके खिलाफ लडे जा रहे संघर्षों से जोड़ते हैं| समकालीन रचनाकारों में यथास्थिति के चित्रण के साथ- साथ उसको आलोचनात्मक दृष्टि से जांच-पड़ताल करने,उनमें निहित विसंगतियों व अंतर्विरोधों के खिलाफ क्रांतिकारी एवं प्रतिरोधी रवैया अपनाने की क्षमता होती हैं| शम्भुगुप्त जी ने लिखा है- “समकालीनता न केवल एक विषय वस्तु या थीम है बल्कि इसमें रचनात्मक रूप देने वाली एक दृष्टि भी है |समकालीनता अपने समय में रहते हुए उसके साथ-साथ चलते हुए उससे आगे जाती है |काल या समय की अपनी एक सीमा या सामर्थ्य होती है|अपना एक तात्कालिक यथार्थ

होता है |एक लेखक जब इस सीमा या तत्काल्वाद को लांघकर आनेवाले समय की सच्ची और सही और संभावित तस्वीर उकेरने लगता है,दरअसल तभी वह समकालीन कहलाए जाने योग्य होता है|"[1] हर रचनाकार को समय के साथ आगे बढना है| जो रचनाकार अपने समय के साथ चलने की क्षमता नहीं रखते, वे अप्रासंगिक हो जायेंगे|

लेखक को समकालीन प्रशनों से जूझना है और उसे अपनी लेखनी में लाना है तभी वह समकालीन कहलायेगा| ओमप्रकाश वाल्मीकी जी ने लिखा है – "आत्मसजगता , समय की संवेदना और सरोकारों से रचनाकार यदि तटस्थ और निरपेक्ष रहता है तो निश्चय ही वह चाहे जितनी कलात्मक शैली प्रगल्भ रचना करें वह समकालीनता की परिधि से बाहर होकर अप्रासंगिक ही कही जाएगी|"[2] समकालीनता में कालबोध, समय बोध और याथार्थ बोध निहित हैं | विश्वंभरनाथ उपाधाय के अनुसार-" समकालीनता वस्तुत: स्थितियों, व्यक्तियों और शक्तियों के क्रूर विश्लेषण में ही है| सत्य, दंभ, षड्यंत्र, सनक और लोभ तथा भोग विलास के ऊपर जो लोग और तबके शांति ,जनतंत्र, परिष्कृति, प्रयोग, आधुनिकता तथा अन्य मुखौटे लगाते हैं उन्हें कठोर कचोटक स्वरों में,आम आदमी की बोली में नोंच फेंकना ही समकालीनता है |"[3] इसप्रकार समकालीनता का मूल स्वर प्रतिरोध है और अपने समय की असंगतियों का समझ है| इसलिए समकालीनता को जीवन दृष्टि मानते हैं|

---

[1] शम्भु गुप्त - कहानी:समकालीन चुनौतियाँ, पृ. 54-55

[2] ओमप्रकाश वाल्मीकी - मुख्यधारा और दलित साहित्य , पृ.163

[3] डॉ.विश्वम्भरनाथ उपाध्याय - समकालीन साहित्य और सिद्धांत , पृ.17

आधुनिकता :-

समकालीनता की चर्चा आधुनिकता के बिना अधूरी है |क्योंकि समकालीनता,आधुनिकता से प्राप्त एक संस्कार है| समकालीनता आधुनिकता की पीठ पर स्थित एक कालखण्ड है| आधुनिकता अंग्रेजी के 'माडर्निटी' का हिन्दी अनुवाद है| भारत में आधुनिकता का आरम्भ उपनिवेशवादी युग से मानते हैं| पश्चिमीकरण,औध्योगीकरण तथा तकनीकी विकास ने मानव मन को अनेक रूपों में प्रभावित किया है |

आधुनिकता देश-कल सापेक्ष होते हुए भी उसके बंधन में नहीं बांधी जा सकती | कोई भी युग ऐसा नहीं रहा,जो अपने समय में आधुनिक न रहा हो |आधुनिकता एक जीवन प्रणाली है जो मनुष्य को समकालीन समय से जोड़ता है |रामस्वरूप चतुर्वेदी ने लिखा है –"नवीन परिस्थितियों के सन्दर्भ में अपने आपका संस्कार करते चलना ही आधुनिकता है|"[1] आधुनिकता रूढ़ियों व अंधविश्वासों को त्यागकर जीवंत पक्ष को आत्मसात करती है |लेकिन आधुनिकता प्रचीन या परंपरा का विरोधी नहीं है| "आधुनिकता का लक्ष्य जीवन के प्रति आध्यात्मिक और परंपरावादी दृष्टिकोण का नकार और यथार्थ की गतिशील शक्ति को स्वीकार करने का आग्रह है| इसप्रकार आधुनिकता को ग्रहण कर हम अपने सन्दर्भ के साथ-साथ अपनी गतिविधियों को भी अंकित करते हैं|"[2] इसप्रकार आधुनिकता पुरातन जड़ मूल्यों को

[1]रामस्वरूप चादुर्वेदी - हिन्दी नवलेखन , पृ.13
[2] डॉ. पुष्पपाल सिंह - समकालीन हिन्दी कहानी: युग बोध का सन्दर्भ , पृ : 8

नकारकर उससे युगानुरूप जीवन मूल्यों की मांग करती है| आधुनिकता एक सतत प्रक्रिया है जो हर युग में किसी न किसी रूप में विद्यमान रहती है |

नवीन परिस्थितियों के सन्दर्भ में अपने आपका संस्कार करना ही आधुनिकता है| परिस्थितियों व परिवेश के परिवर्तन से व्यक्ति की मानसिकता भी बदल जाती है| इसलिए आधुनिकता को किसी काल-विशेष से नहीं बाँधा ज सकता| डॉ.नगेन्द्र ने लिखा है- “मध्ययुग की रूमी दार्शनिकों की अपेक्षा अरस्तू अधिक आधुनिक है ;शंकराचार्य की अपेक्षा बुद्ध का जीवन-दर्शन अधिक आधुनिक है;हिन्दी में सूरदास की अपेक्षा कबीर अधिक आधुनिक है|आधुनिकता का यह अर्थ वर्तमान से असंबद्ध नहीं है,परन्तु वर्तमान से एकदम बंधा हुआ भी यह नहीं है|”[1] प्रत्येक युग में आधुनिकता का रूप बदलता है | इसलिए इसे एक जीवंत गत्यात्मक प्रक्रिया मानते हैं || वैज्ञानिक दृष्टिकोण के कारण आधुनिक व्यक्ति की मानसिकता सदैव प्रश्नाकुल रहती है | आधुनिकता में समाज की अपेक्षा व्यक्ति की स्वतंत्रता को अधिक महत्व दिया गया है|

आधुनिक चिंतन के स्वरुप निर्माण में परिवेश के साथ-साथ वैज्ञानिक प्रगति,औद्योगीकरण तथा विकासवाद, समाजवाद, अस्तित्ववाद, मनोविश्लेषणवाद जैसी चिंतन धाराओं का भी योगदान है | वैज्ञानिक ज्ञान ने मनुष्य को धार्मिक अंधविश्वासों ,स्वर्ग-नरक एवं पाप-पुण्य की कल्पना से मुक्त किया| वे आत्मविश्वासी हो गये, नियती को नकारकर कर्म पर विश्वास करने लगे | औधोगीकरण आधुनिकता का प्रमुख आधार है |इसने गाँव को

---

[1] डॉ. नागेन्द्र - आस्था के चरण , पृ : 250

शहर में बदल दिया,ग्रामीण क्षेत्रों के लघु उद्योग धंधों का अंत हुआ| शहर के भागदौड भरी ज़िंदगी में अपना अस्तित्व बचाने के लिए उसे संघर्ष करना पड़ा| संयुक्त परिवार छोटे परिवार में तब्दील हो गए | मनुष्य का जीवन यांत्रिक हो गया| विकासवाद ने मनुष्य तथा पूरी सृष्टि की उत्पत्ति पर गहराई से विचार किया| प्राचीन मनुष्य सृष्टि को ईश्वर सृजित मानते थे| डार्विन के विकासवाद ने मानव को बन्दर से विकसित सिद्ध किया |इससे युगों से चली आ रही मान्यतायें,आस्थाएं एवं विश्वास सब हिल गये| मार्क्स ने अलौकिक सत्ता से अधिक व्यक्ति की श्रम को महत्व दिया| उन्होंने वर्गहीन समाज की कल्पना की है जिसमें न कोई शोषक है और न शोषित |समाजवाद भी एक प्रगतिशील आन्दोलन था| फ्रोयड ने मनोविश्लेषणवाद के द्वारा युग-युगों से चली आ रही नैतिक मान्यताओं को छिन्न-भिन्न कर दिया है| उन्होंने मन को चेतन,अचेतन व अपचेतन तीन वर्णों में बाँट दिया| यूरोप की अस्तित्ववादी चिंतन पद्धति ने मनुष्य के अस्तित्व को पहले और व्यक्तित्व को बाद में स्थान देता है| इन विचारधाराओं के साथ स्त्री-पुरुष समानता,आर्थिक समानता,दास प्रथा का अंत,उदार धार्मिक दृष्टिकोण आदि गतिविधियों ने आधुनिकता को स्तुत्य आधार प्रदान किया |

भारत में अंग्रेजी शिक्षा ,पश्चिमीकरण आदि से आधुनिकीकरण पहले हुआ |लेकिन आधुनिक चेतना का आगमन 19 वीं शती में राममोहन राय,केशवचंद्र ,दयानंद सरस्वती,स्वामी विवेकानंद ,महात्मा गांधी तथा रवींद्रनाथ ठाकुर आदि के नेतृत्व में हुआ| भारत की तुलना में पश्चिम में आधुनिकता पहले आयी और उसने समस्त पुरातन मूल्यों के प्रति विद्रोह को

अपनाया | उन्होंने हर क्षेत्र में अतिवादी दृष्टिकोण अपनाया है|भारत इससे भिन्न है| भारतीय आधुनिकता की संकल्पना पश्चिमी सभ्यता के और संस्कृति के सर्वश्रेष्ठ तत्वों तथा अपनी संस्कृति एवं सभ्यता के सर्वस्रेष्ठ तत्वों को एकाकार करके ही साकार हो सकेगी |

समकालीनता व आधुनिकता : अन्तःसम्बन्ध

समकालीनता और आधुनिकता में कुछ अंतर है| दोनों की अलग पहचान है | आधुनिकता अतीत का विमर्श करते हुए अपने समय को अभिव्यक्त करता है जबकि समकालीनता वर्तमान समय की सूक्ष्म आलोचना करके उसकी जटिलताओं को प्रस्तुत करता है | आधुनिकता मानव केन्द्रित थी |आधुनिकता का सबसे बड़ा आयाम यह है कि मनुष्य अपनी स्वतंत्रता को लेकर यहाँ अधिक सचेत हुआ है| आधुनिकता में ऊब,अकेलापन ,असंतोष ,निराशा ,विसंगति और विद्रूपता आदि है| आधुनिकता में एक अनाथत्व है |मनुष्य के विकास हेतु प्रकृति पर स्वामित्व स्थापित करना और नीत्शे की ईश्वर की मृत्यु की उदघोषणा दोनों ने मिलकर इस अनाथात्वा को जन्म दिया | आधुनिकता में सत्ता,विचार केंद्र में थी,दलित,स्त्री ,प्रकृति एवं अन्य पिछडे लोग हाशिये पर हो गयी |समकालीनता ने विविधता को स्वीकार किया |क्योंकि आधुनिकता के अनाथत्व से समकालीनता ने जन्म लिया है| इसमें मानव कल्याण की भावना निहित है | समकालीनता में स्त्री, दलित, प्रकृति, अन्य पिछडे वर्ग ,स्थानीय भाषा ,संस्कृति आदि सब केंद्र में आ गई | इस कारण समकालीनता को सांस्कृतिक विमर्श भी कहा जाता है|

समकालीनता आधुनिकता का पर्याय नहीं है | समकालीनता आधुनिकता को पुष्ट और विस्तृत करता है | पुष्पपाल सिंह ने लिखा है –" जिस युग के मूल्य और स्थितियाँ समसामयिक नहीं होते ,उनमें जड़ता आ जाती है और आधुनिकता की प्रक्रिया अवरुद्ध हो जाती है| इसप्रकार समसामयिकता आधुनिकता की प्रक्रिया को अग्रसारित तो करती ही है,वह उसे समझने में भी सहायक सिद्ध होती है|"[1] आधुनिकता के केंद्र में भाव-बोध और उसकी यथार्थ अभिव्यक्ति का आग्रह है | नवीन परिस्थितियों को आत्मसात करना ही आधुनिकता है| लक्ष्मीकांत वर्मा ने लिखा है - "आधुनिकता युग- विशेष का गुण है, समसामयिकता स्थिति विशेष का आयाम है| आधुनिकता एक ऐतिहासिक विशेषण है जो देश-काल के बोध के साथ-साथ सक्रियता की पुष्टि करती है| आधुनिकता काल बोध ,युग बोध की उद्योतक है | विचार में आधुनिक होते हुए भी हम समसामयिक नहीं हो सकते ,क्योंकि समसामयिक का परिवेश इतना विस्तृत नहीं होता | |"[2] आधुनिकता को रचनाकार अर्जित नहीं करता | लेकिन समकालीनता को रचनाकार अर्जित करता है|

[1] पुष्पपाल सिंह - समकालीन हिन्दी कहानी: युगबोध का सन्दर्भ , पृ : 12

[2] लक्ष्मीकांत वर्मा - नई कविता के प्रतिमान , पृ : 264-265

समकालीन हिन्दी उपन्यास का परिदृश्य

समकालीनता के निर्माण में समकालीन परिवेश की भूमिका बड़ी है| स्वाधीनता प्राप्ति के बाद भी भारत में साम्राज्यवादी शक्तियों का वर्चस्व बढ़ रहा है| आज हम पश्चिम का अन्धानुकरण करके विदेशी नज़रों से भारतीय परंपरा,संस्कृति ,जीवन दृष्टि एवं मूल्यों को देखने का प्रयत्न कर रहे हैं| आज सत्ता की प्राप्ति के लिए दुनिया भर में भाषा,धर्म,जाति और संस्कृति के नाम पर विस्फोटक स्थितियाँ उत्पन्न हो रही हैं | इसके साथ विज्ञान ,तकनीकी ज्ञान ,सूचना-प्रौद्योगिकी ,औद्योगीकरण ,भूमंडलीकरण आदि का प्रभाव भी समाज पर पड़ रहा है| वर्तमान समय में मनुष्य सुविधाभोगी होता जा रहा है | समकालीन भौतिक परिवेश का प्रभाव समकालीन साहित्य पर भी पड़ा है|इसमें सामाजिक,आर्थिक ,राजनीतिक एवं सांस्कृतिक परिवेश आते हैं | सन् 1947 को भारत आज़ाद हुआ| उसके बाद संविधान बना और गणतंत्र की घोषणा हुई | लेकिन भारत में जनतांत्रिक सरकार के शासन में लोग खुश नहीं थे | इसके साथ अकाल, आभाव,देश-विभाजन से उत्पन्न संघर्ष,विस्थापन ,अन्तराष्ट्रीय बाज़ार में भारतीय मुद्रा का अवमूल्ययन ,गैर-कांग्रेसी सरकार का अधिकार में आना आदि भारतीय नागरिकों को प्रभावित किया | इसके बाद सन्1967 में नक्सलवादी आन्दोलन , सन् 1975 में आपातकाल की घोषणा , सन् 1977 में जनता पार्टी की सरकार बनना , सन् 1979 में जनता पार्टी का विघटन और इंदिरा गांधी का पुनः शासन में प्रवेश , सन् 1982 की जनवादी लेखक संघ की स्थापना , सन् 1984 में भोपाल गैस त्रासदी आदि ने भारतीय जनमानस को झकझोर डाला| सन् 1985 में

श्रीमती इंदिरा गांधी की हत्या ने भारतीय जनता में सरकारी सुरक्षा के प्रति अविश्वास खड़ा किया | इसके परिणामस्वरूप उत्पन्न सिख विरुद्ध आन्दोलन ने राजनीतिज्ञों के प्रति विरोधी भावना पैदा की |राजीव गाँधी के सरकार से भी जनता असंतुष्ट थे| उस समय राम जन्म भूमि की समस्या भी उभर कर आयी| बाद में सन् 1991 में नरसिंह राव के शासन काल में उदारीकरण की प्रक्रिया की शुरुआत हुई |

सामजिक जीवन में इन साम्राज्यवादी शक्तियों का दुष्प्रभाव पड़ा| शहरीकरण ने गाँव के लोगों को शहर की ओर आकर्षित किया| पारिवारिक विघटन इसका दुष्परिणाम है | संयुक्त परिवार टूट गए और एकल परिवार जन्म लिया | पति-पत्नी के कामकाजी होने से बच्चों के साथ उनके संबंध भी बिखर गये| बच्चे अकेलेपन के शिकार होने लगे | भौतिक सुख-सुविधाओं की चाह ने जीवन को कृत्रिम बनाकर रख दिया है| भूमंडलीकरण से उपजी उपभोक्तावादी मानसिकता ने 'यूज़ एंड थ्रो ' संस्कृति को जन्म दिया है | इससे रिश्तों में तनाव आ गया है| वैश्वीकरण एवं उदारीकरण ने देश की अर्थव्यवस्था को प्रभावित किया है| यहाँ गरीबी बढ गई|भारत पर अन्ताराष्ट्रीय मुद्राकोष,विश्वबैंक और विश्वव्यापार संगठन का आधिपत्य हो गया| भूमंडलीकरण ने विश्व ग्राम की अवधारण को पुष्ट किया |आज बाज़ार सर्वोपरि ताकत के रूप में उभरा है| आज सब कुछ बिकाऊ चीज़ बन गयी है जिसमें स्त्री,प्रकृति,गाँव,भाषा ,संस्कृति आदि आते हैं| इस बाज़ार केन्द्रित अर्थव्यवस्था का लक्ष्य मुनाफा कमाना है और इसके केंद्र में पूंजी है|

समकालीन साहित्य भूमंडलीकरण को संदेह की दृष्टि से देखते हैं| वह भूमंडलीकरण से उत्पन्न समस्याओं के प्रति प्रतिरोध ज़ाहिर कर रहा है|

समकालीन हिन्दी उपन्यास की प्रमुख प्रवृत्तियां

समकालीन हिन्दी उपन्यास में समय को बारीकी से समझने की सूक्ष्म दृष्टि मौजूद है ,साथ ही समकालीन जीवन मूल्यों को स्वीकार करने की क्षमता भी| पूर्ववर्ती उपन्यास प्राचीन आदर्शों पर विश्वास रखता था| उस पर सामाजिक मर्यादा का बंधन था |लेकिन समकालीन उपन्यास व्यक्तिबोध, युगबोध ,भाव बोध तथा नयी संवेदना का निदर्शन है| इसमें संघर्ष एवं विद्रोही चेतना का स्वर मुखर है और समाज के उत्थान की ललक है| वह समाज में क्रांति का स्वर जगाने का प्रयास कर रहा है| समकलीन हिन्दी उपन्यास धार्मिक अंधविश्वासों, भेदभावों, सामाजिक विकृतियों तथा आर्थिक-राजनीतिक-सांस्कृतिक विसंगतियों पर कडा प्रहार करता है| वे ऐसे पात्रों का सृजन करते हैं जो शोषकों के उत्पीड़नों,भूमंडलीकरण व बाजारवाद के थपेड़ों और सामजिक व्यवस्था के तमाम उत्पीड़नों, दुःख –दर्दों को झेलते हुए संघर्ष भूमि पर उतरते हैं और अपने को तथा आनेवाली पीढी को प्रगति की ओर अग्रसर कर रहे हैं| उसका लक्ष्य सामाजिक विसंगतियों को नष्ट करके समाज में समानता स्थापित करना है|

भूमंडलीकरण, बाजारवाद से उत्पन्न उपभोक्तावादी मानसिकता एवं उससे उत्पन्न जटिल समस्याओं, घात-प्रतिघातों को देखने –परखने के साथ-साथ समकालीन उपन्यास भ्रष्ट व्यवस्था के विरुद्ध विद्रोह करता है |

वर्तमान युग में दलितों-उत्पीड़ितों-वंचितों का शोषण निरंतर हो रहा है| उनके सामने भूख और अर्थ की समस्या तो है ही,पर उससे भी ज्यादा उनकी अस्मिता मिटाने की समस्या है| अनामिका जी ने भूख और अपमान को दुनिया के दो मूल दुःख माना है| उन्होंने लिखा है-" वर्ग तो बड़ा यथार्थ है ही पर जाति,लिंग नस्ल और धर्म भी शोषण के भयावह हथियार रहे हैं| और अपमान की जो राजनीति यह लगातार खेलते रहे हैं, उससे उपजी दोयम दर्जे की नागरिकता का दर्द स्त्रियाँ, अल्पसंख्यक, आदिवासी, दलित और अन्य पिछडी जातियां ही नहीं,पिछड़े प्रदेशों के विस्थापित, शरणार्थी , सिर्फ मातृभाषा बोल पाने वाले लोग और प्रायः सब वृद्ध, अपंग, बेरोज़गार , मजदूर और किसान झेल रहे हैं|पिछले कुछ दशकों से समकालीन विमर्श उनके ही अनुभव और अनुभूतियाँ लोक मनीषा में दर्ज कर रहा है|"[1] वैश्वीकरण और उनके सशक्त औजार बाज़ार, संचार आदि के कारण हमारी क्षेत्रीय - स्थानीय एवं जातीय संस्कृतियों को ग्लोबल स्तर पर जो पहचान मिला है उन सबका लक्ष्य मुनाफा कमाना मात्र है|

वैश्वीकरण, बाजारवाद, संचार-माध्यमों, तकनीकी-प्रौद्योगिकी के बढ़ते विकास ने जिस अपसंस्कृति को जन्म दिया है, उससे सामाजिक जीवन जटिल होता जा रहा है| इसका सबसे बड़ा खतरा लघु संस्कृतियों का ध्वंसित होना है| समकालीन कालखंड में भूमंडलीकरण से उत्पन्न विपरीत परिस्थितियों ने समकालीन उपन्यास के फलक को काफी विस्तृत किया है| इसमें नवउपनिवेशवादी वृत्तियों का विरोध , उपभोग संस्कृति आदि का

[1] अनामिका - स्त्री विमर्श का लोकपक्ष , पृ : 24

चित्रण भी है| समकालीन उपन्यास के केंद्र में स्त्री, दलित, आदिवासी, प्रकृति और अन्य अल्पसंख्यक आ गए हैं| इनके जीवन के विविध पक्षों, स्थितियों एवं संस्कृतियों के साथ स्त्री,दलित, आदिवासी एवं अन्य अल्पसंख्यकों की पहचान का संकट , अस्मिता का संघर्ष, विद्रोह एवं प्रतिरोध भी रचनात्मक सन्दर्भ बनकर उपन्यासों में आया है| इसके साथ पारिस्थितिक विमर्श, विस्थापन की समस्या, कश्मीर समस्या, लैंगिक तटस्थता तथा समलिंगी सम्बन्ध , शहरीकरण, भ्रष्ट राजनीति आदि समकालीनता की सभी विविधताओं को विभिन्न पात्रों व जीवनानुभवों के माध्यम से उद्घाटित करने का महत्वपूर्ण कार्य कर रहा है| इसप्रकार समकालीन उपन्यास का कलेवर संवेदना और अभिव्यक्ति के स्तर पर विविधताओं का समुच्चय है| समस्या निरूपण के साथ प्रतिरोध एवं विद्रोह उसको और भी सार्थक बनाते हैं| आगे समकालीन उपन्यास की मुख्य प्रवृत्तियों जैसे नव- औपनिवेशिक स्थितियाँ, सांप्रदायिकता ,आंचलिकता, विस्थापन ,पारिस्थितिक सजगता आदि पर विचार किया जाएगा |

नव-औपनिवेशिक प्रवृत्तियां

भारत में स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद भी साम्राज्यवादी शक्तियों का वर्चस्व बढ़ रहा है| हम अपने आपको विदेशी नज़रों से देखने लगे हैं| पहले साम्राज्यवादी शक्तियां व्यापार के नाम पर भारत जैसे देशों में आकर उनको अपने अधीन कर लिया| उनका लक्ष्य देश की[1] प्राकृतिक व आर्थिक संसाधनों

पर वर्चस्व रखना था| उपनिवेश काल में भारत में अंग्रेजी शिक्षा, अंग्रेजी कपडे और अन्य पाश्चात्य तौर-तरीकों को बहुत अधिक स्वागत किया गया |

बाज़ार में विदेशी चीज़ों की मांग बढ़ने के साथ-साथ स्वदेशी चीज़ों का तिरस्कार होता गया | ब्रिटीश उपनिवेशवाद के ख़त्म होने के बाद साम्राज्यवादी शक्तियों ने अपना वर्चस्व बनाये रखने के लिए कई षड्यंत्र रचे| उन्होंने पुराने उपनिवेशवाद को बनाये रखने के लिए नव-उपनिवेशवाद का सहारा लिया | उपनिवेश हो या नव-उपनिवेश, उसका मुख्या आधार बाज़ार है | वर्तमान समय में भूमंडलीकरण साम्राज्यवाद का नया रूप है | भूमंडलीकरण ने तीसरी दुनिया के अविकसित, अल्पविकसित , और विकासशील देशों में ऐसे बाज़ार को विकसित किया है जिस पर अमेरिकी बहुराष्ट्रीय कंपनियों का वर्चस्व है| अमेरिका जैसी साम्राज्यवादी शक्तियां भारत जैसे विकासशील देश के प्राकृतिक संसाधनों ,भाषा, जातीय-संस्कृति और अन्य संपत्तियों पर एकाधिकार स्थापित करने का षड्यंत्र रच रहा है| इसमें विश्व बैंक, अन्तराष्ट्रीय मुद्रा कोष, विश्व बाज़ार संगठन आदि का भी हाथ है|

दूसरा विश्व महायुद्ध और उससे उत्पन्न आर्थिक तंगी आदि के कारण पूंजीवादी देशों में आर्थिक संकट उत्पन्न हुआ | इस पर चर्चा करने के लिए सन 1944 में ब्रैटनवुड में एक सम्मलेन आयोजित किया | इसका मुख्य सूत्रधार जे.एम केन्स था| इस सम्मेलन में यही तय किया कि आर्थिक तंगी का बोझ विकसित और विकासशील दोनों देशों को उठाना है| पर ऐसा नहीं हुआ| अमेरिका, ब्रिटन, जर्मनी, जापान, कानडा,फ्रांस , और इटली जैसे देशों ने

धीरे-धीरे सारा नियंत्रण अपने ऊपर ले लिया और विकासशील देशों को लूटने लगा | इस प्रकार यह देश आर्थिक दृष्टि से संपन्न होते गए तो विकासशील देश संकट में पड़ गए | उन्हें अमेरिका जैसे पूंजीवादी देशों से क़र्ज़ लेना पड़ा | भारत भी इसमें शामिल था| नरसिंह राव सरकार ने अन्तराष्ट्रीय मुद्रा कोष और विश्व बैंक से क़र्ज़ लेने के लिए भारत का द्वार खोल दिया |आज हम पूर्ण रूप से इस विदेशी नीति के अधीनस्त हो गए हैं | अंग्रेजों के चले जाने के बाद भी अमेरिका भारत को उपनिवेश बनाकर शासन कर रहे हैं | यूरोपीय उपनिवेश के प्रत्यक्ष एवं आक्रामक साम्रजय्वाद के बदले परोक्ष और सांस्कृतिक अधीनस्थ के नए - नए रूप नव - उपनिवेशवाद में देख सकते हैं |

नव-उपनिवेशवादी शक्तियां संचार, तकनीकी व प्रौद्योगिकी की सहायता से अपने पुराने रूप का परिष्करण करके बाज़ार को केंद्र में रखकर अतिक्रमण करने लगी हैं | अमित कुमार सिंह ने लिखा है- " पुराने साम्राज्यवाद और नव-साम्राज्यवाद के रूप-स्वरुप में अवश्य परिवर्तन दिखाई पड़ता है,लेकिन इसका चरित्र यथावत है| पुराना साम्रज्य्वाद राष्ट्र

या राष्ट्रों के समूह को अपना निशाना बनाया करता था | वहीं नव-साम्राज्यवाद राष्ट्रेतर संगठनों ,मसलन बहुराष्ट्रीय कंपनियों के कार्य करता है .... पुराना साम्राज्यवाद राष्ट्रों के राजनीतिक आधिपत्य पर आधारित था, इस के फलस्वरूप उपनिवेशवाद की शुरुवात हुई ; इसके विपरीत नव-साम्राज्यवाद राष्ट्रों के साथ कदम-ताल करता दिखाई पड़ता है| इसकी रणनीति राज्यों पर आधिपत्य की नहीं होती है,वरन यह राष्ट्रों के

नेतृत्व वर्ग की चाकरी द्वारा फलता - फूलता है|"[1] भूमंडलीकरण इस नव-समरज्य्वाद का परिणाम है| भूमंडलीकरण ने मीडिया, सूचना प्रौद्योगिकी आदि की सहायता से विश्व को अपने लिए अनुकूल मंडी बना लेने का कुत्सित कार्य शुरू किया है | सम्पूर्ण विश्व एक गाँव की तरह प्रतीत होने लगा है | इससे "ग्लोबल गाँव" की अवधारणा जन्म लेती है |

भूमंडलीकरण के केंद्र में पूंजी है| उसका लक्ष्य मुनाफा कमाना है| उसने समाज को बाज़ार में बदल दिया है जो आज जीवन की संचालन शक्ति बन गयी है | बाज़ार ज़रूरतों को पैदा करता है| यहाँ हर चीज़ खरीदी और बेची जा सकती है| हमारे बाज़ार का आदर्श हम नहीं बहुराष्ट्रीय कम्पनियाँ तय कर रही है| इसप्रकार प्रत्येक राष्ट्र बाजार में और वहां के निवासी उपभोक्ता में सीमित हो जाता है| आज के बाजारवादी समाज में कला,सौंदर्य,संस्कृति सब कुछ पण्य बन गयी है| भूमंडलीकरण ने मानवीय मूल्यों पर भी प्रभाव डाला है| इसने ऐसी अपसंस्कृति को जन्म दिया है जहाँ करुणा, दया, मैत्री आदि मानवीय गुणों का कोई स्थान नहीं |पति-पत्नी सम्बन्ध, वृद्ध, बच्चे, स्त्री और अन्य अल्पसंख्यकों की स्थितियों में भारी परिवर्तन भी आया| भूमंडलीकरण की प्रक्रिया में मानव-अधिकारों का हनन भी तेज़ी से हो रहा है|

समकालीन साहित्य ने अर्थ और संचार-तकनीकी के परिधान ओढ़कर आए नव-उपनिवेशवाद को विचार-विमर्श का विषय बनाते हैं| समकालीन रचनाकार इससे उत्पन्न सामाजिक असंगतियों पर खुलकर विरोध

---

[1] अमित कुमार सिंह - भूमंडलीकरण और भारत , पृ : 23- 24

प्रकट करते हैं| विनोदकुमार शुक्ल के “नौकर की कमीज़” में नौकरशाही मानसिकता तथा आपसी ईर्ष्या आदि को चित्रित किया है| इसमें एक दफ्तर के बड़े अफसर द्वारा नौकर की कमीज़ बनवाकर, उसके सही नाप के नौकर को ढूँढने का चित्रण है | अंत में वह अपने ही दफ्तर के क्लर्क सन्तु बाबु को ज़बरदस्ती कमीज़ पहनाता है| इसमें अधिकार लिप्सा, नौकरशाही व्यवहार आदि का चित्रण करते हुए नव-उपनिवेशवादी माहौल के अधिकार का परिचय कराता है| अल्का सरावगी ने “कलि कथा वाया बायपास” में स्वतन्त्रता पूर्व एवं बाद के भारत का चित्रण करते हुए भारतीयों के मन में आये परिवर्तनों को चित्रित किया है| इसमें किशोर बाबु स्वतंत्रता के पूर्व अंग्रेजों की सेवा करने वाले पूर्वजों व उनकी संपत्तियों से घृणा करता था| लेकिन स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद आधुनिक साज-सज्जा एवं तौर-तरीकों के प्रति आकृष्ट होता है| फिर बाईपास सर्जरी के बाद किशोर बाबु आत्मनिरीक्षण करता है और नव-उपनिवेशवादी शक्तियों से नफरत करने लगता है | लेखिका ने किशोर बाबु के माध्यम से नव-उपनिवेशवादी ताकतों को पहचानकर इसके विरुद्ध खड़ा होने का आह्वान करती है|

बाजारवाद के बढ़ते प्रभाव को मनोहर श्याम जोशी के “हमजाद” उपन्यास में देख सकते हैं| इसमें बाजारवादी संस्कृति के कारण धर्म, मूल्य, परंपरा, संस्कृति आदि को बाजारू चीज़ या बिकाऊ चीज़ के रूप में देखने की संकीर्ण मानसिकता का चित्रण हुआ है| कृष्ण बलदेव वैद के “कला कोलाज” में उत्तर-आधुनिक-औपनिवेशिक परिवेश में व्यक्ति के संघर्ष, तनाव एवं उलझन को चित्रित किया गया है| प्रियंवद ने “परछाई नाच” में उत्तर-औपनिवेशिक

परिवेश से उत्पन्न भय का रेखांकन किया है| औपनिवेशिक ताकतें सामान्य जनता में भय का बीज बोकर उन्हें अपने लायक बना देते हैं| इसमें 'अनहद' नमक शिक्षित युवक इस भय का शिकार होता है | कमलेश्वर ने "कितने पाकिस्तान" में नव उपनिवेश्वदी युग में व्यक्ति मन में उत्पन्न असुरक्षा बोध को प्रस्तुत किया है| इसमें सांप्रदायिक शक्तियां व्यक्ति को भय के घेरे में डाल देते हैं|

नव उपनिवेशवादी संस्कृति ने व्यक्ति को वस्तु में बदल दिया है| उसके व्यापारी मानसिकता के कारण इंसानियत, प्रेम, करुणा, मैत्री, संवेदना आदि मूल्य नष्ट हो गए हैं| आज व्यक्ति –व्यक्ति के संबंधों में दरारें पड़ गयी हैं| नयी पीढी का अपने माँ-बाप, मित्र आदि के प्रति सम्मान भाव नहीं है| वे उपयोगिता या मुनाफा कमाने की दृष्टि से रिश्ते बनाते हैं| इस मानसिकता के कारण पति-पत्नी सम्बन्ध बिखरने लगे,बूढों का वृद्धाश्रम में फेंक दिए जाने लगे | चितत्रा मुद्गल के "गिलिगडु" में उच्च पदों से अवकाशप्राप्त जसवंत सिंह और कर्नल विष्णु नारायण को अपने बच्चों से उपेक्षा सहना पड़ता है| वृद्ध जीवन पर केन्द्रित "समय-सरगम" में भी वृद्धों के अकेलेपन, नयी पीढी द्वारा उनकी उपेक्षा आदि को चित्रित किया है| चित्रा मुद्गल के "आवां" में पति-पत्नी संबंधों में आये आद्र्भाव की कमी को चित्रित किया है| वे संपत्ति के पीछे भागकर आपसी संबंधों से मुंह मोड़ लेते हैं| मृदुला गर्ग के "कठगुलाब" में भी पति-पत्नी संबंधों में आये दरार को चित्रित किया है | इसमें विपिन की दृष्टि में उसकी पत्नी नीरजा केवल भोग वस्तु है| नीरजा अंत में संवेदनहीन बनकर बच्चे को जन्म देने वाली यंत्र रह जाती है|

इस प्रकार समकालीन उपन्यासकारों ने नव उपनिवेशवादी मानसिकता से उत्पन्न अमानवीय व्यवहारों, मूल्य विघटनों तथा अन्य अनगिनत समस्याओं का पर्दाफाश करते हुए इस विपत्ति से बचने की एलान करते हैं| वे इन अमानवीय वृत्तियों से सतर्क रहने तथा भारतीय मूल्यों व परम्पराओं को अक्षुण्ण रखने की अनिवार्यता को दर्शाते हैं|

उपभोक्तावादी संस्कृति का विरोध

नव उपनिवेशवाद के परिणाम स्वरुप उत्पन्न अपभोक्तावाद आज तेज़ी से बढ़ रहा है| इसका अर्थ है-अधिक से अधिक वस्तुओं का उपभोग करने की अधिक से अधिक लालसा| उपभोक्तावाद पूंजीवादी व्यवस्था का आधार है| इस व्यवस्था में सिर्फ बाज़ार का महत्व है| उपभोक्तावादी समाज में वस्तुओं का मूल्य उपभोग के अधार पर तय किया जाता है न कि उपयोगिता मूल्य पर | बाज़ार कृत्रिम ज़रूरतों को पैदा करके हमें वस्तुओं के प्रति आकृष्ट करता है| आज उपभोग के बिना किसी आदमी का जीवन संभव नहीं है| इस समाज के लिए छल –कपट -ढोंग एवं कृत्रिमता जानने वाले व्यक्ति की ज़रुरत है| इसलिए समाज से ईमानदारी, सत्य आदि मूल्य नष्ट हो गए हैं| विज्ञापन एवं मीडिया के द्वारा इस उपभोक्तावाद को बढ़ावा मिल रहा है| बहुराष्ट्रीय कम्पनियाँ मुफ्त, छूट और इनाम के प्रलोभन रचकर उपभोक्ताओं को आकृष्ट करते हैं| इसमें प्रत्येक व्यक्ति माल बन जाता है| प्रत्येक व्यक्ति बाज़ार के अनुरूप अपने को गढ़ने की नाकाम कोशिश करता है| इसमें पराजित होने पर वह दुःखी एवं निराश होता है| नयी पीढी “आज के लिए

जिओ” के नारा को अपनाने लगे हैं| वे सुख-सुविधाएं पाने के लिए अपराध करने लगते हैं| इससे हमारे पारंपरिक मूल्य नष्ट होकर समाज को असुरक्षा में थकेल देते हैं|

भूमंडलीकरण के साथ भारत में उपभोक्तावादी मानसिकता और संस्कृति जन्म ली | उपभोक्तावादी संस्कृति से ग्रसित आदमी पूंजी को ही एकमात्र उपयोगी वास्तु मानता है| आज “अर्थ” एकमात्र जीवन मूल्य बनकर रह गया है| उपभोक्तावाद मानव और मानव मूल्यों को नष्ट कर रहा है| बाज़ार सबको अपना उपभोक्ता बना देता है|आज हमारी ज़रूरतें बहुराष्ट्रीय कंपनियों के विज्ञापन तय कर रही है| इसप्रकार उपभोक्तावाद द्वारा व्यक्ति के निष्क्रिय और लाचार बनने के बारे में शम्भू नाथ ने लिखा है- “ उपभोक्तावाद का अंतिम लक्ष्य है आदमी को उपभोग पशु में रूपांतरित कर देना| जब आदमी की ज़रूरतें उनके छद्म ज़रूरतों में बदल जाएगी और वह ‘खूब कमाओ, खूब खरीदो और खूब उपभोग करो’ की संस्कृति के बाहर झांक नहीं पाएगा, तब वह अपनी अंतिम परिणति में एक उपभोग पशु ही होगा | वह सिर्फ मज़ा चाहेगा,चाहे फ़ास्ट फुड से मिले या पूजा-कीर्तन से| वह केवल दिखावा और उत्तेजना पैदा करने वाली वस्तुओं की ओर ही आकर्षित होगा| वह थोडा भी उधर नहीं ताकेगा, जिधर उसे अपना दिमाग खटाना पड़े|”[1] इसप्रकार उपभोक्तावाद दिमागी स्वतंत्रता को दबाकर गुलामी मानसिकता को बढ़ावा देता है| उपभोक्तावाद छल-कपट का पर्याय है| समकालीन

---

[1] शम्भुनाथ - संस्कृति की उत्तरकथा , पृ : 162 – 163

उपन्यासों में बाजारवाद, विज्ञापन, उपभोक्तावाद आदि के दुष्परिणामों का चित्रण हुआ है|

काशीनाथ सिंह के “रेहन पर रग्घु” में भूमंडलीकरण और उसका परिणाम,उपभोक्तावाद की क्रूरतायें, शोषित-पीड़ित जातियों का उभार, स्त्री शक्ति एवं व्यथा, पश्चिमी संस्कृति एवं प्रभाव आदि का अंकन किया गया है|इसका नायक ‘रग्घु’ पश्चिमी सभ्यता से प्रभावित है| इसमें बाजारवाद के चलते ‘पहाडपुर गाँव’ की स्थानीयता एवं लोक जीवन,किसान संस्कृति आदि नष्ट होने का भी ज़िक्र है| रवीन्द्र वर्मा ने “निन्यनाब्बे” में नवजागरण व राष्ट्रीय अन्दोलनकालीन एवं वर्तमान उपभोगवादी समाज को प्रस्तुत किया है| ‘हरिदयाल’ नामक पात्र उपभोक्तावाद का शिकार होकर विलायती चीज़ों के पीछे भागता है तो ‘रामदयाल’ नामक पात्र एवं हरिदयाल की पत्नी उपभोक्ता संस्कृति का विरोध करते हैं| प्रियंवद के ”परछाई नाच” में ‘अनहद’ नामक पात्र बाजारवाद के मायाजाल से वशीभूत एक व्यापक जन समुदाय का प्रतिनिधित्व करता है| ‘किंशुक’ नामक पात्र बाजारवाद के विरोध में खड़ा होकर युवा पीढी को दिशा निर्देशित करता है|

उपभोक्तावाद के जाल में फंसकर ‘वस्तु’ बननेवाली नारी की समस्याओं को भी उपन्यासों में चित्रित किया है|सुरेन्द्र वर्मा के “मुझे चाँद चाहिए” की ‘वर्षा’ ग्लैमर दुनिया में फंस जाती है और बाद में वह पहचान लेती है कि उसका अस्तित्व ‘देह’ और ‘वस्तु’ रह गयी है| चित्रा मुद्गल के “एक ज़मीन अपनी” में विज्ञापन जगत के ग्लैमर, देह व्यापार आदि को विश्लेषण का विषय बनाया है| इसमें ‘नीता’ नामक पात्र विज्ञापन जगत में फंसकर

बिकाऊ बन जाती है और अंत में निराश होकर आत्महत्या करती है| दूसरी ओर 'अंकिता' अपनी अस्मिता को बनाये रखकर मेहनत एवं प्रतिभा से कामयाबी हासिल करती है|

बाजारवाद के इस युग में जीवन का प्रत्येक क्षेत्र अब बाज़ार द्वारा संचालित हो रहा है| आज लोगों की जीवन शैली बाज़ार के अनुकूल बदलती रहती है| आज आदमी खुद माल बन रही है|उदयप्रकाश के उपन्यास "पीली छतरीवाली लड़की" मीडिया एवं विज्ञापन का प्रभाव, सौंदर्य प्रतियोगिताओं में स्त्री का माल बन जाना आदि मुद्दों पर केन्द्रित है| संजीव ने "रह गयी दिशायें इसी पार" में लिंग परिवर्तन, क्लोनिंग, कृत्रिम गर्भधान, उधार की कोख, हॉर्मोन थैरेपी, टेस्ट ट्यूब बेबी, टिश्यू कल्चर और कॉस्मेटिक थैरेपी जैसी जीव विज्ञान की नयी खोजों के द्वारा मुनाफा कमाने की बाज़ार की कूटनीति का पर्दाफाश किया है|

इसप्रकार समकालीन उपन्यास ने भूमंडलीकरण से उत्पन्न बाजारवादी संस्कृति और प्रत्येक व्यक्ति के उपभोक्ता बन जाने की नियति का संवेदनशील चित्रण किया है| समाज के जीवन मूल्यों, आदर्शों, संस्कारों में आये परिवर्तन और उसके पीछे काम कर रहे बहुराष्ट्रीय कंपनियों तथा मीडिया के छल-कपट का पर्दाफ़ाश करते हुए उपभोक्तावादी संस्कृति का खुलकर विरोध किया है|

स्त्री विमर्श

समकालीन हिन्दी उपन्यासों में पूर्ववर्ती उपन्यासों की तुलना में नारी की उपस्थिति सामान्य से हटकर हुई है| वर्तमान नारी अपनी अस्मिता और मुक्ति के लिए संघर्षरत है| वह स्वतंत्र व्यक्ति के रूप में अपनी ठोस पहचान बनाने की ओर बढ़ती ज रही है| स्त्री विमर्श ने उसे एक व्यक्ति मानने की समझ दी है| रमणिका गुप्ता ने लिखा है-" स्त्री विमर्श ने औरत में वस्तु से व्यक्ति बनने की समझ पैदा की है| स्त्री विमर्श से स्त्रियों में ओटोनामी यानी स्वायत्तता की इच्छा जगी है,उनमें निर्णय लेने की शक्ति पनपी है..........|"[1] उनके अनुसार स्त्री के प्रति पुरुषों की मानसिकता बदलना जितनी ज़रूरी है उतनी ही ज़रूरी है स्त्री की मानसिकता बदलना| स्त्री विमर्श किसी पुरुष का विरोध नहीं करता| वह पुरुषवादी मानसिकता और पितृसत्तात्मक व्यस्था का विरोध करता है| पुरुषर्चस्ववादी समाज ने त्याग,ममता, समर्पण, कोमलता जैसे गुणों को स्त्री में आरोपित किया है| पुरुष द्वारा बनाये गए इस रूढ़ छवी ने स्त्री को कठपुतली बनाया और उसे चाहरदीवारी में बंद किया|

वेद काल में स्त्रियाँ भोग्या थी, उसके साथ पूज्या और प्रेरणा भी थी |उसे सामाजिक-धार्मिक-राजनीतिक कार्यों में सामान अधिकार प्राप्त थी| बाद में मनु द्वारा बनाये नियमों तथा हिन्दू धर्म के विस्तृत कर्मकांडों ने स्त्रियों को परिधि में बांधना प्रारंभ कर दिया | बौद्ध युग में वह स्वतंत्र थी| भगवान

---

[1]रमणिका गुप्ता - वर्तमान साहित्य : मार्च 2011 , पृ : 53

बुद्ध ने स्त्री और पुरुष दोनों के लिए आध्यात्मिकता का द्वार खोल दिया था| लेकिन जैन धर्म में स्त्री के प्रति संकुचित दृष्टिकोण था|

भारत में मुसलमानों व विदेशी शक्तियों के आक्रमण से धर्मान्तर का भय लोगों में फैलने लगा | उसी से बचने के लिए मनु द्वारा हिन्दू धर्म के लिए निर्धारित नियमों काकठोरता से पालन करने लगा | इसका प्रभाव स्त्रियों पर अधिक पड़ा| मध्यकाल तक पहुंचते-पहुंचते वह सम्भोग और श्रृंगार की वस्तू बन गयी| धीरे-धीरे उसका कार्यक्षेत्र चाहरदीवारी में सिमट गया| 19 वीं शती में पश्चिमी सभ्यता, शिक्षा एवं नवजागरण ने भारतीय नारी के खोये हुए अस्तित्व को जगाया| स्त्री प्रथा, पर्दा प्रथा, बाल विवाह, दहेज़ प्रथा आदि के विरोध करने के साथ-साथ 'हिन्दू कोड बिल' पारित हो गया| इसे नारी मुक्ति का प्रथम चरण मानते हैं| पश्चिम के नारीवाद और नारी मुक्ति आन्दोलन का भी प्रभाव भारतीय नारीवाद पर पड़ा| आज हर कहीं नारी सशक्तीकरण की बात चल रही है|एक ओर वह समाज के विभिन्न क्षेत्रों में कामयाबी हासिल कर रही है तो दूसरी ओर वह कभी जलाई जाती है, बलात्कृत हो जाती है या घरेलु हिंसाओं को झेलती नज़र आती हैं| उपभोक्तावाद के इस युग में विज्ञापन, ब्रांड, मीडिया, सौंदर्य प्रतियोगिताएं आदि स्त्री के देह को बिकाऊ चीज़ बना दिया है| पुरुषसत्तात्मक मानसिकता शोषण के नए-नए तरीके अपना रहा है| सुधीश पचौरी जी ने मर्दों के इस व्यवहार को 'पॉपुलर व्यहार' बताते हुए लिखा है- " औरत को छेड़ना मर्दानगी है| तंग करना मर्दानगी है, इसलिए भारत में औरत हर जगह ज्यादा असुरक्षित है| अगर सुरक्षित है तो मर्दों की परिभाषा में उनकी आचार

संहिता मर्दों ने तय कर रखी है|”[1] आज देश भर में औरतें इस संकुचित मानसिकता के खिला आवाज़ उठाने लगी हैं |

भारतीय समाज में अपने अधिकारों के लिए जद्दोजहद करने वाली नारी के स्वर को समकालीन हिन्दी उपन्यास ने बड़ी उत्कटता के साथ चित्रित किया है| वह अस्मिता बोध से युक्त औरतों का चित्रण करता है| प्रभा खेतान के “छिन्नमस्ता में नायिका ‘प्रिया’ विवाह, पति और बच्चे से अलग अपना स्वतंत्र अस्तित्व पहचानती है| उनके “पीली आंधी” में ‘सोमा’ नामक पात्र परंपरागत नियमों को पैरों तले रौंदती है| दोनों में स्त्री का शोषण और उसके खिलाफ नारी का विद्रोह चित्रित किया है| चित्रा मुद्गल के “आवां” और “एक ज़मीन अपनी” स्त्री विमर्श की दृष्टी से काफी चर्चित हैं | “आवां” की ‘नमिता’ अपने ऊपर हुए शोषणों से मुक्त होकर अपने अस्तित्व के लिए खडी होती है| वह आर्थिक स्वावलंबन भी हासिल करती है| “एक ज़मीन अपनी” में विज्ञापन जगत में जकड़ी हुई स्त्री का चित्रण हुआ है| ‘अंकिता’ और ‘नीता’ नामक पात्र बम्बई जैसे महानगर में अपने अस्तित्व के लिए संघर्ष करती हैं| मैत्रेयी पुष्पा के “ चाक” और “अल्मा कबूतरी” में ग्रामीण परिवेश में उभरती हुई नारी चेतना की अभिव्यक्ति हुई है| “चाक”में ‘सारंग’, ‘नैनी’, ‘रेशम’, ‘गुलकन्दी’ जैसे अनपढ़ स्त्रियाँ पुरुश्वर्चास्ववादी समाज पर विद्रोह प्रकट करती है| “अल्मा कबूतरी” में समाज की मुख्यधारा के किनारे फेंक दिए गए कबूतरे जनजाति की औरतों की संघर्ष गाथा को चित्रित किया है| “इदन्नमम” की मुख्या पात्र ‘मन्दाकिनी’ परिवार और समाज द्वारा स्त्री के लिए निर्मित

[1]सुधीश पचौरी - पॉपुलर कल्चर के विमर्श , पृ : 29

बंधनों को तोडती है| वह आदिवासियों एवं ग्रामीणों पर हो रहे शोषणों के खिलाफ आवाज़ उठाती है|[1]

स्त्री चाहे निम्न वर्ग की हो या उच्च वर्ग की, भारत की हो या विदेश की, गाँव की हो या शहर की, पुरुष के शोषण के शिकार होती रहती है| मृदुला गर्ग ने “कठगुलाब” में अनपढ़ ‘नर्मदा’ एवं पढी-लिखी ‘स्मिता’ सारे बंधनों को तोड़कर स्वतंत्र होने का संघर्ष करती हैं | नासिरा शर्मा ने “ठीकरे की मंगनी” में ‘महारूख’ नामक मुस्लिम नारी के संघर्ष को अंकित[2] किया है| सूर्यबाला के “यामिनी कथा” में एक विवाहित स्त्री के जीवन की त्रासद भरी गाथा है| सुरेन्द्र वर्मा के “मुझे चाँद चाहिए” में नारी को पग-पग पर छल-कपट और शोषण का शिकार होना पड़ता है| इसमें पुराने विचारों वाली ‘सिलबिल’ नामक औरत का महानगर दिल्ली से फिल्म नगरी मुम्बई तक की चुनौतीपूर्ण जीवन यात्रा का चित्रण किया है| कमल कुमार के “हैम्बरगर” में नारी संघर्ष और मुक्ति के नए आयाम को प्रस्तुत किया है| इसकी कथा भूमि भारतीय एवं विदेशी दोनों हैं| इसका मुख्या पात्र ‘रतींद्र’ को अपने ही होने वाले पति से अन्याय सहना पड़ता है, बाद में विदेश जाकर एक नयी दिशा ढूढ़ लेती है|

इसप्रकार समकालीन हिन्दी उपन्यासों में नारी मुक्ति एवं संघर्ष के नए-नए आयाम देख सकते हैं| इनमें नारी के ऐसे रूप का चित्रण हुआ है जो अपनी इच्छाओं को खुलकर व्यक्त करती है| वह अपने अधिकारों के लिए

लडती है और अपने जीवन का रास्ता खुद चुनती है| वह प्रगतिशील है और अपनी अलग अस्तित्वा पाने के लिए संघर्षरत है|

दलित विमर्श

समकलीन दलित साहित्य सवर्ण मानसिकता और शोषण के विरुद्ध प्रतिरोध का साहित्य है| दलित सदियों से बेवजह अपने ऊपर हो रहे दमन और अपमान के विरुद्ध रोष व्यक्त करने लगे हैं| वे संघर्ष और प्रतिरोध के माध्यम से सामाजिक महत्व पाना चाहते हैं| उनका यह संघर्ष एक व्यक्ति का न होकर पूरे समाज का होता है जो सदियों से शोषण व अस्पृश्यता के शिकार हैं| भारतीय सामाजिक-धार्मिक-राजनीतिक-आर्थिक सभी प्रकार के आभिजात्य वर्चास्व के प्रतिरोध स्वरुप उत्पन्न साहित्य होने के कारण इसका मूल स्वर वेदना, विद्रोह, संघर्ष और उत्थान है| समकालीन हिन्दी उपन्यासों में दलित समाज के इस संघर्ष और अस्मिता की पहचान की उत्कट इच्छाओं को अभिव्यक्ति मिली है| ओमप्रकाश वाल्मीकी ने कहा है- “मेरा मानना यह यह है कि दलित साहित्य सामाजिक जीवन में मानव मूल्यों के प्रति गहरा लगाव रखता है और उनकी पुनर्प्रतिष्ठा के लिए कृत संकल्प है| इसकी अंतर्धारा में जीवन के वे तमाम सरोकार शामिल हैं जो एक मनुष्य को मनुष्य के रूप में पहचाने|”[1] दलित साहित्य उन तमाम परम्पराओं को चुनौती देता है और नकार की दृष्टी से देखता है जो सदियों से अपने मूलभूत अधिकारों से वंचित रखकर गुलाम बनाकर रखा है|

[1] ओमप्रकाश वत्मीकी - मुख्यधारा और दलित साहित्य , पृ.51

'दलित' शब्द आदिवासियों, जनजातियों, आर्थिक-सामाजिक-शैक्षणिक दृष्टी से पिछडी जनजातियों के रूप में व्यवहृत हो रहा है| दलित वह है जिसका दलन, शोषण, उत्पीडन किया गया हो | श्रीमती कुसुम मेघवाल ने 'दलित' शब्द को परिभाषित करते हुए कहती है- " दलित वर्ग का प्रयोग हिन्दू समाज व्यवस्था के अंतर्गत परंपरागत रूप से शूद्र माने जाने वाले वर्गों के लिए रूढ़ हो गया है| दलित वर्ग में वे जातियां आती हैं, जो निम्न स्तर पर है और जिन्हें सदियों से सताया गया है |"[1] भारत के प्राचीन साहित्य में ऐसे लोगों के लिए शूद्र, दास, अस्पृश्य, चंडाल, अंत्यज, दस्यू आदि का प्रयोग मिलता है| बाद में गांधीजी ने इनके लिए 'हरिजन' और बाबासाहेब अम्बेडकर ने 'बहिष्कृत' जैसे शब्दों का प्रयोग किया |

जाति व्यवस्था भारतीय समाज की एक खास विशेषता है| इसका उद्भव चातुर्वर्ण्य व्यवस्था से है| ऋग्वेद के पुरुष सूक्त में सर्वप्रथम शूद्र शब्द का उल्लेख मिलता है | इसके अनुसार पुरुष (ब्रह्मा) के सिर से ब्राह्मण, बाहों से क्षत्रिय, जंघाओं से वैश्य तथा पैरों से शूद्र का जन्म हुआ है| वेदोत्तर काल में क्षत्रियों-वैश्यों को शूद्रों के साथ भोजन करने में कोई आपत्ति नहीं थी | ऐसा भी उल्लेख मिलता है कि ब्राह्मण और शूद्रों के बीच वैवाहिक सम्बन्ध भी होते थे | शुरू-शुरू में वैदिक साहित्य पढने का भी अधिकार था| बाद में शूद्रों को इन सबसे वंचित रखा| ब्राह्मणों का वर्चस्व बढ़ गया| उन्हें सामाजिक-धार्मिक तथा अन्य अधिकारों से वंचित रखा| उनकी स्थिति बदतर हो गई| आगे चलकर मनु द्वारा शूद्रों के लिए बनाई कड़े नियमों ने मानव हृदय को आघात

[1]श्रीमती कुसुम मेघवाल - हिन्दी उपन्यासों में दलित वर्ग , पृ : भूमिका

किया| ब्राह्मणों की निंदा करने पर उनके जीभ तथा अंग-प्रत्यंग काट डालने तक की कठोर सज़ा देने लगी| काफी समय [1]तक यह इसी तरह चलती रही|

बौधों-जैनों ने ब्राह्मणों तथा उनकी नीतियों का विरोध करके सामने आये | बौद्ध विहारों की जीवन-पद्धति को एक विकल्प के रूप में प्रस्तुत करते हुए बुद्ध ने वर्ण-व्यवस्था पर कड़ा प्रहार किया| मध्यकाल में कबीर, रैदास, दादू जैसे भक्त कवियों ने जाति-पांति और ऊंच-नीच की भावना के खिलाफ विद्रोह किया| आधुनिक काल तक आते-आते दलितों की स्थिति और भी दयनीय हो गई| ब्रिटीश शासन काल में आजादी के आन्दोलन के साथ-साथ समाज सुधार का भी कार्य चलता रहा| दलितों की स्थिति में सुधार करने के लिए ब्रह्म समाज (1828), प्रार्थना समाज (1867), आर्य समाज (1875), रामकृष्ण मिशन, थियोसाफिकल सोसाईटी आदि संस्थाओं व आन्दोलनों का विशेष महत्व रहा है| इनके साथ विवेकानंद, महात्मा गांधी, ज्योतिबा फूले, डॉ.अम्बेडकर आदि ने क्रांतिकारी विचारों से अच्छूतोद्धार के लिए महत्वपूर्ण कार्य किया| ज्योतिबा फुले ने सन् 1873 में ‘सत्य शोधक समाज’ का निर्माण कर दलितोद्धार का प्रयास किया | इसके प्रभाव के कारण सन् 1935 में पददलित के स्थान पर ‘अनुसूचित जाति’ का प्रयोग करने लगा और सन् 1947 में स्वतंत्रता के बाद ‘अनुसूचित जाति’ और ‘अनुसूचित जनजाति’ शब्दों का भारतीय संविधान में स्थान दिया| डॉ. भीमराव रामजी अम्बेडकर ने दलित समस्या के समाधान के लिए क्रांतिकारी परिवर्तन किया| परम्परागत रूढीवादी हिन्दू, साम्यवादी, समाजवादी और गांधिवादी दृष्टियों

से उन्हें वैचारिक मतभेद थे |उन्होंने दलित आन्दोलन को सामाजिक आन्दोलन के रूप में खड़ा किया |भूमंडलीकरण और औध्योगीकरण को सकारात्मक दृष्टि से देखनेवाले लोग अधिक है| उनका मानना है कि जाति आज दलितों पर अपनी गिरफ्त खो रही है| क्योंकि जाति और पूंजी को वे एक दूसरे के विरोधी मानते हैं| लेकिन सच्चाई यह है कि जातिगत भेद का स्वरुप आर्थिक से कहीं ज्यादा सामाजिक, मानसिक और अध्यात्मिक है| मनु द्वारा बनाये नियम आज भी उनके लिए अभिशाप है| परिवर्तनों के इस समकालीन दौर में भी कहीं-कहीं उनकी मानसिकता आज भी पिछडी है|

हिन्दी दलित साहित्य मराठी दलित साहित्य और अम्बेडकरवादी विचारों से प्रभावित है| मुंशी प्रेमचंद, निराला, राहुल सांकृत्यायन ,बाबा नागार्जुन, मुक्तिबोध, रेणु आदि ने दलितों के संघर्षमय जीवन प्रस्तुत करके हिन्दी कथा साहित्य को समृद्ध किया है| आज ओमप्रकाश वाल्मीकी, जयप्रकाश कर्दम, मोहनदास नैमिशराय,धर्मवीर आदि दलित लेखक एवं शिवप्रसाद सिंह, जगदीशचंद्र, गिरिराज किशोर, मदन दीक्षित आदि गैर दलित लेखकों द्वारा यह क्रियाशील साहित्य संपन्न हो रहा है| समकालीन हिन्दी दलित उपन्यास दलितों में शोषण के विरुद्ध आयी चेतना और विद्रोह के विसफोट का परिणाम है| दलित जीवन से सरोकार रखनेवाली ये रचनाएँ दलित लेखन को नया आयाम और तेवर दिया है|

जगदीश चन्द्र ने “धरती धन न अपना” में चमारों के जीवन के करुण यथार्थ को ‘काली’ नामक दलित युवक के माध्यम से प्रस्तुत किया है| इसमें गरीबी, अशिक्षा, ज़मींदारों का दुर्व्यवहार आदि को भी प्रस्तुत किया है| उनके

“नरक कुंड में वास” में भी दलितों की नारकीय जीवन स्थितियों और उच्च वर्ग द्वारा उनके शोषण का मार्मिक चित्रण हुआ है| शिवप्रसाद सिंह के “शैलूष” में विन्ध्या क्षेत्र के नटों की कबीलाई जीवन को मुख्य विषय बनाया है| इसमें ‘सावित्री’ नामक ब्राह्मण युवती का नट युवक से प्रेम विवाह, सावित्री के नेतृत्व में नटों का मुक्ति संघर्ष आदि को अंकित किया है| मैत्रेयी पुष्पा ने “अल्मा कबूतरी” में बुंदेलखंड क्षेत्र के कबूतरा जाति के जीवन को प्रस्तुत किया है| अंग्रेजों के शासन काल में कबूतरा जाति को जरायमपेशा जाति घोषित करके सभ्य समाज से दूर रखा गया था| आज भी वे मुख्यधारा से जुड़ने के लिए संघर्ष कर रहे हैं|

सामाजिक उत्पीडन, प्रशासनिक एवं शैक्षणिक व्यवस्था के अमानवीय व्यवहार आदि को केंद्र में रखकर गिरिराज किशोर ने “ यथाप्रस्तावित” और “परिशिष्ट” लिखा है| “यथाप्रस्तावित” में ‘बालेसर’ नामक अशिक्षित चमार युवक को कार्यालय में सवर्णों द्वारा मानसिक उत्पीडन सहनना पड़ता है और वह इसके खिलाफ संघर्ष करता है| “परिशिष्ट” में ‘अनुकूल’ और ‘राम उजागर’ नामक दलित छात्रों को शिक्षा जगत में जो अवहेलना एवं उपेक्षा का सामना करना पड़ता है उसका चित्रण किया है| वे दोनों इस भ्रष्ट व्यवस्था के खिलाफ अपने को मज़बूत रखने की सफल कोशिश करते हैं| रमेशचंद्र शाह के “किस्सा गुलाम” में ‘कुंदन’ नामक दलित पात्र द्वारा सामजिक व्यवस्था को नकारने का चित्रण हुआ है| मदन दीक्षित ने “मोरी की ईंट” में सफाई कर्मचारियों द्वारा शोषण के खिलाफ हड़ताल एवं संघर्ष करने का चित्रण किया है| जयप्रकाश कर्दम का “छप्पर” दलित साहित्य का क्रांतिकारी दस्तावेज़ है | इसमें ‘चन्दन’

नामक दलित शिक्षित युवक के माध्यम से दलितों को शिक्षित करने तथा संगठित करके आन्दोलन के लिए प्रेरित करने का चित्रण हुआ है| मोहनदास नैमिशराय का प्रथम उपन्यास "मुक्तिपर्व" संघर्षशील दलित परिवार का चित्रण करता है| इसमें स्वतंत्र पूर्व और बाद में दलितों की सामाजिक स्थिति में आये बदलाव का चित्रण हुआ है| 'बंशी' नामक दलित आज़ादी के पहले गुलाम की तरह काम करता था| आजादी मिलने के बाद वह विद्रोही बनकर अपने बेटे को शिक्षित करता है और अन्याय के खिलाफ आवाज़ उठाने की प्रेरणा देता है|

समकालीन रचनाकारों ने ॠग्वेद काल से चली आ रही चातुर्वर्ण्य व्यवस्था के निकृष्ट एवं अमानवीय व्यवहारों के खिलाफ अपनी रचनाओं व पात्रों के माध्यम से प्रतिरोध व्यक्त किया है| उन्होंने ऐसे सशक्त पात्रों के गठन किए हैं जो स्वाभिमान से सिर ऊंचा करके अपने अस्तित्व की लड़ाई लड़ते हैं| वर्त्तमान दलित साहित्य इस नयी चेतन का पक्षधर है|

सांप्रदायिकता

साम्प्रदायिकता सदियों से चली आ रही है| आज भी वह तरह-तरह की खाल ओढ़कर हमारे सामने आती है| यह भारतीय समाज को विखंडित करने वाली एक ज्वालामुखी है| जब एक विशेष धर्म या समुदाय अपने आपको अन्य समुदायों से श्रेष्ठ मानकर उन पर शासन करने लगता है तब सांप्रदायिक समस्या उत्पन्न होती है| वह धीरे-धीरे हमारी सामाजिक-राजनीतिक-आर्थिक संरचना तक को प्रभावित एवं नियंत्रित करने लगी है|

एक संप्रदाय दूसरे से श्रेष्ठ या हीन बनने से समाज में अलगाव, वैमनस्य और घृणा की भावना पैदा होती है| नरेंद्र मोहन ने लिखा है- " समष्टि या विराट में साम्प्रदायिकता आ ही नहीं सकती| साम्प्रदायिकता का जन्म ही विभाजित चेतना से होता है |............'मैं' और 'तुम' के भेद में जब कभी भी चेतना निवास करेगी और जितना अधिक निवास करेगी उतनी ही वह सांप्रदायिक व विभाजित होती चली जायेगी|"[1] इस संकुचित भावना सांप्रदायिक विद्वेष और दंगों को जन्म देता है| साम्प्रदायिकता व्यक्ति की स्वतंत्रता को नष्ट करके व्यक्ति-व्यक्ति के बीच प्रतिस्पर्धा उत्पन्न करता है|

भूमंडलीकरण के इस युग में साम्प्रदायिकता को सशक्त हथियार के रूप में इस्तेमाल कर रहे हैं| धर्म ने व्यक्ति को सहिष्णु एवं मानवीय बनाया| धर्म को कूटनीति ने धर्मिकता में बदल कर उसे राष्ट्रवाद से जोड़ दिया| धार्मिकता बाज़ार के तर्कों से जुडी होती है| जगदीश्वर चतुर्वेदी ने लिखा है- " धर्म ने सहिष्णु बनाया, मानवीय बनाया, सामंजस्यवाद और सम्मिश्रण पर जोर दिया| इसके विपरीत धार्मिकता ने असहिष्णु,अमानवीय दौलत का दास और उपभोक्ता बनाया|"[2] इसप्रकार धार्मिकता साम्राज्यवादी शक्तियों के वर्चस्व को बढ़ावा देते हैं|

भारत में साम्प्रदायिकता औपनिवेशिक कूटनीति की उपज है| उन्होंने 'फूट डालो और राज करो' की नीति अपनाकर हिन्दू-मुस्लमान में वैमनस्य पैदा किया| अंग्रेजों का लक्ष्य दोनों को एक दूसरे का शत्रु बनाकर शासन

---

[1]नरेंद्र मोहन - धर्म और साम्प्रदायिकता , पृ : 96

[2] जगदीश्वर चतुर्वेदी - साम्प्रदायिकता, आतंकवाद और जनमाध्यम , पृ : 145

करना था जो वे पहचान नहीं पाए| दोनों धर्मों ने एक दूसरे को संदेह की दृष्टि से देखने लगे| एक दूसरे को पराजित एवं अपमानित करने की इस खेल ने भारत को विभाजन तक पहूचा दिया| देश विभाजन स्वाधीनता पूर्व के सांप्रदायिक उन्माद का चरमोत्कर्ष है| यह एक शुरुआत थी| इसके बाद देश के कोने –कोने में दंगे होते रहें हैं और आज भी जारी है| बाबरी मस्जिद-राम जन्मभूमि प्रकरण, गुजरात का दंगा आदि ने देश की एकता को नष्ट किया| भारत विभाजन की साम्प्रदायिक विभीषिकता से जो इलाके बच गए थे, आज वे भी इसकी चपेट में आ चुके हैं| सन् 1885 में बाबरी मस्जिद को लेकर कानूनी विवाद शुरू हुआ| यह 23 दिसंबर 1949 को नया रूप धारण करके सामने आया| कट्टर हिदुत्ववादी शक्तियों ने मस्जिद के स्थान पर मंदिर होने के विवाद को भड़काया और कुछ लोगों ने दिसंबर की रात को राम की मूर्ति रख दी| उसके बाद कारसेवकों ने बाबरी मस्जिद तोड़कर झंडा फहरा दिया| इससे देश भर में हिन्दू-मुस्लिम दंगे हुई| 27 फरवरी ,2002 की सुबह गोधरा में रेल जलाये जाने तथा मार्च से जून 2002 तक चार महीनों में हुए हत्याकांड ने सभी सीमाएं पार कर दी| साबरमती एक्सप्रेस के डिब्बे जलाये जाने पर कई मासूम लोगों की जानें गईं| इससे गुजरात भर में मुस्लमान विरोधी हत्याकांड शुरू हुआ| [1]इसप्रकार सांप्रदायिक ताकतें हमेशा किसी न किसी बहाने हिंसा करती हैं| हिन्दुओं और मुसलमानों में जो अविश्वास की भावना पैदा हो गई है, वह लम्बी सामाजिक प्रक्रिया का परिणाम है|

साम्प्रदायिकता भारतीय समाज की एक कड़वी सच्चाई है, जिसने अनेक बार देश को विषैला बनाया है| इससे देश के अल्पसंख्यकों के आत्मसम्मान को ठेस पहुंचा है| साम्प्रदायिकता से उत्पन्न अमानवीयता एवं अल्पसंख्यकों के अस्तित्व के संकट को समकालीन उपन्यासकारों ने बड़ी संजीदगी के साथ अंकित किया है| मानव के पशु का खाल ओढ़कर संहारकर्ता बनने पर समाज में उत्पन्न अराजकता को उन्होंने आक्रोश के साथ प्रस्तुत किया है| विभूतिनारायण राय के “शहर में कर्फ्यू” उपन्यास में हिन्दू और मुस्लिम को विभाजित करने वाले राजनीतिज्ञों, पुलिस व अन्य अवसरवादी लोगों के मिलीभगत की गहरी पड़ताल हुई है| लेखक ने इलाहबाद जैसे बड़े शहर में दंगों से उत्पन्न कर्फ्यू से पीड़ित जनता की दयनीयता को प्रस्तुत किया है| दंगे के दौरान हिन्दू बस्ती में ‘यूसुफ़’ का डर-डरकर रहना, कर्फ्यू के कारण ठीक समय पर चिकित्सा न मिलने पर ‘सईदा’ की बेटी का मरना आदि के द्वारा आम जनता की त्रासदी का पर्दाफाश किया है | भगवान सिंह ने साम्प्रदायिकता को दमित मनोवेगों या मनोविकारों का प्रतिफलन माना है| उनके “उन्माद” की ‘आबिदा’ सांप्रदायिकता का विरोध करती है लेकिन उसके बाप हिन्दू-मुस्लिम साम्प्रदायिकता को भड़काने वाले पर्चे छापने व बांटनेवालों से संपर्क रखता है|यहाँ लेखक ने साम्राज्यवादी शक्तियों द्वारा अर्थ एवं सत्ता की प्राप्ति के लिए साधारण लोगों को कठपुतलियों की तरह नचाने का चित्रण किया है| आबिदा के पिता इसके शिकार है|

नासिरा शर्मा का “जिंदा मुहावरे” भारत विभाजन की त्रासदी पर लिखा हुआ उपन्यास है| विभाजन ने भारत में मुसलमानों को अल्पसंख्यक

बनाया तो पाकिस्तान में महाजिर| उनमें व्याप्त निराशा एवं अलगाव बोध इस उपन्यास का मुख्य विषय है |मंजूर एहतेशाम के “सूखा बरगद” में समान स्थिति का चित्रण हुआ है| इसमें बरगद को भारत का प्रतीक मानकर, दंगे जैसे अमानवीय कृत्यों के द्वारा उसके सूख जाने की भीषणता को व्यक्त किया है| इसके ‘वकील साहब’ और उसका परिवार भारत के विभाजन के समय देश में ही रहने वाले लोगों का प्रतिनिधित्व करता है जबकि ‘परवेस भाई’ असुरक्षा व डर के कारण भारत छोड़े मुसलमानों की| देवेन्द्र सत्यार्थी के “कठपुतली” में अंग्रेजों द्वारा भारत के हिन्दू –मुसलमानों को कठपुतली बनाने तथा दंगे के कारण विस्थापित लोगों की मार्मिक कथा प्रस्तुत करती है|

बाबरी मस्जिद ध्वंस को लेकर लिखे गए तीन महत्वपूर्ण उपन्यास हैं-प्रियंवद का “वे वहां कैद है”, चंद्रकिशोर जायसवाल का “शीर्षक” और गीतांजलि श्री का “हमारा शहर उस बरस”| “वे वहां कैद हैं” में ‘चिन्मय’ नामक उग्र हिन्दू नेता द्वारा सांप्रदायिक उन्माद बढाने का चित्रण है| “शीर्षक” उपन्यास में ‘हरिवल्लभ’ जैसे पात्रों के माध्यम से उन सफेद्फोश लोगों को बेनकाब किया है जो सांप्रदायिक दंगों को अपने हितों के लिए इस्तेमाल कर रहे हैं| “हमारा शहर उस बरस” में एक देवी मंदिर की कथा के परिप्रेक्ष्य में बाबरी मस्जिद ध्वंस को तथा हिन्दू राष्ट्रवाद की कट्टरता को चित्रित किया है| द्रोणवीर कोहली कृत “वाह कैंप” में देश विभाजन के वक्त पश्चिमोत्तर भारत का सबसे बड़ा शरणार्थी कैंप का चित्रण किया है| इसमें कैंप में रहने वाले शरणार्थियों तथा विस्थापित हिन्दू मुसलमानों की नारकीय स्थिति का

पर्दाफाश किया है| बलवंत सिंह कृत " काला कोरस" में पंजाब के बंटवारे की भयानकता को अंकित किया है|

इस प्रकार समकालीन उपन्यास ने साम्राज्यवाद की कोख से जन्मी साम्प्रदायिकता के भयावह रूप को वास्तविकता के साथ प्रस्तुत कर दिया है| साम्प्रदायिकता से हिन्दू-मुस्लमान-सिक्ख-ईसाई, बंगाली, मराठी, झारखंडी, बुन्देलखंडी आदि मिश्रित सांस्कृतिक बहुलता बिखरने लगे हैं| इससे भारत की सांस्कृतिक एकता, धार्मिक अल्पसंख्यकों की सुरक्षा, सामाजिक सुधार आदि खतरे में पड़ गयी हैं| समकालीन उपन्यासकारों ने इस विषम चित्र के द्वारा सामाजिक-सांस्कृतिक राष्ट्रीय एवं राजनीतिक एकता की अनिवार्यता को उजागर किया है|

आंचलिकता

समकालीन हिन्दी साहित्य में अंचल तथा जनपद के जीवन –यथार्थ को प्रस्तुत करने वाले कई उपन्यासों की रचना हुई है| इन उपन्यासों का मूल आधार अंचल और वहां की भौगोलिक विशेषताएं हैं| उसमें गाँव का परिवेश, अंचल की विशेषताएं, वहां की विभिन्न समस्याएं आदि का अंकन होता है| आंचलिक शब्द अंग्रेज़ी के 'रीजनल' शब्द का पर्यायवाचक माना जाता है| इसमें ग्रामांचल के जीवन का यथार्थ अंकन होता है| अनेक विद्वानों ने आंचलिक उपन्यास की परिभाषा दी है| रामदरश मिश्र जी ने लिखा है- " आंचलिक उपन्यास तो अंचल के समग्र जीवन का उपन्यास है| उसका सम्बन्ध

जनपद से होता है,ऐसा नहीं, वह जनपद की कहानी है|"[1] इसप्रकार आंचलिक उपन्यास जनजातीय व लोक संस्कृति का अभिव्यंजक है| प्रेमचंद का "गोदान", फनीश्वरनाथ रेणु का "मैला आँचल", नागार्जुन का "बलचनमा" जैसे उपन्यासों ने ग्रामांचलिक संस्कृति को गहराई से प्रस्तुत करने का प्रशंसनीय कार्य किया है|"मैला आँचल" की भूमिका में रेणु ने यों लिखा है- " यह है मैला आँचल, एक आंचलिक उपन्यास| कथानक है पूर्णिया| पूर्णिया बिहार राज्य का एक जिला है;इसके एक ओर है नेपाल, दूसरी ओर पाकिस्तान और पश्चिमी बंगाल|...........मैंने इसके एक हिस्से के एक ही गाँव को पिछडे गाँवों का प्रतीक मानकर इस उपन्यास कथा का क्षेत्र बनाया है|"[2] भौगोलिक सीमाओं

समकालीन दौर में भूमंडलीकरण, औध्योगीकरण, बाजारवाद, शहरीकरण आदि ने गाँव और लोक संस्कृति को अपने चपेट में रख लिया है| बाजारू संस्कृति ने ग्रामीण संस्कृति को मिटाने पर तुला हुआ है| समकालीन ग्रामंचलिक उपन्यासों में इसका विरोध हुआ है| उसमें लेखक ने लोक मानस में धंसे हुए पारंपरिक मूल्यों का परिचय कराने के साथ वर्तमान दौर में उसमें आये बदलावों को भी रेखांकित किया है| विवेकी राय का "सोनामाटी" उपन्यास उत्तरप्रदेश के करइल क्षेत्र को केंद्र में रखकर लिखा गया है| इसमें ज़मींदारी शोषण, निम्नवर्ग का विद्रोह, अशिक्षा, चिकित्सा सुविधाओं का आभाव, गरीबी, अधिकारी वर्ग का शोषण आदि का चित्रण हुआ है| इसमें

[1] रामदरश मिश्र - हिन्दी उपन्यास एक अंतर्यात्रा , पृ : 225

[2] फणीश्वरनाथ रेणु - मैला आँचल , भूमिका

गाँव का एक विशाल फलक को चित्रित किया है| उनके “मंगल भवन” और “समरशेष” जैसे उपन्यास भी इसी कोटि के हैं| इन उपन्यासों में गाँव में प्रचलित लोक कथाओं व लोक गीतों का भी चित्रण हुआ है|

श्रीप्रकाश मिश्र के “ जहाँ बाँस फूलते हैं” में उत्तर पूर्व की मिजो जनजाति के जीवनगाथा को उपन्यास का केन्द्रीय विषय बनाया है| इसमें मिजोराम की संस्कृति, भाषा, भूगोल,खान-पान, प्रकृति,जंगल, पहाड़ आदि का जीवंत चित्रण हुआ है| ज़मींदारों तथा गैर मिजो लोगों द्वारा उन्हें कई प्रकार के शोषण सहने पड़ते हैं जिसके खिलाफ ‘लालडोंगा’ नामक नेता के नेतृत्व में आन्दोलन चलाते हैं| इसमें अनेक मिज़ो और भोजपुरी शब्दों का प्रयोग हुआ है| मनमोहन पाठक के “गगन घटा घहरानी”,तेजींदर का “कला पादरी” में उराँव जनजाति की संघर्ष गाथा के साथ आदिवासी जीवन पद्धति एवं संस्कृति का वर्णन हुआ है| संजीव के “जंगल जहाँ शुरू होता है” में बिहार के चम्पारण की थारू जनजाति के जीवन संघर्ष का चित्रण हुआ है|

वीरेन्द्र जैन के “डूब” में मध्यप्रदेश के ‘लडैई’ गाँव को पृष्ठभूमि बनाकर उस गाँव में बिजली और जल की आपूर्ती के लिए बनाई गई बाँध से उजड़ते गाँव, ज़मींदारों व साहूकारों के बीच पिसती ग्रामीण जनजीवन, गाँव का प्राकृतिक सौंदर्य, बुन्देली भाषा, भौगोलिक परिवेश एवं बुन्देलखंडी संस्कृति का मर्मस्पर्शी चित्रण किया है| शैलेश मटियानी के उपन्यासों को कुमाऊँ के लोकजीवन का प्रतिबिम्ब माने जाते हैं| उनके “ चौथी मुट्ठी” व “मुख सरोवर के हंस” जैसे उपन्यासों में कुमाऊँ के जनजीवन की सांस्कृतिक विशेषताओं के

[1]साथ अशिक्षा, गरीबी, यातायात-चिकित्सा सम्बन्धी असुविधाओं तथा वहां के जनजीवन की सामाजिक विषमताओं तथा गाँव के पिछडेपन को भी अंकित किया हैं | मिथिलेश्वर के "माटी के कुम्हार" और "सुरंग में सुबही" में बाजारवाद व उपभोक्तावाद के बढ़ते प्रभाव से उजड़ रही ग्रामीण संस्कृति का चित्रण हुआ है|

बाजारवाद के इस युग में मानव ने गाँव के साथ छेडछाड की है| गाँव की जीवन शैली, रहन-सहन, मूल्य आदि को परिवर्तन किया है| ग्रामीण संस्कृति को हाशिये पर थकेल दिया है| हम आज पश्चिम का अन्धानुकरण कर रहे हैं| इसलिए ग्रामीण त्योहार-पर्व और लोक कलाएं प्रायोजित कार्यक्रम बन गए हैं| आंचलिक उपन्यासों ने अपसंस्कृति के दौर में ग्रामीण मूल्यों व संस्कृति का प्रचार करके आम आदमी के जीवन संघर्ष को वाणी दी है|

विस्थापन

समकालीन दौर की एक बहुत बड़ी समस्या है-विस्थापन| विस्थापन का अर्थ है-'अपने घर से उजाड़ दिया जाना' या 'मूल से उखड़कर इधर-उधर बिखर जाना'| विथापन के कई कारण हो सकते हैं| उसमें युद्ध या अन्य राजनीतिक कारण, प्राकृतिक या मानव-गठित संकट आदि आते हैं| आदमी कभी अपनी इच्छा से या कभी मजबूरी वश और कभी बलपूर्वक भी विस्थापित होते हैं| अपनी ज़मीन से या देश से विस्थापित लोग मानसिक रूप से टूट जाते हैं और हमेशा यहाँ लौट आने के लिए तरसते रहते हैं|

विस्थापन निरंतर चल रहा है| बंगलादेश,बर्मा, श्रीलंका, अफगानिस्तान जैसे देशों से भारी संख्या में लोग विस्थापित होकर शरणार्थी का जीवन जी रहे हैं| इसके आलावा लोग अपने देश में भी विस्थापित हो रहे हैं| भारत के सन्दर्भ में 1947 के विभाजन,सन् 1984 तथा 2002 में हुए सिख तथा गुजरात दंगों में अनेक लोग मूल स्थान से विस्थापित हुए हैं| आज प्राकृतिक संकट, विकास योजनायें जैसे बाँध का निर्माण, खदान प्रक्रिया का आरम्भ, शहरीकरण, हवाई अड्डों का निर्माण आदि के कारण कई लोग विअथापित हो रहे हैं| सुन्दरलाल बहुगुणा ने लिखा है- " विकास परियोजनाएं जब वन क्षेत्रों में पहूँचती है तो उनके साथ विस्थापन की त्रासदी भी पहूँचती है|"[1] सन् 1972 के तिहारी बांध परियोजना, सन् 1990 के बारगी बाँध आदि कई बाँध निर्माण से लाखों लोग बेघर हो गए हैं| इन विकास योजनाओं से विस्थापित होने वाले मुख्य रूप से जनजाति लोग हैं| इनके ऊपर हो रहे शोषणों के सम्बन्ध में सुन्दरलाल बहुगुणा ने यों लिखा है- " समतल मैदानी क्षेत्रों में जंगलों का सफाया करके व उपजाऊ कृषि भूमि को निगलकर विकास आदिवासी और पर्वतीय क्षेत्रों की ओर बढ़ रहा है| वहां के लोगों ने सादगी का जीवन जीकर प्राकृतिक संसाधनों का उपयोग किया| उन्हें बचाकर रखा; जल, जंगल और ज़मीन उनके जिंदा रहने के आधार थे| बाज़ार की अर्थव्यवस्था से भिन्न उनके संयपूर्वक उपयोग पर सतत उत्पादन की अर्थव्यवस्था उनके जीवन का आधार थी| अब विकास परियोजनाएं उनकी भूमि का मूल्यांकन अपनी आवश्यकताओं के अनुसार रूपए-पैसों में कर उनको लुभाने का प्रयास

[1]सुन्दरलाल बहुगुणा - धरती की पुकार , पृ : 35

कर रही है|"[1] इसप्रकार विस्थापन का लाभ अभिजात वर्ग या राजनीतिज्ञ उड़ाते हैं तो उसका दुःख निचले तबके के साधारण लोगों को झेलना पड़ता है| समकालीन हिन्दी उपन्यासकारों ने बीसवीं सदी की इस ज्वलंत समस्या एवं उसके विविध रूपों को और दुष्परिणामों को मुख्य विषय के रूप में प्रस्तुत किया है|

समकालीन हिन्दी उपन्यासों में विकास-योजनाओं के कारण विस्थापित आदिवासी जीवन का चित्रण देख सकते हैं| संजीव के " सावधान!नीचे आग है", "धार", और "पाँव तले की दूब" में गलत ढंग के विकास परियोजनाओं से उत्पन्न पर्यावरण संकट एवं विस्थापन को अंकित किया गया है| "धार" में बांसगडा गाँव में तेजाब कारखाने से संथाल जनजाति ज़मीन से बेदखल होते हैं| "पाँव तले की दूब" में पंचपहाड के खनिज बहुल क्षेत्र में एन-टी-पी-सी के लिए सरकार आदिवासियों की ज़मीन का अधिग्रहण करते हैं | यहाँ से विस्थापित आदिवासी कटी हुई पतंग की तरह यहाँ-वहां बिखर जाते हैं| "सावधान! नीचे आग है" में चन्दनपुर के कोयला खदान के कारण विस्थापित होने के लिए मजबूर आदिवासियों का चित्रण हुआ है| वीरेन्द्र जैन के "डूब" में लडैई गाँव में बाँध के आने से गांववाले ज़मीन से विस्थापित होते हैं| उनके "पार" में भी विकास के नाम पर उजड़ते गाँव का चित्रण है|

15 अगस्त 1947 को भारत का विभाजन हुआ और विस्थापन की समस्या भी सामने आई| समकालीन हिन्दी उपन्यासों में विभाजन,

---

[1] सुन्दरलाल बहुगुणा - धरती की पुकार , पृ : 30

विभाजनोपरान्त भारत के हिन्दू-मुसलमानों तथा शरणार्थियों व मोहाजिरों की समस्याओं को भी अभिव्यक्ति दी है| द्रोणवीर कोहली कृत “वाह कैंप” में ‘वाह’ नामक गाँव में स्थित रिफ्यूजी कैंप का चित्रण हुआ है जो देश-विभाजन के वक्त पश्चिमोत्तर भारत का सबसे बड़ा शरणार्थी शिविर था| बलवंत सिंह कृत “कला कोस” ने पंजाब के बंटवारे की कहानी को प्रस्तुत किया है| इसमें विस्थापित मुसलमानों को लेकर जानेवाली गाडी का चित्रण किया है| गाडी के अन्दर बच्चे, बड़े, बूढ़े, औरतें सब गर्मी, भूख, प्यास और भय से सहमे हुए बैठे थे| कमलेश्वर के “कितने पाकिस्तान” में भारत-विभाजन की त्रासदी को प्रस्तुत करते हुए भारत और पाकिस्तान की ओर भाग रहे बेघर लोगों की त्रासदी को वाणी दी है| नासिरा शर्मा कृत “जिंदा मुहावरे” बेघर मुसलमानों की दुःखद ज़िंदगी को प्रस्तुत किया है| मंजूर एहतेशाम कृत “सूखा बरगद” में भी भारत के मुसलमानों की असुरक्षा से उत्पन्न डर एवं अजनबीपन को अभिव्यक्त किया है|[1] देश-विभाजन के साथ राजनीतिक कारणों से भी कई लोग विस्थापित हो गए थे| इसमें कश्मीर पंडितों के विस्थापन मुख्या है| चंत्रकांता का “कथा सतीसर” में विभाजन के बाद कश्मीर का तर्कभूमि बनना, आतंकवाद का पनपना आदि प्रस्तुत किया है| आतंकवाद से डरकर हिन्दू पंडितों को वादी छोड़ना पड़ता है| मनीषा कुलश्रेष्ठ का “शिगाफ़” कश्मीर के आतंकवाद और हिन्दू आतंकवाद को चित्रित किया है| क्षमा कौल का “दर्दपर” भी कश्मीर के हिन्दुओं पर हो रहे शोषण, अन्याय एवं विस्थापन का दर्दनाक चित्र प्रस्तुत करता है|

इसप्रकार समकालीन हिन्दी उपन्यासकारों ने भारतीय परिप्रेक्ष्य में हुए विस्थापन के विविध रूपों को प्रस्तुत किया है| विस्थापन और उसके विभिन्न कारणों पर भी उन्होंने बखूबी प्रकाश डाला है| विस्थापित लोगों को सांस्कृतिक-सामाजिक-राजनीतिक-नैतिक तथा आर्थिक समस्याओं का सामना करना पड़ता है| वे मानसिक तनाव एवं संघर्षों से गुज़रते हैं| समकालीन उपन्यास इनकी त्रासद ज़िंदगी को सफलतापूर्वक चित्रित किया है|

पारिस्थितिक सजगता

बाजारवाद, भूमंडलीकरण, औध्योगीकरण आदि ने समाज में भोगवादी मानसिकता को जन्म दिया है| मनुष्य की लालची स्वभाव ने प्रकृति को बड़ी बेरहमी से दोहन किया है| वन-वृक्षों, वनस्पतियों, जीव-जंतुओं, जलाशयों का तेज़ी से विनाश हो रहा है| पर्वतीय क्षेत्रों में इसका भयावह विनाश देख सकते हैं| इससे प्रकृति क्रुद्ध हो गयी है और संतुलन बिगड़ गयी है| आज नदी और पानी को लेकर विभिन्न राज्यों तथा पड़ोसी देशों के बीच झगड़े तक हो रहे हैं| समकालीन हिन्दी उपन्यास पारिस्थितिक अवबोध की दृष्टि से सफल रहा है| उसमें आज के पर्यावरण संकट एवं मनुष्य की भोगवादी वृत्ति का पर्दाफाश हुआ है|

आज पर्यावरण प्रदूषण को लेकर सब चिंतित है| इसके पीछे मनुष्य की स्वार्थ लिप्सा है| पर्यावरण मानव के जीवन का आधार है| उसको नष्ट पहूँचाने का मतलब अपने आपको कष्ट में डालना है| पर्यावरण हमारे चारों ओर का आवरण है| दूसरे शब्दों में कहें तो किसी जीव के आसपास के मौलिक और

जैविक परिवेश को पर्यावरण कहते हैं| इसको ‘इकोलॉजी’ भी कहते हैं| ‘इकोलॉजी’ ज्ञान की एक नयी शाखा है| इसके जनक अर्नेस्ट हैकल ने इकोलॉजी (पारिस्थितिकी) को जीवों एवं उनके पर्यावरण के परसपर संबंधों का अध्ययन कहा है| इसके अंतर्गत पांच महातत्व पृथ्वी, आकाश, जल, अग्नि और वायु, पर्वत, नदी, वनस्पति और अन्य तमाम जीव-जंतु भी समाहित हैं – “ इकोलॉजी शब्द ग्रीक भाषा के दो शब्दों आइकोस एवं लोजोस से मिलकर बना है| आइकोस ग्रीक भाषा में निवास स्थान को तथा लोजोस अध्ययन को कहते हैं| अतः इकोलॉजी शब्द का अभिप्राय जीवाणुओं के निवासीय स्थान के अध्ययन से है|.............इकोलॉजी जीव विज्ञान की वह शाखा है जो जीवित चीज़ों की आदतें तथा विशेष तौर पर जीवों का पर्यावरण से सम्बन्ध बताते हैं|”[1] पर्यावरण मनुष्य के साथ-साथ अन्य जीव जगत के लिए भी अनिवार्य है| भारतीय संस्कृति अरण्य संस्कृति थी| ऋग्वेद आदि में जल, वायु, नदी, पहाड़, समुद्र, वनस्पति आदि को माँ की तरह मानकर उनको हमेशा सुरक्षित रखने की हिमायत दी है| यहाँ प्राकृतिक वस्तुओं में दैवी शक्ति का आरोप लगाकर पूजा-अर्चना करने की महान संस्कृति है| आज सब कुछ बदल गए हैं|

पर्यावरण आज कई तरह से प्रदूषित हो रहा है| पेड़ों के काटने को दंडनीय माननेवाले भारतीय आज बढ़ती संख्या में वनों का नाश करने लगे हैं| वन तथा पेड़ पौधे ही जल चक्र एवं वायु चक्र को नियंत्रित करते हैं और मिट्टी का संरक्षण करता है| प्रकृति के साथ किए जा रहे अमानवीय खिलवाड़ का दुष्परिणाम है-भूकंप, बाढ़, बढ़ता तापमान, बदलते मौसम, अकाल, ओज़ोन

[1] प्रेमचंद ‘मधुवाल’ - पर्यावरण और हमारा जीवन , पृ : 86

परत का क्षरण, पिघलती बर्फ, सुनामी आदि| पर्यावरण संतुलन नष्ट होने पर अनेक पर्यावरणीय समस्य्यायें उत्पन्न होती हैं| पर्यावरणीय समस्याओं में सबसे महत्वपूर्ण पर्यावरण का प्रदूषण है - " पर्यावरण प्रदूषण से तात्पर्य है वातावरण के भौतिक, रासायनिक, जैविक अवस्था में ऐसा परिवर्तन जिससे मानव, जानवर, वनस्पति अथवा नैसर्गिक प्रतीकों को हानि पहुंचे| पर्यावरण-प्रदूषण का अर्थ होगा मानव अभिप्रेरित ऐसे परिवर्तन जिनसे प्राकृतिक वातावरण की गुणवत्ता का ह्रास हो|"[1] बढ़ती जनसंख्या, औध्योगीकरण,शहरीकरण, विकास योजनायें आदि से पर्यावरणीय समस्याओं में वृद्धी हुई है| जल, वायु एवं मिट्टी का प्रदूषण विश्वव्यापी समस्या बन गयी है| समकालीन हिन्दी उपन्यासों में बाजारवाद के इस युग में मनुष्य एवं प्रकृति के बीच के आत्मीय सम्बन्ध नष्ट होने पर गंभीरता से विचार हुआ है|

नासिर शर्मा के "कुइयाजान" में पानी की समस्या, जल प्रदूषण एवं उससे उत्पन्न बीमारियों चर्चा हुई है| इसमें छत्तीसगढ़ के एक गाँव में सरकार द्वारा वहां के पानी को 'प्राइवेट प्रॉपर्टी' बनाकर गांववालों को शुद्ध पानी से वंचित रखते हैं| आज मानव प्राकृतिक संपदाओं का अनुचित दोहन करता है| संजीव के "धार" में बांसगडा नामक गाँव में तेजाब के कारखाने की वजह से उत्पन्न पारिस्थितिक संकट एवं इसके खिलाफ आदिवासियों के विद्रोह को दर्शाया है| गंधक के तेज़ाब फैक्टरी से जंगल के पेड़-पौधे, जानवर और सम्पूर्ण पर्यावरण प्रदूषित होता है| उनके "सावधान! नीचे आग है" में झरिया और धनबाद के कोयलांचल एवं खनन उध्योग से प्रकृति का प्रदूषित होना चित्रित

[1] गोपीनाथ श्रीवास्तव - पर्यावरण प्रदूषण , पृ : 22

किया है| वहां लगातार खनन होने पर धरती बंजर होती है, नदी-कुँए सूख जाती है, पूरा वातावरण धूल से प्रदूषित होता है| खनन से निकलने वाले गंदे पानी से दामोदर नदी प्रदूषित हो जाता है और अनेक जीव-जंतुओं की जान नष्ट हो जाती है| खदान के लिए भारी संख्या में पेड़-पौधों को काटने पर जंगली जीव-जंतुओं का आवास नष्ट हो जाता है| लेखक ने प्रस्तुत उपन्यास के ज़रिए 'ग्लोबल वार्मिंग' जैसे ज्वलंत पर्यावरणीय समस्याओं की ओर पाठकों का ध्यान खींचा है| राकेश कुमार सिंह के "जहाँ खिले हैं रक्तपलाश" में प्रकृति के ऊपर मानव के अमानवीय हरकतों का चित्रण देख सकते हैं| इसमें पलामू नामक आदिवासी इलाके के वनों का नाश, रोहला कोस्टिक फैक्ट्री तथा अन्य कारखानों से फेंकने वाले कूड़े-कचरों से दामोदर नदी का प्रदूषित होना, कारखानों से निकलने वाले रासायनिक पदार्थों से आदिवासियों तथा जीव-जंतुओं का बीमार होना आदि गंभीर पर्यावरणीय समस्याओं पर प्रकाश डाला है|

मनुष्य की लालसाएं प्रकृति को नुक्सान पहूँचाता है| प्रकृति के साथ बेरहमी करने वाले इंसान को उसका दुष्परिणाम भी भुगतान पड़ता है| मैत्रेयी पुष्पा के "इदन्नमम" में विध्यांचल के सोनपुरा नामक गाँव में पहाड़ों के दोहन करने से उत्पन्न पारिस्थितिक संकट को बखूबी दर्शाया है| पहले सोनपुरा घने जंगलों, नदियों ,वनस्पतियों से संपन्न था जो बदल जाता है| पहाड़ के दोहन से चारों ओर धूल है,पेड़-पौधों के स्थान पर कंक्रीट मकानें हैं|मनमोहन पाठक ने "गगन घटा घहरानी" में झारखण्ड के पलामू क्षेत्र के पर्यावरण संकट को अंकित किया है| इसमें 'मुरहू' नामक गाँव का शहर में

तब्दील होने की भयावह स्थिति को दर्शाया है| सुभाष पन्त के “पहाड़ चोर” में ‘झंडूखाल’ नामक पहाडी इलाके के चूने के पहाड़ों की चोरी की कथा चित्रित किया है| वीरेन्द्र जैन के “डूब” में बाँध परियोजना के दुष्परिणामों का चित्रण किया है| इसमें मध्यप्रदेश और उत्तर प्रदेश के शहरों के वैध्युतीकरण के लिए तैयार किये ‘टिहरी डैम प्रोजेक्ट’ से गाँव एवं जंगली इलाकों का उजड़ना, धरती का बंजारा होना, पशु-पक्षियों का आवास नष्ट होना आदि चित्रित किया है|

इसप्रकार समकालीन उपन्यासों में मनुष्य और प्रकृति के आपसी सम्बन्ध और उसमें आये परिवर्तनों को बड़ी संजीदगी के साथ प्रस्तुत किया है| उन्होंने यह चेतावनी दी है कि प्राकृतिक संतुलन में व्यवधान डालना सम्पूर्ण जीव जगत को विनाश की ओर ले जाना ही है| इन समस्याओं से अवगत समकालीन उपन्यासकार की रचनाएं पारिस्थितिक विनाश के खिलाफ प्रतिरोध का दस्तावेज़ हैं|

आदिवासी-जनजाति विमर्श

भारतीय संस्कृति में आदिवासी या जनजाती संस्कृति का महत्वपूर्ण स्थान है| मुख्यधारा समाज इन्हें असभ्य और असंस्कृत मानकर हमेशा हाशिये पर थकेल देते हैं| आदिवासी समाज आदिम युगों से जंगलों में निवास करने के कारण ‘वनवासी’ कहलाये जाते हैं| उनका जीवन एवं संस्कृति प्रकृति से जुडा हुआ है| वे अपनी संस्कृति, रहन-सहन, परंपरा, रीति-रिवाज़ एवं त्योहार-पर्व के कारण मुख्यधारा से अलग अस्तित्व रखते हैं- “जनजातीय संस्कृति उन

लोगों की संस्कृति है, जो या तो गिरिजन कहलाते हैं अथवा नितांत वन्य| उनके जीवनयापन में पिछडेपन हैं, उनकी बौद्धिक सीमाएं नितांत उनके परिवेश अथवा जातीय परंपरा तक सीमित हैं|"[1] वे घने जंगलों, पहाड़-पर्वतों, घाटियों-दर्रों में अपना जीवन जीते हैं| उस जंगल एवं वन संपदाओं पर उनका ही अधिकार था| उन्हें किसी की मंजूरी लेने की ज़रुरत नहीं थी| भूमंडलीकरण और बाजारवाद के इस युग में आदिवासी समाज के सामने अपने अस्तित्व का संकट गहराता जा रहा है| उन्हें अपनी भूमि से विस्थापित होना पड़ रहा है| इस सन्दर्भ में रमणिका गुप्ता जी ने लिखा है- " आज तक आदिवासी अपने शोषण का मूक दर्शक बन रहा है| महाजन,ठेकेदार, दल्लाल,दिकू, राजा, नवाब या मैदानी लोग सब उसके जंगलों को और उसकी औरतों को लूटते रहे हैं| उसका रोज़गार छीनते रहे हैं| विस्थापन उसकी ज़िंदगी का दर्द बना दिया गया है| आजादी के बाद देश के विकास का हर कार्यक्रम आदिवसी की कीमत पर हुआ है| विकास की कीमत वह अपने विस्थापन से अदा करता रहा है|"[2] इसप्रकार उन्हें जंगल और ज़मीन से बेदखल करके उनको जबरन मूल भाषा, परिवेश, स्थान और पहचान से अलग किया जाता है| वे अपने अस्तित्व को बनाये रखने के लिए निरंतर संघर्ष करते हैं और इस संघर्ष एवं प्रतिरोध ने आन्दोलन का रूप ले लिया है| समकालीन हिन्दी उपन्यासकारों ने आदिवासी जनजाति के मूल्यों, परम्पराओं, मान-मर्यादाओं, रीति-रिवाजों,त्योहार-पर्वों को रेखांकित करके आदिवासी अस्मिता को उजागर किया है|

---

[1] रामप्रवेश सिंह - लोकायत और जनजातीय संस्कृति , पृ : 260

[2] रमणिका गुप्ता - आदिवासी स्वर और नई शताब्दी , पृ : 10-11

संजीव ने अपने उपन्यासों के माध्यम से आदिवासी जीवन की गरिमा और उपलब्धियों को उजागर किया है| उनके "धार" में संथाल परगना के बांसगडा आँचल के आदिवासियों की व्यथा-कथा को व्यापक फलक पर अभिव्यक्ति दी है|वहां के कोयला खदान में दिन-रात मेहनत करनेवाले आदिवासियों को पूंजीपति, ठेकेदार, पुलिस आदि शोषण करते हैं| 'मैना' नामक आदिवासी युवती के नेतृत्व में इन शोषणों के खिलाफ संघर्ष होता है| उनके "जंगल जहाँ शुरू होता है" में थारू जनजाति के जीवन संघर्ष का चित्रण हुआ है| झारखण्ड आन्दोलन की पृष्ठभूमि पर लिखित लघु उपन्यास "पाँव तले की दूब" में आदिवासी जीवन के अन्तरंग का आत्मीय परिचय कराया है| "सावधान नीचे आग है" में झरिया क्षेत्र की कोयला खदान की आदिवासी मजदूरों के शोषण की त्रासद कथा का अंकन हुआ है|

वीरेन्द्र जैन ने "डूब" और "पार" में बुंदेलखंड के आदिवासियों के जीवन का दस्तावेज़ प्रस्तुत किया है| दोनों में विकास परियोजनाओं के कारण विस्थापित होने के लिए मजबूर आदिवासियों के जीवन संघर्ष का चित्रण हुआ है| हबीब कौफी के "गमना" में राजस्थान के गरासिया आदिवासी समाज का चित्रण हुआ है| मनमोहन पाठक ने "गगन घटा घहरानी" में झारखंड के पलामू क्षेत्र के उराँव आदिवासियों के शोषण, विस्थापन आदि को प्रस्तुत किया है| शिवप्रसाद का "शैलूष" उपन्यास आदिवासी नट जीवन का दस्तावेज़ है| यायावर बिताने वाले नट जनजाति के शोषण एवं संघर्ष इसका मुख्य प्रतिपाध्य है| कबूतर जनजाति भी घुमक्कड़ है| मैत्रेयी पुष्प ने "अल्मा कबूतरी" में कबूतरा जनजाति की जीवन गाथा को अंकित किया है| बुंदेलखंड की

'बेड़िया' जनजाति समुदाय विशेष के कारण देह व्यापर करती है| शरद सिंह ने इसको मुख्य विषय बनाकर "पिछले पन्ने की औरतें" लिखा है|इसमें वेश्यावृत्ति करने वाली बेडनियों की विभिन्न समस्याओं पर लेखिका ने प्रकाश डाला है| कंजर जनजाति भी बेडनियों की तरह देह व्यापर को धंधे के रूप में अपनाया है| भगवानदास मोरवाल ने "रेत" में कंजर औरतें के शोषण के साथ-साथ उनके विद्रोह को भी चित्रित किया है|

भारत में असंख्य जनजातियाँ सदियों से हाशिये पर खड़े हैं| स्वतंत्र भारत में समाज की मुख्यधारा के किनारे फेंक दिए गए अदृश्य या अभावग्रस्त लोग आज अपने अस्तित्व की रक्षा के लिए लडाई लड़ रहे हैं| समकालीन हिन्दी उपन्यासों में इनकी सांस्कृतिक विशेषताओं, विभिन्न शोषणों, संघर्षों को बारीकी से चित्रण हुआ है| समकालीन हिन्दी उपन्यासकारों ने इनकी प्रतिरोधी चेतना को वाणी दी है|

वृद्ध विमर्श

बाजारवाद के इस युग में मानवीय संबंधों का महत्व शिथिल होता जा रहा है| नव-उपनिवेशवादी संस्कृति ने व्यक्ति को वस्तु में बदल दिया गया है और पैसा ही सब कुछ हो गया है|वृद्धावस्था में प्रत्येक व्यक्ति को दूसरों पर निर्भर रहना पड़ता है| भारतीय संस्कृति में बूढों या बुजुर्गों का आदर और सेवा करना हमारा दायित्व माना जाता था| भूमंडलीकरण से उत्पन्न अपसंस्कृति ने वृद्धों के प्रति दृष्टिकोण को बदल डाला है| भारतीय समाज में संबंधों की जडें गहरी थी| आज उसमें खोखलापन आ गया है| आज

माता-पिता सेवानिवृत्त होकर या बूढ़े होने पर उपेक्षा का शिकार होने लगता है| इनके अकेलेपन के बारे में स्वाति तिवारी ने लिखा है- “वास्तव में सामाजिक, मानसिक, आर्थिक और संस्कारजन्य समस्याओं और उलझाव को झेलनेवाला वर्ग अगर कोई है तो वह सूर्यास्त की ओर बढ़ता जीवन संध्या के दौर से गुज़रता हुआ हमारा बुज़ुर्ग वर्ग ही है| जिसकी एक ही कमाई पर कभी पूरा परिवार आश्रित हुआ करता था, आज वही जब उसी परिवार पर आश्रित होता है तो बदले में पाता है घर, परिवार, समाज या कहें तो अपनों से ही उपेक्षा, तिरस्कार और दर-दर की ठोकरें| उपेक्षा के शिकार इस वर्ग की नियति आज आँगन भर धरती भी नहीं, खटिया भर धरती और खिड़की भर आकाश ही बची है|”[1] इसप्रकार बुढ़ापे की सबसे बड़ी समस्या अकेले होने की है|

बुढ़ापा जीवन का अंतिम पड़ाव है| इस अवस्था में उनके सामने अनगिनत समस्याएं हैं जैसे शारीरिरिक-मानसिक कमजोरी, सामाजिक प्रतिष्ठा का ह्रास, देख-रेख करने वालों का आभाव, वैधव्य, अकेलापन, अवकाश प्राप्ति और आर्थिक कठिनाईयां आदि|- “वास्तव में युवावस्था में हमारे शरीर में शक्ति, स्फूर्ति तथा सहनशीलता होती है| हम किसी सीमा तक शरीर को हानि पहूँचाने वाले कार्यों को सहन कर जाते हैं, लेकिन वृद्धावस्था में हमारी इन्द्रियाँ तथा शरीर के भीतरी अंग काम करते-करते दुर्बल हो जाते हैं| उसमें न तो सहनशीलता रहती है और न प्रतिरोधक शक्ति|”[2] बाजारवादी युग में भौतिक वस्तुओं की तरह वृद्ध व्यक्ति परिवार की श्रद्धा का केंद्र न

---

[1] स्वाति तिवारी - अकेले होते लोग (वृद्धावस्था पर केन्द्रित मनोवैज्ञानिक दस्तावेज़) , पृ : 22

[2] आचार्य कृष्ण कुमार गर्ग - वृद्धावस्था में सुख-शांति से कैसे जीयें , पृ : 19

होकर मात्र उपभोग की वस्तु बन गया है| एकल परिवार ने बुढ़ापे को एक गंभीर समस्या के रूप में परिवर्तित किया है| नयी पीढी जो भौतिक सुख-सुविधाओं के पीछे भागते हैं, मुनाफे के बारे में सोचकर रिश्ते बनाते हैं और निभाते हैं| इस तेज़ रफ़्तार में पीछे रह जाने वाले बुज़ुर्ग इनके लिए बोझ है| इन वृद्धों के लिए सरकार एवं विभिन्न संगठनों ने वृद्धाश्रम, उपचार क्लब आदि की व्यवस्था की है| इनके बावजूद वे अकेलेपन से मुक्त नहीं हो पा रहे हैं| समकालीन हिन्दी उपन्यासों ने इनके अकेलेपन एवं अन्य समस्याओं पर गौरवपूर्ण चर्चा की है|

कृष्ण सोबती के “समय सरगम” में उच्चवर्गीय वरिष्ठ नागरिकों के अकेलेपन, महानगर में उनकी स्थिति, असुरक्षा आदि को बड़ी संजीदगी के साथ प्रस्तुत किया है| [1]लेखिका ने अपने अनुभवों से मार्मिक प्रसंगों को जोड़कर तथा वृद्ध जनों के अन्तरंग संवादों को मिलाकर उसे मूर्त रूप दिया है| इसमें ‘ईशान’ और ‘अरण्या’ नामक दो बूढों के जीवन की जटिलता का मार्मिक चित्रण हुआ है| अरण्या ने वृद्धों के प्रति नयी पीढी के रवैये पर आक्रोश किया है| दमयंती, विधुर प्रभुदयाल आदि बूढ़े पात्र भी परिवार से उपेक्षित एवं अकेलेपन से पीड़ित बूढ़े हैं| चित्र मुद्गल के “गिलिगडु” ने नयी तरह से वृद्धों के जीवन को अनावृत किया है| इसमें ‘जसवंत सिंह’ नामक विधुर को बेटे-बहुओं से निर्मम व्यवहार झेलना पड़ता है| अंत में वह अकेलेपन और कटु यथार्थों के कारण तमाम सामाजिक मर्यादाओं का उल्लंघन करके अपने घर की नौकरानी से शादी करता है| राकेश वत्स ने भी “फिर लौटते

हुए" में जसवंत की तरह सशक्त एवं विद्रोही वृद्ध का चित्रण किया है| इसमें 'दिवाकर शर्मा' अपनी प्रतिष्ठा और सम्मान वृद्धावस्था में बनाये रखने का प्रयत्न करता है| वह एक अस्पताल चलाकर अन्य बूढ़े मित्रों के सहयोग से मरीजों की सेवा करता है|

अमृतलाल नागर के "करवट" में 'भुल्ली लाला' नामक 73 वें वर्ष के बुज़ुर्ग पात्र का अपनी पत्नी और बेटे की मृत्यु के बाद अकेले पड़ने की त्रासद कथा को चित्रित किया है| परिवार से उपेक्षित भुल्ली खटिया पर लेटकर मृत्यु की प्रतीक्षा करता है| दूसरी तरफ 'विपिन' नामक पात्र है जो दोनों बेटों द्वारा उपेक्षित है और अकेलेपन में जीता है| अल्का सरावगी ने "शेष कादम्बरी" में बच्चों की व्यस्तता के कारण अकेली पडी 'रूबी दी' के जीवन की सच्चाई को अंकित किया है| निर्मल वर्मा के "अंतिम अरण्य" का मुख्य प्रतिपाध्य वृद्धों का अकेलापन है|

समाज में वृद्धों की स्थिति दिन-प्रतिदिन भिखारियों से भी बदतर होता जा रहा है| "यूज़ एंड थ्रो" संस्कृति ने वृद्धों को कूड़े-कचड़े के समान फेंक देने की मानसिकता को प्रोत्साहन दे रहा है| पूरी ज़िंदगी परिवार, बच्चे एवं समाज के लिए समर्पित ये बूढ़े अंतिम पड़ाव में सबसे उपेक्षित है| समकालीन उपन्यासों ने वृद्धों की इस दुर्गति एवं इने-गिने विद्रोह को भी सफलता के साथ प्रस्तुत किया है|

गांधी चिंतन

गांधीजी इतिहास नहीं वर्तमान है| भूमंडलीकरण के इस युग में उनकी प्रासंगिकता बढ़ती जा रही है| गांधीवाद एक सम्पूर्ण जीवन दर्शन है|मूल्य विघटन के वर्तमान दौर में गांधीवाद एक विकल्प के रूप में हमारे सामने है| आज चारों ओर विकास और तरक्की की बात हो रही है जो वास्तव में मूल्य विघटन या ह्रास है| इसकी पहचान के परिणामस्वरूप आज गांधी एवं गांधी-चिंतन पर नए ढंग से विचार विमर्श हो रहा है| भारतीय समाज एवं संस्कृति की रक्षा इस गांधीवाद में निहित है| इस सन्दर्भ में राजकिशोर ने लिखा है- " गांधीवाद को गांधी के बाहर खोजना नादानी है| यह विद्वत्ता की चीज़ नहीं, बरतने की चीज़ है| गांधी की प्रशंसा इस बात में नहीं है कि उनके जीवन या विचारों पर कितने सफ़ेद पन्ने स्याह किये गए| जो गांधी की राह पर चलने की यथासाध्य कोशिश करेगा, वही गांधीवादी होने का यत्किंचित दावा कर सकता है| गांधी कलम इसका एक उदहारण है| अगर हम गांधी कलम के पीछे कार्यरत विचार से सहमत हैं तो गांधी सड़क, गांधी रेल, गांधी ऑफिस, गांधी सभागार, गांधी सिनेमाघर, गांधी कार,गांधी अखबार आदि की कल्पना कर सकते हैं | यह विचार आग की तरह फैलता है तो भारत में न अतिशय गरीबी रहेगी न अतिशय अमीरी |"[1] नव-उपनिवेशवादी दौर में गांधीवाद पर पुनर्चिन्तन करने की आवश्यकता है | भारतीय भाषाओं में ऐसा

---

[1] राजकिशोर - गांधी मेरे भीतर , पृ : 23

कोई साहित्य न होगा जिस पर गांधीजी का असर न पड़ा हो |भारतीय भाषाओं के सम्पूर्ण साहित्य में उनके जीवन दर्शन का चित्रण हुआ है |गांधीजी ने हमेशा सामंतवाद एवं मनावतावाद में दूरी नहीं थी| नव साम्राज्यवादी दौर में गांधी को भी बाज़ार की 'वस्तु' बना दिया गया है | इस सन्दर्भ में शम्भुनाथ लिखते हैं – " कहा जा सकता है कि आज के ज़माने में गांधी बेहद असुविधाजनक हैं ,खासकर उनकेलिए, जो नए साम्राज्यवादी रास्तों से या सामंती समाज के बचे तत्वों को हथियार बनाकर विकास और सत्ता का सुख हासिल करना चाहता है |"[1] फिर भी गांधी की प्रासंगिकता घटती नहीं है | वे आज भी भारत केलिए ही नहीं सम्पूर्ण विश्व केलिए प्रेरणादायक स्रोत हैं | समकालीन उपन्यासकारों ने गांधी दर्शन के परिप्रेक्ष्य में समकालीन स्थितियों और घटनाओं पर विचार-विमर्श किया है| इन उपन्यासों में गांधी कभी प्रतीकात्मक रूप में आते हैं और कभी विचारधरा के रूप में |

गिरिराज किशोर के "पहला गिरमिटिया" में गांधीजी को गिरमिटिया मजदूरों को शोषणमुक्त करनेकेलिए संघर्षरत चरित्र के रूप में प्रस्तुत किया है | भारत में गरीब किसानों को जहाज़ में भरकर फिंजी ,सूरीनाम, डच, मारीशस तथा दक्षिण ले जाया गया था|इन गिरमिटिया मस्दूरों की नारकीय जीवन को लेखक ने प्रस्तुत किया है | गाधीजी ने उस समय दक्षिण आफ्रिका जाकर हज़ारों भारतीय मजदूरों के बुझी चेतना को प्रज्वलित किया | इस में गांधीजी को भय,संकोच, घबराहट और ढेर सारी अन्य मानवीय कमज़ोरियों

[1] शंभुनाथ - भारतीय अस्मिता और हिन्दी , पृ : 48

से युक्त आम आदमी के रूप में चित्रित किया है | ये उपन्यास गांधी के व्यक्तित्व पर केन्द्रित हैं|

कुछ उपन्यासों में गांधीजी कई पात्रों के माध्यम से हमारे बीच में आते हैं | वीरेन्द्र जैन के "डूब" उपन्यास का 'माते' नामक पात्र गांधी जैसा है | इसमें मध्यप्रदेश के बेतवा नदी में बाँध बनाने की योजना के खिलाफ का आन्दोलन एवं बांध से उत्पन्न पारिस्थितिक संकट का चित्रण किया गया है|इस बाँध परियोजना ने गाँव को उजाड़कर शहरीकरण को बढ़ावा दिया| 'माते' नामक पात्र इसके खिलाफ संघर्षरत है| गांधीजी ने भारत की आत्मा को गाँव में देखा था| उन्होंने यंत्रीकरण का नितांत विरोध किया और सत्य एवं अहिंसा के लिए खड़ा रहा| माते भी चीलगाडी का विरोध करके यंत्रीकरण के प्रति विरोध प्रकट करता है| लेखक ने माते के ज़रिए वर्तमान समय में गांधी विचारधारा को पुनरुज्जीवित किया है|

विवेकी राय ने "समरशेष" और "लोकऋण" नामक उपन्यासों में उजड़ते गाँव, ग्रामीण जीवन के मूल्यों में आये गिरावट आदि का पर्दाफाश किया है| भारत का लोकतंत्र एवं राजनीतिक व्यवस्था की गिरावट को देखकर "समरशेष" का नायक 'संतोषी पंडित' और "लोकऋण" का नायक 'रामरूप' अपना विरोध एवं निराशा व्यक्त करते हैं| वे दोनों गांधी मार्ग पर चलने वाले हैं और हिंसा का विरोध भी करते हैं| उनके "सोनामाटी" नामक उपन्यास में सत्ता का विकेंद्रीकरण, पंचायती राज के दूषित रूप और भ्रष्ट राजनीति को दर्शाया है| पंचायतीराज गांधीजी का सपना था| उन्होंने ग्राम पंचायत के द्वारा ग्रामीण विकास का सपना देखा था| "सोनामाटी" में ग्राम-

पंचायत के अत्याचार,अन्याय, हिंसा, लूटपाट, चोरी-डकैती का चित्रण किया है| लेखक ने गांधीजी के सपनों के साकार होने की अनिवार्यता पर बल दिया है|

अल्का सरावगी के "कलिकथा वाया बाइपास" का 'अमोलक' गांधीवादी है| वह स्वतंत्रता संग्राम में भाग लेता है और बाजारवाद के चकाचोंध से दूर रहता है| अंत में गांधी की तरह सांप्रदायिकता का शिकार बनकर मर जाता है| लेखिका ने अमोलक की सृष्टि करके गांधी को तथा उनके विचारों को पुनर्जीवित किया है| गांधी की तरह अमोलक वर्तमान व्यवस्था के खिलाफ बोलता है| इसप्रकार वह गांधी का प्रतिरूप बन जाता है| मैत्रेयी पुष्पा के "इदन्नमम" के 'मंदा' और 'महाराज' नामक पात्र गांधीजी के प्रतिनिधि बनकर आते हैं| वे दोनों गांधी के सामान गाँव, प्रकृति एवं पर्यावरण की सुरक्षा के लिए आवाज़ उठाते हैं| उदयप्रकाश ने "पीली छतरी वाली लड़की" में नवउपनिवेशवादी शक्तियों के चंगुल में फंसे भारतीय समाज या युवा पीढी को चित्रित किया है| लेखक गांधीजी का पुनः अवतार चाहते हैं| क्योंकि गांधीवादी चिंतन के बिना भारत का सुधार असंभव है|

गांधीजी ने समकालीन सभी साहित्यकारों को अपने विचारों व आदर्शों से प्रभावित किया है| भूमंडलीकरण, बाजारवाद तथा उससे उत्पन्न अनगिनत समस्याओं से देश को बचने के लिए समर्थ व्यक्ति गांधी है| इसलिए समकालीन साहित्य में गांधी कहीं प्रत्यक्ष रूप में तो कहीं परोक्ष रूप में, कहीं व्यक्ति के रूप में और कहीं विचार के रूप में दिखाई देते हैं| वे नयी पीढी को गांधीवादी विचारों से आप्लावित करने का अथक प्रयास कर रहे हैं|

अन्य लघु संस्कृतियाँ

दुनिया भर में जाति, धर्म, लिंग और नस्ल के आधार पर भेदभाव देख सकते हैं| इस भेदभाव ने समाज के कुछ लोगों को हाशिएकृत कर दिया है| उनमें प्रमुख है अल्पसंख्यक समाज| ये अल्पसंख्यक सदियों से वरेण्य वर्ग की संकुचित मानसिकता के शोषण का शिकार हैं| वे लोग इन अल्पसंख्यकों को मानसिक रूप से प्रताड़ित करने की कोशिश करते रहते हैं| येलोग सामाजिक और आर्थिक दृष्टि से उपेक्षित एवं पिछडे हैं| हमारे देश में ये लोग अपनी अस्मिता की रक्षा के लिए जूझ रहे हैं| इन्हें भारतीय नागरिक का दर्जा तक नसीब नहीं है| बाजारवाद के इस दौर में इनकी पहचान मिटाने का कार्यक्रम तेज़ी से चल रहा है| आज ये लोग अपने अधिकार व अस्मिता के लिए प्रतिरोध एवं संघर्ष करने लगे हैं| कृष्णदत्त पालीवाल ने उत्तर आधुनिक दौर में छोटी संस्कृतियों की अस्मिता को बनाये रखने की कोशिश पर विचार किया है- " मूल बात यह है कि उत्तर-आधुनिकतावाद एकीकृत के बजाय विभिन्नता (डिफरेन्स) को बुनियादी सवाल मानता है और केंद्र से परिधि की ओर चल पड़ता है| इसका नतीजा यह हुआ है कि दलित, जनजातियाँ, नारी-समाज, समलैंगिक, स्त्री-पुरुष, हाशिए पर स्थित लोग, दमित-प्रताड़ित, परिधि पर स्थित जातियां, विरोधी-विचार, हर प्रकार के झटके-अटके थमे वे लोग जिनकी पहचान या आवाज़ (सत्ता-राजनीति-संस्कृति) नहीं थी और जिन्हें अभिजात्यवादी-वर्चस्ववादी, अगड़ी जातियों-वर्गों के लोगों ने सज़ा की भागीदारी से बाहर या वंचित रखा था| साथ ही जिन्हें "सांस्कृतिक संवाद" से दूर रखा गया था, अब 'पॉवर शिफ्ट" के युग में अपनी पहचान, अपनी

आवाज़, अपने वर्चस्व के नए समूह बनकर जी-तोड़ संघर्ष करने लगे|"[1] भरता में इनकी प्रगति के लिए कई सामाजिक संगठन, समितियां एवं विकास योजनायें हैं| इसके साथ हमारी मानसिकता में सबसे पहले बदलाव आना चाहिए| हमें इन भिन्नताओं को स्वीकार करके उनके समान नागरिक अधिकारों को मान्यता देकर इन विशिष्टताओं का संरक्षण करना चाहिए | हमारे यहाँ जैन, सिक्ख, मुस्लिम, ईसाई, मारवाड़ी, बौद्ध, पारसी, एंग्लो इंडियन आदि धर्म एवं नस्ल के नाम पर और हिजड़े-गे-लेस्बियन लिंग के आधार पर पिछडे हैं| इन्हें हर क्षेत्र में उपेक्षा और अवहेलना ही मिल रहे हैं| इनकी समस्याओं को समकालीन उपन्यासकारों ने वाणी दी है|

मुस्लिम

मुसलमान भारत के महत्वपूर्ण अंग है| भारतीय संस्कृति और सभ्यता बनाने और विक्सित करने में मुसलमानों का बड़ा योगदान रहा है| हमारे रहन-सहन, वेश भूषा, खान-पान, त्योहार-पर्व, रीति-रिवाज़, भाषा आदि में मुस्लिम संस्कृति का गहरा प्रभाव देख सकते हैं| भारत में तुर्क, इरानी, अरबी, मिस्री आदि अनेक जातियां-प्रजातियाँ शासक वर्ग के रूप में आयी| तुर्क शासकों ने सम्पूर्ण एशिया की मुस्लिम जातियों का नेतृत्व किया| उस समय मुस्लिम समाज तुर्क और गैर तुर्क में बंट गए| तेरहवीं शताब्दी में मध्य एशिया से आये मुस्लिम शरणार्थियों से मुस्लिम जातियों में सम्मिश्रण आरम्भ हो गया| अंतर्जातीय विवाहों के कारण नयी जाति अस्तित्व में आई| इसके साथ मुस्लिम शासकों से प्रभावित होकर कई हिन्दू इस्लाम धर्म

[1] कृष्णदत्त पालीवाल - उत्तर-आधुनिकता और दलित साहित्य , पृ : 21

स्वीकार किया| उस समय के मुस्लमान शासकों ने इनको उदारता की दृष्टि से देखते थे| इसलिए इनकी सामाजिक प्रतिष्ठा बढ़ गई| बाद में अंग्रेजों की कूट्नीतियुक्त शासन-व्यवस्था के कारण समाज में अलगाववाद उत्पन्न हुआ| मुसलमानों को शत्रु के रूप में देखने लगे| आजादी के इतने सालों बाद भी देश की राजनीतिज्ञ अपनी स्वार्थपूर्ती के लिए हिन्दू-मुसलमानों के बीच दरारें पैदा करते हैं|

आज़ादी और भारत विभाजन ने हिन्दू-मुसलमानों के बीच जो दरारें पैदा की थीं अभी तक भरा नहीं है| भारत के बहुसंख्यक विभाजन की ज़िम्मेदारी मुसलमानों पर थोप रहे हैं| इससे उनके मन में अपराध बोध, असुरक्षा, निराशा आदि उत्पन्न होते हैं| सांस्कृतिक राष्ट्रवाद ने मुसलमानों को भी संशय के कठघरे में लाकर खड़ा कर दिया है| वे मुसलमानों को भारतीय संस्कृति नष्ट करनेवाले तत्व के रूप में देखते हैं- “सांस्कृतिक राष्ट्रवाद के सूत्रकार हिन्दुओं और मुसलमानों के बीच की भिन्नता का प्रश्न भी उठाते हैं, मगर भिन्नता क्या स्वयं हिन्दू समाज में नहीं है? सवर्ण, पिछडे, दलित, शैव, वैष्णव, शाक्त, बौद्ध, जैन आदि क्या आपस में भिन्नता नहीं रखते? जुलाहे, पारसी, जुगी (बंगाल में पाई जाने वाली जाति) के बारे में तो अभी तक यह तय नहीं हो पाया कि ये हिन्दू हैं या मुस्लमान| ये सब भारतीय हो सकते हैं तो मुस्लमान विदेशी कैसे हो गए?”[1] भारत में हिन्दू-मुस्लिम संबंधों को लेकर अजीब स्थिति है| दोनों शाताब्धियों से साथ रहकर भी एक दूसरे का विश्वास हासिल नहीं कर पा रहे हैं| आज यह अविश्वास समाज में गहरे तक पैठ चुका

[1] अजय वर्मा - सत्ता,संस्कृति और नवसाम्राज्यवाद , पृ.11

है| हिन्दू समुदाय मुसलमानों के प्रति और मुस्लिम समुदाय हिन्दुओं के प्रति लगातार अविश्वासपूर्ण माहौल में रहता है|- "धर्मनिरपेक्ष राष्ट्र में साथ-साथ रहते हुए भी हिन्दू और मुस्लमान एक दूसरे के मिथकों के बारे में संस्कृति के बारे में कम जानते हैं| पहले हुकूमत करने के दंभ के कारण या बहुसंख्यक समाज में अपनी अलग पहचान रखने की चिंता के कारण, औसत भारतीय मुसलमान कानून, वेश-भूषा, उपासना, भाषा आदि अनेक स्तरों पर अपनी अलग पहचान बनाये रखता है|"[1] समकालीन हिन्दी उपन्यासकारों ने मुस्लिम समाज की त्रासदी, बेचैनी, कुंठा एवं उनकी[2]अस्मिता और सांस्कृतिक पहलुओं पर गंभीरता से विचार करके भारतीय मुस्लिम जीवन का स्वरुप पाठकों के सामने लाया है|

मंजूर एहतेशाम के "सूखा बरगद" में स्वातंत्र्योत्तर भारतीय समाज की हिन्दू-मुस्लिम संघर्ष और अल्पसंख्यक होने के नाते उनकी पीड़ा,दुर्बलता एवं अंतर्द्वंद्व का चित्रण हुआ है| इसमें मध्यप्रदेश के भोपाल शहर के नामी वकील 'वहीद' के परिवार की अंतर्विरोधी भावनाओं का चित्रण हुआ है| वह देश प्रेम के कारण पाकिस्तान जाना नहीं चाहता है| इसमें अमीर-गरीब एवं मध्यवर्ग के मुसलमानों का चित्रण करते हुए मुस्लिम समुदाय के आचार-विचार, रीति-रिवाज़, धार्मिक विश्वास आदि का यथाप्रसंग अंकन किया गया है| शानी के "काला जल" में मध्यप्रदेश के पिछडे जगदलपुर व बस्तर के कस्बानुमा इलाके के निम्न मध्यवर्गीय मुस्लिम परिवारों की आर्थिक-सामाजिक-धार्मिक स्थितियों का अंकन किया है| इसके साथ मुहर्म,

[1] डॉ.वी.के .अब्दुल जलील (सं) - समकालीन हिन्दी उपन्यास:समय और संवेदना , पृ.294-295

नौहाखानी, ताजियेदारी और अन्य धार्मिक विश्वासों व अंतर्विरोधों को भी प्रस्तुत किया है| बस्तर के मुस्लिम समाज में नारी की स्थिति, अशिक्षा, गरीबी आदि की ओर भी लेखक ने इशारा किया है| अब्दुल बिस्मिल्लाह के “झीनी-झीनी बीनी चदरिया” में बनारस के बुनकरों की अभावग्रस्त जीवन को मतीन, रउफ चाचा, लत्तीफ, कमरून, इक़बाल, नजबुनिया जैसे पात्रों के माध्यम से सशक्त ढंग से प्रस्तुत किया है| एक ओर धनाभाव से गरीब बुनकर नारकीय ज़िंदगी गुज़ारते हैं तो दूसरी ओर हाजी वलीउल्ला, हाजी अमीरुल्ला, सेठ गजाधर प्रसाद जैसे शोषक वर्ग उनका निरंतर शोषण करते हैं| उनके “मुखड़ा क्या देखे” में निम्न जाति के मुस्लिम परिवार के जीवन यथार्थ को प्रस्तुत किया है| राही मासूम रज़ा ने “ओस की बूँद” में स्वतंत्र भारत के हिन्दू-मुस्लिम साम्प्रदायिकता का वर्णन किया है| लेखक ने इसमें हिन्दू-मुसलमानों की अच्छाईयों व बुराईयों को निर्भीकता से चित्रित किया है| विभाजन के बाद मुस्लिम परिवार के टूटने-बिखरने का चित्रण भी इसमें हुआ है| बदीउज्जमा के “सभापर्व” में भी भारत-पाक विभाजन के बाद की त्रासदी का अंकन हुआ है| विभाजन से पहले हिन्दू-मुसलमानों के बीच आत्मीयता एवं मैत्री की भावना थी| वे दोनों एक दूसरे की परम्पराओं व संस्कृतियों का सम्मान करते थे| विभाजन के बाद सांप्रदायिक शक्तियों व राजनीतिज्ञों की कुटिलता ने दोनों को एक दूसरे का शत्रु बनाया और एक दूसरे पर हमले करने को भी प्रश्रय दिया| विभूतीनारायण कृत “शहर में कर्फ्यू” और चंद्रकिशोर जायसवाल कृत “शीर्षक” में भी सांप्रदायिक द्वेष से उत्पन्न दंगों का चित्रण हुआ है| नासिरा शर्मा के “जिंदा मुहावरे” में देश

विभाजन के बाद भारत में रह गए मुसलमानों के मनोभाव को तथा उनका मुख्यधारा समाज से दूर रखने और उनके प्रति मुख्यधारा समाज का अविश्वास का चित्रण हुआ है| लेखिका ने “ठीकरे की मंगनी” में मुल्सिम परिवार की सामाजिक समस्याओं के साथ उनके रीति-रिवाज़,मुस्लिम औरतों की दयनीय स्थिति आदि का चित्रण किया है| रवीन्द्र कालिया ने “ खुदा सही सलामत है” में भी समान नियति का चित्रण किया है| मुस्लमान कारीगरों का आर्थिक भाव, अशिक्षा के कारण सामाजिक पिछ्डेपन और मुहर्रम व बकरीद जैसे त्योहारों का भी वर्णन हुआ है| भगवानदास मोरवाल ने “कला पहाड़” में बाबरी मस्जिद ध्वंस और उससे उत्पन्न सांप्रदायिक दंगा और इसका मेवात के मेवा मुसलमानों पर प्रभाव आदि का संवेदनशील चित्रण प्रस्तुत किया है|

इसप्रकार अनेक उपन्यास ऐसे हैं जो भारतीय मुस्लिम समाज के यथार्थ को प्रस्तुत किये हैं| भारत के मुस्लिम समाज में प्रचलित खान-पान, रहन-सहन, वेश-भूषा, त्योहार-पर्व, रस्मो-रिवाज़, भाषा आदि का सूक्ष्म चित्रण इन उपन्यासों में देख सकते हैं|

मारवाडी

राजस्थान के मारवार प्रदेश में रहने वाले लोगों को “मारवाड़ी” कहते हैं| अकबर के शासन काल में ये लोग मारवार से वेस्ट बंगाल, बिहार, उडीसा,झारखण्ड और बांग्लादेश में प्रवेश किया | “मारवाड़ी” शब्द संस्कृत के ‘मरुवत’ शब्द से निष्पन्न है| “मरू” का अर्थ है-“रेगिस्तान”| राजस्थान,

जयपुर, बीकानेर, जालौर, नागौर आदि के निवासियों को मूलतः मारवाड़ी कहते हैं| वे मुग़ल शासन कल में व्यापार करने के लिए अपने मूल स्थान से दूसरे स्थानों में गए| वे जूट के कपडे, चमडा, सोना-चांदी-हीरा, खाध्य सामग्री के व्यापारी हैं| इनके समाज में धनलोलुपता अधिक है| समकालीन हिन्दी उपन्यासकारों ने मारवाड़ियों की धनलोलुपता, व्यापारी मानसिकता तथा अन्य सांस्कृतिक विशेषताओं को रेखांकित किया है|

अल्का सरावगी ने “कलिकथा वाया बाईपास” में मारवाड़ी परिवार को पृष्टभूमि बनाकर बंगाली नवजागरण, बंगाल विभाजन,आज़ादी की लडाई और स्वातंत्र्योत्तर भारत के पतन को प्रस्तुत किया है| इसमें ‘किशोर बाबु’ नामक पात्र के माध्यम से मारवाड़ी समाज की विशेषताओं को उकेरने का प्रयास किया गया है| प्रभा खेतान के “पीली आंधी” और “छिन्नमस्ता” में मारवाड़ी समाज की पृष्ठभूमि में स्त्रियों की समस्याओं को प्रस्तुत किया है| मारवाड़ी मूलतः व्यापार करते हैं| लेकिन स्त्रियों का इसमें भागीदारी नहीं होता| वे पिंजरे की मैना की तरह घर की चहारदीवारी में बंद रहने के लिए अभिशप्त है| “छिन्नमस्ता” में ‘प्रिया’ जो अमीर व्यापारी की बेटी है समाज की मान्यताओं का उल्लंघन करके चमड़े का व्यापार करती है| वह अपने पति ‘नरेंद्र’ की बातें न मानकर देश-विदेश घूमती है| इसप्रकार अपना प्रतिरोध प्रकट करती है| मारवाड़ी समाज में बाल विवाह होता है और वहां की विधवाओं को नारकीय जिन्दगी गुजारना पड़ता है| इसकी ओर भी लेखिका ने इशारा किया है| “पीली आंधी” की ‘सोमा’ भी आत्मनिर्भर होने के लिए इच्छुक है| वह पति से अलग अपना स्वतंत्र अस्तित्व स्वीकार करती है| वह

पुरुषों द्वारा स्त्री के लिए बनाये गए आदर्शों एवं मूल्यों का खंडन करती है| दिनेशनंदिनी डालमिया के "मुझे माफ़ करना" और "मरजीवा" में भी मारवाड़ी परिवार में स्त्री और उसकी नियति को दर्शाया है|

आंगलोइंडियन

आंगलोइंडियन भारत के अल्पसंख्यक नस्ल है| भारत में वाणिज्य-व्यापार के लिए आए पुर्तगाल,डेच, फ्रांस, अँगरेज़ आदि के संबंधों से इस नस्ल का जन्म हुआ है| विदेशियों के चले जाने के बाद ये लोग भारत में ही रह गए| सन 1911 में सरकारी तौर पर अंग्रेजों ने "आंगलोइंडियन" सामुदाय के रूप में इन्हें विधिवत मान्यता दी है| पहले इन्हें अंग्रेजों ने सैन्य, डाक, तार, रेल आदि में काम दिया था| इन्हें विदेशों में जाकर पढने का भी सहायता देते थे| धीरे-धीरे अंग्रेजों को भारत छोड़ना पड़ा, तब इन्हें वे अपने साथ नहीं ले गए| इन्हें भारत के नागरिक बताकर यहीं छोड़ दिया गया| सन 1941 में इस असुरक्षित समुदाय को हेनरी गिडनी, मि.फ्रैंक एंथोनी आदि ने मिलकर संगठित करने का सफल प्रयास किया| सन 1941 में इन्हें अल्पसंख्यक के रूप में मान्यता मिली| आज लोक सभा से लेकर देश के कई प्रान्तों की विधान सभा में इस समुदाय के लिए आरक्षण दिया जाता है|

आंगलोइंडियन को अल्पसंख्यक होने के कारण मुख्यधारा से दूर रखा गया| मुख्यधारा समाज इन्हें विदेशी मानते हैं| समकालीन हिन्दी उपन्यासों के क्षेत्र में विकास कुमार झा ने आंगलोइंडियनस पर केन्द्रित उपन्यास "मैकलुस्कीगंज" लिखकर अपना स्थान दर्ज किया है| यह झारखण्ड के

‘मैकलुस्कीगंज’ नामक एकमात्र आंगलो इंडियन गाँव को पृष्ठभूमि बनाकर लिखा है| इसमें लेखक ने बाजारवाद के इस दौर में आदिवासी और एंग्लो इंडियन लोगों का अपने जड़ों से काटकर दूर चले जाने की त्रासद स्थिति की ओर संकेत किया है| अनेक पत्रों व घटनाओं के माध्यम से इनकी समस्याओं एवं सांस्कृतिक पहलुओं और इनके विद्रोह को उकेरने का है सफल प्रयास किया गया है|

हिजडे एवं समलैंगिक

दलित, आदिवासी, मुस्लमान, एंग्लो इंडियन आदि को समाज की मुख्यधारा मुख्यधारा समाज से विस्थापित होने की सज़ा भुगतना पड़ता है| लेकिन समाज में कुछ ऐसे लोग भी हैं जिन्हें सर्वप्रथम यह समस्या अपने परिवार से, अपनों से भुगतना पड़ता है| इनमें हिजड़े एवं समलैंगिक आते हैं| वे भगवान और समाज दोनों का दिया दंड भोगने के लिए अभिशप्त है| इनकी सबसे बड़ी समस्या जेंडर की है- “The most obvious form of discrimination takes place when a person applying for a job or promotion does not get it; or is fired or demoted because of his or her sexual orientation……………Another related area of concern is the threat of harassment and violence, since gays and lesbians are often subject to jokes, taunts, and beatings based purely on their sexuality.”[1] मुख्यधारा द्वारा निर्धारित पुरुष और स्त्री की कोटि में न आनेवाले हिजड़े निरंतर अपमानित, उपेक्षित एवं उपहसित हैं| इसके साथ

[1] pepi Leistyna (editor) - Cultural studies from theory to action , पृ : 460

समलैंगिकता को बीमारी, यौन विकृति या असंतुलन मानने वाले मुख्यधारा समाज इन समलैंगिकों (गे और लेस्बियन) को घृणा भरी दृष्टि से देखते हैं| इस तरह 'थर्ड जेंडर' में आनेवाले ये लिंग अल्पसंख्यक निरंतर स्वत्व संघर्ष का सामना करते हैं| समकालीन उपन्यासकारों ने लिंग अल्पसंख्यकों के शोषण, अकेलापन, लिंगीय अनिश्चितता, अस्तित्व का संघर्ष एवं उनकी अजीब किन्तु अनोखी सांस्कृतिक पहलुओं का संवेदनशील चित्रण किया है|

हिजड़ा समाज की मुख्यधारा से फेंका गया एक वर्ग है| उनके सामने सम्मान से जीने की समस्या, आर्थिक कठिनाईयां और ढेर सारी अन्य समस्याएं हैं|- "हिजड़े हमारे समाज के अद्भुत अंग हैं| सेक्स की दृष्टि से न तो पुरुष होते हैं, न ही नारी| समाज इन्हें हास्यास्पद समझता है| लोग इनकी खिल्ली उड़ाते हैं| आम बोल-चाल में किसी को हिजड़ा कहना गाली देना समझा जाता है|"[1] इनका अपना अलग समाज होता है| इनके अपने तौर-तरीके और कायदे-कानून भी हैं जो मुख्यधारा के लिए अजीब लगेगा| इस कारण समाज के मन में इनके प्रति भय भी है| महेंद्र भीष्म के "किन्नर कथा" में 'तारा' और 'चंदा' नामक हिजड़ों की कहानी कही गयी है| दोनों अमीर घराने में जन्म लेकर परिवार से उपेक्षित हैं| 'मनीष' नामक शिक्षित नौजवान चंदा से प्रेम करता है| चन्दा के लिंग-परिवर्तन करने में मदद करता है| हिजड़ों के उत्सव, रीति-रिवाजों एवं रस्मों पर भी प्रकाश डाला है| प्रदीप सौरभ की "तीसरी ताली" आद्यंत एक कथा न होकर हिजड़ों के जीवन संबंधी अनेक घटनाओं को एक साथ पिरोकर लिखा गया है| 'मंजू', हिजड़ा मंडली में जीवन

---

[1] दिव्या जैन - हव्वा की बेटी , पृ : 121

बिताने के लिए विवश नारी है, 'राजा', मंजू से प्रेम करने के कारण हिजड़ों के प्रतिकार ज्वाला में नामर्द होता है,'विनीता' स्वावलंबी हिजड़ा है, 'चंदाबाई' हिजड़ों की संपत्ति हड़पने की कोशिश करने वाली हिजड़ा है| इसप्रकार विभिन्न स्वाभाव के हिजड़े पत्रों के माध्यम से उनकी नारकीय ज़िंदगी [1]को चित्रित किया है| नीरजा माधव ने "यमदीप" में सभ्य समाज से दूर बदबूदार, सीलन भरी कोठरी में रहने वाली 'नाजबीवी' एवं अन्य हिजड़ों के जीवन यथार्थ को प्रस्तुत किया है| निर्मला भुराडिया का "गुलाम मंडी",चित्रा मुद्गल का "पोस्ट बॉक्स नं 203 नाला सोपारा" भी इस श्रेणी में आनेवाले महत्वपूर्ण उपन्यास हैं|

स्त्री और पुरुष का एक दूसरे के प्रति आकर्षण समाज की दृष्टि में सभ्य है, प्राकृतिक है| लेकिन कभी-कभी एक स्त्री का दूसरी स्त्री के प्रति और एक पुरुष का दूसरे पुरुष के प्रति यौन आकर्षण होता है| यह भी सहज एवं स्वाभाविक है| इन्हें ही "समलैंगिक" कहते हैं| प्रदीप सौरभ की "तीसरी ताली" में 'सुविमल' और 'अनिल' के माध्यम से गे सम्बन्ध और 'यास्मीन' और 'जुलेखा' के माध्यम से "लेस्बियन" संबंधों पर प्रकाश डाला है| सुविमल जो जन्म से गे है परिस्थितिवश 'रति' से शादी करके घुटन भरी ज़िंदगी जीता है| अंत में सम्बन्ध विच्छेद करके अनिल से शादी करता है| दूसरी ओर यास्मीन है जो औरतखोर है और जुलेखा बचपन से पुरुषविरोधी है| इसप्रकार दोनों एक दूसरे को जीवन साथी के रूप में चुनते हैं| बाद में परिवार भी उनका साथ देता है| इसमें ज़मींदार श्यामसुंदर सिंह द्वारा दलित गरीब लड़के का

रखैल बनाकर रखने का भी ज़िक्र किया है| निर्मला भुराडिया के “गुलाम मंडी” में ‘मनोज’ नामक टी मेकर समलैंगिक है|वह ‘राजा’ नामक हिजड़े के साथ सम्बन्ध रखता है| एक हिजड़े का पुरुष के साथ यौन सम्बन्ध को भी समलैंगिकता की नज़रों से देखा जाता है| ऐसे रखैल पुरुषों को “गिरिया” कहते हैं| “तीसारी ताली” और महेंद्र भीष्म के “किन्नर कथा” में ऐसे संबंधों का चित्रण हुआ है|

राजकमल चौधरी की “मच्छली मारी हुई” में समलैंगिक औरतों की ज़िंदगी का चित्रण किया गया है| ‘शीरी’ नामक पात्र परिस्थितिवश पुरुषों से घृणा करने लगती है| पहले वह अपनी बहन ‘सुसी’ के साथ सम्बन्ध रखती है और बाद में एक पुरुष से शादी करती है| किन्तु शादी के बाद भी वह घुटन महसूस करती है| बाद में ‘प्रिया’ नामक लडकी से सम्बन्ध रखती है| शीरी के मानसिक तनाव एवं संघर्ष को बखूबी पेश किया गया है| गीतांजली चट्टर्जी के “तीसरे लोग” में ‘स्मारक’ नामक गे का ‘फालगुनी’ नामक लडकी से शादी और दोनों का आत्मसंघर्ष आदि को चित्रित किया है|

समकालीन उपन्यासकारों ने स्वत्व संघर्ष से निरंतर सामना करने वाले थर्ड जेंडर एवं समलैंगिकों की समस्याओं को संवेदनशील ढंग से प्रस्तुत किया है| उन्होंने लिंग अल्पसंख्यकों के प्रति समाज की संकुचित मानसिकता पर प्रश्न चिह्न लगाते हुए इन्हें भी इंसान के रूप में अपनाने को कहते हैं| वे इन्हें सामजिक कोढ़ या अभिशाप न मानकर दूसरों की तरह सहज एवं स्वाभाविक मानने की मानसिकता उत्पन्न करने का सन्देश देते हैं|

निष्कर्ष

समय और समाज निरंतर प्रवाहमान है या परिवर्तनशील है| उसके अनुरूप संस्कृति और साहित्य में भी नयी-नयी हलचलें होती रहती है| अपने समय की विशिष्ट समझ ही प्रत्येक आदमी को समकालीन बनाता है| भूमंडलीकरण, बाजारवाद, उदारीकरण, सूचना-प्रौद्योगिकी, अपसंस्कृति आदि ने समाज में विकल परिस्थितियों को जन्म दिया है| एक ओर इस युग में दलित, आदिवासी, स्त्री, प्रकृति और अन्य अल्पसंख्यकों को मुख्यधारा में आने का मौका मिला है तो दूसरी ओर इन पर अमानवीय शोषण एवं खिलवाड़ करने का अवसर भी मिला है| शोषण और उत्पीडन की प्रतिक्रिया में पिछडे-कमज़ोर वर्ग मुख्यधारा में आने लगे हैं| समकालीन साहित्य आक्रोश एवं प्रतिरोध का साहित्य है| समकालीन उपन्यास का भी लक्ष्य अपने समय की विद्रूपताओं के विरुद्ध चेतना जगाना है| समकालीन हिन्दी उपन्यास जीवन से सीधे मुठभेड़ करने के कारण ज़िंदगी की जटिलताओं व विडम्बनाओं को केंद्र में ले आया है| वह व्यवस्था की विरूपता के साथ-साथ बदलते समय में मानवीय नियति का भी अंकन किया है| इसप्रकार समकालीन समस्याओं से जूझते हुए समकालीन हिन्दी उपन्यास वर्तमान समय का जीवंत दस्तावेज़ प्रस्तुत करता है|

समकालीन हिन्दी उपन्यासों में अभिव्यक्त दलित, आदिवासी और अन्य अल्पसंख्यकों की सामाजिक – आर्थिक - राजनैतिक समस्याओं व सांस्कृतीक विशेषताओं पर अगले अध्यायों में विस्तार से चर्चा किया जाएगा|

तीसरा अध्याय

समकालीन हिंदी उपन्यासों में दलित संस्कृति

समकालीन हिंदी उपन्यासों में दलित संस्कृति

भारतीय समाज का एक बहुसंख्यक समाज सदियों से दलित, अस्पृश्य, पीड़ित एवं शोषित रहा है| भारतीय संदर्भ में 'दलित' शब्द एक जातिबोधक शब्द के रूप में व्यवहृत हो रहा है। यह बोध वर्णव्यवस्था की कोख से पैदा हुआ है। इसका मूल रूप ऋग्वेद के पुरुषसूक्त में है। उसके अनुसार वर्णवयवस्था ईश्वर की निर्मिति है। ईश्वर ने अपने मुँह से ब्राह्मण, भुजा से क्षत्रिय, जाँध से वैश्य और पैरों से शूद्र की निर्मिति की है। इस वर्ण व्यवस्था के कारण हिन्दू समाज में हज़ारों सालों से शूद्रों को अत्यधिक शोषण सहना पडा। अछूतों की छाया, स्पर्श और वाणी तक तिरस्कृत मानी गई। उनको पशु से भी हीन मानकर सभी अधिकारों से वंचित रखा गया- "अस्पृश्य को ज्ञान और शिक्षा, सत्ता और संपत्ति से हेतुपूर्वक दूर रखा गया। उसकी बस्ती, पनघट तथा श्मशान तक अलग रखा गया। सभी क्षेत्रों में उसे औरों से अलग तथा दोयम स्थान दिया गया। उसकी संस्कृति पर आघात किए गए। उसे हक़ और अधिकारों से वंचित रखा गया। अस्पृश्यों को मनुष्य के रूप में जीने की मनाही की गई।"[1] श्रम के आधार पर विभाजन करने पर शूद्रों को सवर्णों की सेवा-शुश्रूषा करना पड़ा। ब्राह्मण ज्ञानार्जन और विद्यार्जन करते थे, क्षत्रिय युद्ध और वैश्य व्यपार-उद्योग करते थे। लेकिन शूद्रों को इन सबसे वंचित रखा गया।

[1] शरणकुमार लिंबाले (सं) - दलित साहित्य : वेदना और विद्रोह, पृ : 21

दलित शब्द का अर्थ है - दबाया हुआ, कुचला हुआ वर्ग। दलित शब्द आधुनिक काल की देन है। लेकिन प्राचीन काल से ही 'दलित' भारत में मौजूद थे। वे भारत के प्राचीन साहित्य में शूद्र, चंडाल, दास, दस्यू, अंत्यज, अस्पृश्य आदि नामों से अभिहित होते थे। भारतीय वर्ण व्यवस्था में शूद्रों को चतुर्थ श्रेणी में रखा गया है। पुरुषसूक्त के अनुसार शूद्र ब्राह्मण के पैरों से जन्म लिया है। दलित शब्द को लेकर कई परिभाषाएँ हुई है। श्रीमती कुसुम मेघवाल ने लिखा है- "दलित वर्ग का प्रयोग हिन्दु समाज व्यवस्था के अंतर्गत परंपरागत रूप से शूद्र माने जाने वाले वर्गों के लिए रूढ़ हो गया है। दलित वर्ग में वे जातियाँ आती हैं, जो निम्न स्तर पर है और जिन्हें सदियों से सताया गया है।"[1] दलित शब्द की परिभाषा के अंतर्गत सदियों से वर्ण व्यवस्था से उत्पीडित एवं अपमानित वर्ग आते हैं। ओमप्रकाश वाल्मीकि के अनुसार- "दलित शब्द दबाये गये, शोषित, पीड़ित, प्रताड़ित के अर्थों के साथ जब साहित्य में जुड़ता है तो विरोध और नकार की ओर संकेत करता है।"[2] भिन्न-भिन्न विद्वानों ने अपने-अपने दृष्टिकोण के अनुसार दलित शब्द की परिभाषा प्रस्तुत की है।

भारत में आर्यों के आगमन के बाद आर्य एवं अनार्यों का दो वर्ग जन्म लिया। ऋग्वेद के अनुसार युद्ध से पराजित लोगों को दास बनाकर आर्यों के घरों में सेवा एवं अन्य तुच्छ व निम्न कार्यों में लगा देते थे। विद्वानों के अनुसार दास के भी तीन भेद थे गृह कार्य करने वाला, शिल्पकार, कृषि,

---

[1] श्रीमती कुसुम मेघवाल – हिंदी उपन्यासों में दलित वर्ग , भूमिका

[2] डॉ.जीतुभाई मकवाणा – समकालीन हिंदी दलित साहित्य एक अध्ययन, पृ : 33

मत्स्य-पालन, आदि करनेवाला। कालांतर में इन श्रेणियों की कई उपश्रेणियाँ भी बन गई। समाज में रहकर दास वर्ग समाज के बाहर गये। रामायण-महाभारत काल में भी इस जातिगत भेद का कठोर पालन होता था। आर्य काल में शूद्रों को छोटे से अपराध के लिए कठोर दण्ड दिया जाता था। इस युग में कौटिल्य द्वारा रचित अर्थशास्त्र में शूद्रों केलिए कठोर कानून बनाये गये थे। मुस्लिम शासकों के आगमन से हिन्दु समाज की जाति-व्यवस्था को आघात पहुँचा। सवर्ण हिन्दुओं के छल से त्रस्त कई अछूतों ने मुसलमान धर्म स्वीकार किया। दलित वर्ग की दशा सुधारने के लिए मध्यकाल के भक्ति आन्दोलन का भी बड़ा योगदान है। तुकाराम, नामदेव, ज्ञानदेव, कबीर, रैदास, दादू आदि संतों ने भारतीय समाज की रूढ़ियाँ तोड़कर धार्मिक-सामाजिक समता लाने के लिए प्रयास किया। बाद में आए अंग्रेजों ने भी ईसाई मिशनिरियों के द्वारा धर्मपरिवर्तन का कार्य किया। हिन्दू के जुल्म से परेशान अनेक अश्पृश्यों ने धर्मांतर कर ईसाई बन गये। जिसप्रकार इस्लाम के आक्रमण से संतों के आंदोलनों का आरंभ हुआ उसी प्रकार अंग्रेजों के आगमन से कई समाज सुधारकों व संगठनों का उदय हुआ।

राजा राम मोहनराय ने सन 1828 में ब्रह्म समाज स्थापित करके सती-प्रथा को खत्म किया। उसके साथ-साथ सर्व धर्म समभाव का समर्थन किया। उन्होंने अंतरजातीय विवाह को भी प्रोत्साहन दिया। सं 1867 में स्थापित 'प्रार्थना समाज' ने दलितों की सेवा ईश्वर सेवा माना। इसने अनेक पाठशालाएँ खोलकर दलितों को शिक्षित कराया। सन 1875 में स्वामी

दयानन्द सरस्वती ने 'आर्य समाज' स्थापित करके अस्पृश्यता का विरोध किया। रामकृष्ण मिशन और थियोसोफिकल सोसाइटी ने भी दलितों की उन्नति के लिए महत्वपूर्ण कार्य किया।

महाराष्ट्र के समाजिक सुधारकों में ज्योतिबा फुले का महत्वपूर्ण स्थान है। वे एक गंभीर चिंतक एवं विद्रोही समाजसुधारक थे। उन्होंने परंपरागत समाज व्यवस्था में जन्म के आधार पर मनुष्य के साथ किए जा रहे भेदभा,व छुआछूत आदि का विरोध किया। दलित लोगों के उद्धार के लिए शिक्षा का प्रचार किया। उन्होंने अपनी पत्नी सावित्रीबाई फुले को शिक्षित करके शिक्षिका बनाया और सामाजिक कार्यों में सम्मिलित कर दिया। सन 1852 में अस्पृश्य लड़कियों के लिए पाठशाला शुरु की। उन्होंने ईश्वर तथा धर्म के नाम पर ब्राह्मण द्वारा आम आदमी पर किए जा रहे अन्याओं का विरोध करने के लिए सन 1873 में, 'सार्वजनिक सत्य धर्म' की स्थापना कर 'सत्य ही ईश्वर है' ऐसा घोषित किया। उन्होंने 'तृतीय रत्न' (नाटक, 1855), 'पाण्डव छत्रपति शिवाजी भोसले यान्चा' (1869), 'ब्राह्मणाचे कसब' (1869), 'गुलामिगिरी' (1873), 'शेतकायाचा आसूड' (1883), 'सत्सार अंक 1, 2' (1885), 'इशारा' (1885), 'सार्जनिक सत्यधर्म' (1891), तथा अखंडादि काव्य रचनाओं का सृजन किया। इनके माध्यम से उन्होंने स्त्री, शूद्र एवं अतिशूद्रों की पीड़ा का चित्रण करके उनकी वेदना को वाणी दी। फुले और उनकी पत्नी ने समाज में व्याप्त अंधविश्वास, पाखंड एवं रूढ़ियाँ, दासता आदि के विरुद्ध आजीवन संघर्ष किया।

महात्मा गाँधी ने दलितों के लिए 'हरिजन' शब्द का प्रयोग करके अस्पृश्यता के उन्मूलन के लिए 'हरिजन सेवक संघ' (1932) की स्थापना की। उन्होंने दलित वर्ग सम्मलेन में हिस्सेदारी करते हुए भाषण दिया था- "अस्पृश्यता हिंदू धर्म का अंग नहीं है और यदि वह उसका अंग है तो वह हिन्दू धर्म मेरे काम का नही है।"[1] उन्होंने अस्पृश्यता को हिन्दू धर्म का कलंक माना है। गाँधीजी ने दक्षिण आफ्रिका में जो अस्पृश्य-निवारण आंदोलन चलाया वह भारत में भी करते हैं। उनके अनुसार अस्पृश्यता को ख़तम किए बिना स्वराज नहीं मिल सकता। गाँधीजी ने अछूतों के घर में पुनर्जन्म लेने का आग्रह प्रकट किया था। रामविलास शर्मा ने लिखा है- "बहुतों के लिए राष्ट्र की अंतर्वस्तु हिन्दुत्व है, दूसरों के लिए राष्ट्र की अंतर्वस्तु इस्लाम है बल्कि इन दोनों में कही संतुलन है कही संघर्ष है। गाँधीजी ने राष्ट्र की धारणा को नई अंतर्वस्तु दी। यह अंतर्वस्तु बहुजातीयता की थी।"[2] उन्होंने जातीयता को समाज सुधारक की अंतर्वस्तु दी।

डॉ. भीमराव रामजी अम्बेडकर एक क्रांतिकारी नेता थे जिन्होंने दलितों की मुक्ति के लिए संघर्ष किया। उन्होंने दलित समस्या का समाधान के लिए परंपरागत रूढ़ियों का विरोध किया। उन्होंने दलितों को मानवीय अधिकारों से वंचित रखने वाले रूढ़िवादी हिन्दू समाज व्यवस्था का विरोध किया। उन्होंने अस्पृश्यों के साथ 'बौद्ध धर्म' स्वीकार किया। क्योंकि बौद्ध

[1] कृष्णदत्त पालीवाल – दलित साहित्य : बुनुयादी सरोकार, पृ : 38
[2] रामविलास शर्मा – गाँधीजी, अम्बेडकर, लोहिया और भारतीय इतिहास की समस्याएँ, पृ : 392

धर्म में जातिगत भेदभाव और छुआछूत नहीं है। इन्होने दलित आन्दोलन को सामाजिक आंदोलन का रूप प्रदान किया। उन्होंने शिक्षा, सामाजिक जागृति और मानवीय आधिकारों का परिचय देकर दलितों को जागृत किया। उन्होंने सन 1919 में साउथ ब्यूरो कमीशन के सामने अस्पृश्यों के राजनीतिक आधिकार की माँग की। सन 1920 में अस्पृश्यों की समस्याओं को वाणी देने के लिए 'मूकनायक' पत्र शुरू किया। सन 1924 में विदेश से उच्च शिक्षा प्राप्त करने के बाद 'अखिल बहिष्कृत हितकारिणी 'सभा' की स्थापना की। सवर्णों द्वारा अस्पृश्यों को पनघट पर पानी पीने से रोकने पर अम्बेडकर के नेतृत्व में सन 1927 में महाड़ के 'चवदार तालाब' पर सत्याग्रह किया। दूसरी बार अम्बेडकर सत्याग्रह के दौरान मनुस्मृति को खुलेआम जला दिया। सन 1930 में नासिक के कालाराम मंदिर में अस्पृश्यों को प्रवेश मिलने के लिए संघर्ष किया। सन 1932 में अल्पसंख्यकों के साथ अस्पृश्यों के लिए स्वतंत्र निर्वाचन क्षेत्र घोषित हुआ। सन 1932 में पुणे करार पर हस्ताक्षर करके स्वतंत्र निर्वाचन लेने तथा धर्मान्तर करने की घोषणा की। उन्होंने कहा- "मैं हिन्दू के रूप में पैदा हुआ जो मेरी मजबूरी थी लेकिन मैं हिन्दू के रूप मरुंगा नहीं।"[1] भारत के स्वतंत्र होने के बाद अम्बेडकर को संविधान समिति में रखा गया। उन्होंने 'हिन्दू कोड बिल' को प्रस्तुत किया। लेकिन रुढ़िवादी सत्ता ने इसको मंजूरी नहीं दी। अंत में उन्होंने इस्तीफा देकर अपने शिष्यों के साथ 14 अक्टूबर 1956 को 'बौद्ध धर्म' की दीक्षा ली- "बाबा साहेब अम्बेडकर

---

[1] शरणकुमार लिंबाले (सं) – दलित साहित्य : वेदना और विद्रोह, पृ : 32

दलित इतिहास के महापुरुष हैं। उन्होंने मृतप्राय समाज में स्वाभिमान का तूफ़ान जगाया। भूखे-तंगदस्त लोगों को क्रांतिकारी बनाया। सभा, सम्मेलन परिषद, सत्याग्रह और अधिवेशन द्वारा दलित अस्तित्व और अस्मिता की लड़ाई को गतिशील बनाया।"[1] अंबेडकर की लेखनी, आंदोलन, धर्म, एवं उनके जीवन से प्रेरित होकर दलित आंदोलन एवं दलित साहित्य ने जन्म लिया।

दलित जिन्हें वर्ण-व्यवस्था की अपमान झेलना पडा, आज इस उत्तर आधुनिक दौर में समाज के हर क्षेत्र में आवाज़ उठाने लगे हैं। उनका साहित्य समाज में हलचल मचाने लगे हैं। दलित साहित्य विशेषकर उपन्यास मनोरंजन करनेवाला न होकर पाठकों को बेचैन और सक्रिय करने वाला है। दलित समाज को गुलामी से मुक्त कराने के साथ मुख्यधारा के सामने उनकी समस्याओं को प्रस्तुत करना भी समकालीन हिंदी दलित उपन्यास का लक्ष्य है। वर्ण व्यवस्था पर आधारित विभाजन ने दलितों से उनके मानवाधिकार छीन लिये। ब्राह्मणवादी वर्चस्व ने दलितों के प्रगति पथ को सीमित एवं अवरूद्ध कर दिया। इससे समाज में असमानता एवं संकीर्णता उत्पन्न हुई। सत्ता और धर्म के मिलीभगत ने दलितों की जीवन एवं संस्कृति को नष्ट कर देने का हथकंडे अपनाया। रमणिका जी ने बताया है कि सवर्णों ने बहुसंख्यकों को हाशिए पर रखकर अभिजात संस्कृति को जन्म दिया है| वे लिखती हैं –" ये अभिजात या सवर्ण संस्कृतिराज, राजतंत्र, सामंत,

---

[1] शरणकुमार लिंबाले (सं) - दलित साहित्य : वेदना और विद्रोह, पृ : 33

बुद्धिजीवि, व्यापारी व विशिष्ट लोगों की हितसाधक रही। उसने श्रम करने वाले पिछड़ों, दलितों, आदिवासियों, को अधिकार विहीन ही नहीं स्वाभिमान-विहीन भी बना दिया। भाग्य और पुनर्जन्म पर आधारित सोच का गुलाम बनाकर इस अभिजात संस्कृति ने उनको अपनी गुलामी सहर्ष स्वीकार करने की हद तक ब्रेनवाश (Brain wash) कर दिया और अपने लिए सुविधाएँ जुटाने का व्यूह रचती रही।"[1] सवर्ण मानसिकता ने समाज के सबसे ज्यादा परिश्रमी लोगों को अछूत एवं अस्पृश्य कहकर मनुष्य होने की गरिमा से वंचित रखा। दलित साहित्य जो अंबेडकरवादी विचारों से प्रेरित है इस मानसिकता पर प्रहार करती है। उसका लक्ष्य सामाजिक परिवर्तन है। इस अध्याय में शिवमूर्ति का 'तर्पण', मोहनदास नैमिषराय के 'जख्म हमारे' और 'आज बाज़ार बंद है', जयप्रकाश कर्दम का 'छप्पर', गिरिराज किशोर का 'परिशिष्ट', मदन दीक्षित का 'मोरी की ईट', जगदीश चन्द्र का 'नरककुंड में वास' और सुशीला टाकभौरे के 'तुम्हे बदलना ही होगा........' उपन्यासों के आधार पर दलित जीवन का विश्लेषण किया गया है। इन उपन्यासों में चित्रित दलित समस्याओं के साथ-साथ उनके रहन-सहन, उत्सव-पर्व, रूढ़ियाँ, अंधविश्वास, लोकगीत, लोककथा, भाषा, बोली आदि पर विचार करने का प्रयास किया गया है।

---

[1] रमणिका गुप्ता – दलित चेतना : साहित्यिक एवं सामाजिक सरोकार, पृ : 50-51

दलित शोषण

समकालीन दलित उपन्यास ने अस्पृश्य पददलितों की व्यथा, वेदना और यातना को वाणी प्रदान करके अछूती संवेदनाओं को व्यापकता प्रदान की है। वे लोग भूमंडलीकरण के इस दौर में भूख, गरीबी, अशिक्षा, जैसे सामजिक आर्थिक विषमताओं से जूझ रहे हैं। भारतीय समाज के बहुत बड़े हिस्से को समाज हमेशा अपमानित किया और मनुष्य होकर भी उसके साथ पशु से भी बदतर व्यवहार किया है। यह वेदना एक व्यक्ति का न होकर पूरे दलित वर्ग का है। वर्चस्ववादी, मनुवादी सनातनी सवर्ण समाज ने दलितों को सदियों तक अस्पृश्य बना कर रखा, अभाव व दरिद्र जीवन जीने के लिए उन्हें बाध्य बना दिया, अपमानबोध को बढाने के लिए उनके गले में मटका और झाड़ू बांध दिया। उन्होंने दलितों को छाया तक से अपवित्र होने का ढोंग रचाया। इसप्रकार एक मानव द्वारा दूसरे को दास बनाकर उनकी जिंदगी को अंधकारमय बना दिया। उनके अंदर अंधविश्वास पैदा करके, भाग्य का हवाला देकर, पुनर्जन्म की ढोंग रचकर यह सोचने के लिए विवश किया कि शोषित होने के लिए वे खुद जिम्मेदार हैं। साहित्य रचनाओं, पत्र-पत्रिकाओं एवं आंदोलनकर्ताओं ने उनके मन से इस हीन ग्रंथि को मिटाने की लगातार कोशिश की है। अंबेडकर ने ब्राह्मणों का विरोध न करके ब्राह्मणवाद का विरोध किया था। शंभूनाथ जी ने ब्राह्मणवाद को 'मनुवाद' कहना पसन्द किया है। भूमंडलीकरण के इस युग में भी दलितों के साथ शोषण इसलिए हो रहा है कि ब्राह्मणवाद और हिन्दुत्व वाद में मिलीभगत है। उन्होंने लिखा है-

“ब्राह्मणवाद बाजारतंत्र का एक अंग बन चुका है। इस तथ्य को भी ध्यान में रखना चाहिए कि सवर्णों के मनोभाव में इन सौ वर्षों में काफ़ी परिवर्तन आया है और लगातार आ रहे हैं। ऐसे लोगों में धर्मनिरपेक्षता की भावना पनपी है। ब्राह्मणवाद का संपूर्ण सार इस समय हिंदुत्ववाद में समाया हुआ है। हिंदुत्ववाद और साम्राज्यवाद में जबर्रदस्त मिलीभगत है।”[1] उन्होंने इसलिए दलितों का धर्मांतरण, घर-वापसी आदि को छद्म आशा मानते हैं। क्योंकि इससे वे और भी मुश्किल में पड़ते जा रहे हैं।

जाति के दंश को झेलने वाले बहुसंख्यक दलित आज भी गाँव, कस्बे एवं शहरों में जिल्लत भरी जिन्दगी जीने के लिए मजबूर है। रोज़मर्रा की जीवन में उन्हें अपमान, उपहास, आर्थिक, शारीरिक शोषण, श्रम शोषण, आदि सहना पड रहे हैं। समकालीन हिंदी दलित उपन्यासों में इन सभी के लिए ज़िम्मेदार सवर्ण मानसिकता एवं जातिदंभ की प्रुवृत्तियों को बेनकाब करके एक जातिमुक्त, दमनमुक्त समाज की कल्पना मुख्य रूप में है। इस अध्याय में जयप्रकाश कर्दम का “छप्पर”, जगदीश चन्द्र का “नरककुंड में वास”, मोहनदास नैमिशराय के “आज बाज़ार बंद है”, और “जख्म हमारे”, शिवमूर्ती का “तर्पण”, गिरिराज किशोर का “परिशिष्ट”, मदन दीक्षित का “मोरी की ईंट” और सुशीला टाकभौरे का “तुम्हें बदलना ही होगा” दलितों के ऊपर हो रहे श्रम शोषण, यौन शोषण, उनकी आर्थिक विपन्नता, गरीबी आदि कई समस्याओं व सांस्कृतिक पहलुओं की चर्चा किया जाएगा।

---

[1] शंभूनाथ – भारतीय अस्मिता और हिंदी, पृ : 241

आर्थिक विपन्नता एवं गरीबी

दलित निर्धन परिस्थिति में जीता है। जीवन की बुनियादी ज़रूरतों को पूरा करने में भी वे असमर्थ हैं। सवर्ण लोग उन्हें श्रम के अनुकूल मजदूरी नहीं देते। जयप्रकाश कर्दम के 'छप्पर' में सुक्खा और रमिया अर्थाभाव से परेशान हैं। इनके पास एक गारा मिट्टी की दीवारों पर घास-फूंस के छप्पर या झोंपड़ी है। पालतू जानवर भी उनके साथ इसी झोंपड़ी में रहते हैं। इनके घर में पालतू जानवर, कृषि के ट्रेक्टर, ट्राली, बुगी, तथा इंजन सैट और भूस और अनाज भरने के लिए अलग-अलग कोठे हैं। इनके घर में बहुत बड़े अहाते भी हैं। लेखक लिखते हैं- "........ किन्तु जो लोग दलित और दरिद्र है उनके पास रहने-सहने तथा एकाध पशु जो वह पालते हैं, उन सबके लिये कुछ जमा गारा-मिट्टी की दीवारों पर घांस-फूंस के छप्पर या झोपड़ियाँ हैं इकछत्ती-दुछत्ती। अधिक हुआ तो किसी के कच्चे कोठे पर बांस की खपच्ची या खपरैल की छत होती है या पशुओं के लिए छान-झोपडी अलग। यहीं तक सीमित है उनकी साधन-संपन्नता।"[1]

परंपरागत ढंग से व्यवसाय करने वाले दलित अर्थाभाव में जीवन जीते हैं। ये अज्ञानी व शोषित होने के कारण उनकी आर्थिक स्थिति दयनीय है। मज़दूरी करना, मृत जानवरों की खाल उतारना, जूते बनाना, हलवायी करना, ज़मींदारों की बेगारी करना आदि निम्न स्तर के कार्य करते हैं। जगदीशचंद्र के "नरककुंड में वास" में काली नौकरी की तलाश में शहर में

---

[1] जयप्रकाश कर्दम – छप्पर, पृ : 5

इधर-उधर भटकते हैं। उसे रेलवे स्टेशन और बस अड्डे पर भिखारियों के साथ सोना पड़ता है। अंत में चमड़े के कारखानों में नौकरी मिलता है। उसे गंदी एवं बदबूदार वातावरण में काम करना पड़ता है। इसमें 'मांझा' नामक पात्र दलितों की गरीबी के बारे में बताता है -"हम लोगों की जन्म से मरण तक सारी जिन्दगीं ही गंदगी में गुज़रती है। रुके हुए सडाँध-भरे पानी में मच्छर-मक्खियों की तरह हम भी पलते हैं। चार दिन भीं-भीं करके मर-खप जाते हैं।"[1] दिन भर कीड़ों की तरह मेहनत करने पर भी आजीविका चलाने का पैसा नहीं मिलता है।

मोहनदास नैमिशराय ने "आज बाज़ार बंद है" में देह व्यापार से जुडी दलित महिलाओं की दारूण कथा का अंकन किया है। इनमें अधिकाँश औरतें पुरुषों द्वारा धोखा पाकर अँधेरी कोठियों में आ जाती हैं। वे गन्दगी भरी गली में सीलन भरी कोठियों में जीती हैं। उन्हें आजीविका के लिए अपना शरीर बेचना पड़ता है। एक ही दिन उसे कई ग्राहकों के साथ संबंध रखना पड़ता है। वह अपनी शरीरिक मानसिक थकावट को नज़रअंदाज करके ग्राहकों का स्वागत करती है- "आइयें, हुजूर, हमारी बोटी-बोटी काट डालिए, पर हमें पैसा दीजिए। .... हमें रोंदिये, मसलये, पर हमें पैसा दीजिए।"[2] ये लोग जिस मकान में रहते हैं उसके लिए दस हज़ार तक किराया देना पड़ता है। शहर में कर्फ्यू होने पर जब ग्राहक आना बंद होता है तब किराया तक नहीं दे पाती हैं। "जख्म हमारे" में नैमिशराय ने गुजरात में हुए भूकंप में फंस

[1] जगदीशचन्द्र - नरककुंड में वास, पृ : 128 - 129
[2] मोहनदास नैमिशराय - आज बाज़ार बंद हैं, पृ : 43

गये लोगों तथा मुर्दों को निकालने वाले दलितों का चित्रण किया है। 'गुलाम' नामक दलित लाश निकालने का काम करता है। वह आजीविका के लिये यह काम करता है।

मदन दीक्षित के "मोरी की ईट" में मेहतर जाति के समस्याओं का चित्रण किया है। इसमें 'मंगिया' नामक मेहतर नारी अपने पति की नौकरी अपने नाम कराने के लिए चुंगी के जमादार हीरालाल से मिलता है। तब वह रिश्वत के तौर पर दस रूपया माँगता है जो वह दे नहीं पाती है -"उन दिनों, दस रूपये की रकम जुटाना तो मामूली खाते-पीते परिवारों को भी ज़रा भारी गुजर जाता था, फिर मंगिया तो सबसे गये-गुजरे मेहतरों में से थी।"[1] मंगिया जैसे मेहतर दिन- रात मेहनत करने पर भी आजीविका चलाने के लिए निरंतर संघर्ष करती है। "तुम्हे बदलना ही होगा......" में 'धीरज कुमार' के माँ-बाप भंगी जाति के होने के कारण गटर, नाला साफ करने तथा मल-मूत्र ढोने का काम करते हैं। वे इतना निम्न काम अपनी गरीबी से उभरने तथा बच्चों को पालने के लिए करते हैं। वे कुपोषण के शिकार होने के साथ-साथ अनेक बीमारियों जैसे दमा, खांसी आदि से भी पीड़ित हैं। बचपन से लगातार संघर्ष एवं मेहनत करने के कारण 55 वर्ष की उम्र में ही बूढ़े हो जाते हैं। लेखिका ने उनकी गरीबी का चित्रण यों किया है- "उस समय बनारस की डोम, सुदर्शन, वाल्मीकि अछूत दलित जातियों में जागृति का अभाव था। लोग अपने बच्चों को स्कूल नहीं भेजते थे। छोटी उम्र से ही उन्हें माँ-बाप के

[1] मदन दीक्षित - मोरी की ईट, पृ : 14

धंधे-रोजगार के काम में लगा दिया जाता था। आर्थिक दृष्टी से भी उनकी बड़ी दीन-हीन स्थिति थी। टूटे-फूटे छोटे खपरैल घरों में वे अपने कुटुंब परिवार के साथ रहते थे। दो वक्त की रोटी का जुगाड़ करना भी उनके लिए मुश्किल होता था। गन्दी बस्तियों में सभी असुविधाओं के बीच, वे किसी तरह अपना जीवन जी रहे थे।"[1] मेहतर लोग परंपरागत व्यवसाय करने के साथ-साथ मजदूरी भी करते हैं। वे निरंतर गरीबी और आर्थिक विपन्नता का सामना करते हैं। वे अपने बच्चो को शिक्षा देकर उन्हें ऊँचे ओहदों पर पहुँचाने की कोशिश करते हैं। इसप्रकार करके वे नई पीठी को परंपरागत व्यवसाय से दूर रखकर आर्थिक स्वावलंबन चाहते हैं। मंगिया ने अपने बेटे को पढाकर इस प्रयास में सफल होती है।

श्रम शोषण

मज़दूरों के लिए श्रम का महत्व और मूल्य बहुत अधिक है। क्योंकि श्रम ही उनके जीवन का आधार है। दिन-रात कमरतोड़ मेहनत करने पर भी उन्हें दो जून की रोटी तक नसीब नहीं हो पाती। बीस-तीस या इससे भी ज्यादा पैसे का कठिन काम करवाकर मालिक बहुत कम पैसे ही देता है। वे लोग मालिकों से डरने के कारण ज्यादा मज़दूरी भी मांग नहीं पाते। क्योंकि अधिक पैसा मांगने पर या तो वे गुस्से होकर गालियाँ देंगे या नौकरी से निकाल देंगे। भूखे पेट के कारण मजदूर सब कुछ चुपचाप सहते हैं। 'छप्पर' में सुक्खा को इसलिए खेत के कामों से निकाल देता है क्योंकि उसने अपने बेटे

[1] सुशीला टाकभौरे – तुम्हे बदलना ही होगा..., पृ : 92

को पढाया। बाद में मजदूर-कृषक जब अपना अधिकार मांगने लगा तो सबको कामों से बेदखल किया। ज़मींदारों की इन करतूतों से वे हार नहीं मानते हैं। वे शहर के बड़े-बड़े कारखानों में ज्यादा मज़दूरी लेकर काम करते हैं। “जख्म हमारे” में गुलाम अहमद जब भूकंप से पीड़ित होकर शहर शहर आता है तो सुरजा की मदद से पुलिस स्टेशन में नौकरी मिलता है। हवलदार के जूते साफ़ करना ही उसका काम था। वे इसे और कोई नौकरी नहीं देते। उसे हवलदार ‘स्साले’, ‘हरिजन’ नाम से पुकारते हैं। सुरजा के घर पर बैठते समय जूता पॉलिश करने के लिए ग्राहक आते हैं। वे गालियाँ देकर जल्दी साफ़ करने को कहते हैं। इसके बाद वे दो रुपये का सिक्का उसकी तरफ फेक देते हैं। गुलाम को लगा जैसे उसके सिर पर किसी ने जूता मारा हो। ग्राहक इन चामारों को कोई इज्ज़त नहीं देते हैं।

गुलाम और अन्य मजदूर भूकंप के बाद मिट्टी में धंस गए लोगों को बचाने और लाश को श्मशान ले जाने का काम करतते हैं। उनको काम करने के लिए कोई निर्धारित समय नहीं, सोने के लिए गद्दे-तकिए नहीं, और समय पर भोजन तक नहीं मिलता। लेखक बताते हैं- “वे गरीबी रेखा के नीचे रहने वाले भूमिपुत्र थे । भूमिपुत्र होने पर भी ज़मीन का छोटा सा टुकडा भी उनकी मिलकियत नहीं थीं। हाँ ज़मीन से उनके रिश्ते गहरे ज़रूर थे। कभी-कभी खुदाई करते-करते उनके हाथ पैरों में चोट लग जाती। कोई डॉक्टर भागा-भागा उन तक नहीं पहुँचता। कोई नर्स उनके घावों को साफ़ कर

मरहम पट्टी नहीं करती। वे अपने ताजा जख्म को मिट्टी से ठीक कर लेते।"[1] इस प्रकार इन मेहनतकश वर्ग की मेहनत के लिए समाज में कोई मूल्य नहीं रखता। इन दलितों को ठेकेदारों, मिल मालिकों से गालियाँ सुनकर भी चुपचाप काम करना पड़ता है, और वह भी तुच्छ पैसों के लिए। "नरककुंड में वास" में काली से कल्लू नामक युवक कहता है – "भा,जी उस्ताद दो-तीन साल तो काम सिखाने में लगा देते हैं। तब तक पल्ले से रोटी-पानी खाओ और उस्ताद की टहल सेवा अलग करो। काम सीख भी जाओ तो मालिक पूरी मज़ूदूरी नहीं देता। कभी कच्चे काम का बहाना और कभी मंदे की शिकायत। ये रोना-पीटना लगा ही रहता है।"[2] इसप्रकार ये अमीर लोग शोषण का कोई भी रास्ता हाथ से जाने नहीं देता। वे मजदूरी देते समय ऐसा लगता है मानो वह कोई एहसास कर रहा हो।

"मोरी की ईंट" में चुंगी में काम करने वाले मेहतर-मेहतरानियों के श्रम शोषण का चित्रण किया है। उन्हें हर दिन काम करना पड़ता है और समय पर पैसा नहीं देते। कोई बिमार हो तब भी छुट्टियाँ नहीं देते - "चुंगी के मेहतर-मेहतरानियों के लिए उन दिनों छुट्टियाँ दिये जाने का कोई कायदा नहीं था। हारी-बीमारी, मौत-गमी, शादी-ब्याह के मौकों पर जमादार की रजामंदी और आपसी तालमेल से, यों ही छुट्टी की जुगत बैठा ली जाती थी। जचगी के समय भी मेहतरानियाँ दिन के दिन तक अपनी ड्यूटियाँ बजाती

---

[1] मोहनदास नैमिषराय – जख्म हमारे, पृ : 35
[2] जगदीशचंद्र – नरककुंड में वास, पृ : 208

थीं।"[1] निम्न जाति के होने के कारण इन्हें गुलाम समझते हैं। "आज बाज़ार बंद है" में वेश्याओं की समस्याओं का चित्रण किया है। समाज में वेश्या को भोग वस्तू माना गया है। कोई भी स्त्री, वेश्या नहीं बनना चाहती। फिर भी भारत में सरकार और पुलिस की मदद से वेश्यालय चलती है। औरत की जिस्म बेचकर दलाल, पुलिस एवं सरकार पैसा कमाते हैं। इनमें कल्लू नामक दलाल का विवरण देते हुए पुरुषों द्वारा किए जा रहे समकालीन शोषण का चित्र प्रस्तुत किया है - "कल्लू यानी रंडियों का दलाल था। सैंकड़ों लड़कियों को वेश्या बनने पर मजबूर किया था उसने। पुलिस और रंडियों के बीच एक मज़बूत कड़ी रहा था वह ऐसी कड़ी,जिसने जोड़ना कुछ नहीं सीखा था। बल्कि तोड़ा बहुत कुछ था। बाज़ार के चार कोठे उसकी जागीर में थे। चार कोठों का मतलब कुल मिलाकर चौबीस प्राणियों पर उसका हुक्म चलता था। पुलिस के कुछ अधिकारियों ने उसे पूरा छूट दे रखी थी| नियमित रूप से हफ्ता पहुँचाया जाता था ..... ।"[2] ग्राहक चाहे शराबी हो, बीमार हो, पुलिस हो, गुंडे हो, वेश्याओं को उनकी प्यास बुझाना पड़ता है। असुरक्षित यौन संबंध से वे एड्स जैसे खतरनाक बीमारियों के गिरफ़्त में भी आ जाती हैं। वेश्या को अपना शरीर बेचने पर पचास या सौ रुपए ही मिलता है। लेकिन दलाल, मकान मालिक, पुलिस आदि हजारों रुपए कमाते हैं। पुलिसवालों को यह मालूम है कि वैश्याओं की बस्ती में ज्यादा वजीफ़ा

---

[1] मदन दीक्षित - मोरी की ईट, पृ : 132

[2] मोहनदास नैमिशराय - आज बाज़ार बंद है, पृ : 108

मिलता है। इसलिए पुलिस लाखों रुपए रिश्वत देकर वेश्या बस्ती में पोस्टिंग लेते हैं।

"तुम्हे बदलना ही होगा......." में भंगी जाति के साथ हो रहे शोषण देख सकते हैं। 'धीरज' नामक पार्टटाइम प्रोफेसर के माँ-बाप सालों से गटर साफ़ करने का काम करते हैं। जब उनका बेटा शहर से उन्हें मिलने बनारस आता है तो वे ठीक समय पर काम पर नहीं जा पाते हैं। तब 'मोकद्दम बाबू' नामक आदमी आकर उन्हें गालियां देता है - "बूढा-बुढ़िया क्या कर रहे थे, रुपया मांगते समय शर्म नहीं आती? हराम की रोटी खाते हो?"[1] मोकद्दम बाबू और सेनेटरी इंस्पेक्टर उन बूढों को गटर की सफाई का काम सौंपाते हैं। धीरज का बाप हरिश्चन्द्र गड्ढे में निकलकर मल-मूत्र को टोकरियों में भरता है। लेखिका लिखती है - "यह काम उनके लिए नया नहीं है। उनका पूरा जीवन ही इस तरह की नरक सफाई का काम करते हुए बीत रहा है।"[2] माँ-बाप दोनों का शरीर मल-मूत्र और कीचड़ से सना होता है। इस बीच गड्ढे में पिता को दम घुटता है तो सेनेटरी इंस्पेक्टर और अधिकारी वर्ग उसे अस्पताल तक नहीं ले जाते हैं। तब धीरज आकर मल से सने पिता के बेहोश शरीर को कंधे पर डालकर अस्पताल ले जाता है। ठीक समय पर अस्पताल पहुँचाने के कारण उसका जान बच जाता है। इसप्रकार मुख्यधारा समाज को इनका स्वास्थ्य, सुरक्षा आदि की कोई परवाह नहीं हैं। वे मल ढोने वाले भंगियों को

---

[1] सुशीला टाकभौरे – तुम्हे बदलना ही होगा, पृ : 98
[2] वहीँ

कीड़ा समझते हैं। वे मल-मूत्र ढोने वाले लोगों को निकृष्ट एवं घृणित समझते हैं।

जातिगत भेदभाव

भारत में जाति एक जटिल समस्या है। जाति व्यवस्था का आरंभ चातुर्वण्य व्यवस्था से है। ब्राह्मणों के वर्चस्व को कायम रखने के लिए इसका उद्भव हुआ है। इसका मूल ऋग्वेद के दशम मंडल का पुरुष सूक्त है जिसमें बताया गया है कि पुरुष (ब्रह्मा) के सिर से ब्राहमण, बाहों से क्षत्रिय, जंघाओं से वैश्य तथा पैरो से शूद्र का जन्म हुआ है। इस व्यवस्था के अनुसार जन्म के आधार पर किसी भी व्यक्ति छोटा या बड़ा होता है। इसलिए ब्राह्मण श्रेष्ठ है और बाकी सब इनके नीचे आते हैं। निम्न जाति के होने के कारण दलितों को सवर्णों से दूर रहना पड़ता है। उन्हें सवर्णों के कुओं, तालाबों से पानी लेने का अधिकार नहीं। वे मंदिर में भी प्रवेश नहीं कर सकते। यदि कोई अछूत किसी ब्राह्मण के सामने आ जाये तो उसे कठोर सज़ा मिलती थी। वे शिक्षा, नौकरी और अन्य मूलभूत सुख-सुविधाओं से वंचित हैं।

“छप्पर” में चमार जाति के होने के कारण चंदन और उसके माँ-बाप को गाँव के सवर्णों से कई तरह के अपमान सहना पड़ता है। चंदन को होशियार होने के बावजूद स्कूल में अपमानित होना पड़ता है। चंदन जब पढ़ने के लिए शहर जाता है तो गाँव के पंडित और ठाकुर लोग चंदन के परिवार को धमकाते हैं। काणे पंडित चंदन के पिता को डराता है- “आज तक किसी का बेटा शहर पढ़ने नहीं गया। कई पीढ़ियों से हमारे आपके पुरखे इस

गाँव में रहते आए हैं। कभी किसी ब्राह्मण-ठाकुर या सेठ-साहूकार का बेटा इतना ऊँचा नहीं पढ़ा, लेकिन यह दो कौड़ी का आदमी, यह चमार की औलाद हम सबके मुँह पर कालिख पोतने चला है बेटे को ऊँची तालीम के लिए शहर भेजकर। यह अपमान है।"[1] यहाँ चमार जाति के होने के कारण सुक्खा को यह सब कुछ सुनना पड़ता है। "जख्म हमारे" में गुजरात के भूकंप का चित्रण किया है। इस भूकंप में सवर्णों के घर भी बरबाद हुए थे। सवर्ण लोग भूकंप में मर गये और कई मिट्टी के अन्दर फँस गये। इन लोगों को बाहर निकालने का काम गुलाम और अन्य दलित मज़दूरों का है। भूकंप से पीड़ित लोगों को कैंपों में भर्ती करवाया गया था। उसमें गुलाम अहमद को जाति में हरिजन होने के कारण कई अपमान सहना पड़ता है। उससे सवर्ण लोग लाइन में खड़े होते समय पीछे जाकर खड़े होने को कहता है। वे अवर्णों के अलग लाइन तक बनाते हैं। लेखक कहता है- "वह उनके बीच अजनबी बन गया था। भूचाल में सब कुछ ध्वस्त हो गया था, पर जाति नहीं।"[2] वास्तव में ये दलित मजदूरों ने सवर्णों के जान बचाये हैं और शहर का पुनर्निमाण किया है। सवर्ण लोग दलितों को पुश्तैनी धंधे में फँसाकर रखना चाहते हैं। भंगी जाति के लोग सालों से समाज को स्वच्छ बनाने का काम करते आ रहे हैं। इसमें नादिर नामक भंगी युवक को सरकारी नौकरी नहीं मिलता है। क्योंकि सवर्ण अफ़सर उसके आवेदन पत्रों को फेंकते हैं। उसी प्रकार मेश्राम

---

[1] जयप्रकाश कर्दम – छप्पर, पृ : 33

[2] मोहनदास नैमिशराय – जख्म हमारे, पृ : 11

और पटेल नामक शिक्षित युवक कबाड़ी का काम करते हैं। क्योंकि वह उनका पुश्तैनी धंधा है।

"मोरी की ईट" में मेहतर जाति की समस्याओं पर विचार किया है। इसमें लेखक ने लिखा है -"इस बीच अन्य बहुत सी बातों के साथ मुझे इस बात का भी खूब अच्छी तरह से अहसास हो गया कि सवर्ण और मध्यम जातियों तो क्या, अधिकांश अनुसूचित जातियाँ भी मेहतरों को अछूत ही समझती हैं। और धर्म बदल लेने पर भी भारतीय समाज में मेहतरों की मेहतरियत में कोई अंतर नहीं आता।"[1] कई मेहतर ईसाई धर्म में जाते हैं और शिक्षा प्राप्त करते हैं। फिर भी मेहतर ही बना रहता है। इसमें 'मांगिया' नामक मेहतर का बेटा 'जॉन कार्निलियास' जो प्रथम स्थान में उत्तीर्ण होता है तो सुधीर सकसेना के पिता को गुस्सा आता है। क्योंकि उसका बेटा हमेशा प्रथम स्थान पर आता था। सुधीर बताता है कि जॉन, सैमुअल साहब का पोता है तो उसका बाप कहता है- "ईसाई होने से क्या होता है, भंगी तो भंगी ही रहेगा। यह मिशन वाले हमें नीचा दिखाने के लिए इन नीची जाति वालों को सिर पर चढ़ा रहे हैं।"[2] जॉन जब पढ़-लिखकर अपना गाँव वापस आता है तो कोई भी उसे इज्जत नहीं देता। क्योंकि उनकी नज़र में वह एक मेहतर है।

"तुम्हे बदलना ही होगा........" में लेखिका ने चमार एवं भंगी जातियों के साथ किए जा रहे जातिगत भेदभाव का चित्रण किया है। इसमें

---

[1] मदन दीक्षित - मोरी की ईट, पृ : 9

[2] मदन दीक्षित - मोरी की ईट, पृ : 168

'महिमा' के चाचा 'सुरजन' जिस फ्लैट में रहता है वहाँ के सवर्ण लोग इससे छुआछूत मानते हैं। सुरजन उनके कोई भी व्यवहार का बदला नहीं लेते। क्योंकि शहर में दलितों को किराए का मकान मिलना कठिन है। वह महिमा से इसके बारे में कहता है - "अपनी दलित जाति के लोगों को अब भी अच्छी जगह, अच्छी घर मिलना बहुत कठिन होता है। मकान किराये पर देने के पहले हर जगह लोग पहले हमारी जाति पूछते हैं।"[1] नौकरी और शिक्षा के क्षेत्र में भी भेदभाव देख सकते हैं। शांतिनिकेतन महाविद्यालय में एस. सी. के लिए आरक्षित नौकरी वहाँ के मैनेजमेंट नहीं देता है। वे सालों से सवर्णों को रखते हैं। महिमा नामक चमार औरत आन्दोलन करके नौकरी पा लेती है। 'धीरज कुमार' जो भंगी जाति का है स्कूल और कॉलेज में उसे छूआछूत का सामना करना पडा है। जब वह बी.एच.यू. के होस्टल में रहता था तब उसके सवर्ण मित्र उसके साथ बैठकर न भोजन करते थे और न ही उनके घड़े से पानी पीते थे - "सवर्ण लड़के अपने हाथ से घड़े का पानी लोटे में लेकर उपर से मुँह में डालकर गढ़गढ़ पीते थे मगर वे प्यास लगने पर, अपने किसी सवर्ण मित्र से कहते। वह मित्र घड़े से दूर खड़ा होकर लोटे से उनके हाथों की ओक में पानी डाल देता था| इसी तरह नाश्ता और भोजन भी उन्हें अलग कागज़ में दिया जाता था।"[2] सवर्ण समाज अछूतों की छाया से ही अपने को अपवित्र मानते हैं। सदियों से उन्हें जाति में निम्न होने के कारण शिक्षा, नौकरी, संपत्ति आदि से वंचित रखा गया है। अधिकांश दलित छात्र जाति-

---

[1] सुशीला टाकभौरे - तुम्हे बदलना ही होगा....., पृ: 16

[2] वही, पृ: 92

भेद से तंग आकर बीच में ही पढ़ाई छोड़ते हैं। इस कारण उनकी स्थिति और भी दर्दनाक बन जाते हैं।

अशिक्षा

शिक्षा के द्वारा ही व्यक्ति और समाज का विकास होता है। भारत सरकार ने शिक्षा का प्रचार-प्रसार के लिए अनेक योजनायें अपना ली हैं। लेकिन दलित आज भी शिक्षा से वंचित है। जब तक दलित शिक्षित नहीं होता, तब तक उसका शोषण समाप्त नहीं होता। आलोच्य उपन्यासों में दलितों की अशिक्षा के बारे में चर्चा की गयी है। गरीबी, जातिगत भेदभाव आदि के कारण वे शिक्षा से वंचित रह जाते हैं। "मोरी की ईंट" में मेहतर लोगों के जीवन का चित्रण किया गया है। वे जाति में निम्न होने के कारण एवं आर्थिक कठिनाई के कारण शिक्षा से वंचित थे। गाँव में ईसाई मिशनरियों द्वारा कई स्कूल खोलते हैं तो मेहतर जाति के लोग ईसाई धर्म स्वीकार करके वहाँ पढ़ने जाते हैं। 'शंभू ठाकुर' नामक बाह्मण जो मेहतर बन जाता है तो अनपढ़ मेहतरों की मदद करता है| वह मिडिल क्लास पास था जो मेहतरों में बड़ी बात थी - "मिडिल पास होना तो उन दिनों बड़ी जातों में भी बड़ी बात थी और शंभू मिडिल पास थे। शहर की विरादरी में जब किसी को अपनी चिट्ठी-पत्री पढवाने के लिए किसी बसीठ की चिरौरी करने और फटकार खाने की जरूरत नहीं रह गयी थी। यही नहीं, उनके सहारे विरादरी के और भी चार-छह लड़के थोड़ा बहुत पढ़ना-लिखना सीखकर चिरंजिया, बथुआ, झगडूआ और भूखा से मुंशी चिरंजीलाल, मुंशी व्थनलाल, मुंशी

झगडूलाल, मुंशी भूखलाल हो गये थे।"[1] इसमें 'मंगिया' नामक मेहतरानी अपने गाँववालों को शिक्षित कराने के उदेश्य से जेकब के पास जाती है जो मिशनरी के विशप है। वह पूछती है -"हमारा किसन कहता है कि बम्बई में रात को ऐसे स्कूल चलते है जिनमें बड़ी-बड़ी उमरों के लोग पढ़ते हैं। हमारे लोगों के लिए ऐसा कोई स्कूल नहीं खोला जा सकता?"[2] इसमें अनपढ़ दलितों का दुःख झलकता है। सरकार ने अनेक योजनायें बनाई हैं फिर भी वह पूरी तरह सफल नहीं हैं।

"आज बाज़ार बंद है" में वैश्यावृत्ति करने के लिए अभिशप्त दलितों का चित्रण किया है। इसमें अधिकाँश अनपढ़ हैं। वेश्याओं के बच्चे समाज की नज़र में अवैध हैं। इसलिए वे भी शिक्षा से वंचित रह जाते हैं। जब पत्रकार इनकी इंटरव्यू लेने आते हैं तो 'फूल' नामक वेश्या और उसके बेटे बाबू के बारे में पूछते हैं। तब 'शबनम बाई' नमक वेश्या बताती है की बाबू पांचवी कक्षा में है। लेकिन उसे स्कूल में दाखिला मिलने के लिए कई सघर्ष करने पड़े। पत्रकार इसका कारण पूछते है तो शबनम बताती है- "बाप के नाम के बिना तो स्कूल में दाखिला नहीं मिलता न। अब यह बिचारी किस-किस का नाम बाप के नाम खाने में दर्ज कराती।"[3] वेश्याओं को बचपन से ही इस धंधे में थकेल दिए जाने के कारण न वे पढ़ पाती हैं और न अपने बच्चों को पढ़ा पाती हैं।

---

[1] मदन दीक्षित – मोरी की ईंट, पृ : 112

[2] मदन दीक्षित - मोरी की ईंट, पृ : 139

[3] मोहनदास नैमिशराय - आज बाज़ार बंद है, पृ : 37

'छप्पर' में चमार आर्थिक तंगी के कारण पढ़ाई नहीं कर पाते हैं। जब चंदन गांववालों को शिक्षा के महत्व के बारे में समझाता है तो एक व्यक्ति इसके संबंध में सवाल करता हैं। क्योंकि गरीब गाँववाले पढ़ाई का खर्च नहीं उठा पाते थे। वह व्यक्ति कहता है -"हमारे पास-पल्ले तो कुछ है नहीं। जो थोड़ा बहुत कमाते हैं उससे पेट भरने का जुगाड़ ही मुश्किल हो पाता है फिर पढ़ाई-लिखाई का खर्च.....?"[1] प्रत्येक गाँववाले गरीबी के कारण पढ़ाई से दूर रहते हैं। इसमें चंदन का बाप सुक्खा अशिक्षित है। लेकिन वह दिन-रात मेहनत करके उसे पढ़ाता है। सुक्खा को पढ़ाई के बारे में कुछ भी मालूम नहीं है। इसे इतना पता है कि उसका बेटा डाक्टर बनना चाहता है। जब चंदन की माँ 'रमिया' डॉक्टरी के बारे में पूछती है तो सुक्खा कहता है -"मैं गंवार आदमी क्या जानूं पढाई-लिखाई की बात। जैसे तू कुछ नहीं जानती वैसे ही मेरे लिए भी काला आखर भैंस बराबर है।"[2] इसमें 'हरिया' नामक दलित पात्र है जो अकेला रहता है। अकेलेपन से उसका दम घुटता है। वह निरक्षर होने के कारण अकेलेपन से उभरने के लिए किताबें तक पढ़ नहीं पाता है। सवर्ण लोग इन्हें हमेशा दबाये रखने के लिए शिक्षा से दूर रखते हैं। प्रस्तुत उपन्यास में इस सच्चाई को दर्शाया है- "तनिक समझने की कोशिश करो कि यदि ये सब लोग पढ़-लिखकर ऊँचे ओहदों तक पहुँचने लगेंगे तो हमारी श्रेष्ठता कहाँ रह जाएगी? यदि ये सब लोग स्वावलंबन और

---

[1] जयप्रकाश कर्दम - छप्पर, पृ : 41

[2] वही - पृः 8

स्वाभिमान का जीवन जीने लगेंगे तो फिर हमारा वर्चस्व किस पर रहेगा?”[1] सवर्ण लोग अपना वर्चस्व कायम रखने के लिए सदियों से दलितों को शिक्षा से वंचित रखा है।

“नरककुंड में वास’ में ‘काली’ नामक युवक चौथी तक पढ़ा है। गरीबी आदि के कारण वह आगे पढ नहीं पाता है। एक बार शहर आता है तो इसे कोई नौकरी नहीं मिलता है। अंत में उसे छिब्बू और कालू नामक दो मज़दूरों की सहायता से रेढे में भिंडी का काम मिलता है। उन्हें एक दूकान से समान उठाकर दूसरे दूकान पहुँचाना है। प्रत्येक दूकानदार एक पर्चा उन्हें देता है जो ये पढ नहीं पाते थे। काली उनकी मदद करता है। काली इसके बारे में पूछता है तो छिब्बू कहता है- “पढ़े-लिखे होते तो किसी दूकान में मुनीम होते। चिट्ठे कपडे पहनते। हमारी पढ़ाई तो डंगरों के बीच में ही हुई है। उन्होंने जो काम सिखाया वही कर रहे हैं।”[2] अशिक्षा के कारण अधिकांश दलित अपनी पुश्तैनी धंधों में बंध होकर जी रहे हैं। सवर्ण लोग इनको शिक्षा से वंचित रखकर इनका फायदा उठाते हैं। “तुम्हे बदलना ही होगा.......” में ‘धन्नो’ नामक पात्र जो मेडिकल अस्पताल की सफ़ाई कर्मचारी है, आशिक्षित है। लेकिन वह अपनी बेटी को पढ़ाती है। क्योंकि अनपढ़ होने का दुःख वह जानती है। वह कहती है- “यदि थोड़ा पढ़-लिख जाती , तो क्या से क्या कर डालती मगर माँ-बाप ने पढाया नहीं। पढ़ाते भी कैसे? उस समय हम लोगों को कहाँ पढ़ने-लिखने दिया जाता था? कोई दो-चार लोग ही, दो-चार

[1] जयप्रकाश कर्दम - छप्पर,: 66

[2] जगदीशचंद्र – नरककुंड के वास, पृ : 95

क्लास पढ़ सके होंगे।"[1] आर्थिक तंगी के कारण माँ-बाप अपने बच्चों को अपने साथ काम पर ले जाते हैं। सवर्ण-संपन्न लोग इनके बच्चों को कम वेतन पर काम करवाते हैं। ये बच्चे खेतों, कारखानों व होटलों में काम करने के लिए विवश होते हैं। इनमें लड़कियों की संख्या अधिक है। धीरज और माहिमा के नेतृत्व में किए जा रहे प्रयासों से कई बच्चों को पढ़ने का मौक़ा मिलता है।

राजनैतिक शोषण

भारतीय संस्कृति में प्रचलित भेदभाव और शोषण राजतंत्र और सामंतशाही की देन है। भारत विश्व का सबसे बड़ा प्रजातान्त्रिक देश है। लेकिन यहाँ सरकार, प्रशासन और न्यायपालिका ने इन विकृतियों को प्रोत्साहन दे रहा है। लोकतान्त्रिक राजनीति को समाज में एकता लाना चाहिए। लेकिन आज वह अपने उद्देश्य से कोसों दूर है। राजनीतिज्ञों का उद्देश्य परस्पर विरोधी हितों को सामंजस्य करना है। आज राजनीति अभिजात वर्ग के हाथ की कठपुतली बन गई है। इस तानाशाही के कारण वे पिछड़े वर्ग की समस्याओं का नज़रअंदाज करने लगे हैं। वे अभिजात वर्ग के साथ मिलकर इनका शोषण करने लगे हैं।

"परिशिष्ट" में 'बावनराम' और 'अनुकूल', चौधरी साहब से मिलने उनके घर पर जाते हैं तो वहाँ एक संसद के सादस्य राजेन्द्र सिंह से बातचीत होती है। उनकी नज़र में हरिजन उनके बहु-बेटियों को छेड़नेवाले हैं। राजेन्द्रसिंह बताता है- "भगवान की रेटी-मेटी तो जा नहीं सकती। तख्ती पर

---

[1] सुशीला टाकभौरे – तुम्हे बदलना ही होगा....., पृ : 59

कच्ची स्याही से लिखी इबारत तो है नहीं कि धोओ, पोतो, और फिर लिख लो। जो जहाँ है वे वहीं रहेगा।"[1] यहाँ सवर्णों की संकुचित मानसिकता को चित्रित किया है। यहाँ राजेन्द्रसिंह के अनुसार दलितों को भगवान ने जिस जाति में और जिस स्थिति में बनवाया है उसी स्थिति में रहने देना चाहिए। राज्य सरकार एस.सी और एस.टी छात्र-छात्राओं को अनुदान और वजीफ़ा देता है। लेकिन कभी-कभी यह समय पर नहीं मिलता है। अनुकूल और अन्य दलित छात्र वजीफ़ा समय पर नहीं मिलने के कारण आर्थिक तंगी से गुज़रते हैं। कई लड़के पढाई बीच में छोडकर गाँव वापस जाते हैं। अनुकूल के नेतृत्व में इसके खिलाफ़ आंदोलन करने को सोचता है तो उनमें से एक लड़का बताता है - "अगर हम इस सवाल को उठायेंगे तो हमारा साथ कौन देगा....? प्रशासन हम दोनों को पहले से ही आवांछनीय समझता है। उनको बहाना मिल जायेगा और हम निकाल दिये जायेंगे....."[2] प्रजातंत्र ताकतवारों के हाथ में है। इसलिए कमज़ोर वर्ग उनसे डरते हैं। इस डर के कारण वे अपने अधिकारों की माँग तक नहीं कर पाते हैं।

"मोरी के ईट" में लेखक ने हरिजनों के प्रति सवर्ण राजनीतिज्ञों के दिखावटी सहानुभूति के बारे में यों लिखा है- "महात्मा गाँधी ने अछूतों को 'हरिजन' नाम देकर हरिजन सेवक समाज बनाया और हरिजन सेवक अखबार निकालना शुरू किया तो सभी कांग्रेसियों ने, कम से कम दिखावटी तौर से तो, हरिजन सेवा की सार्थकता मान ही ली, लेकिन ऊँची तो क्या,

---

[1] गिरिराज किशोर - परिशिष्ट, पृ : 38

[2] वही - पृ : 154

मध्यम बिरादरियों तक के कांग्रेसी अछूतों से सीधे संपर्क में आने से कतराते रहे।"[1] राजनितिक नेतायें मेहतरों तथा अन्य पिछड़ी जातियों से नफ़रत करते हैं। लेकिन जब चुनाव आते हैं तो मेहतरों से सौ वोट हासिल करने के लिए उनको शराब, पैसा आदि देते हैं। इसका चित्रण इसमें देख सकते हैं- "चुनाव भर सुम्मेरी चौधरी और हरिलाल ने शहर-भर की मेहतर बिरादरी के निठल्ले छैलों को लेकर ज़मींदार पार्टी के दफ्तर में कचौड़ियों और गोश्त-रोटी उड़ाई और वे मुफ्त की शराब पीकर मेहतर मोहल्लों में गर्दा काटते रहे।"[2] प्राचीनकाल से ही अछूतों को राजनीति में स्थान नहीं दिया गया है। जौन राजनीति मे अछूतों को न स्थान देने पर कहता है तो ऐरिक बताता है - "....अछूतों को खुद भी तो सत्ता में साझेदार होने के लिए तैयार होना पडेगा। शिक्षित होना पडेगा, अपने अधिकारों के प्रति जागरूक होना सीखना पडेगा।"[3] अछूतों की स्थिति में सुधार लाने के लिए उन्हें राजनितिक सत्ता में आना ही पडेगा।

"आज बाज़ार बंद है" में वेश्या समस्या का चित्रण करते हुए सरकार, पुलिस एवं पत्रकारों की मिलीभगत का चित्रण किया है। उपन्यास के प्रारंभ में थाने को वेश्याओं द्वारा घेरने की खबर आने के कारण संसद में हुई चहलपहल एवं चर्चाओं का चित्रण किया है। इसके संबंध में लेखक ने लिखा है -"राजनीति में पक्ष और विपक्ष के सदस्यों के लिए यह सांप-छछूंदर का खेल

---

[1] मदन दीक्षित – मोरी के ईट, पृ : 141

[2] वही - पृ: 147

[3] वही - पृ 181

था। सत्ता में रहें या सत्ता से बाहर दोनों खेमे के क्षत्रपों को ही अखबारवालों से रिश्ते बनाकर रखने होते थे।"[1] अखबार में खबर छपते ही थाने में सबसे पहले राजनीतिज्ञों का फ़ोन आता है। इससे स्पष्ट है कि वेश्याओं के शोषण करनेवालों में इनका भी योगदान है। ये लोग वेश्या समस्या को गंभीरता से नहीं लेता है। लेकिन ये राजनीतिज्ञ इनका यौन शोषण करते हैं। एक बार 'सुमित' नामक पत्रकार 'पार्वती' नामक वेश्या की डायरी पढता है -"राष्ट्र पुरुष कहे जाने बाले राजनीतिज्ञों के साथ सोने वाली वेश्याओं के चौका देने वाले विवरण थे। विधान सभा से लोकसभा के कुछ सदस्यों का नाम दर्ज था। उनकी रखैलों की पते भी थे।"[2] यह विवरण राजनीतिज्ञों की असलियत सामने लाता है जिसे पढ़कर सुमित तक चौंक जाता है।

"नरककुंड में वास" में काली और अन्य दलित मजदूर चमड़े के कारखाने में कीड़ों की तरह रहते हैं। वे बदबूदार और गंदी वातावरण में इसलिए काम करते हैं ताकि वे अपने पेट का आग बुझाए। उस कारखानों में मज़दूरों के लिए यूनिफार्म नहीं, इलाज और दवाइयाँ नहीं, शुद्ध पानी भी नहीं है। अधिकाँश मज़दूर कुछ सालों में ही खुजली के बीमार बन जाते हैं। इनकी ओर सरकार और राजनीतिज्ञ ध्यान नहीं देते। दूसरी तरफ़ राजनितिक नेताएँ धार्मिक नेताओं के साथ मिलकर गाँव में मंदिर बनवाने के लिए लोगों को प्रोत्साहित करते हैं। वे बड़े-बड़े भाषण देते हैं। रामप्रकाश नामक नेता अमीर है। वह अपने भाषणों से लोगों को प्रभावित करता है।

---
[1] मोहनदास नैमिशराय – आज बाज़ार बंद है, पृ : 18
[2] मोहनदास नैमिशराय – आज बाज़ार बंद है, पृ : 78

लेकिन साधारण लोगों के लिए कुछ भी करता नहीं है। पंडित बालमुकुंद उसके बारे में कहता है - "सेठ रामप्रकाश के मन में धन-दौलत के लिए कोई मोह-ममता नहीं है। वे तो अपनी बिरादरी को ऊँचा उठाना चाहते हैं। अपना समय, साहस और शक्ति इसी काम में लगाना चाहते हैं।"[1] यहाँ राजनीति और धर्म की मिलीभगत देख सकते हैं। इसी षड्यंत्र के चलते वे लोग मंदिर बनवाने के लिए कारखाने के मज़दूरों की तनख्वाह से पाँच रुपया लूटने का मार्ग तलाशते हैं।

"जख्म हमारे" में लेखक ने बाबरी मस्जिद ध्वंस की पृष्ठभूमि को आधार बनाकर मुस्लिम एवं दलितों के साथ हो रहे शोषणों का चित्रण किया है। गुजरात में हुए दंगे के बाद चुनाव आता है। हिन्दू पार्टी के नेतायें मुसलमानों को पराया बनाते हुए दलितों को अपने साथ रख देता हैं। वे दलितों को इस्तेमाल करके चुनाव जीतना चाहते थे। चुनाव के पहले और न बाद में वे दलितों को हिन्दू नहीं मानते हैं। लेखक ने राजनीतिज्ञों के इस कुटिल तंत्र के बारे में लिखा है -"दलितों की भागीदारी न हिन्दू पार्टी में थी और न विरोधी दलों में। उन्हें सिर्फ इस्तेमाल किया जाता था। कुछ नेता बिकाऊ थे। उन्हें न डॉ. अंबेडकर के सपनों को पूरा करने की चिंता थी न कौम की बेहतरी के लिए कुछ करना चाहते थे।"[2] इसप्रकार राजनीति का फायदा अभिजात वर्ग तक सीमित रह जाता है। इन्ही कारणों से स्वतंत्रता प्राप्ति के इतने सालों बाद भी दलित पिछड़े हैं।

---

[1] जगदीशचंद्र - नरककुंड में वास, पृ : 233

[2] मोहनदास नैमिशराय - जख्म हमारे, पृ : 20

दलित नारी

दलित नारी को स्त्री होने के कारण दोहरा शोषण सहना पड़ता है। वर्ण-जाति उत्पीडन और यौन हिंसा की शिकार और इससे असुरक्षित दलित स्त्री को आर्थिक रूप से सामंतों-पूंजीपतियों पर निर्भर होना पड़ता है। वे लोग इनकी मज़बूरी का फ़ायदा उठाकर शारीरिक शोषण करते हैं। अपने परिश्रम का मूल्य मांगने पर प्रताड़ित एवं अपमानित किया जाता है। आज हर दिन अखबार में और मीडिया में दलित स्त्री के साथ हो रहे यौन उत्पीडन का सचित्र विवरण प्रसारित होते हैं। दलित बच्चियों एवं स्त्रियों का बलात्कार करके सड़क, कूड़े-कचड़े, नाले में फेंक देते हैं या ज़िंदा जला दिया जाता है और कभी मारकर फंदे पर लटका दिया जाता है। उत्तर भारत में यह दैनिक खबर बन गई है। वहाँ पुलिस और कानून सत्ताधारियों का पक्ष लेकर इसे आत्महत्या साबित कर देता है। अशिक्षित गाँववालों की मदद करने के लिए सरकार भी तैयार नहीं होते हैं। वे लोग बलत्कार के लिए स्त्री को ही ज़िम्मेदार बताते हैं। ऐसी दलित स्त्रियों को चरित्रहीन, अपवित्र, कामातुर, सिद्ध करके स्त्री की अस्मिता को ध्वस्त करने का षड्यंत्र रचते हैं। इसप्रकार करने पर ये सवर्ण लोग बलात्कारी को छूट देकर दलित स्त्री को दोषी करार देता है। राजस्थान में बाल-विवाह की विरोध करने के कारण 'भंवरी देवी' नामक दलित स्त्री का बलात्कार हुआ था। तब कानून भंवरी देवी की मदद नहीं की। उनका कहना था कि सवर्ण मर्द किसी दलित स्त्री का बलात्कार कभी नहीं कर सकते।

डॉ. अंबेडकर द्वारा लाये 'हिन्दू कोड बिल' ने दलित स्त्री सशक्तिकरण की दिशा में क्रांतिकारी कदम उठाया था। इसने मनुवादी पितृसत्तात्मक तानशाही के विरुद्ध दलित स्त्री को खड़ा करने का महान कार्य किया। इस बिल ने हिन्दू स्त्री को सामाजिक-आर्थिक-सांस्कृतिक अधिकारों के प्रति सजग करने तथा उन्हें संवैधानिक अधिकार देने के लिए पारित हुआ था। उससे उन्हें यौन शोषण, घरेलू हिसा, असम्मान आदि से बचाकर इंसान के रूप में जीने का अधिकार मिला है। अपने अस्तित्व के प्रति सचेत होकर आत्मसम्मान के साथ जीने की ललक पैदा करता है। इससे समाज में खासकर दलित स्त्रियों में भारी परिवर्तन आया है। फिर भी उत्तर भारत के सूदूर गाँवों में जहाँ शिक्षा केवल सपना मात्र है, आज भी दलित स्त्रियों का बराबर उत्पीडन, अपमान हो रहा है। अशिक्षा ने इक्कीसवीं सदी में भी उसे भोगवस्तु बनाकर रख दिया है। इसके साथ पुरुषवर्चस्ववादी एवं मनुवादी सोच ने उसकी प्रगति के रास्ते को कुंद करना चाहते हैं, उसे एक खूंटे से बांधे रखना चाहते हैं ताकि वे अपनी अय्याशी कर सके। समकालीन उपन्यासों में अशिक्षा, अंधविश्वास, पुरुषसत्ता आदि के कारण दलित स्त्री पर हो रहे शारीरिक, मानसिक, आर्थिक, शोषण का चित्रण देखने को मिलते हैं।

दलित नारी : यौन शोषण

दलित स्त्री पर सवर्ण पुरुष की दृष्टि में दुर्भावना है। उसके स्त्रीत्व का अपमान करके वे तमाम दलित जाति के स्वाभिमान को ठेस पहुँचाना चाहते हैं। वे इसे अपना जन्मजात अधिकार मानते हैं। खेतों, जंगलों, घरों, में

सवर्णों द्वारा दिन के उजाले में भी दलित स्त्री को अपमानित होना पड़ता है। अनुसूचित जाति-जनजाति आयोग की रिपोर्ट के अनुसार वर्ष 1981 से 1986 तक दलित और आदिवासी महिलाओं पर हुए बलात्कारों की संख्या क्रमशः 4000 और 1617 है| जयप्रकाश कर्दम के “छप्पर” में ‘कमला’ नामक युवती के सामूहिक बलात्कार का चित्रण है। वह अपने साथ हुए बलात्कार का बयान ‘चंदन’ से करती है। वह अपने माँ-बाप के साथ सेठ के भट्टे पर काम करती थी। उसे पीने का पानी एक दफ्तर के अहाते में लगे नल से ही लाना होता था। वे अपने कपडे धोने और पानी लेने के लिए हमेशा वहाँ आते-जाते थे। एक दिन उस दफ्तर के मालिक के साथ कुछ दोस्त भी थे। वे मिलकर शराब पी रहे थे। कई बार उन लोगों को कमला पानी देने के लिए गयी थी। अचानक एक दिन ये लोग उस पर टूट पडे। उन लोगों ने उसके माँ-बाप को भी मारा था। पुलिस की जेब इन लोगों ने पहले ही भर दिया था। इसलिए वे रिपोर्ट लिखने के बदले कमला के बाप को मारा। इस सामाजिक भ्रष्टाचार और नारी उत्पीडन के बारे में चंदन यों कहता है- “कैसी विचित्र व्यवस्था है इस समाज की। एक ओर आतताई भेडियें हैं, और दूसरी ओर कमला जैसी निरीह और असहाय युवतियाँ। एक ओर सृष्टि का आधार माना जाता है औरत को, वह देवी है, माँ है, उसके पैर छुए जाते हैं। वह श्रद्धा और सम्मान की पात्र है। दूसरी ओर कमला जैसी युवतियाँ है जो समाज के लिए खिलौना हैं, जिनको पुरुषों का एक वर्ग अपनी वासना की तृप्ति का साधन मात्र समझता है, उनके साथ बलात्कार किया जाता है। एक

ओर नारी बहन है, बेटी है, उसकी इज्जत जान से भी बढ़कर होती है और दूसरी ओर कमला जैसी युवतियां हैं जिनको सरेआम बेइज्जत किया जाता है, जिनके शरीर और यौवन समाज के इन भेडियों की यौन तृष्णा की आग को शांत करने का साधन मात्र है।"[1] यहाँ कमला हार नहीं मानती है। वह अपने बच्चे को जन्म देती है और चंदन के स्कूल में पढ़ाने के लिए भेजती भी है।

आर्थिक निर्भरता और सामाजिक सुरक्षा के आभाव में दलित स्त्री उच्च जाति के लोगों की कामवासना का शिकार होती है। गाँव के दलित परिवार उच्च जाति के यहाँ काम करते हैं और दैनिक जरूरतों के लिए उनसे उधार लेते हैं। इसके कारण सवर्ण लोग उन्हें भोग वस्तु मानने लगते हैं। इसलिए शिवमूर्ति के 'तर्पण' की 'पियारे' कहता है -"शहरों की वह नहीं जानता लेकिन गाँव में जवान बेटी का बाप होना, वह भी छोटी मेहनतकश जाति वालों के लिए महा मुश्किल। कितना धीरज, कितनी समवायी चाहिए, यह वह आदमी बिलकुल नहीं समझ सकता जो किसी बेटी का बाप नहीं है।"[2] सवर्ण लोग दलितों के मान-सम्मान पर चोट करने या दबाने के लिए दलित नारी के बलात्कार को हथियार के रूप में इस्तेमाल करता है। पियारे की दो बेटियाँ हैं, जिनमें एक का जमींदारों के अत्याचार से दुखी होकर कुएँ में कूदकर आत्महत्या करने का जिक्र है। दूसरी बेटी 'रजपतिया' पर भी जमींदार का बेटा 'चंदन' ने उसकी खेती चोरी करने के जुल्म में बदमाशी करने की कोशिश करता है। विक्रम की बुआ के साथ सालों पहले बलात्कार हुई थी। उसकी

---

[1] जयप्रकाश कर्दम - छप्पर, पृ : 50
[2] शिवमूर्ति - तर्पण, पृ : 15

शादी के लिए बारह दिन ही बचे थे कि नत्थूसिंह के दोनों बेटों ने दिन के उजाले में ही घास छीलती बुआ को घसीट कर गन्ने की खेत ले गये थे। बुआ तो कई दिनों तक बिस्तर पर पड़ी रोती रही। इसके अलावा वे कुछ नहीं कर सकते थे। क्योंकि नत्थूसिंह के बेटों ने पुलिस के पास जाने पर हाथ-पैर तोड़ने की धमकी दी थी। इसलिए सब चुपचाप सहते रहे।

"मोरी की ईंट" में 'मंगिया' नामक मेहतरानी के यौन शोषण का चित्रण किया है। चुंगी में काम करने वाली मंगिया पर 'हीरालाल' जमादार बुरी दृष्टी रखता है। वह किसी भी तरह उसको पाना चाहता है। उसका पति 'झरगदिया' भी इसके लिए प्रोत्साहन देता है। जब हीरालाल के बारे में पति से शिकायत करती है तो पति डांटता है और कहता है -"स्साली बसीठों की लुगाइयों की तरह पतिवरता बनने का डिरमा मत खेल मेरे सामने। तेरी किसी कुलच्छन से जमादार नाराज़ हो गया तो तेरी टांगें चीरकर रख दूंगा। जमादार हमारा बास्सा आदमी है, खुस होगा तो बहुत कुछ देगा।"[1] सवर्ण लोग मेहतरों को अछूत मानते हैं। लेकिन स्त्रियाँ उनके लिए अछूत नहीं। उसी प्रकार जब सुरेन्द्र नारायण पांडे नामक डॉक्टर के यहाँ नौकरानी बनकर जाती है तो पांडे उसका यौन शोषण करता है। इस संबंध से एक लड़का भी पैदा होता है। लेकिन डॉक्टर उसे अपना बेटा नहीं मानता। फिर भी मंगिया और बेटे को खुश रखने की कोशीश करता है। अपमान से डरकर वह लोगों के

---

[1] मदन दीक्षित – मोरी की ईंट, पृ : 12

सामने यह स्वीकार नहीं कर पाता है। इसप्रकार ब्राह्मण लोग हमेशा दलित औरतों को भोग की वस्तु माना है।

"आज बाज़ार बंद है" में दलित वेश्याओं की समस्याओं का चित्रण किया है। पुरुषवर्चस्ववादी समाज ने अपने शारीरिक भूख मिटाने के लिए वेश्याओं, गणिकाओं एवं देवदासियों को जन्म दिया। वे सिर्फ इन्हें शरीर मात्र समझता है। ग्राहक इनके कोठे पर आकर सौदा तय करते हैं। वे कम पैसा देकर काम निपटाकर चले जाते हैं। वे इनकी संवेदनाओं को पहचानते नहीं है। इसमें 'शबनम बाई' वेश्याओं की समस्याओं के बारे में बताती है - "किसी को ट्रांसफर कराना हो या प्रमोशन तब हमारी याद आती है। टेंडर पास कराना हो तो उन्हें हमारी जरूरत पड़ती है। सरकारी आफिसों में कभी-कभी सीधे रिश्वत नहीं दी जाती। हमें परोसा जाता है रिश्वत के रूप में। हमें बिछना ही पड़ता है। कोई-कोई अफसर तो हमें खुद ही बुलाता है। हमें जाना ही पड़ता है। हम नहीं जाएं तो सौदा नहीं पटता। सौदा पटाने के लिए हमारी जरूरत पड़ती है।"[1] पुरुष ने भोग लिप्सा के लिए कभी जाति के नाम पर तो कभी धर्म के नाम पर औरतों को वेश्या बनाते गये। इसमें 'पार्वती' नामक पात्र है जो जाति में निम्न होने के कारण देवदासी बनती है। औरतें देवदासी बनकर मंदिर के पंडितों और सवर्णों के एय्याशी का साधन बन जाती है। यहाँ पुरुषों ने स्त्री का यौन शोषण करने के लिए धर्म का सहारा लिया। पार्वती कहती है - "देवदासी को कोई भी रखे, देवता कुपित

---

[1] मोहनदास नैमिशराय – आज बाज़ार बंद है, पृ : 38

नहीं होते थे। पर दलित समाज की कोई लड़की देवदासी न बने तब वे नाराज हो जाते थे। देवदासी को विवाह करने की मनाही थी, पर देवदासी के साथ दस-दस लोग संभोग करें, न पत्थर के देवताओं को एतराज था और न शंकराचार्यों को।"[1] देवताओं की दासी होने के कारण उसका कई लोगों के साथ संबध रखना बुरा नहीं मानते।

दलित जागरण

दलितों के साथ हो रहे अन्याओं व अत्याचारों का विरोध संत, कवियों के साथ, भगवान बुद्ध, महात्मा फुले और अंबेडकर ने किया है। अंग्रेजी शिक्षा के प्रचार-प्रसार से उत्पन्न नई चेतना ने चातुर्वण्य समाज-व्यवस्था पर पुनर्विचार करने को बाध्य किया। अनेक पत्र-पत्रिकाओं एवं ग्रंथो के ज़रिए समाज के सामने यह सवाल खड़ा किया कि इस अस्पृश्यता का बीज कहाँ है और जातिगत भेद की जरूरत क्या है? सवर्ण हिन्दुओं का दलितों के प्रति नफ़रत का कारण क्या है? आदि। एक ओर साहित्य रचनाओं के ज़रिए दलितों में चेतना जगाने का प्रयास हो रहा था तो दूसरी तरफ समाज सुधारकों के प्रयासों से| महात्मा फुले जैसे सुधारकों ने ऊँच-नीच की भावना को मिटाने का प्रयास किया। उन्होंने शिक्षा के महत्व को समझाकर अस्पृश्यों के मन में आत्मविश्वास जगाने का कार्य किया। सन 1920 तक समाज में दलितों में चेतना जगाने का प्रयास निरतर हो रहा था। दलितों के मानव अधिकारों की माँग होने लगी। डॉक्टर बाबा साहेब अंबेडकर ने

[1] मोहनदास नैमिशराय - आज बाज़ार बंद है, पृ : 91

मानवाधिकारों से वंचित दलितों को बुनियादी अधिकारों के लिए दलित मुक्ति आन्दोलन का सूत्रपात किया था। उन्होंने 1927 से 1930 तक लगातार दलितों के बुनियादी अधिकारों के लिए संघर्ष किया। अनेक दलित स्त्री पुरुषो ने अपनी अस्तित्व और अस्मिता के लिए संघर्ष किया। शिक्षा के महत्व को समझने से उनमें शिक्षित होने की धुन दिखाई देने लगी जिसके कारण आज पूरी एक शिक्षित पीढ़ी अपने अस्तित्व के प्रति संचेत होकर बाबा साहेब के विचारों के अनुकूल समाज बनाने के लिए संघर्षरत है। सामजिक, आर्थिक और अन्य सभी प्रकार के विषमताओं को जानने और समझने की जिज्ञासा इनमें बढ़ी है। शंभूनाथ जी बताते हैं- "हम जनते हैं कि श्रम और वंश के आधार पर भेदभाव के विरोध का इतिहास पुराना है। नस्ल के आधार पर भेदभाव का विरोध भी स्वाधीनता संग्राम के समय बढ़ गया था| इन सामाजिक भेदभावों के विरुद्ध विश्व स्तर पर चले लंबे संघर्ष का ही नतीजा है दलितों में आया वर्तमान जागरण। उनमें यह अहसास पैदा हुआ है कि उनकी जिंदगी में बदलाव ज़रूरी है। उन्हें आत्मसम्मान के साथ जीने का हक़ है।"[1] इसप्रकार शिक्षा द्वारा एवं आंदोलनों द्वारा उनमें नई चेतना, जीवन के प्रति नई दृष्टि जन्म ली है। वे अपने अस्तित्व को पहचानने लगे हैं।

जयप्रकाश कर्दम के 'छप्पर' में 'सुक्खा' नामक दलित अपने इकलौते बेटे 'चंदन' को पढाना चाहता है। गरीबी इतनी अधिक है कि कभी-कभी उनके घर में चुल्हा तक नहीं जलती। फिर भी दिन- रात मेहनत करके वह

[1] शंभूनाथ - भारतीय अस्मिता और हिंदी, पृ : 241

अपने बेटे को पढाता है ताकि वह सुक्खा की तरह जिंदगी भर शोषण न सहे। इसलिए ज़मींदारों-सेठों द्वारा धमकाने और गाँव से निकाल देने पर भी सुक्खा ने अपने बेटे की पढ़ाई में अडचनें आने नहीं दिया। क्योंकि वह जनता है कि चंदन की पढ़ाई के बाद सब दलिद्दर दूर हो जायेंगे | शहर में पढ़ाई करते समय चंदन में काफी बदलाव आता है। वहाँ के दलितों की स्थिति पर उसे दुःख होता है। उनमें निहित अन्धविश्वास, अशिक्षा आदि दूर करने के लिए वह बहुत कुछ करता है। एक दिन बाढ़ आ जाता है। कई लोग बेघर हुए, हज़ारों आदमी और मवेशी पानी में बह गए। इंद्र को प्रसन्न करने के इससे गाँव को बचाने के लिए एक यज्ञ का आयोजन करता है। लेकिन चंदन इसका विरोध करता है। वह लोगों को बताता है- "सच्चाई यह है कि दुनिया में आत्मा, परमात्मा, ईश्वर, ब्रह्म, भगवान या इस तरह की किसी सत्ता का कोई अस्तित्व नहीं है। मनुष्य सबसे बड़ी सत्ता है, दुनिया में मनुष्य से बड़ी कोई चीज़ नहीं है। ये सब मिथक हैं, काल्पनिक हैं तथा भोले-भाले लोगों को बेवकूफ बनाकर अपने स्वार्थ सिद्ध करने के उद्देश्य से चालाक लोगों द्वारा ईजाद किए गए हैं।"[1] इस प्रकार वह लोगों को सचेत करने को कोशिश करता है| उनकी बातों में आकर सब उससे सहमत हो जाते हैं। वे इन अंधविश्वासों के लिए नहीं बल्कि समाज कल्याण के लिए चंदा इकट्ठा करने की निश्चय करते हैं। चंदन को शहर के कॉलेज में दलित होने के कारण भेदभाव सहना पडा। उसने कुछ दलित मित्रों को अपने साथ रखकर समाज

[1] जयप्रकाश कर्दम - छप्पर, पृ : 17

में उत्थान लाने की कोशिश की है। उसके दोस्त अलग-अलग व्यवसाय और काम से जुड़ने के इच्छुक थे। लेकिन चंदन जानता है कि समाज में हर क्षेत्र में जातिगत भेदभाव है। जाति की बाधा दलित को अवसर का उपयोग नहीं करने देता। वह बताता है- “केवल सामाजिक रूप से ही हमारी प्रस्थिति निम्न नहीं है बल्कि आर्थिक, राजनितिक और शैक्षिक, प्रत्येक क्षेत्र में हम पिछड़े हुए हैं। हमें प्रत्येक क्षेत्र में ऊपर आने की ज़रुरत है, लेकिन सबसे पहलली ज़रूरत है सामाजिक सम्मान की। यदि तुम्हारी सामाजिक हैसियत है तो तुम्हारे लिए हर कही गुंजाइश हो सकती है। यदि तुम्हारी कोई सामाजिक हैसियत नहीं है तो चाहे तुम कोई भी काम कर लो, कितना भी धन कमा लो उस सबका कोई महत्व नहीं है। पैसा भी जीवन का फैक्टर है, मैं इससे इनकार नहीं करता लेकिन इससे पहले ज़रूरी है समाज में तुम्हारी हैसियत का होना।”[1] दलितों में पढित लोग बड़े-बड़े स्थानों पर पहुँचता है। लेकिन बाकि दलित समाज हमेशा अशिक्षित और शोषण के शिकार होते रहते हैं। शिक्षित दलितों की संख्या बहुत कम है। वे ऊँचे ओहदे पर पहुँचने के बाद अपने समाज के बारे में नहीं सोचते। चंदन का विचार एकदम भिन्न है। उसका लक्ष्य सामजिक प्रगति है।

मोहनदास नैमिशराय के “जख्म हमारे” में ‘राजू’ नामक दलित और ‘सादिया’ नामक मुसलमान औरत दलित-मुसलमानों के साथ हो रहे अत्याचारों के खिलाफ आवाज उठाते हैं। भूकंप में सबकी मृत्यु के बाद राजू

---

[1] जयप्रकाश कर्दम - छप्पर, पृ: 37 – 38

को 'असलम' नामक मुसलमान और उसके परिवार ने आश्रय दिया था। गुजरात में मुसलमानों के साथ-साथ दलितों की भी समस्याएँ अधिक हैं। 'सुरेश जाधव' नामक दलित ने इनकी समस्याओं पर विचार करने के लिए 'दलित मुस्लिम महासंघ' का गठन किया था, जिससे दलित मुस्लिम एक दुसरे के करीब आते हैं। जब्बार ने 'मुस्लिम दुनिया' नामक पाक्षिक का संपादन किया था जो दलित अल्पसंख्यक सुरक्षा महासंघ की मुख्य अखबार थी। इनका लक्ष्य दलित-मुसलमानों का जागरण है। राजू ने इस अखबार का नाम 'इकबाल' रखा और हर दिन इसमें लेख लिखते रहे। राजू के साथ असलम, सादिया, सुरेश आदि के नेतृत्व में एक बैठक होती है। गाँव में इधर-उधर दलितों पर दंगा हो रहा था। राजू उस बैठक में बताता है कि अंबेडकर के समय से ही दलितों और मुसलमानों के बीच शत्रुता बढ़ाने की कोशिस शुरू हुई थी। सवर्ण लोग दलितों के साथ-साथ मुसलमानों को भी राजनीतिक गुलाम बनाया है। वह बताता है कि गाँधीजी की आत्मकथा में उसकी माँ किसी अछूत के छूने पर उत्पन्न अपवित्रता से बचने के लिए किसी मुसलमान को छूने का उपदेश देती है। यह बात सभी के लिए हैरानी की बात थी। समाज में हिन्दुओं द्वारा दलित और मुसलमानों पर हो रहे अत्याचारों को अलग-अलग दृष्टी से देखते थे। राजू ही उन्हें समझाता है - "सही बात तो यह है कि हमें न हिंदुओं ने अपना समझा और न मुसलमानों ने| दोनों के लिए हम अछूत रहे।"[1] राजू दलित और मुसलमानों को एक दूसरे का दोस्त

---

[1] मोहनदास नैमिशराय – जख्म हमारे, पृ : 111

बनाकर सांप्रदायिक, सवर्ण शक्तियों के खिलाफ संगठित कराने का उपदेश देता है। उसकी बातो में आकर सभी लोग अंबेडकर को पुनः पढ़ने की इच्छा व्यक्त करते हैं। राजू की बातों से सादिया और अन्य मुसलमान भी प्रभावित होते हैं और भारत में अपने नागरिक होने की अधिकार की माँग करते हैं।

राजनीतिज्ञ दलितों को गुलाम और मुसलमानों को विदेशी मानते हैं। बाबरी मस्जिद ध्वस के दिनों में भारत में कई दंगे हुए। सवर्ण हिन्दुओं का लक्ष्य मुसलमानों को चुन-चुनकर मारना था। उस दिन वे हिन्दूओं को बहुसंख्यक बताकर मुसलमानों के सामने अपनी संगठन शक्ति दिखाने की कोशिश की थी। सवर्ण हिन्दुओं ने दलितों को हमेशा हिन्दुओं से अलग रखा। लेकिन उस दिन सवर्णों का लक्ष्य मुसलमान थे। इसलिए दलितों को हिन्दुओं में शामिल करने लगे। उस दिन राजू से एक पुलिस ने जाति-धर्म की पूछताछ की तो उसने अपने को न हिन्दू कहा, न मुसलमान, बल्कि 'दलित' कहा। सवर्ण हिन्दू , दलित और मुसलमान को एक दुसरे के करीब आना नहीं चाहते।

शिवमूर्ति के "तर्पण" की 'भाई जी' दलित चमारों के साथ हो रहे शोषण एवं अन्याय के खिलाफ आंदोलन चलाता है। उन्होंने 'बहुजन पार्टी' का संगठन स्थापित करके गाँव-गाँव घूमकर बिरादरी के लोगों को अन्याय और जुल्म के खिलाफ खड़े होने के लिए तैयार करता है। उनके नेतृत्व में मज़दूरी बढ़ाने के लिए भी आंदोलन करता है। 'राजपतिया' के साथ चंदर ने जबरदस्ती करने की कोशिश की तब भाई जी ने ही गाँववालों को पुलिस के

पास जाने का उपदेश दिया था। उसने ही आवश्यकता पड़ने पर झूठा इल्जाम देने को कहा था। वह 'पियारे' और अन्य गाँववालों को समझाता है -"झूठ नहीं, स्ट्रेटेजी कलयुग में सिर्फ सच के भरोसे जीत नहीं हो सकती। वे तो हमेशा ही स्ट्रेटेजी के तौर पर झूठ बोलते और जीतते आए हैं| सिर्फ एक झूठ बोलकर कि वे ब्रह्मा के मुँह से पैदा हुए हैं और हम पैर से, वे हज़ार साल से हमसे अपना पैर पुजवाते आ रहे हैं। अब एक झूठ बोलने का हमारा दाँव आया है तो हमारे गले में क्यों अटक रहा है।"[1] भाई जी को उसके आंदोलनों के कारण गाँव से निकाल दिया गया था। वह गाँव से दूर जाने पर भी अपना आन्दोलन ज़ारी रखता है। उसके जागरण से प्रेरित होकर पियारे अपनी बेटी पर बलात्कार की केस कोर्ट तक ले जाता है और चन्दर को जेल जाना पड़ता है। कई सिफारिशों के बाद चंदर जेल से छूट जाता है तो वह गाँववालों को धमकी देता है। उस समय भाईजी गाँववालों को जागृत करके शोषकों का सामना करने का उपदेश देता है। वह कहता है- 'कैसे रेलवे स्टेशन और बस स्टेशन पर लिखा रहता है कि अपने सामान की रक्षा आप कीजिए, वैसे ही मैं कहता हूँ कि अपने जान-माल की रक्षा आप कीजिए। जब भी घर से निकलिए। हाथ में लाठी देखते ही अगला मुँह संभालकर बात करने लगता है। नौजवान लोग कमर में चाकू-गुप्ती घोंसकर चलें। खाली खोंसे ही न रहें किसी न किसी बहाने उसका प्रदर्शन भी करें।"[2] भाईजी के अनुसार शोषकों

[1] शिवमूर्ति - तर्पण, पृ : 25

[2] वही - पृ : 101

का दमन सहनने की जरूरत हमें नहीं है। जरूरत पड़ने पर हिंसा का मार्ग भी अपना सकते हैं।

"आज बाज़ार बंद है" में 'सुमीत' नामक पत्रकार वेश्याओं की सुधार करके उन्हें नई जिंदगी देने का प्रयास करता है। वह सबसे यह धंधा छोड़ने का अनुरोध करता है। वह उन्हें सपने देखने और उसे साकार करने के लिए प्रेरित करता है। सुमीत की बातों से प्रभावित होकर 'शबनम बाई' के कोठे की वेश्यायें इस धंधे को छोड़ने का निर्णय लेती हैं। लेखक बताते हैं- "सुमीत ने उन्हें गुलामी की नींद से जगाया था। वेश्याओं के बीच अच्छी सुगबुगाहट हुई। अच्छा बनने और मुक्ति की राह पर चलने के लिए अपने-अपने पिंजरें में कैद उन सबको मुक्त होना था। चारों ओर मुक्ति की गीत गूँजने लगे थे। पहल हुई शबनम बाई के कोठे से।"[1] सुमीत वेश्याओं को लेकर अपने अखबार में खूब लिखता है जो सरकार एवं समाजशास्त्रियों का ध्यान आकर्षित करता है।

"परिशिष्ट" में 'बावनराम' अपने बेटे 'अनुकूल' को शिक्षित कराकर ऊँचें पद पर बिठाना चाहता है। वह जाति के आगे हार नहीं मानता। वह अपने बेटे को समझाता है- "मैं चाहता हूँ कि तुम एक दिन अपनी कार से आकर घर के सामने उतरो....... जिससे लोग यह तो देखें कि हम लोगों की संतान भी कारों और मोटरों में बैठकर चलने के लिए पैदा होती है। हम छोटे हैं, क्योंकि हम हिम्मत हारकर, यह मान लेते हैं कि हम छोटे हैं, और छोटे ही

[1] मोहनदास नैमिशराय – आज बाज़ार बंद है, पृ : 114

रहेंगे।"[1] बावनराम की प्रेरणा से अनुकूल आई.आई.टी में जाकर पढता है। वहाँ जाकर जातिगत भेदभाव को नकारता है और इसके ख़िलाफ़ आवाज़ उठाता है। "तुम्हे बदलना ही होगा...." में चमार औरत 'महिमा' और भंगी 'धीरज कुमार' शिक्षित होने के साथ अपनी जाति को जागृत भी करते हैं। इसमें महिमा 'शांतिनिकेतन महाविद्यालय' में अध्यापन करने के साथ-साथ दलित छात्रों एवं महिलाओं के लिए कार्य करती है। वह अपनी छात्रा 'शोभा' के घर में जाकर उसके माँ-बाप को शिक्षा के महत्व के बारे में समझाती है - "आज की सबसे बड़ी ज़रूरत है, अपने बच्चों को खूब पढाओ, उन्हें आगे पढ़ने के पूरे अवसर हो। चाहे बेटा हो या बेटी, उन्हें शिक्षा पाने दो। बेटियों की शादी जल्दी करने की चिंता के बदले उनका कैरियर बनाने की चिंता करनी चाहिए।"[2] शोभा के माँ-बाप इससे प्रेरणा पाकर अपने बच्चों को पढ़ाते हैं और महिमा की संस्था के दलित एवं महिला जागृति के कार्यक्रमों में भाग लेते हैं। असी प्रकार 'धीरज कुमार' अध्यापक बनकर दलित मुक्ति के लिए काम करता है। वह अपने शहर बनारस में जाकर दलित बस्तियों के जनजागरण करता है। वह अपनी बस्ती के माता-पिता से बच्चों को पढ़ाने के लिए उपदेश देता है- "समझ-बूझ के साथ हमें अपनी शह बनानी चाहिए, तभी हम आगे बढ़ सकते हैं। बेटों की तरह बेटियों को भी पढाना है, ताकि वे अपने पैरों पर

[1] गिरिराज किशोर - परिशिष्ट, पृ : 13
[2] सुशीला टाकभौरे - तुम्हे बदलना ही होगा....., पृ : 57

सम्मान के साथ खड़ी हो सकें।"[1] धीरज भी महिमा के साथ मिलकर अपनी जाति के उत्थान के लिए कार्य करती है।

दलित अस्मिता

दलित सालों से जाति की पहचान या प्रतिनिधित्व को ढोता हुआ आगे आया है। भारत जैसे गरीब देश में इस वर्ग के लोगों का जीवन जाति व्यवस्था के बन्धनों में जकड़ी हुई दिखाई देती है। देश को आज़ादी मिल जाने पर भी दलित समाज को सामाजिक समता और स्वतंत्रता के मूल अधिकार उपलब्ध नहीं हो सके। वास्तव में स्वतंत्रता के पाश्चात उनके साथ शोषण एवं अन्याय और भी पढ़ गये। उनका जीवन परंपरागत धार्मिक रूढ़ियों, सवर्ण वर्चस्ववादी व्यवस्था एवं सरकार के द्वारा सामाजिक-आर्थिक शोषण एवं अन्यायों से उत्पीड़ित है। समकालीन उपन्यासों में हाज़ारों वर्षों से मूक रहने वाले जन-समुदाय को मानवीय अधिकार दिलाने का सक्रिय प्रयास देखने को मिलते हैं। आज वे हालातों से समझौता करने को तैयार नहीं है। दलित अस्मिता अलगाव, सवर्ण सर्वोच्चता एवं वर्चस्व के अहंकार के विरूद्ध फूट निकला है। हरपाल सिंह ने बताया है- "दलित अस्मिता उन लोगों की अहंवादी अस्मिता के बरक्स खड़ी होना चाहती है, जो सांस्कृतिक उच्चताबोध की अमानवीयता के अलंबरदार बनकर विराजना चाहते हैं। वर्चस्व और लाचारी के मध्य जो विषमता होती है वह अस्मिता के संघर्ष को जन्म देती

[1] सुशीला टाकभौरे - तुम्हें बदलना ही होगा , पृ : 96

है.....।”[1] आज दलित सवर्णों से अपने अधिकारों की माँग करने लगे हैं और समाज के सामने स्वंय को मानव सिद्ध करने का प्रयास करने लगा है।

दलित अस्मिता दलितों की आत्मसजगता है जिसका लक्ष्य सत्ता प्राप्ति न होकर अवहेलनाओं से मुक्त होकर मानवीय धरातल पर समता स्थापित करना है। सवर्ण लोग हमेशा अपने को प्रतिष्ठित मानते हैं। वे अपने को सत्ता, धन, ज्ञान, समृद्धि, सेवा-शुश्रूषा आदि पाने के अधिकारी मानते हैं। सदियों से दलित चातुर्वण्य व्यवस्था को ईश्वरप्रदत्त मानते आये हैं। इसलिए उनकी जिंदगी में जो भी शोषण, अन्याय होता है, वे भगवान की नियति मानते हैं। वे अपने ऊपर सवर्णों द्वारा किए जा रहे अमानवीय व्यवहारों का नज़रअंदाज करते रहे। शिक्षा ने उनकी जिंदगी में भारी परिवर्तन लाया। वे आज “मैं कौन हूँ” और “मेरा अस्तित्व क्या है? ”आदि पर सोचने लागे हैं।

“छप्पर” में ऐसा एक दलित समाज है जो आकाल, बाढ़ आदि को ईश्वर प्रदत्त मानकर पूजा करने में सवर्णों को पैसा देते हैं। सवर्ण इनको लूटने के लिए यह सब करते हैं। चंदन उन्हें समझाकर मनुष्य की श्रेष्ठता समझने का उपदेश देता है। चंदन उस ईश्वर को नकारता है जो पशुवत और नारकीय जीवन जीने के लिए दलितों को बाध्य करता है। वह दोस्तों को पढ़ लिखकर नौकरी प्राप्त करके अपने समाज की प्रगति के लिए काम करने का उपदेश देता है। वह ‘रामहेत’ नामक अपने दोस्त से कहता है- “मैं तो कहता हूँ कि हमें प्रत्येक क्षेत्र में आना चाहिए। केवल सामाजिक रूप से ही हमारी परिस्थिति

---

[1] हरपाल सिंह ‘अरूष’ - दलित साहित्य के आधार तत्व, पृ : 62

निम्न नहीं है बल्कि आर्थिक, राजनीतिक और शैक्षणिक प्रत्येक क्षेत्र में हम पिछड़े हुए हैं। हमें प्रत्येक क्षेत्र में उपर आने की जरूरत है, लेकिन सबसे पहली जरूरत है समाजिक सम्मान की। यदि तुम्हारी सामाजिक हैसियत है तो तुम्हारे लिए हर कहीं गुंजाइश हो सकती है। यदि तुम्हारी कोई सामाजिक हैसियत नहीं है तो चाहे तुम कोई भी काम कर लो, कितना भी धन कमा लो उस सबका कोई महत्व नहीं है। पैसा भी जीवन का एक फैक्टर है, मैं इससे इनकार नहीं करता लेकिन इससे पहले जरूरी है समाज में तुम्हारी हैसियत का होना।"[1] चंदन में जो प्रगतिशील विचार है वह उसे अपने पिता सुक्खा से ही मिला है। सुक्खा की हैसियत दलित, चमार, अशिक्षित, गंवार ये सब ही थे। सवर्ण लोगों ने इनकी मेहनत, एवं ईमानदारी को कभी भी स्वीकारा नहीं। वह इस हीन ग्रंथि से मुक्त होकर अपने बेटे को पढाता है। उसमें एक आत्मबोध है। कई प्रतिकूल परिस्थितियों के बावजूद सुक्खा के स्वाभिमान बुझते नहीं है। उपन्यास के अतं तक आते-आते सवर्णों में जागरण आते हैं और वे दलितों के अस्तित्व को भी पहचानने लगते हैं। 'ठाकुर हरनाम सिंह' का पाश्चाताप, सुक्खा के मुँह से उसे 'ठाकुर साहेब' पुकारने पर उत्पन्न दुःख आदि इस बदली हुई मानसिकता का द्योतक हैं। अंत में हरनामसिंह जाति या धर्मगत उपनाम का प्रयोग छोड़ता है और मनुष्यता को एकमात्र जाति और धर्म स्वीकार करता है। जब दलितों ने अपनी हैसियत पहचान लिया तब इनके प्रयासों से सवर्ण लोग भी अपनी

---

[1] जयप्रकाश कर्दम – छप्पर, पृ : 38

हैसियत सुधारने लगे। "नरककुंड में वास" का'काली' जमींदारों के शोषण से डरकर गाँव से शहर आया था। कई दिन की भूख, बेरोजगारी एवं अकेलेपन से उसमें विद्रोह उत्पन्न होता है। चमड़ों के कारखाने में पहुँचते ही वह अन्यायों एवं शोषणों के खिलाफ जाग जाता है उसे पता चलता है कि उस कारखाने में सारे मजदूर कीड़े हैं। किसी का कोई अधिकार, स्वतंत्रता और अस्तित्व नहीं है। निर्धन मज़दूरों के सामने सबसे बड़ी समस्या पेट की है। इसलिए स्वच्छ पानी न मिलने पर भी वे पूछते नहीं। इसे अपनी नियती मान बैठते हैं। इसके विरूद्ध काली आवाज़ उठाता है। वह पहले फोरमेन से और बाद में कारखाने मालिक से मज़दूरों की जरूरतों की माँग करता है। उसने सब के मन में जीने की चाह पैदा करके हीन ग्रंथि से मुक्त होने का ऐलान करता है। काली कल्लू को समझाते हुए कहता है -"कल्लू, आदमी ऊंचा सोचेगा तो तभी ऊँचा उठने की कोशिश करेगा। जो आदमी नाली का कीड़ा बना रहेगा, वह खुशबू की कल्पना कैसे कर पाएगा। जो व्यक्ति झोंपडी पर रीझेगा, वह कोठी के स्वप्न क्योंकर देख सकेगा।"[1] काली का सवाल अस्मिता विहीन जीवन बिताने वाले शूद्र समाज से है। जब तक समाज में दलितों की स्थिति नहीं सुधरेगी तब तक उसके मन में हीन ग्रंथि कायम रहेगी। आसपास के सामाजिक वातावरण, शिक्षा, काली जैसे प्रगतिशील युवक आदि उनके मन में अपनी हैसियत पर पुनर्विचार करने की शक्ति देगा। कल्लू का विलायत जाकर पैसा कमाने की इच्छा इसी अस्तित्व बोध ने ही

---

[1] जगदीशचंद्र - नरककुंड में वास, पृ : 207

दिया है। कल्लू के बाप ने भी उसके इस निर्णय में साथ देता है। वह पिता के बारे में कहता है -“मुश्किल यह है कि उसके पास बेचने या रहन रखने के लिए कोई जायदाद नहीं है। .... वह जनता है कि अगर मैं एक बार वलैत पहुँच गया तो सात पुश्तों तक के कष्ट काट दूँगा।”[1] इस प्रकार उसके बाप में यह परिवर्तन की चेतना कई सालों के शोषण से उत्पन्न हुई है। वे पहचानने लगे हैं कि उनके बच्चे भी समाज में कुछ बन सकते हैं। काली अपने अधिकारों की माँग करता है। किसी के सामने भी वह हिम्मत के साथ वह अपना अधिकार मांगता है। वह फोरमैन से कहता है- “यही कि हमें कुछ सहुलतें मिलनी चाहिए। काम बहुत गंदा है। पां और खाज-खुजली जैसी मोहलक बिमारीयाँ लग जाती हैं, जो बाद में बिगड़कर कोढ़ बन सकती हैं| और न सही, जो सरकार ने सहूलतें कानूनी तौर पर मंजूर की हैं वे तो मिलनी ही चाहिए।”[2] यहाँ अपने अधिकारों के प्रति जागृत एक युवक का चित्रण हुआ है। उसने सबको बताया की हमारी भी कोई पहचान है और अस्तित्व है।

“जख्म हमारे” में जाति , ‘गुलाम अहमद’ का पीछा नहीं छोड़ता है। उसे बार-बार अपने दलित होने का एहसास दिलाता रहता है। दलित को किसी न किसी काम में बांध देता है जैसे सफाई, जूता बनाना, या कारखानों का काम आदि। इन कामों से उन्हें मुक्ति नहीं मिलता| इसका उत्तम उदाहरण है ‘भंगी’ समाज। सवर्णों का मैला ढोना, नाले एवं सड़कों को साफ़ करना आदि इनके पुश्तैनी धंधे हैं| इसमें ‘रुक्मिणी’ नामक भंगी औरत से एक

[1] जगदीशचंद्र - नरककुंड में वास, पृ: 210
[2] वही , पृ : 218

पटेल सफ़ाई ठीक से करने को कहता है तो उसमें विद्रोह पैदा होता है। सदियों से इन्ही लोगों ने ही तो यह काम किया है। जो उन्हें उपदेश देते हैं वे इनके कामों में हाथ बंटाते नहीं। इनको इस नरक से मुक्ति नहीं देते। धीरे-धीरे इनमें भी अपने अधिकारों एवं हैसियतों की बोध उत्पन्न हुआ। उसमें भी एक इंसान का दर्जा समाज से मिलने की आशा जन्म लिया। जब समाज यह दर्जा नहीं देते तो वे रुक्मिणी की तरह पूछने लगते हैं - "क्या हम लोगों की कोई इज्जत नहीं है?"[1] वे जानते हैं कि उनकी भी इज्जत हैं। यह जागरण उन्हें आत्मपहचान से प्राप्त हुई है। "तर्पण" में दलितों द्वारा सवर्णों का पैर न छूना, प्रणाम न करना, या अपने ऊपर कोई शोषण होने पर पूछने जाना आदि चित्रित किया है। भाई जी के कहने पर पियारे पुलिस के पास जाकर सवर्ण चंदर के खिलाफ़ शिकायत करता है। बाद में कानून की मदद से चंदर को सज़ा मिलता है। पियारे और गाँववालों के मन में उत्पन्न स्वत्व बोध ही उन्हें इस मुकाम तक पहुँचाया है। अतं में चंदर पर वार करने की जुल्म में पियारे को जेल जाने में गर्व महसूस होता है। वह कहता है "नहीं वकील साहब मुझे जेल जाना है। जेल की रोटी खाकर परश्चित करना है। इस पाप का कि कान-पूँछ दबाकर इतने दिनों तक उन लोगों का जोर-जुल्म सहता रह गया।"[2] संपूर्ण दलित समाज पियारे की तरह सोचने लगते हैं। इतने सालों तक चुप रहने पर वे अपने आपको कोसते हैं।

---

[1] मोहनदास नैमिशराय - जख्म हमारे, पृ : 79

[22] शिवमूर्ति - तर्पण, पृ : 116

"आज बाज़ार बंद है" में भानुप्रताप नामक थानेदार शराब पीकर आधी रात को शबनम बाई के कोठे पर आता है। वह वेश्याओं का सोने का समय था। सब थक चुकी थी। उस समय भानुप्रताप पार्वती के साथ संबंध बनाना चाहता है। पार्वती मना करती है तो भानुप्रताप उसे 'रंडी' कहकर अपमानित करता है और उसके साथ जबरदस्ती करने की कोशिश करता है। तब पार्वती कहती है- "हाँ-हाँ मैं रण्डी हूँ। तू बता स्साले कौन सी कानून की किताब में लिखा है कि हर एरे-गेरे के सामने रंडी बिछ जाए।"[1] यहाँ पार्वती सरकार, पुलिस, कानून आदि को गालियाँ देती है। उसे ऐसे पुरूषों से नफ़रत है जो सिर्फ भूख मिटाने के लिए उनके पास आते हैं। "तुम्हें बदलना ही होगा ....." में महिमा एक होशियार अध्यापिका होने पर भी जाति में निम्न होने के कारण सवर्ण उसको मान्यता नहीं देता है। तब महिमा उनसे कहती है - "मैडम, मेरा परिचय सिर्फ जाति से नहीं, मेरे व्यक्तित्व और कर्तव्य से हैं।"[2] इसप्रकार वह जाति से बढ़कर अपना अस्तित्व मानती है।

दलित प्रतिरोध

दलित वर्ग अपनी अस्मिता को सही धरातल पर प्रतिष्ठित करने का प्रयास कर रहे हैं। जाति केन्द्रित भारतीय सामाजिक व्यवस्था का प्रतिरोध करके सवर्णों द्वारा निर्धारित विधि-विधानों, शास्त्र तथा धर्म से नियंत्रित व्यवस्था को बदलना दलितों का लक्ष्य है। दलित मुक्ति संघर्ष प्रेरणा से विकसित रचनात्मक आंदोलन ने दलित व्यथा, यातना, उत्पीडन, अपमान

[1] मोहनदास नैमिशराय - आज बाज़ार बंद है, पृ : 124
[2] सुशीला टाकभौरे - तुम्हे बदलना ही होगा......, पृ : 76

और वंचना की अभिव्यक्तियों द्वारा परिवर्तन का ऐलान कर दिया है। दलित साहित्य की प्रेरणा स्रोत बाबा साहेब अंबेडकर और उनकी विचारधारा है। अंबेडकर जी ने दलितों पर सदियों से हो रहे अपमान-शोषण-और अपहास से मुक्ति का मार्ग दिखाकर अपने अस्तित्व के प्रति अहसास जगाया। उनके द्वारा शुरू किए गए दलित मुक्ति आंदोलन ने सदियों से हीन दशा में रहने के लिए बाध्य दलित समाज में चेतना जगाई। इसके फलस्वरूप शिक्षा का प्रसार हुआ, जिससे दलितों को नई जीवन दृष्टी प्राप्त हुई। इसने दलितों को अन्यायपूर्ण संस्कृति, परंपरा और सवर्ण विचारों पर आधारित समाज व्यवस्था के विरूद्ध विद्रोह करने की शक्ति प्रदान की। आत्मबोध से जागृत वंचितों की नई पीढ़ी ने अपना विद्रोह प्रकट करने लगा है। आज़ादी और स्वत्व का एहसास उन्हें प्रतिरोध की ओर ले जाते हैं।

"छप्पर" में चंदन अंबेडकरवादी आदर्शों से प्रभावित शिक्षित प्रगतिशील युवक है। वह छुआछुत, अंधविश्वास, अशिक्षा, नारी शोषण आदि का विरोध करता है। वह नियति या ईश्वरीय सत्ता को नकारकर मानवता पर बल देता है। चंदन दलित समाज को संगठित करके सवर्ण मानसिकता के खिलाफ आवाज़ उठाने का आह्वान देता है। वह कहता है- "हमें समाज से टक्कर लेनी है, सत्ता से लड़ाई लड़नी है, जुल्म और शोषण के विरूद्ध संघर्ष करना है। एक दो आदमी के बस का नहीं है यह काम। अकेले चना-भाड नहीं फोड़ सकता। इस सबके लिए फ़ौज चाहिए, वह फ़ौज तैयार करूँगा मैं।"[1]

[1] जयप्रकाश कर्दम - छप्पर, पृ : 40

वह शिक्षा एवं संगठन के द्वारा उन्हें आत्मसजग बनाता है। उसकी प्रेरणा से समाज में काफ़ी बदलाव आता है। उसके द्वारा शुरू किया गया स्कूल सभी सामाजिक गतिविधियों का केन्द्र बन जाता है। लेखक ने लिखा है -"जहाँ-जहाँ क्रांति और बदलाव की हवा पहुँची, वहाँ पर तथाकथित निम्न और सवर्ण लोगों ने न केवल सवर्णों की सामाजिक श्रेष्ठता को मानने से इनकार किया, बल्कि पूंजीवाद और सामंतवाद का भी खुलकर विरोध शुरू कर दिया। अब तक ठाकुर-जमींदारों के खेतों में बंधुआ बनकर तथा नाम मात्र की मज़दूरी पर काम करने वाले कमेरों ने अपने श्रम का मोल-तोल करना शुरू किया, और सेठ-साहूकारों के कमरतोड़ सूद से बचने के लिए उनसे क़र्ज़ लेना बंद किया।"[1] लोगों में एकजुटता और पारस्परिक सहयोग आने के बाद उनका आत्मविश्वास बढ़ जाता है।

चंदन हमेशा शांति और अहिंसा के मार्ग पर चलकर व्यवस्था को बदलने का आह्वान देता है। वह कहता है- "आज जो आक्रोश दूसरों के प्रति हमारे मन में है, व्यवस्था को उलटने से वही आक्रोश कल को हमारे प्रति दूसरों के मन में पैदा होगा और समाज के अंदर अशांति और कलह बनी रहेगी। जबकि हम चाहते हैं कि सारा समाज सदैव शांति और सद्भाव में मिल-जुलकर रहे।"[2] वह उनके साथ किए गए अमानवीय व्यवहारों के बदले शान्ति से पेश करने का उपदेश देता है।

---

[1] जयप्रकाश कर्दम - छप्पर, पृ : 86

[2] वही, पृ : 109

दलितों में आए बदलाव को शिवमूर्ति के "तर्पण" में भी देख सकते हैं। राजपतिया के साथ असभ्य व्यवहार होने पर उसका बाप चंदर के घर जाता है। पहले दलित डर की वजह से अपने साथ हुए शोषण के बारे में पूछते नहीं थे। आज उनमें आए बदलाव के कारण विद्रोह देख सकते हैं। पियारे जब चंदर के बाप से मिलता है तो प्रमाण तक नहीं करता है। पंडिताइन अपने बेटे पर हुए आरोप का खंडन करके राजपतिया को बदचलन घोषित करती है। तब पियारे कहता है- "किसी गुमान में मत भूलिए पंडिताइन। अब हम ऊ चमार नहीं है कि कान, पूँछ दबाकर सब सह, सुन लेंगे। चिउँटे को गुड़ का मज़ा लेना महँगा कर देंगे।"[1] यहाँ पियारे का विद्रोही रूप देख सकते हैं। भाई जी के नेतृत्व में हुए आंदोलन ने उनकी जिन्दगी को नई दृष्टी दी है। "छप्पर" में चंदर अहिंसा का मार्ग अपनाता हैं तो इसमें भाई जी जरूरत पड़ने पर हथियारों का इस्तेमाल करने का उपदेश देता है। पियारे की बेटी राजपतिया पर बलात्कार करने की कोशिश होता है तो भाईजी उनका साथ देता है। वह कहता है -"इज्जत की लड़ाई रोटी की लड़ाई से ज्यादा जरूरी है। इसलिए इस लड़ाई के लिए सरकार ने हमें अलग से कानून दिया है। हरिजन एक्ट। हम इस कानून से इस नाग को नाचेंगे।"[2] दलित अपने मूलभूत अधिकारों के प्रति सजग हो उठते हैं। भाईजी से प्रेरित होकर नवयुवक के मन में ब्राह्मणवादी एवं जमींदारी व्यवस्था के प्रति आक्रोश उत्पन्न होता है। इसमें 'विक्रम' नामक नवयुवक दलित समाज में प्रतिरोधी चेतना उत्पन्न करते

---

[1] जयप्रकाश कर्दम - छप्पर, पृ:14

[2] शिवमूर्ति - तर्पण, पृ: 26

हुये कहता है- “सारे खेतों पर उन्ही लोगों का कब्जा क्यों है? हमारे हिस्से के खेत कहाँ गए? मुर्दा गाड़ने भर की जगह भी हमारे हिस्से में नहीं छोड़ा इन लोगों ने। मजदूरी से अनाज़ मिल जाएगा। लेकिन साग-पत्ता, गन्ना, गंजी, मटर, चने का स्वाद हमें कैसे मिलेगा? क्या इनका स्वाद लिये बिना ही हमारी जिंदगी बीत जाएगी? तब इनकी चोरी जुर्म क्यों है? जुर्म हो तो यह जुर्म हम हज़ार बार करेंगे।”[1] नई पीढी में उत्पन्न नई चेतना से दलित समाज में भारी परिवर्तन आया है।

“जख्म हमारे” में दलितों के साथ-साथ मुसलमानों पर भी अत्याचार होता है। हिन्दू राष्ट्रवाद के समर्थक लोग दलित को गुलाम और मुसलमानों को विदेशी मानते हैं। जब बाबरी मस्जिद ध्वंस के बाद दंगा हुआ तब मुसलमानों पर हिंदुओं ने आक्रमण किया। उस समय हिंदू कट्टरवादी लोग जिन्होंने हमेशा दलित को अपने से दूर रखा, अपने साथ जोड़ने की कोशिश करता है। यह राजू परमार अच्छी तरह जानता है। इसलिए पुलिस के पूछने पर वह अपने को ‘हिंदू’ नहीं दलित कहता है।

“नरककुंड में वास” का ‘काली’ गंदगी भरी चमड़े के कारखाने में जीने के लिए मज़बूर होता है। लेकिन उनके मन में बदलाव लाने की इच्छा है। उसकी तरह कई मज़दूर गरीब होने के कारण इस बदबूदार वातावरण में जीतें हैं। इन्हें नहाने के लिए शुद्ध पानी तक नहीं मिलता है। एक दिन वह छप्पड़ के पानी में नहाने को इनकार करता है। वह बताता है -“जिस छप्पड़

---

[1] शिवमूर्ति - तर्पण, पृ: 46

में पशु नहीं नहाते, पानी को मुँह तक नहीं लगाते, कुत्ते झांककर भी नहीं देखते, पक्षी नहीं मँडराते, कीड़े-मकोड़े नहीं सरसराते, जिसकी तह में कुछ भी नहीं उगता, वह पानी जहर से भी बुरा है।"[1] काली ही पहली व्यक्ति है जिसने कारखाने की असुविधाओं के ख़िलाफ़ आवाज़ उठाया है। वह फौरमैन के सामने जाकर अपनी जरूरतों के बारे में खुलकर कहता है। वह बताता है - "काम बहुत गंदा है। पाँ और खाज-खुजली जैसी मोहलक बीमारियाँ लग जाती है, जो बाद में बिगड़कर कोढ़ बन सकती है। और न सही, जो सरकार ने सहूलतें कानूनी तौर पर मंजूरी की है वे तो मिलनी चाहिए।"[2] फोरमैन के साथ कारखाने के मालिक से भी वह खुलकर प्रतिरोध व्यक्त करता है। कारखाने के मालिक के नेतृत्व में शहर में बहुत बड़ा मंदिर बनवाने जा रहा है। इसके लिए वे पैसे खर्च करते हैं। बाकी पैसे मजदूरों से पूछे बिना ही उजरत से काटने का निश्चय करता है। काली इसका विरोध करके सभी मज़दूरों से इसके विरूद्ध आवाज़ उठाने को कहता है। काली इन मज़दूरों के बंद मुँह में जबान बनता है। काली को चुप कराने के लिए उसे कारखाने में मुंशी की नौकरी देता है। नई नौकरी के कारण उनके मित्र लोग काली से दूर हो जाता है। काली अंत में इस नौकरी को छोड़ने का निश्चय करता है।

"परिशिष्ट" में बावनराम, रामउजागर, अनुकूल, नीलम्मा जैसे पात्र जाति के नाम पर अपने तथा दूसरों पर हो रहे शोषणों का खुलकर विरोध करते हैं। बावनराम फैक्टरी में हार नहीं मानते। वह अनुकूल के निराश होने

[1] जगदीशचंद्र - नरककुंड में वास, पृ : 156

[2] वही, पृ : 218

पर उसे समझाता है- "ठीक है, गड्ढा बहुत गहरा है। हिम्मत हारना ठीक नहीं। खुद भी निकलों, औरों को भी निकालों। बिना दाँतवाले साँप धरती में ही घुसे रहते हैं....... बाहर नहीं निकलते, कोई मार न डाले। ऐसे कब तक पड़े रहेंगे.... निकलना तो होगा ही।"[1] इसमें समउजागर नामक दलित युवक अपने मित्रों तथा दूसरों की सहायता के लिए हमेशा मौजूद होता है। वह जातिगत भेदभाव को नहीं मानता।

"तुम्हे बदलना ही होगा......" में लेखिका ने नौकरी, शिक्षा तथा अन्य सभी क्षेत्रों में निम्न जाति के साथ किये जा रहे भेदभाव एवं इसके खिलाफ दलितों के प्रतिरोध का भी चित्रण किया है। इसमें "शांतिनिकेतन महाविद्यालय" में दलितों के आरक्षण हिंदी प्राध्यापकों की जगह सवर्ण लोगों को नौकरी पर रखते हैं। इसके खिलाफ महिमा भारती, राजेश गेडाम और विजय सोनटक्के आवाज़ उठाते हैं। वे अपनी शिकायत यू.जी.सी के उच्च अधिकारी को भेजते हैं। इस कारण हिंदी प्राद्यापक पद के लिए दूसरा विज्ञापन निकलता है। वे सभी समाचार पत्रों में विज्ञापन देते हैं| अंत में महिमा को नौकरी देते हैं। इसमें 'अंबेडकरवादी संगठन' भी उसका साथ देती है। धीरज नामक वाल्मीकी जाति का लड़का पढ़-लिखकर प्रोफ़ेसर बनता है |वह मेहनत करके शिक्षा हासिल करके अपनी जाति का मान-सम्मान बढाता है। वह बनारस की दलित बस्तियों में जाकर उनको जागृत करता है| वह एक सम्मेलन में ब्राह्मणों तथा अन्य सवर्णों के सामने भाषण देते हुए कहता है

[1] गिरिराज किशोर - परिशिष्ट, पृ : 52

- "मैं अपनी अस्मिता को नहीं भूल सकता , अपनी जाति के संघर्ष और खुद्दारी को नहीं भूल सकता। मैं डंके की चोट पर कहता हूँ, मैं काशी का डोंम हूँ।"[1] धीरज अपना दलित होना किसी से छुपाकर रखना नहीं चाहता। वह इसे अपमान नहीं मानता है। वह आगे कहता है " मैं धीरज कुमार 'जागरूक' अब अपने पूर्वजों की तरह सवर्णों की सेवा नहीं कर सकता। अब मैं जाति के नाम पर ब्राह्मण कहलाना चाहता हूँ और न ही शूद्र अछूत। मैं एक संघर्षशील मानव हूँ, मैं सामाजिक समता के अभियान का एक सैनिक हूँ।"[2] धीरज निम्न जाति के होने के कारण अपने को तुच्छ या निम्न नहीं मानता है। वह समाज की जाति-व्यवस्था के खिलाफ निरंतर संघर्ष करता है।

दलित नारी : प्रतिरोध

दलित स्त्री को स्त्री और दलित होने के कारण शोषण सहना पड़ता है। दलित स्त्री को पुरुषवर्चस्ववादी समाज ने भोग वास्तु में तब्दील किया है। अन्याय, गुलामी, दरिद्रता आदि ने उसकी जीवन को भयावह एवं नारकीय बना दिया है। मर्दवादी समाज ने अपनी हवस को पूरा करने के लिए धर्म का भय दिखाकर देवदासी प्रथा को जीवित रखा। भारतीय समाज में आर्थिक रूप से कमज़ोर तबका शायद दलित महिला का ही है। देहातों में सबसे अधिक मेहनत औरतें करती हैं। ये मजदूरी के लिए सवर्णों के घरों तथा खेतों में जाती है तो बलात्कार का शिकार भी होती है। सवर्ण-सामंती पुरुष इनको भोग की वस्तु मानते है। रमणिका गुप्ता ने लिखा है -"भारत के संदर्भ में

[1] सुशीला टाकभौरे – तुम्हे बदलना ही पडेगा......., पृ : 232
[2] वही

दलित स्त्री तिहरे शोषण का अभिशाप झेलती है। सवर्ण और संपन्न समाज का अत्याचार वह दलित और गरीब होने के नाते झेलती है लेकिन स्त्री होने के नाते वह सवर्ण और संपन्न समाज के साथ-साथ अपने ही समाज के दलित पुरुष की हिंसा और बलात्कार का शिकार भी होती है।"[1] आज दलित नारी अपने ऊपर हो रहे सभी शोषणों के खिलाफ आवाज़ उठाने लगी है। शिक्षा एवं आर्थिक स्वावलंबन के द्वारा इनको नृशंसताओं से मुक्त किया जा सकता है। आलोच्य उपन्यासों में कई दलित नारी पात्र है जो अपने तथा अपने समाज पर हो रहे शोषणों के खिलाफ आवाज़ उठाती हैं।

"छप्पर" की 'कमला' सुन्दर लड़की थी। सुंदरता ने उसकी जिंदगी बरबाद कर दी। वह सामूहिक बलत्कार की शिकार बनती है। पहले वह टूट गई थी। इसलिए गाँव से भाग जाती है| वह अपमानित होकर इधर-उधर भटकती थी। लेकिन एक बेटे को जन्म देने के बाद उसमें जीवन के प्रति साहस उत्पन्न होती है। उसमें मातृत्व की भावना जाग उठती है। घर-घर में जाकर नौकरी करके अपने बच्चे को पढ़ाने का निश्चय करती है। वह चंदन से बताती है -"अब यही मेरा सहारा है। बड़ा होकर यह मेरे साथ हुए जुल्म और अत्याचार का बदला ले यही मेरी कामना है।"[2] उसके मन के आत्मविश्वास उसे जीवन के प्रति नई दृष्टी देती है। वह अपने बेटे को चंदन के स्कूल में भर्ती करने आती है। जब चंदन ने उसके पिता का नाम पूछा तो वह 'कमला' बताती है। उसने अपने बेटे को 'खिलाड़ी' नाम रखती है। इसप्रकार चंदन भी

---

[1] रमणिका गुप्ता - दलित चेतना : साहित्यिक एवं सामाजिक सरोकार?, पृ : 35-36

[2] जयप्रकाश कर्दम - छप्पर, पृ : 50

उसके साहस एवं धैर्य से प्रभावित होता है। कमला दूसरी बलात्कृत लड़कियों की तरह हमेशा रोती नहीं रहती और न ही अपने को गुनाहगार मानती है। वह अपनी इस दुर्घटना से जल्दी ही समझौता कर लेती है। उसकी इच्छा शक्ति चंदन तक को प्रेरणा देती है।

शिवमूर्ति के "तर्पण" में खेती की चोरी की इल्जाम से चंदर नामक सवर्ण राजपतिया पर हाथ उठाता है। तब राजपतिया उसका विरोध करती है और उस पर चिल्लाती है। उसकी रक्षा के लिए परेमा की माँ, मिस्त्री बाई आदि आती है। मिस्त्री बाई कहती है- "पकड-पकड! भागने न पावै। 'पोतवा' पकड़ि के ऐंठ दे। हमेशा-हमेशा का 'गरह' कट जाय।"[1] पहले जब दलित नारी पर अत्याचार होता था तो कोई मदद करने नहीं आता था। लेकिन यहाँ नारी का विद्रोह रूप देख सकते हैं। इन स्त्रियों के डर से चंदर भाग जाता है। बाद में भाईजी नामक क्रांतिकारी के कहने पर बलात्कार का झूठा आरोप चंदर पर लगाकर पुलिस थाना जाता है। इसके बाद मामला कोर्ट में पहुँचती है। वकील राजपतिया से पूछताछ करता है। वह बहुत होशियार एवं धैर्य के साथ बयान देती है। राजपतिया के साथ, मिस्त्री बहू भी झूठा बयान देती है ताकि चंदर को कठिन सज़ा मिले। चंदर को डेढ़ महीने तक जेल में बंद रखता है। चंदर की माँ को इस कारण संपूर्ण दलित जाति से नफ़रत है। चंदर को जेल भिजवाने के बाद उसकी नफ़रत बढ़ जाती है। वह राजपतिया की माँ को 'नीच' कहती है तो राजपतिया की माँ चिल्लाकर

---

[1] शिवमूर्ति - तर्पण, पृ : 11

पूछती है- "नीच होगी तुम। तुम्हारे पूत-भतार। जो गली-गली कूकुर जैसे पूँछ हिलाते, सूँघते घूमते हैं। .... हम किस बात के निचे हुए रे।"[1] मालकिन एक नारी होकर भी राजपतिया की माँ का दुःख समझ नहीं पाती है। वह हमेशा निम्न जाति के लोगों को अपमानित किया है।

"जख्म हमारे" में रुक्मिणी देवी को भंगी जाति के होने के कारण सवर्णों से अपमानित होना पड़ता है। वह आठ दर्जे पास थी। लेकिन भंगी जाति के होने के कारण उसे कभी अच्छी नौकरी नहीं मिलती है। उसे विवाह के बाद गंदगी भरी स्लम में रहना पड़ता है। उसके ससुरालवालों ने शादी के कुछ दिन बाद उसके हाथों में झाड़ू-पंजर सौंप दिए थे। बीस बरस से वह घर-घर जाकर पाखाना साफ़ करती आई है। एक दिन एक पटेल ने उससे अपने घर के सामने पड़ी गंदगी साफ़ न करने के कारण उसे गालियाँ देता है, तब रुक्मिणी को भी गुस्सा आता है। वह कहती है -"क्या हम लोगों की कोई इज्जत नहीं? बतला मुझे। सारी इज्जत कराने की ठेका तुम्हीं लोगों ने लिया हुआ है।"[2] भंगी जाति में जन्म लेने के कारण बचपन से ही रुक्मिणी एवं उसके समाज ने सवर्णों के कोप एवं घृणा का पात्र बनते आ रहे थे। सवर्णों ने इनको अपवित्र मानते हुए इसे दूर रखा। सदियों से अपमानित, घृणित भंगी समाज धीरे-धीरे अपनी अस्मिता पहचानने लगे हैं। इस अस्मिता बोध से उत्पन्न प्रतिरोध को रुक्मिणी में देख सकते हैं।

---

[1] शिवमूर्ति - तर्पण, पृ : 99

[2] मोहनदास नैमिशराय - जख्म हमारे, पृ :79

"आज बाज़ार बंद है" में वेश्याएँ पुरुषवर्चस्ववादी समाज एवं व्यवस्था का विरोध करती हैं। कुछ पत्रकार वेश्याओं की इंटर्व्यु लेने शबनम बाई के कोठे पर आते हैं। वे तरह-तरह के सवाल करते हैं। रश्मि नामक पत्रकार ने इस धंधे को गंदी कहकर उसे छोड़ने को कहती है तो एक वेश्या गुस्से में उत्तर देती है- "कौन नहीं बेच रहा है अपने आपको? हम तो केवल अपना जिस्म ही बेच रहे हैं।"[1] वेश्याओं के प्रति समाज की नज़रिए पर वह चोट करती है। क्योंकि इसी समाज ने वेश्याओं को जन्म दिया है। जब कर्फ्यू में बाहर निकलने कारण सुमित को पुलिस पकड़कर हवालात में डालता है तो शबनम बाई और पार्वती पुलिस से प्रश्न करती हैं। पार्वती थाने जाकर इंस्पेक्टर से आँख मिलाकर बातें करती है और अपने अधिकारों की याद दिलाती है। इंस्पेक्टर की नज़र में औरतें गुलाम होती हैं। तब पार्वती कहती है -"नहीं औरतें पैदाइसी गुलाम नहीं होती। गुलाम उसे आदमी बनाता है। रस्म-रिवाज बनाते हैं। वे परंपराएँ बनाती हैं, जिन्हें मैंने कभी का छोड़ दिया।"[2] यहाँ पार्वती का आक्रोश देख सकते हैं।

"मोरी के ईंट" में मंगिया नामक मेहतरानी को देख सकते हैं। वह चुंगी में काम करती थी। तब हीरालाल नामक जमादार उसको अपने वश में करना चाहता था। कई साल बाद वह लौटकर चुंगी आती है तो पुनः वह मंगिया के पास जाता है। तब मंगिया कहती है -"मंगिया किसी के खेल का खलौना नहीं है। चाहे कुछ भी क्यों न हो, वह जिनकी है उनके नाम पर कभी

---

[1] मोहनदास नैमिशराय – आज बाज़ार बंद है, पृ : 30

[22] वही, पृ : 140

बट्टा नहीं लगने देगी।"[1] मंगिया का एक सवर्ण डॉक्टर के साथ अनैतिक संबंध था। उसमें एक बच्चा भी पैदा होता है। वह डॉक्टर को अपना पति मानती है। वह अपने बेटे सोहन को मिशनरी स्कूल में भेजकर पढ़ाती है। गाँव में लोग मंगिया पर ऊँगली उठाते हैं। लेकिन वह निम्न जाति के होने पर भी अपनी जिंदगी अपनी मर्जी से जीती है। उसमें जो प्रगतिशील विचार है वह अपने बेटे को भी देती है।

"तुम्हे बदलना ही होगा" में ऐसा एक नारी पात्र है जो पुरुष वर्ग से आगे बढ़कर, घर-परिवार की कठोर दीवारों को पार करके पढ़ाई-लिखाई करके नौकरी करती हैं। महिमा भारती ऐसा ही एक पात्र है। वह शिक्षित एवं नौकरीपेशा नारी है। वह जातिगत भेदभाव, अशिक्षा एवं नारी उत्पीडन का खुलकर विरोध करती है। महिमा का एक होशियार अध्यापिका होने के बावजूद कुछ सवर्ण लोग उसको जाति के नाम पर नीचा दिखाने की कोशिश करता है तो वह भडक जाती है और कहती है -"मैडम, मेरा परिचय सिर्फ जाति से नहीं, मेरे व्यक्तित्व और कृतित्व से है।"[2] वह अपनी अस्मिता को किसी के सामने भी गिरवी नहीं रखना चाहती है। महिमा सवर्ण चमनलाल बजाज से शादी करके कुछ समय तो चहारदीवारी में बंद हो जाती है। लेकिन वह लोगों के सामने आकर अपने साथ किए जा रहे शोषणों के बारे में खुलकर बताती है। वह कहती है- "मैं छुईमुई गुडिया नहीं हूँ। मुझे इस तरह

---

[1] मदन दीक्षित - मोरी की ईट, पृ : 116

[2] सुशीला टाकभौरे - तुम्हे बदलना ही होगा...., पृ : 76

बने रहने के लिए मजबूर किया जाता है।"[1] इसप्रकार पुरुष एवं सवर्ण वर्चस्व के खिलाफ वह आवाज़ उठाती है।

धर्म परिवर्तन :

हिन्दू धर्मावलंबियों से आतंकित दलित समाज धर्मांतरण को अपनी मुक्ति का मार्ग मानते हैं। सवर्ण समाज के मन में दलितों के प्रति घृणा की मानसिकता है। शिक्षा के साथ-साथ सामाजिक एवं आर्थिक क्रांति से भी सवर्णों की जातीय अहम् को मिटा सकते हैं। भारत में सभी धर्मों में मनुवादी प्रवृत्ति व्याप्त है। लेकिन हिन्दू धर्म में यह खुलेआम चलता है। ईसाई बनने पर भी दलितों को सवर्ण के समकक्ष स्थान नहीं मिल पाता। मात्र धर्म परिवर्तन से दलित उद्धार या चेतना संभव नहीं है। बौद्ध धर्म में दलित समाज के सम्मान, समानता, भाईचारा और आज़ादी के लिए स्थान है। अंबेडकर ने बौद्ध धर्म को स्वीकार करके हिन्दू धर्म के कर्मकाण्डों का दिरोध किया। रमणिका गुप्ता ने लिखा है -"दरअसल धर्म से मुक्ति ही इनकी वास्तविक मुक्ति होगी, चूँकि धर्म ही ने उनमे हीन भावना भरी है। हाँ, धर्मान्तरण उन्हें तत्काल हिन्दू होने के नाते हिन्दुओं के दबाव, आतंक, कब्जे, व अधिकार से मुक्ति तो जरूर दिला देगा।"[2] दलितों का बौद्ध धर्म के प्रति आकर्षण का मुख्य कारण यह है कि बुद्ध ने मानव की समता पर बल दिया था। उन्होंने जाति-धर्मगत सभी असमानताओं का दिरोध किया था। डॉ. अंबेडकर ने इसलिए बौद्ध धर्म अपनाकर कई दलितों को धर्मपरिवर्तन की

---

[1] सुशीला टाकभौरे - तुम्हे बदलना ही होगा...., पृः 150

[2] रमणिका गुप्ता - दलित चेतना : साहित्यिक एवं सामाजिक सरोकार? पृ : 48

ओर आकर्षित किया। यह असल में उनका प्रतिरोध ही है। "जख्म हमारे" में गुलाम अहमद का भतीजा राजू परमार बौद्ध धर्म को अपनाने के पक्ष में है। गुलाम भी सदियों के शोषण से मुक्त होने के लिए इसे स्वीकारता है। राजू के मित्र सोफिया एक दलित थी। लेकिन उसके जन्म के एक वर्ष पहले वे धर्म परिवर्तन करके ईसाई बन गये। यह सुनकर राजू कहता है- "तुम्हारे पिताजी ने सम्मान की तलाश में नया धर्म स्वीकार किया। उन्होंने अच्छा ही किया। जोवन में रोटी से ज्यादा सम्मान की ज़रूरत है।"[1] सोफ़िया दलितों के लिए धर्म परिवर्तन को ज़रूरी मानती है। राजू भी बौद्ध दीक्षा नहीं ली है। किन्तु वह बौद्ध धर्म के निकट है। दलितों को सवर्ण अपने से दूर मानते हैं उन्हें मंदिर में प्रवेश नहीं देते। लेकिन ईसाई, बौद्ध जैसे धर्म उनको आदर देते हैं। उन्हें अपनी हैसियत देते हैं। गुलाम अहमद गाँव से जाते समय ईसा मसीहा के सामने नतमस्तक होकर प्रार्थना करता है न कि मंदिर की मूर्ति के सामने। गिरिजाघर के फादर उसे आशीर्वाद देकर पैसा भी सौंपते हैं। इस प्रकार अच्छे व्यवहार एवं समता भाव देखकर वे ईसाई धर्म की ओर आकृष्ट होते हैं। हिन्दू धर्म एवं ब्राह्मणवादी व्यवस्था का विरोध करके धर्मांतरण करना दलितों में आए बदलाव या प्रतिरोध का सूचक है।

"मोरी के ईट" में ईसाई मिशनिरियों द्वारा दलितों का धर्मपरिवर्तन चित्रित है। इसमें मेहतर जाति के लोग जिन्हें अनुसूचित जातियाँ तक अस्पृश्य मानते हैं, धर्म परिवर्तन करके ईसाई बनते हैं। वे ईसाई नाम

---

[1] मोहनदास नैमिशराय - जख्म हमारे, पृ : 105

स्वीकार करके मिशनरी स्कूल में पढ़ते हैं। ईसापूर में चर्च मिशन सोसायटी के ईसाईयों ने अपना मिशनरी केंद्र शुरू करता है। इन लोगों के परिश्रम से लेखक बताते हैं -"ईसापूर के मिशन स्कूल में सारे-के-सारे शिक्षार्थी दूर-दूर से देहातों से आये हुए अछूत मूल के ईसाई थे जिनमें से बड़ी संख्या मेहतर मूल के लोगों की थी, जिन्हें दूसरी अछूत जातियाँ भी अछूत ही समझती थी।"[1] ईसाई मिशनरी के बिशप रेवरेंड जैकब कार्निलियस खुद भंगी जाति के थे। उसका दादा खौराती अंग्रेजों के संपर्क में आकर ईसाई धर्म स्वीकार करता है। श्याम ईसाई धर्म स्वीकार करके 'सैमुअल' बन जाता है और मिस मार्था जौनेथन से शादी करता है। जैकब इन दोनों का बेटा है। जैकब की शादी फ़्लोरा पंत से होती है। फ़्लोरा सवर्ण परिवार की थी। उसके बाप ने सालों पहले ईसाई धर्म स्वीकारा था। मंगिया नामक मेहतरानी अपने बेटे सोहन को पढ़ाने के लिए जैकब और फ़्लोरा के पास भेजती है। वहाँ जाकर सोहन का नाम 'जॉन कर्निलियास' बन जाता है। खौराती ने अपने धर्म परिवर्तन के बारे में कहता है - "कर्नल साहब के वहाँ नौकरी करते थे तो उनके परिवार के लोग हमसे छूत नहीं मानते थे। उनके यहाँ आने वाले साहब लोग भी हमारी जात नहीं पूछते थे, हमारे साथ भी उनका बर्ताव वैसा ही होता था जैसा और दुसरे हिन्दुस्तानियों के साथ होता था। हमारे मन में यह बात बैठ गयी की यह लोग क्रिस्टान हैं, इसलिए इनके यहाँ जात का रोग नहीं होता।"[2] इसप्रकार हिन्दू धर्म में प्रचलित छुआछुत से तंग आकर मेहतर लोग ईसाई

[1] मदन दीक्षित - मोरी की ईंट, पृ : 36
[2] वही , पृ : 38-39

धर्म की ओर आकृष्ट होते हैं। सुशीला टाकभौरे ने "तुम्हे बदलना ही होगा........" में दलितों का बौद्ध धर्म के प्रति आकर्षण एवं अंबेडकर द्वारा बौद्ध धर्म स्वीकारने की बात कही है। इसमें धीरज एवं महिमा दलितों से बौद्ध विहार जाने का उपदेश देती हैं। महिमा अपनी छात्रा शोभा एवं परिवारवालों से नागपूर जाने तथा बौद्ध धर्म परिवर्तन के बाद भी दलितों को दलित ही बनाए रखनेवाले व्यवस्था पर भी विचार किया है "धन्य हाउ यह देश और धन्य है इस देश की जातिव्यवस्था! इसे धन्य कहे या जगघन्य? चाहे उत्तर भारत हो या दक्षिण भारत, जाति के प्रति जागरूकता की भावना सवर्ण मानसिकता में रहती ही हैं। दलित अछूत लोग यदि हिन्दू धर्म छोडकर, अन्य धर्म अपना लें, तब भी उनकी पहचान उनकी जाति के नाम से ही होती है।"[1] समाज में बदलाव आ रहे हैं। धर्म परिवर्तन एवं अंतर्जातीय विवाह आदि के द्वारा इस जाति-व्यवस्था को तोड़ने का प्रयास भी हो रहा है। लेकिन नाम, धर्म आदि बदलने पर भी सवर्ण लोग दलितों को स्वीकारने में हिचकिचाते हैं।

सांस्कृतिक विशेषतायें

दलित साहित्य भोगा हुआ यथार्थ है जिसमें मुक्ति कामना है। उपन्यासकारों ने दलित समाज की समस्याओं के साथ सांस्कृतिक विशेषताओं पर भी विचार किया है। दलितों के अंधविश्वास, रूढ़ि-परंपरा, उत्सव-पर्व,

---

[1] सुशीला टाकभौरे - तुम्हे बदलना ही होगा...., पृ : 8

संस्कार, देवी-देवतायें, लोकगीत, लोककथा, भाषा, आदि अनेक पहलुओं पर उपन्यासकारों ने प्रकाश डाला है।

अंधविश्वास

मानव जीवन में अंधविश्वासों का गहरा प्रभाव है। दलित-आदिवासी और ग्रामीण समाज में लोग अज्ञान और अशिक्षा के कारण अधिक अंधविश्वासी बन जाते हैं। मानव में हमेशा प्रकृति और विश्व के प्रति जिज्ञासा, कौतुहल आदि के साथ भय की मिली-जुली प्रवृत्ति भी है। धर्म और अंधविश्वास के बीच गहरा संबंध है। सवर्ण लोग वर्चस्व कायम रखने तथा अज्ञान लोगों को लूटने, उन्हें डराने और उन पर अधिकार स्थापित करने के लिए उन पर अंधविश्वास थोप देते हैं। जयप्रकाश कर्दम के 'छप्पर' में दलित चमारों के गांव में कुछ ब्राह्मण एवं ठाकुरों का भी वर्चस्व है। इनमें श्रीराम शर्मा जिसे 'काणे पंडित' कहते हैं पुरोहिताई का पुश्तैनी धंधा अपना लिया है। लोगों का विश्वास है कि काणे पंडित को ज्योतिष विद्या आता है। लोग अपना हाथ दिखाने, भविष्य पूछने या भूत-प्रेत आदि के बारे में पूछने या उपाय ढूँढने आते थे। "सबके हाथ देखता था, सबका भविष्य बताता था और सबकी झाड-फूँक करता था। ......दान-दक्षिणा की खूब मौज रहती थी। ऊपर से गाँव में मंदिर के पुजारी का काम-काज भी वह देखता-भालता था। मंदिर में प्रसाद और चढावे में भी खूब सामान आता था- फूल-मिठाई, कपडे और नकद पैसे अलग।"[1] गाँववालों की अज्ञानता के कारण वे साधु-संतों में

---

[1] जयप्रकाश कर्दम - छप्पर, पृ : 32

विश्वास रखते हैं। सुशीला टाकभौरे ने "तुम्हे बदलना ही होगा...." में दलित बस्तियों में व्याप्त अंधविश्वास की ओर पाठकों का ध्यान आकृष्ट किया है। उन्होंने लिखा है -"यहाँ, यह समस्या भी है, हर घर में अंधविश्वास है, भूत, प्रेत और चुड़ैल का भय उन्हें ओझा के चक्कर में डाल देता है, जिससे धन के साथ जान का नुकसान भी वे उठाते हैं। घर के कुलदेवता और कुलदेवी की पूजा में सूअर की बलि चढ़ाना और समाज को शराब और मांस की दावत देना वहां का चलन है।"[1] दलितों में अशिक्षा का आभाव है। सवर्ण एवं ब्राह्मण लोग इसका फायदा उठाकर पैसा कमाते हैं। इस प्रकार के अंधविश्वास व साधु-संतों के प्रति अंधश्रद्धा से निम्न जाति के लोगों को नुकसान होता है। अज्ञान, वैज्ञानिक विचारों का अभाव आदि के कारण दलितों में कई तरह के अंधविश्वास को स्थान मिला है।

"मोरी के ईंट"में कई रुढियों व अंधविश्वासों का चित्रण किया गया है। मानव के प्रत्येक क्रिया-कर्म के साथ रूढी, श्रद्धा, अंधश्रद्धा आदि का संबंध रहा है। इसमें लेखक ने उत्तरांचल के मेहतर समाज की रूढ़ परंपराओं पर प्रकाश डाला है। ब्राह्मण का मेहतर बनाना, कराव प्रथा, मृत्यु संस्कार आदि से जुडी रुढियाँ इसमें है। इसमें शंभू ठकुर नामक ब्राह्मण को परबतिया नामक मेहतरानी से शादी करने के लिए मेहतर बनना पड़ता है। उस दिन बिरादरी के सब लोगों के सामने अपमानित करते हैं। शंभू को एक पलंग के नीचे बिठाकर सभी लोग इस पलंग के ऊपर बैठकर नहाते हैं। एक घंटे तक

[1] सुशीला टाकभौरे – तुम्हे बदलना ही होगा...., पृ : 118

यह चलता है। फिर उसे शुद्ध पानी में नहलाकर कफ़न से बनाये गये कपडे पहनाते हैं। परबतिया के बाप सारी बिरादरी के भोजन के बाद बची-खुची जूठन शंभू से खिलते हैं। इसी के साथ वह मेहतर बन जाता है। मेहतर समाज में 'कराव प्रथा' का चलन है। इसमें विवाह-बंधन का किसी मजबूरी में टूट जाने पर दूसरी जगह नए विवाह-बंधन बना लेता है। लेखक ने लिखा है -"कराव में विवाह जैसे धूम-धडाका नहीं होता था। बस, औरत अपने हैसियत के हिसाब से सिंगार करके बैठती थी, मोहल्ले-बस्ती की बिरादरी के लोगों की मौजूदगी में नया, मर्द उसे चादर उढ़ाकर चूड़ी-बिछुए पहना देता था। मोहल्ले-पड़ोस में पुए बंट जाते थे और 'कराव' की रस्म पूरी हो जाती थी।"[1] इसमें रम्पिया अपने पूर्व पति को त्यागकर कराव रस्म अदा करके नए आदमी को स्वीकार करती है। मेहतर समाज के झगदरिता की मृत्यु के बाद उसकी पत्नी चूड़ियाँ तोडकर तथा अपने बेटे के सिर के बाल उतरवाकर रस्म निभाते हैं। इसके साथ बिरादरी में रोटियाँ बंटती हैं। इसप्रकार मृत्यु संस्कार की रस्मों को निभाती है।

दलित प्राकृतिक शक्तियों में अपार विश्वास रखने वाले हैं। 'छप्पर' में प्राकृतिक आपदा से बचने के लिए इंद्र की पूजा-अर्चना करने का चित्रण है। उत्तर भारत में मानसून के न आने के कारण अकाल आ गया था तो दक्षिण-पूर्वी भागों में मानसून इतना आ गया कि नदियों में बाढ़ आ जाती है। गाँव तहस-नहस हो जाते हैं, लाखों लोग बेघर हो जाते हैं, हजारों आदमी और

[1] मदन दीक्षित - मोरी की ईंट, पृ : 143

मवेशी पानी में बह गए। उनका विश्वास है कि भगवान इंद्र रूढे हुए हैं इसलिए वर्षा न हो रही है। वे यज्ञ एवं हवन के लिए चंदा इकट्ठा करते हैं। जबकि वे इसप्रकार करके इंद्र को खुश करना चाहते हैं ताकि वर्षा हो।

"जख्म हमारे" में भूकंप के बाद लोगों में भूत-प्रेत का अंधविश्वास बढ़ जाता है। उनका मानना है कि ये सब भूत-प्रेतों का खेल है। इसलिय नये घर में वापस आते समय वे रूहों-भूत-प्रेतों से बचने के लिए टोटके करते हैं, कुछ लोग गृह-प्रवेश पर कथा कराई जाते हैं। इससे हवन सामग्री की माँग बढ़ गई और पुजारियों-पुरोहितों का व्यवसाय भी फिर से चमकने लगा। गुजराती समाज के अपने कुछ विश्वास एवं आस्था है। वे इनके अनुसार पूजा-अर्चना करते हैं ताकि भविष्य सुन्दर हो। गाँव के ज़मींदार, ठाकुर या अन्य सवर्ण लोग अपने घर में या गाँव में कुछ अनर्थ होने पर सारा दोष चमारों पर थोप देते हैं। 'तर्पण' में चंदन को पुलिस द्वारा पकडे जाने, अपनी बेटी की माँ न बनने आदि दोषों का कारण 'चमरदोख' मानती है। वे भूत-प्रेत आदि में विश्वास रखती है। गाँव में 'उदासी जी' नामक एक औरत है। चंदन की माँ उसे बहुत मानती है। जब मालकिक कई सालों तक माँ नहीं बनी तो ओझा ने चित्रकूट में कामदगरी पर्वत के परिक्रमा पथ पर एक सौ इक्कीस पत्थर लगवाने को कहा था और उससे लेटकर परिक्रमा करने का उपदेश दिया था। ऐसा करने के बाद ही चंदन का जन्म हुआ था। उदासी जी की गैर मौजूदगी में मालकिन सारे दोषों से निपटने के लिए सत्यनारायण का व्रत रखकर पूजा

करती है। इसप्रकार सवर्ण हो या अवर्ण अशिक्षा के कारण वे देवी-देवता, भूत-प्रेत संबंधी अनेक अंधविश्वासों में बंधे रहते हैं।

देवी-देवता संबंधी विश्वास

भारतीय परंपरा में अनेक देवी-देवतायें हैं। प्रत्येक जाति, धर्म के अनुसार देवी-देवताओं के नाम, पूजा-अर्चना आदि भिन्न होते हैं। दलित का अपनी देवी-देवतायें हैं, जिन के प्रति मन में अपार निष्ठा एवं श्रद्धा है। "तर्पण" में गाँववालों का काली देवी के प्रति श्रद्धा का चित्रण है। 'रामललवा' नामक आदमी का 'काली देवी को धार छोड़ने के लिए बड़ा फूल' लेने जाने का जिक्र हुआ है। इसके साथ पंडिताइन के बेटे का जेल ले जाने का कारण चमरदोख बताता है। इससे बचने के लिए 'बेल्हा माई' के घाट पर उसे बैठाने जाने और पूजा अर्चना करने का उपदेश पंडित देता है। इसमें बताया है -"बैठवाना पडेगा, बेल्हा माई के घाट पर। अपना पूजा पावना, छौंना खाँसी के और पिंड छोड़े।"[1] इसप्राकर "छप्पर" में बाढ़ के कारण सर्वनाश होने पर आकाश के देवता इंद्र को प्रसन्न करने के लिए यज्ञ और हवन करने का चित्रण है। समाज में सबके नियामक के रूप में ईश्वर को मानते हैं| इसलिए उनको प्रसन्न करने के लिए तरह-तरह के भेंट चढाते हैं,पूजा-अर्चना भी करते हैं |देवी-देवताओं के साथ ए भूत-प्रेत में भी विश्वास रखते हैं|

---

[1] शिवमूर्ति - तर्पण, पृ: 59

रहन-सहन

दलित लोग निरंतर अभावग्रस्त जीवन गुजारते हैं| वे जीवन की बुनियादी ज़रूरतों से वंचित हैं| भूख,गरीबी,बीमारी,दारू,गंदी बस्ती,फटे हुए कपडे,झुग्गी झोंपड़ी आदि उनके जीवन के अभिन्न अंग हैं| जयप्रकाश कर्दम के "छप्पर" में उत्तर प्रदेश का एक छोटा स गाँव मातापुर एवं वहां रहने वाली निरधा-गरीब दलित चमारों की समस्याएं चित्रित हैं| सुक्खा और रमिया की झोंपड़ी का वर्णन किया है- "किन्तु जो लोग दलित और दरिद्र हैं उनके पास रहने सहने तथा एकाध पशु जो वह पालते है, उन सबके लिए कुल जमा गारा-मिट्टी की दीवारों पर घांस-फूंस के छप्पर या झोपड़ियां है इकछली-दुछत्ती।"[1] उनकी साधन संपन्नता इस झुग्गी-झोंपड़ी तक सीमित है। वे दिन-भर मेहनत करते रहते हैं। यहाँ सुक्खा और रमिया तो अभाव में जीते हैं फिर भी बेटे को पढाते हैं। वे रात को जागकर तरह-तरह के विचारों से परेशान होते हैं। वे हुक्का गुडगुडाते हैं। इससे उन्हें ठंड से आराम मिलते हैं। दमे का मरीज़ होने के कारण वह दुर्बलेवं क्षीण है। आर्थिक तंगी के कारण वह इस बीमारी की इलाज तक नहीं कर पाते हैं। शहर के दलितों की जिंदगी भी गाँव के समान असुविधा ग्रस्त है। इसको लेखक ने यों चित्रित किया है- "सुबह सवेरे घर से निकलकर देर रात गए थके-मांदे होकर घर लौटना और रूखा-सूखा, खा-पीकर खट रहना, यही है इनकी जिंदगी। दूसरे लोगों की तरह न इनके पास सुख- सुविधाएँ हैं और न मनोरंजन के साधन ही। कुल

---

[1] जयप्रकाश कर्दम – छप्पर, पृ : 5

जमा बीवियां ही इनके मनोरंजन की एकमात्र साधन हैं।"[1] मिल-मजदूरी करके फेरीवाला बनकर या जूते चप्पल आदि बनाकर वे आजीविका चलाते हैं। दिन-भर के मेहनत के बाद भी भरपेट भोजन नहीं मिलता है। लेखक बताता है- "सुबह से शाम तक जी-तोड़ मेहनत से काम करना, रात को रुखा-सूखा जो मिल जाए कहा-पीकर पड़े रहना और अगली सुबह उठकर फिर रोजी-रोटी की जुगाड़ में उलझ जाना, इसी में इनके जीवन की सारी गति समा गयी है।"[2] ये लोग अपने मेहनत का बड़ा हिस्सा दारूबाजी या जुए में बर्बाद करते हैं। इसी कारण घर में हमेशा मारपीट एवं शोर-शराबा होती रहती है। इस कारण उनका जीवन स्तर उपर नहीं उठता है।

"तर्पण" में दलित लोगों में भारी परिवर्तन आते हुए चित्रित किया है। वे अभावग्रस्त हैं पर ज़मींदारों साहूकारों के सामने गिडगिडाते नहीं है। फिर भी नारी पर अत्याचार, शोषण आदि इनके साथ होते हैं। लेकिन वे इसके खिलाफ आवाज़ उठाते हैं। "जख्म हमारे" में गुलाम अहमद नामक दलित शहर आकर मज़दूरी करता है। पचास रुपया कमाकर चालीस रूपया संभालकर रखता है। लेकिन अचानक भूकंप आता है तो पत्नी और बच्चे मर जाते हैं। उसके बाद उसे हर कदम पर हरिजन होने के कारण अपमान सहना पड़ता है। गाँव में दलितों के रहन-सहन के बारे में बताया गया है- "गाँव में दलितों और सवर्णों की बस्तियाँ अलग-अलग थी। सुख-दुःख में भी उसकी

[1] जयप्रकाश कर्दम - छप्पर, पृः 11
[2] वही, पृ : 13

भागीदारी जातीय आधार पर थी।"[1] गुलाम को लोग हरिजन होने के कारण निरंतर तडपाते थे। "नरककुंड में वास" में काली ज़मींदारों के डर से शहर भाग जाता है। अजनबी बनकर बेरोज़गारी एवं भूख को सहकर जीवन गुजारता है। पहले रेलवे स्टेशन पर भिखारियों के साथ रहता है। अगले दिन बस स्टेशन पर जाता है। काली का अकेलापन एवं अजनबीपन को बारीकी से चित्रित किया है। उसे चमड़े के कारखाने में नौकरी मिलती है। किशना उसे वहा के बदबूदार वातावरण एवं खुजली होने की संभावना के बारे में बताता है। काली को बेरोज़गार बनकर रहने से ज्यादा इस गंदगी में जीना ज्यादा ठीक लगता है। पहले दिन उसे उलटियाँ आती है। फिर भी सबकुछ सहकर गंदगी से समझौता कर लेता है| इसका चित्रण यो किया है -"काली ने खाल को उपर उठाया तो बदबू का एक बड़ा झोंका उमड़ पड़ा और साथ ही मक्खियों का भरपूर हल्ला भी हुआ। उसके साथ एक बार फिर कांप गए लेकिन उसने दिल को कडा बनाए रखा। मरे हुए पशु की खाल का ख्याल आते ही काली को झुरझुरी महसूस हुई। खाल की लिजलिजाहट और नमक मिली चर्बी से गिरते वदरंग और बदबूदार खून मिले पानी से काली का मुँह नमकीन और खट्टे पानी से भर गया। उसने पानी की पीक थूक दी और आँखे मूँद ली।"[2] महीने में साठ रूपये मिलने के कारण वह सब कुछ चुपचाप सहता है। खुजली और फोरमैन के दूर्वव्यवहार के कारण नौकरी छोड़े के बारे में सोचता है। लेकिन भूख के आगे उसे हार मानना पड़ता है। अंत में ये

[1] मोहनदास नैमिशराय - जख्म हमारे, पृ : 20
[2] जगदीशचंद्र - नरककुंड में वास, पृ : 135

लोग दारु पीकर सब कुछ भूलने की कोशिश करता है। दारु नहीं मिले तो अफ़ीम खाते हैं। किशना बताता है -"शराब शाही नशा है। राजाओं-महाराजाओं, धनाढ्य सेठों और बड़े ज़मींदारों का। लेकिन फर्क सिर्फ इतना है कि वह ख़ुशी और सुख के लिए पीते हैं और हम जैसे गरीब लोग दुःख, दर्द, थकावट और दिनभर की तल्खी भुलाने के लिए पीते हैं।"[1] दूसरी तरफ़ सवर्ण ज़मींदार, बड़े-बड़े अफ़सर आदि इनको शराब देकर अपने वश में कर लेते हैं। "मोरी के ईट" में झरगदिया नामक मेहतर शराबी है। हर दिन अपनी कमाई से वह पीता है। वह अपने घर की देखभाल नहीं करता है। चुंगी का ज़मादार हीरालाल उसकी पत्नी मंगिया से आकृष्ट था। वह अपनी इच्छा पूर्ती के लिए झरगदिया को शराब देता है। इसप्रकार शराब की नशे में वह अपनी पत्नी के दुःख एवं दर्द को पहचान नहीं पाता है। मेहतर जाति सफ़ाई का काम करते हैं। ठिकानेदारी की बिर्त ही मेहतर बिरादरी की जायदाद थी। मेहतरानियां सुबह को ठिकाने कमाने और शाम को ठिकानों की कमाई की रोटियाँ लाने का काम करती हैं। मर्द चुंगी, कॉलेज, रेलवे, स्कूल और रेलवे कॉलनी के सफाई विभागों में काम करते थे। इनमें कुछ लोग बड़े घरों में रात की चौकीदारी करते थे। कुछ लोग अपने गदहों से खेतों में खाद पहुँचाने का काम करते थे और कुछ लोग मुर्गियां और सूअर पालते थे। शहर में मुर्दों को गाड़ना, उसे मुखाग्नि देना आदि काम मिलता है। वे दिन रात मेहनत करते हैं- "सुबह सूर्योदय के बाद चार घंटों का समय तथा शाम को सूर्यास्त से

---

[1] जगदीशचंद्र - नरककुंड में वास, पृ: 196

पहले के चार घंटों का समय मेहतर समाज में काम का समय होता था। दोपहर में सबको फुरसत हुआ करती थी और आमतौर पर लोग खाना खाकर चौपाल पर आ जाते थे।"[1] शाम को सूर्यास्त के बाद ही इन्हें आराम करने का अवसर मिलता था। तब बुजुर्ग लोग हुक्के गुडगुडाते तो कुछ लोग शराब पीते थे। इसप्रकार मेहतर लोग अपनी जिंदगी को आगे बढाते हैं।

"आज बाज़ार बंद है" में लेखक ने वेश्याओं की रहन-सहन पर विचार किया है। वेश्याओं की दुनिया और जिंदगी अलग ढंग का है। इसमें उत्तरप्रदेश के इम्मादतपुर के बाज़ार का चित्रण किया है। लेखक ने इसका चित्रण यो किया है -"इस बाज़ार में नीचे पानी बिकता था उपर आग। आग घौसलों में सुरक्षित थी। घौसलें जलते न थे। वहाँ कुछ और ही जलता। पिघलता था और पिघलते हुए आसपास बहता था। लोग आते और इसकी उफनती नदी में भी डूबकी लगाकर चले जाते। यहाँ गँगा भी थी और यमुना भी। ....वैसे ही इबातपुर की इस नदी में भी अलग-अलग रूप। रंग। रस स्वभाव की नदियां थी, जो नज्दीक आने वालों को लुभाती तथा खूब उत्तेजित करती थी।"[2] इस बाज़ार के कारण उस मुहल्ले का नाम तक बदल गया है लेकिन बाज़ार में कोई बदलाव नहीं आया है। उनके कमरे में हमेशा एक चमक और रोशनी होती थी| उस कमरे का वर्णन यों किया है- "एक बड़ा कमरा। जिसमें करीने से गृहस्थी की चीज़ें रखी हुई थी। फर्श पर चाँदनी बिछी थी। दीवार के पास दो तीन गाव तकिये रखे थे। अधिक उम्र की एक

[1] मदन दीक्षित - मोरी की ईट, पृ : 38

[2] मोहनदास नैमिशराय - आज बाज़ार बंद है, पृ : 19

औरत के पास जवान वैश्या बैठती थी| अधिक उम्र की महिला के मुँह में पान था।"[1] ये हमेशा सज-धजकर रहती है। वे पान एवं शराब का इस्तेमाल करती हैं। वे इस तरह कपड़े पहनती है कि उससे शरीर की नग्नता दिखाई देते हैं। वे ग्राहकों को आकृष्ट करने के लिए यह सब करती हैं।

सुशीला टाकभौरे ने "तुम्हे बदलना ही होगा..." में दलित बस्तियों की अभावग्रस्त जीवन शैली का चित्रण किया है। उनके घर में एक कमरा और एक किचन ही होता है। अधिकांश लोगों के पास घर भी नहीं है। इसमें भंगी, चमार जाति की समस्याओं का चित्रण किया है। भंगी जाति के धीरज कुमार के माँ-बाप पैतृक रोज़गार अर्थात सफ़ाई का काम करने के लिए विवश है। महिमा आगरा के दलित बस्ती में जाती है। वहाँ जूते बनाने की फैक्टरी में काम करने वाले कई दलित रहते हैं। जिन घरों में चमडा पकाने का काम चलता है वहाँ गंदगी और बदबू बनी रहती है। लेखिका ने इन दलितों के जीवन के बारे में लिखा है- "...... कुछ घर ही वहाँ खाते-पीते नज़र आते हैं। बाकि सभी कष्टपूर्ण जीवन जीते हैं। लोग कई पीढ़ियों से अपने इस मोहल्ले में, अपने पुश्तैनी घरों में रहे हैं। वे पीढ़ी दर पीढ़ी अपनी जाति के रोज़गार-जूते चप्पल बनाने के धंधे-व्यवसाय में लगे हुए हैं। दिन भर इतना काम करने के बाद भी अधिकतर घरों में गरीबी, अभाव, और कर्ज की स्थिति बनी रहती

[1] मोहनदास नैमिशराय - आज बाज़ार बंद है, पृ: 33

है।"[1] वे भोजन के अभाव में कुपोषित हैं। वे हमेशा चिंताग्रस्त जीवन व्यतीत करते हैं।

लोक नृत्य एवं गीत

लोगों में प्रचलित गीत जो साधारण लोगों द्वारा गए जाते थे 'लोकगीत' कहा जाता है। इसमें उनका दुःख,शोषण खुशियां आदि होते हैं। लोकनृत्य के साथ विवाह, उत्सव, पर्व, आदि के अवसरों पर गाये जाते हैं। लोकभाषा में लिखित इन गीतों में संगीतात्मकता होती है। पीढी-दर –पीढी हस्तांतरित इन गीतों के रचनाकारों के बारे में कोई जानकारी नहीं है। "तर्पण" में चमारों द्वारा नौटंगी करते हैं जिसमें चंदर के जेल जाने की कथा को प्रस्तुत किया है। इस नौटंगी के साथ वे गीत भी गाते हैं -:

"अरे पूत के कुकरमे धरमू गए जेहलखनवा
गए जेहलखनवा हो गए जेहलखनवा
मुँगरन मार परत होई हैं
जेहलखनवा मा बलमू शेवत होई हैं।"[2]

यहाँ चमार नाच के विदूषक करनिगा एवं मृदंग और झाँझ के ताल पर मछली की तरह कमर लचकाती नर्तकी यह नौटंगी प्रस्तुत करते हैं।

[1] सुशीला टाकभौरे - तुम्हे बदलना ही होगा......., पृ : 117-118
[2] शिवमूर्ति - तर्पण, पृ : 102

"छप्पर" में चंदन के घर के आसपास रहने वाले दलितों का शाम को गीत गाने एवं नाचने का चित्रण किया है। वे कमरतोड़ मेहनत करके आने के बाद थोड़ी मज़ा मनोरंजन के लिए दारु पीकर ढोलक और मंजीरे की तान पर राग-रागनियाँ गा लेते हैं। एक गायक की लोकगीत गाने के अंदाज का चित्रण लिखक ने यों किया है- "जब भी कोई गायक पूरी लय और ताल के साथ गाता है तो उसका एक हाथ कान पर और दूसरा लोक को संदेश देने की सी मुद्रा में ऊपर उठ जाता है। जैसे-जैसे गीत गति पकड़ता है वैसे-वैसे गायक की आवाज़ ओजपूर्ण होती चली जाति है। और गति की लय के साथ-साथ कभी उसका हाथ ऊपर उठता है और कभी सिर और सीना तन जाता है।"[1] इसप्रकार रसिकता इनमें गीत और संगीत तक ही सीमित है।

उत्सव-पर्व एवं तीज-त्योहार

उत्सव-पर्व, तीज-त्योहार आदि सामाजिक व्यवहार का सामान्य अंग है। भारतीय समाज में इनका विशेष स्थान है। ग्रामीण संस्कृति में आनंद एवं उल्लास भर देने में इसका मुख्य योगदान है। उत्सव-पर्व मनाते समय लोग जातिगत भेदभाव नहीं देखते हैं। आलोच्य उपन्यासों में इनके उत्सव एवं त्योहारों का चित्रण देख सकते हैं।

"तुम्हे बदलना ही होगा ..." में महिमा द्वारा बुद्ध पूर्णिमा का विवरण देती है। यह देश के सभी दलित धूमधाम से मनाते हैं। दशहरे के दिन यह उत्सव मनाये जाते हैं। बौद्ध धर्म के अनुसार सम्राट अशोक ने कलिंग युद्ध

---

[1] शिवमूर्ति - तर्पण, पृः 12

करना छोडकर 'विजय धम्मचक्र चलाने' की प्रतिज्ञा करते हैं। भीमराव अंबेडकर ने इसी दिन नागपूर में जाकर बौद्ध धर्म की दीक्षा ली थी। महिमा इस उत्सव के बारे में बताती है- "डॉ अंबेडकर की दीक्षा भूमि नागपूर में, पूरे देश से कई हज़ारों की संख्या में लोग आकर, इस दिन का उत्सव मनाते हैं। इन दिनों पूरा नागपूर शहर पूरी तरह बौद्धमय बन जाता है। बाहर से आए हजारों लोगों के लिए, नागपूर के अंबेडकरवादी लोग भोजन और निवास की व्यवस्था करते हैं।"[1] उस दिन बौद्धिक कार्यक्रम का आयोजन भी होता है।

"आज बाज़ार बंद है" मैं वेश्याओं व देवदासियों के उत्सवों का जिक्र किया गया है। पुरुषवर्चस्ववादी समाज ने तरह-तरह के मेलों व उत्सवों के ज़रिए स्त्री शरीर का भोग करने के नये-नये तरीके अपनाते हैं। लेखिका ने देवदासी अनुष्ठान के वक्त मनाई जाने वाले उत्सव का जिक्र यों किया है- "आस-पास के गाँवों से लोग जुटते, वही उत्सव मेले का रूप लेता। रंग बिरंगे कपड़े पहने स्त्री-पुरुष मनौती मांगने आते। उसी मेले में देवदासियों की तलाश होती थी। उन्हें खूब सजने-सवरने के लिए प्रेरित किया जाता था। ऐसे मेले को दलित समाज की औरतों के खरीदने तथा बेचने के उद्देश्य हेतु हाट भी कह सकते हैं।"[2] प्रत्येक उत्सव के बहाने महिला का यौन शोषण होता था। हिन्दू धर्म की इस उत्सव धर्मिता से कई औरतें नारकीय जीवन बिता रही हैं। लेखक ने दक्षिण भारत में प्रचलित 'योनि पूजा' का भी जिक्र किया है- "दक्षिण भारतीय होने के नाते उन वेश्याओं के अपने उत्सव होते

---

[1] सुशीला टाकभौरे - तुम्हे बदलना ही होगा....., पृ : 58

[2] मोहनदास नैमिशराय - आज बाज़ार बंद है, पृ : 92

थे। उन उत्सवों पर अभी भी मातृसत्तात्मक समाज का प्रभाव था। जहाँ योनि पूजा होती थी। वर्षा ऋतू के आगमन पर वैश्याएँ अपने-अपने आँगन में आग जलाती और गीत गाते हुए अपने नीचे के कपडे को उठाकर अपनी-अपनी योनियों को आग में तपाती थी। इसके पीछे मान्यता थी कि वे योनि को पवित्र करती हैं।"[1] इसप्रकार वैश्याएँ भी अपनी-अपनी जीवन-शैली के अनुसार कई प्रकार के तीज-त्यौहार, पर्व आदि मनाते हैं।

दलित भाषा

हिंदी दलित साहित्य की भाषा सहज, सरल तथा आम बोलचाल की भाषा है। समकालीन उपन्यासकार दलितों के जीवन की वास्तविकता को उपन्यासों के माध्यम से प्रस्तुत करते हैं। इसलिए इन उपन्यासों में शोषित आदमी की अपनी भाषा का इस्तेमाल हुआ है जिसमें कृत्रिमता, एवं अस्पृश्यता नहीं है। दलितों का जीवन सडांध एवं मैली बस्तियों में है। उनकी भाषा में भी इसका प्रभाव देख सकते हैं। इस सहज भाषा के कारण दलितों के समान दलित भाषा की भी भर्तसनायें सुनना पड़ा। कई लेखकों ने इस भाषा को कमज़ोरी के रूप में नहीं उपलब्धि के रूप में देखा है। ओमप्रकाश वाल्मिकी ने लिखा है -"कुछ आलोचक दलित साहित्य में गन्दी और अश्लील भाषा के प्रयोग की ओर साकेत करते हैं। उन्हें लगता है साहित्य का पाठ 'पवित्र' होना चाहिए। भले ही उसमें बनावटी भाषा, जो आभिजात्य संस्कारों से रची-बसी हो, का प्रयोग करना पड़े। यह धारणा

[1] मोहनदास नैमिशराय - आज बाज़ार बंद है , पृ : 64

उचित नहीं है क्योंकि दलित साहित्य कल्पना में नहीं जीता। वह जीवन के कटु यथार्थ से रूबरू होता हैं। यातनाओं से उपजी आक्रोशित भाषा एक तेज़ औजार की तरह भीतर तक झकझोर देती है। दलित साहित्य की बोली बानी के ऐसे अनेक शब्द प्रकट होते हैं जिनसे साहित्य अनभिज्ञ था। यह दलित साहित्य को ताज़गी देता है और भाषा की जड़ता भी टूटती है।"[1] इसप्रकार दलित भाषा सर्वग्राही भाषा है। उनकी भाषा में विरोध एवं आक्रोश हैं जिसमें युगों की यातनाएँ साकार हो उठी है। उनकी यह भाषा जो दलितों में नारकीय जीवन से साक्षात्कार कराता है दलित साहित्य को विश्वसनीयता प्रदान करती है। उनकी भाषा में बोली का प्रभाव है साथ ही विभिन्न मुहावरों का प्रयोग भी हुआ है जिससे निम्नवर्गीय लोगों के कड़वे जीवन के यथार्थ को परत दर परत खोलती है।

ग्रामीण बोली

ग्रामीण और शहरी जीवन से संबंधित इन उपन्यासों में पात्र गंवई अंचल की भाषा बोलते हैं। "छप्पर" में अनपढ़ सुक्खा की भाषा में गंवई शब्दों का प्रयोग देख सकते हैं। उसका रमिया के साथ हुए संवाद इसप्रकार है -"और आगे पढ़कर ही कौन सा कलट्टर बन जाएगा, बड़े आदमी जमे हैं बड़े होदे तक। छोटे आदमी की क्या बिसात है, गुज़ारे लायक हिल्ला-रूज़गार मिल जाए छोटा-मोटा, बस बहोत है।"[2] इससे सुख्खा के मन की प्रतीक्षा जाग उठती है। "तर्पण" में अशिक्षित औरतें चंदर की बदमाशी देखकर जो

---

[1] ओमप्रकाश वाल्मीकी - दलित साहित्य का सौन्दर्यशास्त्र पृ : 81-82
[2] जयप्रकाश कर्दम - छप्पर, पृ : 9

कुछ कहती है सब आँचलिक बोली में है। इस उपन्यास की पृष्ठभूमि छत्तीसगढ़ की 'बडगाँव' है। इसके साथ उत्तरप्रदेश के मिर्जापुर और वहाँ के लोगों की बोली का भी प्रभाव देख सकते हैं। राजपतिया चंदर को गाली देकर कहती है "अरे माई रे। गोहार लगा। घरमुआ कै पुतवा अधिशन बा रे।"[1] परेमा की माई द्वारा चंदर को यों शाप देती है -"अरे तुम लोगों की आँख का पानी एकदमै मर गया है? आँख में "फूली" पड गई है? बिटिया-बहिन की पहचान नहीं रह गई है तो कैलसिया को काहे नहीं पकड लेता घरवै में।"[2] लंगवी नामक दलित नौकरानी और पंडिताइन के बीच का संवाद आँचलिक बोली में है -:

"अब खेत में मेंड डाँट से निकलना, पंठना बंदकराना पडेगा। बहुत मन बढ़ गया है तुम लोगन का।"

"एक बात कहें मालकिन? ऊ लड़की तो छिनार हबै हौ, मुला अपने चंदर महाराज को तो समझना चाहिए।"

"का करे चंदर महाराज रे? आपन खेतीदारी न रखावे? कि चोर चाई न पकडै?"[3]

इसप्रकार दोनों के संवाद में कई आँचलिक शब्दों का प्रयोग करते देख सकते हैं। यह उनकी भाषा है। इसमें पुलिस तहकीकात करने राजपतिया के घर आती है।तब उसकी माँ से पूछताछ करता है। राजपतिया की माँ उस दिन का

---

[1] शिवमूर्ति - तर्पण, पृ : 10
[2] वही - पृ: 10
[3] वही - पृ : 21

विवरण यों देता है- “साहेब, दो खेत की दूरी पर रहे। गोहार तो सुनाई पड़ी, बाकी ई समझ में नाही आवा कि कौन कहाँ से गोहार लगावत है। काहे से कि बीच में काही (सरसों की अगैती किस्म) फूली थी।”[1]

“जख्म हमारे” उपन्यास गुजरात की भूकंप एवं बाबरी मस्जिद को पृष्ठभूमि बनाकर लिखा है। इसमें भूकंप से पीड़ित गुलाम अहमद की मदद सुरजा नामक एक अनपढ़ चमार करता है। उनकी भाषा में गुजराती भाषा एवं प्रांतीय बोली का प्रभाव है। सुरजा उसे पानी देकर कहता है -“तमारे को प्यास लगी थी भइया। मैंने पानी पिला दिया। यह तो हमारो धरम था।”[2] गुलाम उससे पूछता है “तुमने म्हारी जात नहीं पूछी।”[3] दोनों के बीच के संवाद में परिष्कृत भाषा नहीं फिर भी आत्मीयता है। दो दलितों की आत्मीयता एवं भाईचारे को लेखक ने यहाँ दर्शाया है।

ग्रामीण आँचलिक शब्द

शहर में हो या गाँव में अनपढ़, गंवार दलित पात्र अपनी ग्रामीण अंचल की भाषा की शब्दावली का ही प्रयोग करते हैं। जैसे ‘होदे’ (ओहदा), कलट्टर (कलक्टर), रूज़गार (रोजगार), भौत, बहोत (बहुत), रहवेगा (रहेगा), परगट (प्रकट), चंदरवा (चंदर), चरित्तर (चरित्र), पुतवा (पुत्र), आई गए (आ गये), जाइ न पावै (जा नहीं पाए), पहुँची गए (पहुँच गए), एकदमै (एकदम), काहे (क्यों), घरवै में (घर में), का भवा (क्या हुआ), हमार

[1] शिवमूर्ति - तर्पण , पृ: 71
[2] मोहनदास नैमिशराय - जख्म हमारे, पृ : 26
[3] मोहनदास नैमिशराय - जख्म हमारे , पृ : 26

(हमारा), तोरी (तुम्हारी), तलासी (तलाशी), लेब (लेना), ढकेल दिहिस (ठकेल दिया), मारै लाग (मारने लगा), लोगन (लोग), बिटिया (बेटी), नाहीं (नहीं), हमैं (हमें), ओकरे (उसके), बाभन (ब्राह्मण), चमारवे (चमार), दोख (दोष), चमरदोख (चमार का दोष), नेतवा (नेता), रपोट (रिपोर्ट), आँचर (आँचल), फारि देना (फाड़ देना), नाहीं आवा (नहीं आया), ई (यह), कौनों (कोई), खुदै (खुद ही), परान (प्राण), रखेलिन (रखैल), कलजुग (कलयुग), पराश्चित (प्रायश्चित), म्हारे गाँव (हमारा गाँव), हिंया से (यहाँ से), घरम (धर्म), म्हारा (हमारा), नई (नहीं), तमारे (तुम्हारे), जावेगा (जाएगा), पिवेगा (पीएगा),

मुहावरे

दलित उपन्यास में कई मुहावरों का प्रयोग देख सकते हैं। उपन्यास के पात्र अपने जीवन के विविध संदर्भों एवं अनुभवों को व्यक्त करने के लिए मुहावरेदार भाषा का प्रयोग करते हैं। इन मुहावरों से भाषा में कलात्मकता एवं जीवन्तता आ गई है। अशिक्षित सुक्खा अपने बेटे को लेकर गर्व महसूस करता है। वह चंदन की पढ़ाई के बारे में कुछ भी नहीं जानता। क्योंकि अरिक्षित होने के कारण उसे कुछ भी समझ में नहीं आती। तब सुक्खा बोलता है "मेरे लिए भी काला आखर भैंस बराबर है।"[1] "नरककुंड में वास" में काली का गाँव से दूर होने पर उसे अपना घर याद आता है। लेखक उसका दुःख यों व्यक्त करता है -"अपनी कच्ची-पक्की कोठडी याद आने पर काली के

[1] जयप्रकाश कर्दम – छप्पर, पृ : 8

मन में गुदगुदी-सी होने लगी और उसका कलेजा उमड़कर मुँह को आ गया।"[1] नाथी और बंसी के बीच खुजली को लेकर चर्चा होती है। नाथी से बंसा बताता है कि सिर फोड़ने पर सिरदर्द खत्म होता है उसी प्रकार चमड़ी उतर जाने से खुजली भी खत्म होगा " न रहे बांस न बजे बांसुरी।"[2] फोरमैन का मजदूरों के प्रति उपेक्षा भाव देखकर किरपू कहता है "उत्तम खेती, मध्यम बान, निखद चाकरी भीख निदान।"[3] इसप्रकार उपन्यासकार ने परंपरागत मुहावरों के माध्यम से अशिक्षा, शोषण, दुःख को और भी गंभीरता से प्रस्तुत किया है।

"मोरी के ईट" में लेखक ने कई मुहावरों का प्रयोग किया है जैसे "न ऊथों का लेना न माथों का देना", "पूत का मूत पिराग का पानी", 'सूत न कपास', "जुलाहे से लट्ठम-लट्ठा", आदि।

निष्कर्ष

समकालीन हिंदी दलित उपन्यास समाज के प्रति जिसने मनुष्य को मनुष्य जैसा जीवन जीने से वंचित किया और उसकी जिंदगी को अन्याय, अपमान, अत्याचार, बेबसी, गरीबी और गुलामी का पर्याय बना दिया, विद्रोह करती है। बाबा साहेब अंबेडकर की विचारधारा को अत्मासात कर दलित समाज में आत्मसम्मान,आत्मबल, और आत्मविश्वास पैदा करने का महत्वपूर्ण कार्य किया है। समकालीन हिंदी उपन्यास वेदना, निषेध, और

---

[1] जगदीशचंद्र - नरककुंड में वास, पृ : 44
[2] वही, पृ : 156
[3] वही , पृ : 168

विद्रोह का साहित्य ही नहीं, वह क्रांति का संदेश देने वाला और अंधकार से प्रकाश की ओर ले जाने वाली एक प्रखर कोशिश है। आज दलित क्रांति की दिशा में आगे बढ़ने के लिए आतुर है। वे वर्तमान की चुनौतियों को स्वीकार करते हुए अपने उज्जवल भविष्य की कल्पना करते हैं। इस प्रकार दलित उपन्यास एवं उपन्यासकार अंधकारमय अतीत के बोझ ढो रहे बहुसंख्यक समाज को भविष्य का सुन्दर सपना दिखाने का महत्वपूर्ण कार्य कर रहे हैं।

चौथा अध्याय

समकालीन हिंदी उपन्यासों में आदिवासी संस्कृति

समकालीन हिंदी उपन्यासों में आदिवासी संस्कृति

भारत में विभिन्न जाति-प्रजाति के लोग बसते हैं| उनमें आदिम जनजातियाँ अभी भी सभ्यता व सांस्कृतिक दृष्टि से पिछड़ी हुई हैं| गरीबी, अशिक्षा, अन्धविश्वास और वैचारिक जड़ता ने उन्हें पशुओं से भी बदतर बना दिया है| मुख्यधारा समाज इन्हें हिंस्र, बर्बर और असभ्य मानते हैं| आदिवासी, समाज का वह हिस्सा है जो अपने रहन-सहन, खान-पान, रीति-रिवाज़, भाषा-बोली आदि के कारण दूसरे वर्गों से अलग नज़र आता है| उनकी अपनी अलग पहचान है| भूमंडलीकरण, बाज़ारवाद और औद्योगीकरण के इस युग में उनकी पहचान एवं संस्कृति खतरे में हैं| आदिवासी विमर्श जो समकालीन साहित्यिक विमर्शों में मुख्य है, उनकी पहचान एवं अस्मिता को बनाये रखने के प्रश्न को खड़ा करते हुए इस कोशिश में उनका साथ देते हैं| आदिवासी जो आदिम युग से ही वन-जंगलों में निवास करते हैं, प्रकृति से स्वयं को जुड़ा हुआ महसूस करते हैं|किन्तु आज वे काफ़ी संघर्षपूर्ण स्थितियों से जीवन गुज़ार रहे हैं| बाज़ारवाद एवं वैश्वीकरण के दौर में आदिवासी जमात को जबरन उनकी ज़मीन से बेदखल करने की

साजिश हो रही हैं| उनको मूल स्थान से, मूल पहचान से अलग करने पर वे अपने को असुरक्षित महसूस करने लगे हैं|

आदिम युग से जंगलों में निवास करने के कारण उन्हें 'वनवासी' कहे जाते हैं| भारत में यह आदिवासी 'जनजाति' के रूप में जाना जाता है| आदिवासी विभिन्न राज्यों व देशों में मौजूद हैं और उनकी संस्कृति, रहन-सहन, परम्पराएं अलग-अलग है| इन सबको 'जनजाति' शब्द में समाहित किया गया है| जाति और जनजाति शब्द में अन्तर है| जाति का फलक विस्तृत है तो जनजाति का सीमित| जाति का फैलाव देश के प्रत्येक हिस्से में है, तो जनजाति देश के किसी ख़ास हिस्से में रहते हैं| उनके कई कुनबे हैं, जिनकी अपनी अलग-अलग संस्कृतियाँ हैं| ये जंगल प्रिय होने के कारण 'गिरिजन' नाम से भी अभिहित होते हैं| आदिवासी प्राकृतिक वातावरण में रहते हुए अपने सामाजिक एवं सांस्कृतिक परंपराओं को आज भी जीवित रखे हुए हैं| इन जनजातियों में भील, कोल, किरात, असुर, मुंडा, बैगा, नाग, खसिया, संताल, हो, मीणा आदि अनेक विभाग हैं| मध्यप्रदेश में सबसे अधिक जनजातियाँ निवास करती हैं| यहाँ के घने जंगल और पहाड़ी क्षेत्र इनको एकांत, शांत जीवन व्यतीत करने में सहायक होते हैं| वे कृषि,

पशुपालन एवं शिकार के आधार पर जीवनयापन करते हैं| भारतीय संविधान के अनुच्छेद 342 के खण्ड के अनुसार इन्हें ‘अनुसूचित जनजाति’ भी कहा जाता है| भारतीय संविधान में अनुसूचित जनजातियों की संख्या 212 बताई गई है| अनुसूचित जनजातियों से संबंधित संविधान में कई प्रावधान हैं, जिन्हें दो वर्गों – सुरक्षा और विकासात्मक में रखा गया है| इसका मुख्य उद्देश्य असभ्य, पिछड़ी एवं अशिक्षित जनजातियों के जीवन स्तर को उठाना है|

भारत के सर्वप्रथम पिछडे हुए इन लोगों के लिए ‘ट्राइब’ (जनजाति) शब्द का प्रयोग सर्वप्रथम ब्रिटिश जनगणना अधिकारियों व मानवशास्त्रियों द्वारा भारत में समूहों की गणना के उद्देश्य से किया गया| 18वीं सदी में ‘जाति ‘ एवं ‘जनजाति’ शब्दों को समानार्थक रूप में प्रयुक्त किया था, लेकिन बाद में कतिपय सामाजिक समूहों को हिन्दू जाति से पृथक करने के उद्देश्य से ‘जनजाति’ शब्द का प्रयोग किया गया| भारत सरकार के 1935 के एक्ट में पिछड़ी जनजातियों (बैकवर्ड ट्राइब्स) शब्द का प्रयोग किया गया| भारतीय संविधान में 1950 में थोड़े परिवर्तन के साथ अर्थात ‘पिछड़े’ के स्थान पर ‘अनुसूचित’ शब्द को रखा गया| ये ‘आदिवासी’, जनजाति, कबीली आबादी, वनवासी आदि शब्द अंग्रेज़ी के ‘नेटिव’, ‘एबोरीजनल’ और ‘ट्राइब’ शब्दों के

पर्याय हैं| भारतीय संविधान के अनुसार समय-समय पर जनजातियों के समूहों को अनुसूचित श्रेणी में लाया जा सकता है|

भारत में पाई जाने वाली जनजातियों को प्रजातीय सन्दर्भों में वर्गीकृत करने के अनेक प्रयास हुए हैं| प्रजाति से तात्पर्य समान शारीरिक लक्षणों से युक्त व्यक्तियों के समूह है जो दूसरे समूहों से पृथक हो| प्रजाति कहीं भी बिखरे पड़े क्यों न हो पर समान लक्षणों के कारण एक प्रजाति ही माना जाएगा| भारत के मुख्य प्रजातियाँ हैं – नीग्रिटो, आस्ट्रिक, द्रविड़ और मंगोलाइडस| नीग्रिटो में दक्षण भारत की [इरुला, पणियन, मुथुवन, कनिक्कर (केरल) और अंगामी नागा (असम)] जनजातियाँ आते हैं| आस्ट्रिक वर्ग की जनजातियाँ मध्यप्रदेश, बिहार और उड़ीसा में पाई जाती हैं| आस्ट्रिक प्रजाति की जनजातियों में संथाल, मुंडा, हो, जुआंग आदि आते हैं| द्रविड़ को मोहनजोदड़ो-हड़प्पा के मूल निवासी मानते हैं| गोंड को इसमें रखा गया है| कुछ लोग इस प्रजाति को स्थान नहीं देते हैं| मंगोलाइड्स का क्षेत्र भारत के पूर्वांचल है| असम, त्रिपुरा, मेघालय, मणिपुर, मिज़ोराम, नागालैंड, अरुणाचल आदि में ये जनजातियाँ हैं|

भारत की मुख्य जनजातियों में कोल, 'भील' और 'गोंड' आते हैं| इनके अनेक उपजातियां हैं| कोल समूह में हो, कोल और मुंडा जनजातियाँ आते हैं| इसके साथ संथाल, उड़ीसा की 'जुआंग', बिहार और उड़ीसा के 'खरिया', मध्यप्रदेश के 'बिरहोर', कोरकू', छोटा नागपुर की असुर, उरांव जो बिहार, बंगाल, उड़ीसा और मध्यप्रदेश के हैं, छत्तीसगढ़ के 'बैगा', कोरवा, आदि प्रमुख हैं| भील समूह में भील, मिलाला, मीणा आदि पाए जाते हैं जो पश्चिमी मध्यप्रदेश, महाराष्ट्र, गुजरात एवं राजस्थान में फैले हैं| गोंड सबसे प्राचीन तथा बड़ी जनजाति है| गोंड स्वयं को 'कोयतोर' कहते हैं| इनके उपभेदों में अगारिया, गैता, कोया, मुरिया, मुडिया, नागवंशी, अरख आदि आते हैं| इस प्रकार कई जनजातियां भारत में निवास करती थीं जो बाद में विलुप्त होकर किसी समकालीन प्रमुख जनजाति का भाग बन जाती| भारत में रहनेवाले सभी भारतीय विभिन्न कुलों और गोत्रों के समूह से ऊपर उठकर स्वयं को 'आर्य' संबोधित करने लगे| जनजातियों को विदेशियों तथा भारतीय ब्राह्मणों द्वारा उनकी प्रथकताओं व रीति-रिवाजों के कारण 'गैर-हिन्दू' माना| अंग्रेज़ों ने 'फूट डालो राज करो' की नीति हिन्दू-मुसलामानों के बीच करने के साथ हिन्दू एवं जनजातियों के बीच भी किया| उन्हें वे

स्वतंत्रता संग्राम से दूर रखा| इसके साथ वेदेशी पादरियों ने धर्मपरिवर्तन का कार्य भी किया| सभी जनजातीय क्षेत्रों में अंग्रेज़ों के खिलाफ़ प्रतिक्रियाएं हुईं|

आदिवासी शोषण

स्वतंत्रता पूर्व भारत में आदिवासियों की दशा अत्यंत शोचनीय थी| आदिवासी इलाकों में बाहरी लोगों और औपनिवेशिक राज की घुसपैठ ने इनकी सामाजिक व्यवस्था को बदल दिया| आर्यों के समय से ही ये निरंतर शोषणों के शिकार होते आ रहे थे| मुगलों के समय में कई तरह के आक्रमणों व अत्याचारों के शिकार हुए| मध्य भारत के उरांव, मुंडा, भील, मीणा आदि इसके शिकर हुए| उनकी ज़मीन-जायदाद हड़पने के साथ धर्मपरिवर्तन भी मुगलों का लक्ष्य था| बाद में अंग्रेज़ों से भी संघर्ष करना पड़ा| 1855 के संथाल विद्रोह इसमें मुख्य है| औपनिवेशिक ताकतों ने जंगलों से उनके संबंध को तोड़ दिया| इसके साथ धीरे-धीरे विभिन्न क्षेत्रों के आदिवासियों को अपराधी घोषित करके वनों पर आधारित सुख-सुविधाओं को वापस ले लिया गया| वनों को ब्रिटिश हुकूमत की संपत्ति घोषित करते हुए वहाँ वन अधिकारी को नियुक्त किए गए| इन अधिकारियों के अत्याचारों ने आदिवासियों का जीना दूभर कर दिया| इन अधिकारियों के खिलाफ वे

हथियार उठाकर खड़े हो गए| उन्होंने मातृभूमि के लिए निरंतर संघर्ष किया| स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद ही आदिवासियों का समग्र चित्र हमें मिलता है| संविधान लागू होने पर इनको भी आरक्षण दिया| भारत में 350 जनजातियाँ हैं| इनमें 'गोंड' जनजाति काफ़ी पुरानी व बड़ी है| इसके बाद संथाल, भील, मीणा, मुंडा, उरांव आदि आते हैं|

आदिवासियों के लिए प्रकृति माँ है, आजीविका का साधन है| सदियों से प्रकृति और आदिवासी के बीच पारस्परिक संबंध रहा है| आधुनिक समाज प्रकृति को लाभ की वास्तु मानकर उसका निरंतर शोषण कर रहे हैं| आदिवासियों का वन के उपयोग का तरीका शहरी मानव से भिन्न है| आदिवासी अपनी ज़रूरत के अनुसार वन से जितना लेते हैं, बदले में उसे कुछ देते भी हैं| इसी सौहार्द भावना से वे जंगल को पालते आ रहे हैं| वन संरक्षण में कोई भी इनका मुकाबला नहीं कर सकते| वन उनके सामाजिक धार्मिक एवं आर्थिक आधार है| उनके खाद्य पदार्थ वन से प्राप्त हैं| वे बीमारियों का इलाज जंगली जड़ी-बूटियों से करते हैं|

बाज़ारवाद के इस युग में 'यूज़ एंड थ्रो' संस्कृति आ गई| सबको मुनाफ़ा कमाने के साधन के रूप में देखने वाली अपसंस्कृति जन्म लिया| इस उपभोक्तावादी मानसिकता ने प्रकृति तक को नहीं छोड़ा| विदेशी बहुराष्ट्रीय कंपनियाँ अल्पकालीन मुनाफ़े के लिए प्रकृति को खदेड़ रही हैं| सरकार को प्रकृति की हरियाली एवं वहाँ के जनजातीय संस्कृति से ज्यादा कोर्पोरेट के मुनाफ़े से तालूक रखती है| इस प्रकार आदिवादी क्षेत्रों का विकास एक अनबूझ पहेली हैं| सरकार जब इस क्षेत्र के विकास की बात करेगा तब पहले नक्सलवादियों, माओवादियों की सफाया करने की बात करने लगते हैं| उनके अनुसार इन लोगों की वजह से सरकार विकास नहीं कर पा रही है| इस प्रकार स्थिति यों हो गई कि विकास का मतलब नक्सलवाद का सफाया हो गया| आज कहीं भी विरोध की आवाज़ उठती है तो उसे माओवादी घोषित करके प्रतिरोध को कुचलने की साजिश हो रही है|

इस अध्याय में संजीव के "धार", "सावधान! नीचे आग है" और "पाँव तले की दूब"; हरिराम मीणा का "धूणी तपे तीर"; विकास कुमार झा का "मैकलुस्कीगंज"; रणेंद्र का "ग्लोबल गाँव के देवता"; और मनमोहन पाठक का "गगन घटा घहरानी" उपन्यासों के आधार पर आदिवासियों की आर्थिक,

राजनैतिक, शैक्षणिक शोषणों तथा अन्य समस्याओं और उनकी सांस्कृतिक पहलुओं पर आगे चर्चा करेंगे|

आर्थिक शोषण

भारत में 1991 के बाद से आरंभ हुए आर्थिक सुधार, उदारीकरण, निजीकरण एवं बाज़ार केंद्रित व्यवस्था के युग में सभी क्षेत्रों में तेज़ी से परिवर्तन आ रहे हैं| किंतु उत्पादक या उपभोक्ता दोनों रूपों में बाज़ार को प्रभवित करने की क्षमता न रखनेवाले आदिवासी आज भी गरीब है| आज़ादी के 60 वर्षों के बाद भी उनका आर्थिक स्तर अपने उपेक्षित स्तर को इसलिए प्राप्त नहीं किया कि वे अंधविश्वास, रूढ़िवादिता, अशिक्षा, और कमज़ोर स्वास्थ्य के बीच जीवन यापन करते हैं|उनके निवास क्षेत्रों में सूदखोर, व्यापारी और ठेकेदारों के पहुँचने से आर्थिक शोषण बढ़ गया है| वे कम कीमत देकर उनकी ज़मीन खरीदे गए| इस प्रकार वे आर्थिक दृष्टि से कंकाल हो गए| यही नहीं बाज़ारवाद ने उनके जंगल को तहस-नहस करने का कार्य भी शुरू किया है जो उन्हें और भी अभावग्रस्त बना दिए| उनके उपर हो रहे आर्थिक शोषणों का चित्रण उपन्यासों में हुआ है|

“मैकलुस्कीगंज” में बिहार के गंज गाँव के आदिवासियों की गरीबी की ओर लेखक ने इशारा किया है – “कई बार ऐसी नौबत भी आती है कि साल

के आधे समय तक किसी तरह अनाज चल पाता है, पर उसके बाद से चार छः महीने भूख से जूझने और मरने की नौबत आ ही जाती हैं इन सबकी| पत्तों और कई जंगली कंदों को उबाल कर खाते रहते हैं फिर ये|"[1] खेती करने के लिए ज़मीन न मिलने पर और खेती के लिए सिंचाई के साधन प्राप्त न होने पर उन्हें भारी कष्टों से जूझना पड़ता है| कभी-कभी मजदूरी के लिए कोयला खदान या कारखानों में जाना पड़ता है| तेज धूप में घंटों काम करने पर भी कम वेतन दिया जाता है| उसी प्रकार साहूकारों से कर्ज लेने पर वे कर्ज चुकाने तक इन लोगों को तंग करते रहते हैं|

हरिराम मीणा ने "धूणी तपे तीर" में अंग्रेज़ों द्वारा बनाए वननीति के कारण और बेगार प्रथा और अन्य कारणों से आदिवासियों पर हो रहे आर्थिक संकट एवं गरीबी का चित्रण किया है| पहले वनोपज पर इनका हक़ था जिससे वे आजीविका चलाते थे| आज इनसे पुश्तैनी हक़ छीन लिया है| वनोवज लेने के लिए वनपालकों की मंजूरी चाहिए| इसके साथ बेगार प्रथा, अकाल और महामारी आदि भी इनकी जिन्दगी को नारकीय बना दिया है| वे धीरे-धीरे चोरी-डकैती तक करने लगते हैं| कुरिया इन शोषणों पर बोलता है

[1] विकास कुमार झा - मैकलुस्कीगंज, पृ 210

– "घोर अकाल पड़ा| आदमियों के लिए अन्न का दाना नहीं है| मवेशियों के लिए चारा पैदा नहीं हुआ| जंगलात के कंद-मूल-फल और बरट जैसे घास के दानों पर हमारा पुश्तैनी हक़ था जिसे राज ने छीन लिया| अब तो हमें इन चीज़ों के लिए भी राज के आदमियों से मंजूरी लेनी पड़ती है और ऊपर से पैसा देना पड़ता है| सैकड़ों बरसों से हम राह-वसूली करते आये| यह कोई चौथ-वसूली नहीं थी, बल्कि हमारे इलाके से गुजरने वालों को सही-सलामत निकालने के एवज में हमारा पुश्तैनी हक़ था| उस प्रथा पर राज ने कड़ी पाबंदी लगा दी|"[1] भारत के राजाओं व अंग्रेज़ों ने मिलकर इनका शोषण करते आ रहे थे| वे बंगार प्रथा को प्रोत्साहित भी किया| लेकिन आदिवासी बंगार प्रथा का विरोध करते हैं तो उन पर कठोर नियम थोप देते हैं| वे इनसे बंगार करने के लिए मजबूर करते हैं|

आदिवासी सरकार वन विभाग एवं बहुराष्ट्रीय कंपनी के मालिकों व उद्योगपतियों के कई तरह के शोषण के शिकार हैं| उन्हें जंगल में घुसने से मना है| ये लोग भोजन एवं रोज़गार के लिए जंगल पर निर्भर है| वन विभाग के पढ़े-लिखे अफसर जंगलों पर इनकी निर्भरता स्वीकारने से कतराते

---

[1] हरिराम मीणा - धूणी तपे तीर , पृ : 117

हैं| इन आदिवासियों के पास खेतीबाड़ी करने के लिए पर्याप्त ज़मीन नहीं है| "ग्लोबल गाँव के देवता" में रणेंद्र ने आदिवासियों की आर्थिक तंगी एवं गरीबी की ओर इशारा किया है| लेखक बताते हैं कि उस इलाके में खेतीबाड़ी करनेवाले सिर्फ दो-चार परिवार ही है| वे बताते हैं – "जिस घर में मजूरी खटने वाले हाथ रहते वे तो खान-खदान में खटकर पेट पाल लेते, किंतु जिन घरों में खटने लायक समांग नहीं होता उस घर का पेट तो जंगल ही पालता| महुआ, कटहल, कई तरह के कंद और साग, सब पेट भरने के काम आते|"[1] इस प्रकार वे कुपोषण के शिकार होते हैं| उनके बच्चे जल्दी कमज़ोर होते हैं| डाक्टर ने इसकी ओर इशारा किया है – "दलहन के नाम पर सरगुज्जा के साथ थोड़ी बहुत उड़द होती थी, जिसकी भतुआ या पके खीरे के साथ बड़ियाँ सुखाकर रख ली जातीं| मर-मेहमान के आने पर भात और बड़ी की रसदार सब्जी बनती| झोर-भात| अन्य दिनों तो सागों के सहारे घट्टा या भात से पेट भरा जाता| केवल तीन-चार दिन पर लगनेवाले हाटों से ही थोडा बहुत मांस या कभी-कभी नदी-झरना से पकड़ी गई मछली ही एकमात्र प्रोटीन का

---

[1] रणेंद - ग्लोबल गाँव के देवता , पृ : 24

आधार थी|"[1] इन आदिवासियों के घरों में पर्व-त्योहार के अवसर पर ही भात-दाल सब्जी बनाते हैं| सरकार द्वारा इनको रेशन, सब्जी या अन्य खाद्य चीज़ें कम पैसे पर देने की योजना बनाई है| लेकिन यह इन आदिवासियों तक पहुँचते नहीं| भौरापाट के सरकारी स्कूल में मेस में आदिवासी लडकियों के लिए दाल, सब्जी आदि तो नहीं देते| वहाँ हर साल मेस की खरीदारी के लिए मारामारी होती है| वहाँ के अध्यापक तक इनकी स्वास्थ्य का ख्याल नहीं रखते| पूछनेवालों के लिए उनका जवाब है – "इन मकई के घट्टा खाने वालों को यहाँ भात-दाल मिल जाता है, वही बहुत है|"[2] यह आदिवासियों के प्रति सभ्य समाज की निष्क्रियता की ओर इशारा करता है| सरकार योजनाएं तो बनाती है पर यह ध्यान नहीं रखते कि यह सब उनको मिलता है कि नहीं|

"पाँव तले की दूब" में सुदीप अपने दोस्त पत्रकार समीर को आदिवासियों की गरीबी दिखाता है| वे इतना गरीब थे कि कपड़ो के नाम पर पुट्ठे तक खुले हुए चिथड़े का कच्छा पहने हुए थे और औरतें भी कम चिथड़ों में अपने शरीर को ढंक दिया है| उनके बच्चे कंगालों जैसे हैं| उनकी ज़मीन-खेती महाजन लोगों द्वारा हडप लिया गया है| इसलिए आजीविका

[1] रणेंद - ग्लोबल गाँव के देवता , पृ: 66
[2] वही - पृ : 20

चलाने के लिए अन्न नहीं है| खेत में जितने अन्न उगाये उस पर इनका कोई हक़ नहीं| ‘कालीचरण किस्कू’ नामक आदिवासी युवक के दो बच्चों का कुपोषण से बिगडती स्वास्थ्य का चित्रण किया गया है – “कुपोषण और रोग की मारी छायाएँ और उन पर चिपकी फटी-फटी उजली आँखें| अगर रात में कोई देखे तो निश्चय ही डर जाए|”[1] यहाँ आदिवासियों की गरीबी एवं अभाव से कंगाल होती शरीर का भयावह चित्रण लेखक ने खींचा है|

संजीव के “धार” में महेंदर बाबू, सीताराम पंडित और अन्य ठेकेदारों-ज़मीनदारों द्वारा आदिवासियों के शोषण का चित्रण किया गया है| वे इन संथालों को कुत्ता या गुलाम समझते हैं| वे कम वेतन पर काम करवाते हैं| मैना, चौधरी साहब को पैसा देकर ज़मीन खरीदकर कोयला काटने लगती है तो महेंद्र बाबू आकर उसे भी देने की धमकी देता है| जब वह देने के लिए तैयार नहीं होती है तो मंगर को पुलिस ले जाकर मारते हैं और उससे हज़ार रूपया छीन लेता है| इसके अलावा आदिवासियों द्वारा जनखदान शुरू करने पर शोषक वर्ग उनके पास जाकर भी बीस हज़ार रूपया मांगते हैं| सैंतालों की मुख्य पेशा कृषि एवं पशुपालन है| कटनी के बाद नवंबर-दिसंबर महीने

[1] संजीव - पाँव तले की दूब , पृ : 77

में इन्हें पेट पालने के लिए रात-भर अवैध कोयला खदान में काम करने पड़ते हैं| कड़ी मेहनत करने पर दिन में सभी सैंताल स्त्री-पुरुष ऊंघा या सोया हुआ ही दिखाई देते हैं| शोषक वर्ग इनकी गरीबी एवं आर्थिक तंगी का फायदा उठाकर इन्हें लूटने लगते हैं|

"सावधान! नीचे आग है" में बिहार के कोयलांचल के ठेकेदारों, मालिकों एवं दलालों द्वारा शराब देकर शोषण करने का ज़िक्र है| वे दिन रात मेहनत करवाकर दारु और तुच्छ पैसा देता है| वे इन्हें धोखा देकर सूद में पैसा देता है और कर्ज जल्दी निकालने की धमकी देता है| 'रायपुरिया' नामक मज़दूर बताता है – "बुझारथ सिंह के ठीका पे सात दिन काम किया| तीस रूपैया दिया और बीस बाकी| कुत्ता का माफिक दो महीने पीछे-पीछे घूमा तो बोला – पैसा नहीं है, चाहो तो .... दारु पी लो|"[1] उन्हें कब मजदूरी मिलता हैं तो ये लोग आकर इनसे कर्ज के नाम पर भारी रकम छीन लेते हैं| इसमें 'बबन' नामक मज़दूर जो शादी, माँ के क्रियाकर्म और अन्य छोटी मोटी ज़रूरतों के लिए कर्ज लिया था| अशिक्षित होने के कारण उसे हिसाब करना आता नहीं| एक दिन जब उसे अट्टाइस हज़ार नौ सौ अडतीस

[1] संजीव - सावधान नीचे आग है , पृ: 16

रुपये मिलता है तो यह खबर सुनकर अनूपसिंह, तिवारी, बुझारथ सिंह के भाई आदि आकर इक्कीस हजार से ज्यादा पैसे छीन लेते हैं| इनके डर से सभी मजदूरों को चुपचाप तमाशा देखना पड़ता है| जन कोयला खदान में दुर्घटना होती है तब खदान मालिक इनको मुआवज़ा तक नहीं देते| इसमें 26 दिसम्बर को सुरंग में हुई एक दुर्घटना का वर्णन है| सभी मज़दूर सुरंग में भूख, प्यास, आदि से त्रस्त होकर मर जाते हैं| मरे हुए लोगों की नकली लिस्ट बनाकर असली हकदारों को उसमें से निकालते हैं| मुआवजा मांगने के लिए जब हेम्ब्रम की पत्नी आती है जो एक क्लर्क कहता है – “पहले ही कहा न, हेम्ब्रम वाज़ नाट ऑन ड्यूटी| सर्च हिम आउटसाइड|”[1] इसप्रकार खदान में अपनी कुरबानी देने वाला हेम्ब्रम सरकार और अधिकारियों के लिस्ट में नहीं होता है|

“गगन घटा घहरानी” में ज़मीनदार लोग अशिक्षित गरीब आदिवासियों को क़र्ज़ में फँसाकर जीवन भर शोषण करते रहते हैं| यहाँ ‘जागो सेवकिया’ अपने ससुर के दाह संस्कार के लिए ज़मीनदार से 60 रूपए और दो मन अनाज क़र्ज़ में लेता है| जब यह क़र्ज़ बढ़ जाता है तो उसे गुलाम बनाकर अपने घर ले जाता है| वहाँ उसे दिन-रात खेत में काम करना पड़ता

[1] संजीव - सावधान नीचे आग है , पृ: 208

है| काम के बदले उसे मजदूरी नहीं देता बल्कि ऐसे अनाज देता है जो बैलों को खिलाता है| इस प्रकार काम करवाकर वे मुनाफा कमाते रहते हैं| आदिवासियों के हाट में लोग अपनी-अपनी चीज़ें बेचकर घर के लिए ज़रूरी चीजें खरीदते हैं| हाट में व्यापारी एवं ग्राहक दोनों गरीब होते हैं| वहाँ पुलिस आकर उनसे पैसा वसूलते हैं, चीज़ें खरीदकर पैसा नहीं देते हैं| अगर कोई सवाल करेगा तो उसे बुरी तरह पीटता है| इस प्रकार वे दिन-रात गुलामों की तरह काम करने पर भी गरीब बने रहने के लिए अभिशप्त हैं| ये लोग भूख मिटाने के लिए कमाते हैं, जमींदार उनकी इस कमाई पर भी कब्ज़ा करते हैं|

श्रम शोषण

आदिवासियों को बंधुआ मज़दूर बनाकर उनके श्रम का लगातार शोषण करते रहते हैं| सवर्ण जमींदार, महाजन, ठेकेदार आदि इनमें संरक्षण व पराश्रय की प्रवृत्ति पैदा करके उन्हें बंधुआ मज़दूर या सेवकिया बनने के लिए विवश करते हैं| इस प्रथा में न कोई निश्चित वेतन होता है और न ही समय सीमा| वे जब तक चाहे उसे सेवकिया बनाकर रख सकते हैं| ऋण आदि में फंसकर ये लोग आजीवन उनके गुलाम बन जाते हैं| इन लोगों को भरपेट भोजन एवं

उन्मुक्त जीवन का परिवेश नहीं मिलता| बड़े-बड़े कारखाने आदि आने के बाद भी इनका श्रम शोषण कम नहीं हुआ है| ये अशिक्षित होने के कारण कारखाने मालिकों व ठेकेदारों के बहकावे में आ जाते हैं| वे इन्हें दारु देकर चुप कराते हैं| इस प्रकार उनका आत्मविश्वास, मनोबल एवं क्षमता को दबाते हैं|

आदिवासी अशिक्षित है| इसलिए बड़े-बड़े अफसर, ठेकेदार आदि उसको कठपुतली बनाकर नचाते हैं| वे इन्हें बहला-फुसलाकर इनकी ज़मीन छीनने के साथ कम वेतन पर काम भी करवाते हैं| संजीव के 'धार' के महेंदर नामक शोषक के खदानों में बहुत सारे आदिवासी काम करते हैं| लेकिन वह मजदूरों की जान की परवाह नहीं करता| सुरक्षा सामग्रियों की व्यवस्था भी नहीं है| जब सुरक्षा अधिकारी जाँच करने आता है तो उसे पैसा वगैरह देकर चुप कराता है| खदान का छत पुराना है जो कभी भी धँस सकती है, लालटेन और ढिबरी लेकर काम करने पर गैस एक्सप्लोजन होने की संभावना है| इसके साथ वेंटिलेशन क्राइसिस भी है| ये सब सुनने पर महेद्र उस सुरक्षा अधिकारी से कहता है – "चींटियाँ दब जाए या मर जाए, दैट्स नाट माई

हेडेक, हम कैसे सेफली ज्यादा से उगाह सके –हमें यह देखना है,हमने पैसा फंसाया है साहब, पुलिस और आप लोगों को देते – दिलाते इतना पैसा तो बचना चाहिए कि हम वर्कर्स का पेमेंट दे सके, दो चार पैसे अपने बाल-बच्चों के लिए भी रख सके|"[1] उनका मजदूरों के प्रति रवैया एकदम अमानवीय है| 'टेंगर' नामक आदिवासी अपना ज़मीन महेंदर बाबू को दान में दिया ताकि गांववालों को रोजगार मिले| टेंगर उस कारखाने की पहरेदारी भी करता है| वह इसके लिए अपनी बेटी 'मैना' तक को दुश्मन मान लेता है| यह सब महेंदर का षडयंत्र है| वे इन आदिवासियों के श्रम को अपनी स्वार्थ पूर्ति के लिए इस्तेमाल करते हैं| टेंगर एक वफादार कुत्ते की तरह उनकी सेवा करता है| अंत में इस कारखाने के तेज़ाब में गिरकर मछली की तरह तला जाता है| महेंदर बाबू ने उसकी जिंदगी को पूरी तरह चूस लिया था अंत में गांववालों से कहता है – "जो नुकसान हुआ हमारा हुआ लेकिन अब सबका भला इसी में है कि लाश को चुपचाप फूँक दिया जाए| कोई नामोनिशान न रह जाए टेंगर का| कान खोलकर सुन लो, कोई पूछने भी आए तो कहना, हम नहीं जानते, न वो मैना का कोई था, न बांसगडा का..............| मुँह सी लो और फूँक दो

[1] संजीव - धार , पृ : 100

नमकहराम को|"[1] इस प्रकार एक ही पल में टेंगर धोखेबाज़ साबित हो जाता है| गाँव में बेरोज़गारी भी बढ़ रही थी| कारखाने बनने से कम लोगों को ही नौकरी मिला है| इस पर मैना ने भी प्रकाश डाला है – "दू-चार को काम मिला है हज़ारों बेकार, हमरा खातिर परमामिंट काम कई नई| चाहे ठीकादारी में मांस नुचबाओ, चाहे चोरी-छुपे कोइला काट के पुलिस और गुण्डा का पाकिट भरो,चाहे चोरी करो| कुल मिला के कुत्ता का माफिक ई धूरा से ऊ धूरा, ई नाली से ऊ नाली, ई दरवज्जा से ऊ दरवज्जा का गन्दा चाटो, आपस में एक दूसरे से लड़ो लड़कर मरो|"[2] इन कारखानों की वजह से वर्षो से वे खेती-बाड़ी नहीं कर पा रहे थे| सरकार भी काम नहीं दे रहा है| जब ये लोग मेहनत करके कोयला काटता है तो पुलिस या मेहंदर बाबू उनसे कोयला छीन लेता है या उन्हें मुआवजा देना पड़ता है| मंगर एवं मैना से इन लोगों ने हज़ार रूपए हड़प लिए थे| इस प्रकार जनखदान में दस दिन की मजदूरी करने के बाद पुलिस और अन्य कोयला खदान के लोग आकर बीज़ हज़ार रुपया माँगता है| ये लोग दस दिन तक बिना मजदूरी और भोजन के खुदाई करके कोयला निकाला था| जब इससे लोगों को हरा नहीं पाए तो वे

[1] संजीव - धार , पृ : 79

[2] वही - पृ : 136

इस जनखदान की सुरक्षा की जाँच करने के लिए अफसरों को भेजते हैं| वे गलत रिपोर्ट लिखके जन खदान को बंद करवाने आए थे| लेकिन वहाँ सब ठीक-ठाक था तो उन्हें निराश होकर जाना पड़ा|

ये शोषक वर्ग पीढ़ियों से इनका श्रम शोषण करते आ रहे हैं| अविनाश शर्मा जो एक आन्दोलाकर्ता है, उसके पिता बुधन बेदिया महेंदर बाबू के पिता का गुलाम था| वे संथालों को पैसा और धान ऋण में देकर भारी पैसा वसूलते थे| साल भर बाद एक का डेढ़ वसूलते थे| ये लोग खेत में दिन-रात मेहनत करके अनाज बटोरकर खलिहान में ले आते हैं| तब ये जमींदार उनका पूरा धान वहाँ से उठा कर ले जाते हैं| पूरे संथाल परिवार के रोने-बिलखने पर भी उनकी हृदय पिघलता नहीं| वे इस प्रकार मज़दूर आदिवासियों को पैसा, रोज़गार, दारु अदि की लालच में फंसाते हैं| महेंदर बाबु, सेठ डोकनिया, बबनसिहं आदि के नेतृत्व में जन खदान को लूटने तथा उनके संगठन शक्ति को नष्ट करने के लिए 'संजय सेना' का गठन करते हैं| उनके पास गुंडे हैं और खतरनाक हथियार एवं बम भी है| उनका उद्देश्य हिंसा एवं आतंक से आदिवासियों को डराकार उन्हें परास्त करना है|

"सावधान! नीचे आग है" में बिहार के झरिया कोयलांचल के आदिवासी मजदूरों की दयनीय स्थिति का बखान हुआ है| वहाँ मज़दूर ठेकेदारों व खदान मालिकों का शोषण सहकर चींटो की तरह मेहनत करते हैं| वहाँ कई सालों से काम करने वाले मजदूरों की तनख्वाह बढ़ाते नहीं, इनको प्रमोशन नहीं देते और बार-बार ब्लास्टिंग होने वाली खदानों में सुरक्षा सामग्रियों के अभाव में काम करने पड़ते हैं| शोषक वर्ग इनकी मेहनत और जान की कोई परवाह नहीं करते| चंदनपुर खदान के 'पार्थ बोस' नामक मज़दूर को पन्द्रह साल से काम करने पर भी प्रमोशन नहीं मिलता| तब 'मुकुल' नामक सर्वेयर कहता है – "इस देश का दुर्भाग्य है कि राईट मैन इज़ आन द राईट प्लेस|"[1] जो मज़दूर ठेकेदारों व मालिकों की चमचागिरी करेगा उसे वे सब कुछ देता है| 'जवाहर' ऐसा ही एक दलाल था| खदान में ब्लास्टिंग के दौरान, आग लगने पर, या सुरंग में पड़कर अक्सर कोई-न-कोई मर जाता है या बुरी तरह घायल होता है| पर वे इनको मुआवज़ा नहीं देते| जो लोग इन घायलों की सेवा करेगा उनको नौकरी से भी निकाल देते हैं| खदान में एक बार 'इतवारी मियाँ' नामक मज़दूर की कनपटी में कोयले का टुकड़ा लगने पर मर जाता है| लेकिन खदान मालिक मजदूरों को छुट्टी नहीं

---

[1] [1] संजीव - सावधान नीचे आग है , पृ: 65

देता| 'रामजी तिवारी' नामक ठेकेदार इस दुर्घटना के संबंध में बताता है – "सब उपर – टाइम सिंगल हो जाएगा| ....जाने वाला चला गया, लौट के तो आएगा नहीं| काम बंद कर देना बेवकूफी है|"[1] यह तिवारी मजदूरों से कड़ी मेहनत करवाकर आधा पैसे ही देता है| जो मज़दूर इन शोषणों के खिलाफ आवाज़ उठाएगा उसे या तो नौकरी से निकाल देगा, या तनख्वाह काट देगा|

"धूणी तपे तीर" में लेखक ने बेगार प्रथा का चित्रण किया है| बेगार प्रथा का जो शिकार का शौकीन है, सुरक्षित शिकार के लिए जंगल में शिकारगाह एवं मार्चों का निर्माण करने का निर्णय लेता है| इसके लिए प्रत्येक परिवार से अच्छी मेहनत कर सकने वाले एक आदमी को चुनते हैं| आदिवासियों के छोटे-छोटे खेतों में जौ, मटर व अलसी की फसल की कटाई का समय भी था| लेकिन आदिवासियों को राज का हुकुम मानना पड़ता है| इनके साथ हुए शोषण को यों चित्रित किया है – "गेंती, फावड़ों व झूमरों की सहायता से आदिवासी मजदूरों ने पत्थर उखाड़ने, तोड़ने व नियत स्थान तक ले जाने का काम आरंभ कर दिया| दिन भर यह काम चला| जो कोई आदमी

---

[1] संजीव - सावधान नीचे आग है , पृ: 83

थोडा सुस्ताता तो ठाकुर के आदमी उसे डाट-डपट कर पुनः काम पर लगा देते| दोपहर में खाने के नाम पर आदिवासी जो सूखी रोटी व कांदे या मिरच अपने साथ बाँध कर लाए थे, वही उन्होंने खाया| ठाकुर व उसके आदमियों की रसोई अलग से पकी थी जिसमें खरगोश व तीतर का शिकार शामिल था|"[1] बेगार प्रथा के साथ राजाओं द्वारा आदिवासियों को उनके श्रम का फल नहीं देता है| पालपा गाँव के ठाकुर 'पृथ्वीसिंह' आदिवासियों से उनके खेत के फसल न काटने का आदेश देता है| आदिवासियों ने कड़ी मेहनत करके,जंगल को साफ़ करके खेती की है| इन्होंने दिन-रात मेहनत करके फसल उगाई है| लेकिन राजा इनके दुःख-दर्द को अनदेखा करते हैं| ठाकुर के साथ पटेल समुदाय के जस्सूभाई पटेल इसका फायदा उठाकर फसल पर कब्ज़ा करते हैं| इस प्रकार आदिवासियों की मेहनत को ये लोग नकारते हैं| जोखू नामक मज़दूर इसके बारे में कहता है – "जब-जब कोई मज़दूर मनिजमेंट की बात नहीं मानता उसको धमकी दी जाती है – ज्यादा बोले तो काल-कूप में ठेल देंगे, सड़ोगे, बिलबिला-बिलबिला कर|"[2] इस प्रकार वे गुलामों से भी बदत्तर स्थिति से गुज़रते हैं|

---

[1] हरिराम मीणा - धूणी तपे तीर , पृ : 65

[2] [2] संजीव - सावधान नीचे आग है , पृ: 84

खदान में होने वाली दुर्धटनाओं से खदान मालिक, राजनीतिज्ञ, सरकार आदि मुँह मोड़ते हैं| ये घायल मज़दूर ज़िन्दगी भर इस दुर्घटना का शिकार बनकर अपाहिज होकर ज़िन्दगी गुज़ारने में मज़बूर होता है| ‘साहू’ नामक मज़दूर ठेकेदारों के खुशामद करनेवाला था| जब खदान के छत से कोयले का बड़ा टुकड़ा गिरकर घायल होता है तो उसे मुआवजा तक नहीं देता है| ‘जगन’ नामक मज़दूर भी सालों पहले की दुर्घटना में अपाहिज हो जाता है| मालिकों ने मुआवजा न दिया और वे यह अफवाह फैला दी की उसकी दुर्घटना दारु पीने से हुई है| इसमें 26 दिसंबर को हुई बड़ी दुर्घटना का चित्रण है| खदान में पानी के बहने के कारण कई आदिवासी मज़दूर सुरंग में फँस जाते हैं| उन्हें इक्कीस दिन तक भूख, प्यास, गर्मी, दुर्गंध सहकर रहना पड़ता है| अंत में सारे मज़दूर मर जाते हैं| खदान मालिकों, ठेकेदारों और सरकार अफसरों ने इनकी जान बचाने की कोशिश न करने के कारण कई परिवार उजड़ जाते हैं| इस दुर्घटना की गहराई के बारे में लेखक लिखते हैं – “सिर्फ एक ज़िन्दगी नहीं टूटती, उसके साथ-साथ सैकड़ों तन्तु टूटते हैं| यह सिर्फ एक दुर्घटना नहीं है, सरकारी सूत्रों के अनुसार साढ़े तीन सौ और गैरसरकारी सूत्र के अनुसार आठ से नौ सौ खनिकों की नहीं, यह पूरे एक देश

की दुर्घटना है- उसके तकनीकी अहं, सुरक्षा के दंभ और उसके प्रबंधन के गुरुर की टूटन है| एक अबोध गूंगी ही नहीं, सैकड़ों बेजुबान, एक नीर नहीं सैकड़ों नीरायें, एक बाप नहीं सैकड़ो बाप, एक वृद्धा माँ नहीं सैकड़ों के कंदन और आर्त्तनाद की शमशान-भूमि है चंदनपुर| एक ही आवाज हर राहत सामग्री पर बिलख रही है – मुझे कुछ नहीं चाहिए सिर्फ हमारा आदमी हमें लौटा दो|”[1] इस प्रकार इन खदान मज़दूरों को जो आजीवीका के लिए जी-तोड़ मेहनत करते हैं अंत में दुःख ही मिलते हैं|

“गगन घटा घहरानी” में दिन-रात ज़मींदारों के खेतों में मेहनत करनेवाले आदिवासी मर्द एवं औरतों का चित्रण किया है| वे अशिक्षित एवं अज्ञानी होने के कारण गाँव के ओझा, पंडित आदि की बातें जल्दी मान लेते हैं| यह जमींदार भी अच्छी तरह जानते हैं| इसलिए खेत में दिन-रात काम करवाने के लिए अंधविश्वास का सहारा लेते हैं| इसमें हीरामनी नामक आदिवासी लड़की की माँ और अन्य औरते ज़मीदार के खेत में रोपनी करने में व्यस्त हैं| क्योंकि जमुना पंडित का कहना है कल रोपने से धान तो फूटेगा लेकिन दाना नहीं भरेगा| इस लिए समय एवं थकान की परवाह किए बिना

[1] [1] संजीव - सावधान नीचे आग है , पृ: 202

वे मेहनत करती हैं| जमींदार वहाँ के मर्दों को क़र्ज़ में फंसाकर गुलाम बनाकर ले जाते हैं| वह कड़ी मेहनत करने पर भी इस कर्ज से मुक्त नहीं पाता है| जागो सेवकिया इसमें जमींदार के गुलाम बनकर जीनेवाला आदिवासी पात्र है| उसे सूर्योदय से पहले उठकर बैलों को लेकर मालिक के खेत में जाना है| भूखे पेट दोपहर तक काम करने पर एक पाँव सत्तू दे देता| सूर्यास्त तक उसे खेत में काम करना है| उसके बाद मालिक के कहने पर बैलों को आराम करने देता है लेकिन उस समय भी जागो को कर्मनिरत होना है| उसे एक पल के लिए भी आराम करने नहीं देता| जागो की तरह इसे जीवन चर्या बनाये हुए कई आदिवासी हैं| वे दो सेर मकई कच्ची और घटिया अनाज लेकर चुपचाप अपने घर चले जाने पर विविश हैं| मालिक के घर के थोड़ी दूरी पर मिट्टी की दीवार से घिरा बाँस और वनतुलसी की छजन और उसकी ही टाटी का दरवाज़ा है, वही है उसका घर| मालिक उसे अनाज देता है जिसे पकाकर उसे खाना है| यही अनाज मालिक बैलों के लिए भी देता है| यहाँ मालिक बैलों का जितना ध्यान रखता है उतना जागो की नहीं करते|

'लेरता' नामक गाँव के आदिवासियों का बंधुआ मज़दूर बन जाने की त्रासदी की ओर लेखक ने इशारा किया है| उस गाँव के जमींदार रायबहादुर,

ठेकेदार आदि इनकी खेती छीन लेते हैं| इस कारण वे नौकरी के लिए ईंट भट्टा, मालगोदाम, दूकान आदि पर मजदूरी करने लगते हैं| ऐसे काम करते-करते कई लोग बीमार भी पड जाते हैं| वहाँ भी इन्हें मजदूरी ठीक तरह से नहीं मिलता| 'सोनाराम' नामक आदिवासी आन्दोलनकर्ता कहता है – "छोटे-छोटे बच्चे ईंट ढोते-ढोते मर जाते हैं| जो बच गए वे भी गाँव छोड़-छोड़ कर सोनाहातू, डालटेनगंज जैसे चट्टी-शहर में बनिया के गोदाम -दूकान में अनाज फटक कर, झाड़ू-सफ़ाई कर के सांझ- रात तक लौटते हैं| रोज़-रोज़ काम भी कहाँ मिलता है? बात-बात पर डांट-फटककार, पैसे के बदले सडा-घुना अनाज|"[1] आदिवासियों की मुख्य समस्या भूख है| जब उसे सड़ी-गली ही सही, थोडा अनाज मिलेगा तो चुपचाप उसे स्वीकार करेगा|

"ग्लोबल गाँव के देवता" में लालचन दा के चाचा के अरहर के खेत को गोनूसिंह नामक जमींदार द्वारा हथियाने का चित्रण किया है| इसके लिए गोनू उसे मारता है| चाचा के समान कई गाँववाले अपनी ज़मीन पर दिन-रात मेहनत करते हैं और अंत में उनका धान कोई और काटकर ले जाता है| गाँव में शिंडाल्को माइनिंग कंपनी ने वहाँ आने के पहले गाँववालों को

[1] मनमोहन पाठक - गगन घटा घहरानी , पृ : 79

मज़दूरी देने का वादा किया था| लेकिन खदान बनने पर वे इनको काम नहीं देते| इनकी ज़मीन पर ही वे खदान बनवाये थे| अंत में असुर युवकों द्वारा विद्रोह करने तथा उससे खदान का काम बंद होने पर कंपनी कुछ युवकों को नौकरी देते हैं| लेकिन जिन लोगों को वहाँ नौकरी मिला उन्हें वे दूसरों के सामने हमेशा जलील करते थे| वे इनकी मेहनत का कोई इज्जत नहीं करते थे| इसी प्रकार "पाँव तले की दूब" में भी खेती पर किसानों का अधिकार न होने की बात कही गई है| उनसे जमींदार, महाजन आदि बीज बोने को मज़बूर करता है पर यह धान किसानों को नहीं मिलता| पूँजीवादी व्यवस्था, बिचौलियों की कुटिलताएं, अवैध खनन, माफिया गिरोहों का आतंक के साथ श्रमजीवियों के शोषण का यथार्थ अंकन इन उपन्यासों में हुआ है|

ज़मीन का शोषण

विकास के नाम पर आदिवासियों से ज़मीन छीनने की परंपरा लार्ड डलहौसी की 1855 के 'वन नीति' के साथ शुरू हुई थी| वन संपत्ति को राष्ट्रीय संपत्ति घोषित किया गया और रेल की पटरी बिछाने हेतु उनकी ज़मीन छीन ली गई| 1865 ई. के प्रथम वन कानून ने स्थानीय लोगों के

खुलेपन को कानून द्वारा प्रतिबंधित किया गया| 1878 ई. के दूसरे वन कानून ने जंगल में प्रवेश करने, पशुओं को चराने पर रोक लगाने के साथ जुर्माना भी वसूल किया| 1927 और 1955 के भारतीय वन अधिनियम ने इस कानून को और भी कड़ा कर दिया| बाज़ारवाद एवं नवउपनिवेशवाद के इस युग में भी वे इन औपनिवेशिक कानूनों का फल भुगत रहे हैं| बहुराष्ट्रीय कंपनियाँ उनके प्राकृतिक स्वच्छंद जीवन में दखल देकर उन्हें बंधुआ मज़दूर बना रहे हैं|

औद्योगीकरण, बाज़ारवाद एवं शहरीकरण ने आदिवासियों से उनकी ज़मीन छीन ली गई| "ग्लोबल गाँव के देवता" में शिंडाल्को बाक्साईट कंपनी द्वारा अवैध खनन और खदान मालिकों का असुरों की ज़मीन छीनना आदि को चित्रित किया है| सरकार भी इन खदान मालिकों के पक्ष में है| जब लेखक के नेतृत्व में अवैध खनन को लेकर दरख्वास्त कलक्टर को दिया तो कोई असर नहीं पड़ता है| शिंडाल्को कंपनी ने कलेक्टर की मजिस्ट्रेट कॉलोनी में सोडियम वेपर लाइटें सारे बिजली के खंभों पर लगवाई और पार्क के रख-रखाव, फूल-माली का खर्च भी उठाने को तैयार हुआ| इस प्रकार वे बड़े-बड़े लोगों को रिश्वत देकर, बहला-फुसलाकर इस शोषण को छिपाते हैं| इनके

अलावा गाँव के बड़े-बड़े जमींदार भी इनसे अपनी ज़मीन छीन लेते हैं| इसमें गोनू सिंह द्वारा आदिवासी ज़मीन को धीरे-धीरे अपने कब्ज़े में करने का चित्रण किया है| लालचन दा के चाचा पर गोनू द्वारा ज़मीन बेचने के लिए दबाव डाला गया| लेकिन उसने गोनू सिंह की बात नहीं मानी तो उसका सिर काटकर हत्या कर दी गई| पुलिस, सरकार एवं कानून तक उसके पैसों के आगे चुप हो जाते हैं| अपने ऊपर हो रहे इस अत्याचार को देखकर रुमझुम बताता है – “यह केवल एक लालचन दा के चाचा की हत्या का सवाल नहीं था और न किसी असुर पर पहली बार या आखिरी बार आक्रमण हुआ था| न यह पहली बार ज़मीन के टुकडे के लिए हत्या हुई थी| यह हज़ारों-हज़ार साल से चल रहे घोषित-अघोषित युद्ध की नवीनतम कड़ी मात्र था| …………वर्तमान अतीत में ढलता जा रहा था और अतीत की कल्लो-गारत वर्तमान में नज़रों के सामने नाच रही थी| वह क्या था जिसके कारण एक समुदाय बहुसंख्यक समुदाय के लिए ‘अन्य’ में तब्दील हो गया| हमसे अलग ‘अन्य’ एक शत्रु| चूँकि उसके जीवन-यापन का तरीका हमसे भिन्न था, इसलिए वह हत्या के योग्य, गालियाँ देने योग्य कैसे हो गया? आग की खोज, धातुओं की खोज, धातु पिघलने की कला कला किन्हीं को इतनी बुरी

क्यों लगी कि इस कारीगर जाति को बार-बार आक्रमणों में नष्ट होने और पीछे हटने के लिए मज़बूर होना पड़ा|"[1] वन विभाग भी अचानक सैंतीस आदिवासी गाँवों को जंगल से खाली करने का आदेश देता है ताकि वे उनकी ज़मीन हड़प ले सके|

"पाँव तले की दूब" में गाँव के महाजन लोग आदिवासियों की खेत को जबरदस्ती हड़प लेते हैं| वे सदियों से ऐसा करते आ रहे थे| उनके साथ व्यवस्था एवं सत्ता का पूरा तंत्र होने ने कारण लोग डरते थे| 'सुदीप्त' नामक आन्दोलनकर्ता अपने दोस्त 'समीर' को बताता है – "आदिवासी लोगों की दो कमज़ोर नजें हैं – अरण्यमुखी संस्कृति और उत्सवधर्मिता! अरण्यमुखी संस्कृति उन्हें सभ्यता के विकास से जुड़ने नहीं देती और उत्सवधर्मिता इन्हें कंगाल बनाती रहती है| हण्डिया या दारू ये पिएँगे ही और हर उत्सव को मस्त होकर मनाएंगे| पढ़ाई-लिखाई से दूर रहेंगे| दारु की लत और ज़रुरतमंदों को सूद पर पैसे और अनाज देकर इन आदिवासियों की ज़मीन कुछ चालाक लोगों ने हथिया ली| इसे यहाँ लोहना-प्रथा कहते है|"[2] सरकारी कर्मचारी, पुलिस, गुंडे और जमींदार- महाजन लोग इनका ज़मीन

---

[1] 1 रणेंद - ग्लोबल गाँव के देवता , पृ : 33

[2] 2रणेंद - ग्लोबल गाँव के देवता , पृ : 16

हड़पकर जबरन बीज बोते हैं| 'डोकरी' नामक गाँव में एन.टी.पी.सी. के लिए सरकार द्वारा आदिवासियों की ज़मीन का अधिग्रहण करने का भी ज़िक्र किया है|

संजीव के "धार" में बिहार के संथाल परगना में तेज़ाब कारखाने बनवाने के लिए आदिवासियों को बहला-फुसलाकर ज़मीन छीन लेने का ज़िक्र किया है| मैना के पिता टेंगर कारखाने के मालिक महेंदर बाबु को ज़मीन देता है और एक ही महीने में फैक्टरी लगता है|गाँववाले अशिक्षित होने के कारण इनके बहकावे में आते हैं और फैक्ट्री को अन्नपूरना माई समझते हैं| यही नहीं टेंगर की बेटी मैना बाप के खिलाफ लडती है तो कारखाने मालिक एवं भूमिहार सीताराम पंडित इस कारखाने की पहरेदारी टेंगर से करवाते हैं| "सावधान नीचे आग है" में भी आदिवासियों को ज़मीन, घर, नौकरी, पैसा आदि का लालच दिखाकर खदान मालिक एवं ठेकेदार ज़मीन छीन लेते हैं| इसके संबंध में झरिया कोयलांचल का काला माझी, वृन्दावन नामक आदिवासी से कहता है – "बोला नौकरी देगा, पानी देगा, स्कूल खोलेगा – ये कर देगा, वो कर देगा, सोना से मढ देगा|"[1] इस खदान के आने के बाद आदिवासियों की खेती-बाड़ी, घर सब उजड़ जाते हैं| अंग्रेज़ों के समय

[1] संजीव - सावधान नीचे आग है , पृ: 43

से ही यह खदान था| रामप्रसाद ओझा जो झरिया महाराज के पुरोहित था, उनसे दान मिले इस जमीन को अंग्रेज़ लोग हथिया लिया था और यह ज़मीन नौ सौ निन्यानब्बे वर्ष के लिए लीज़ में लेता है| इस प्रकार आज जो झूठा वादा एवं शोषण का सामना कर रहे हैं वह सदियों पहले ही आदिवासी झेलते आ रहे हैं|

"गगन घटा घहरानी" में वन विभाग एवं वन संरक्षक अफसरों द्वारा आदिवासियों पर कड़े नियम थोपकर जुर्माना वसूलने का चित्रण किया है| वे इनको जंगल में घुसने तथा वनसंपदाओं को न लेने की मनाही करके खुद लकड़ियाँ काटकर बाहर बेचते हैं और पैसा कमाते हैं| यही नहीं एकड़ों ज़मीन हथियाकर वहाँ पर बड़े-बड़े बंगले, बगीचे, कार्यालय आदि बनवाते हैं| - "सोनाहातू से ओस भर उत्तर पूरब से मोरंगा जंगल के टॉड (बिना खेती और वन की ऊँची ज़मीन) पर पीले-पीले पक्के मकानों की कतार खड़ी हुई है| एक ओर बड़े-बड़े बंगले पीले-सफ़ेद रंगों से लिपे पुते किसम-किसम के फूलों और दरख्तों से सुशोभित हैं| बीच में बड़ा सा ऑफिस और ऑफिस की दूसरी ओर वन विभाग का विशाल डाक बंगला है| ....एक बंगला जो ऑफिस के ठीक सामने है, एक गाँव के बराबर ज़मीन घेरे, वह है डी.एफ.ओ. साहब का

बंगला|"[1] ये लोग आदिवासियों को अपनी ज़मीन रेहन पर रखने के लिए मज़बूर करते हैं| गरीब आदिवासी शादी-ब्याह, बीमारी आदि की खर्च के लिए ज़मीन गिरवी रखते हैं| सादे कागज़ पर अंगूठा भी लगाते हैं| अनपढ़ आदिवासियों को धोखा देकर ये लोग ज़मीन अपने नाम करवाते हैं| चैतू और दामडू नामक दो आदिवासी युवकों ने अपनी शादी की खर्च के लिए ज़मीन जमींदार राय बहादुर को गिरवी रखा था| बाप में आजीविका के लिए इन्हें इधर -उधर भटकना पड़ते हैं|

विस्थापन

प्रकृति आदिवासियों की आत्मा है| वे प्रकृति की पूजा करते हैं| लेकिन उपभोगवादी मानसिकता से ग्रस्त मानव प्रकृति पर अत्याचार करके आदिवासियों को वहाँ से भगा देते हैं| विकास के नाम पर जंगलों का सफाया हो रहा है| आदिवासियों को खानाबदोश कर दिया है| विस्थापन एक बहुत बड़ी पारिस्थितिक समस्या है| विस्थापन से तात्पर्य है किसी को अपने मूल स्थान से दूसरी जगह में स्थापित करना| उपभोग संस्कृति के परिणाम स्वरूप हो रहे इस विस्थापन के मुख्य कारण हैं – उत्खनन, बाँध परियोजना

[1] मनमोहन पाठक - गगन घटा घहरानी , पृ : 32

और अन्य विकास की परियोजनाएँ, युद्ध आदि| प्रस्तुत उपन्यासों में विकास के नाम पर बनती परियोजनाओं व प्राजेक्टों से उजडती आदिवासी गाँवों का चित्रण हुआ है| बांध परियोजनाओं से भारत में लगभग दो करोड़ लोग प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से विस्थापित हुए हैं| सरकार इन लोगों की पुनस्थापना के लिए कुछ करते तक नहीं हैं| विस्थापन बड़े बांधो का एक अनिवार्य नतीजा है| 1951 और 1990 के समयावधि में लगभग सवा दो करोड़ लोग बाँधों व सिचाई की नहरों से विस्थापित हुए हैं| इस प्रकार इन विकास योजनाओं के कारण आदिवासी संस्कृति, जंगल-पेड़-पौधे आदि डूब जाते हैं| इसकी चर्चा आलोच्य उपन्यासों में हुआ है|

शहरीकरण, औद्योगीकरण, सरकार एवं वन विभाग के शोषणों से आदिवासियों को अपनी ज़मीन से विस्थापित होना पड़ता है| “ग्लोबल गाँव के देवता” में शिंडाल्को बोक्ससाईट कंपनी ने आदिवासियों से उनकी ज़मीन छीन ली है| इसके साथ शहरीकरण ने नई-नई स्कूल, अस्पताल, और अन्य सुख-सुविधायें बनाई हैं| ये सब बड़े-बड़े अफसरों के लिए है| ‘पाथरपट’ नामक शहर असुर जनजाति की आवास स्थान था|उसे उजाड़कर वहाँ आधुनिक स्कूल बनवाया| रुमझुम बताता है – “असुरों के सौ से ज्यादा घरों

को उजाड़कर बना था यह स्कूल| अभी भी आसपास असुर आबादी है| ज्यादा दूर नहीं, बीस-बाईस किलोमीटर के दायरे में लगभग सारी की सारी असुर, बिरिजिया, कोरबा आबादी बस्ती है| पिछले तीस वर्षों का रजिस्टर उठाकर देख लीजिए जो एक भी आदिम जाति परिवार के बच्चे ने इस स्कूल में पढ़ाई की हो|"[1] असुर आबादी को विकास के नाम पर बेदखल करते हैं| लेकिन इनकी जिन्दगी वैसी की वैसी रह जाती है| वन विभाग द्वारा सैंतीस वन गाँवों को खाली करने का आदेश देता है| उनमें उरांव, खोरवार और सदान लोग एक ही पल में अपनी सहज जीवन से दूर जाने के लिए अभिशप्त होते हैं| वन विभाग एवं 'वेदांग' जैसे बहुराष्ट्रीय कंपनियाँ आदिवासी एवं जीव-जंतुओं को जंगल में घुसने से रोकने के लिए कंटीले तार भी लगाते हैं|

"पाँव तले की दूब" में महाजन, जमींदार, एन.टी.पी.सी. कंपनी (नेशनल थर्मल पॉवर स्टेशन), सरकार सबकी मिलीभगत और इससे विस्थापित होने के लिए मजबूर आदिवासियों का चित्रण किया है| इस उपन्यास में झारखंड जो खनिज संपदाओं का भण्डार है, के आदिवासी गाँवों का बिना मुआवज़ा दिए खाली करने का चित्रण हुआ है| सुदीप्त

---

[1] रणेंद - ग्लोबल गाँव के देवता , पृ : 19

एन.टी.पी.सी. में इंजिनियर था| वह जानता है कि यह कंपनी 'डोकरी' और 'मकरा' नामक दो गाँवों को खाली करके बनवाया है| वह बताता है – "वर्षों पहले यहाँ 'डोकरी' और 'मकरा' नाम के दो गाँव हुआ करते थे| किसी ने फूँक मारकर उडा दिया था उन्हें| कहाँ गए वे विस्थापित लोग?"[1] यहाँ कारखाने या बड़े-बड़े कंपनियों के आगमन से अपनी ज़मीन से विस्थापित लोगों का चित्रण किया है| "गगन घटा घहरानी" में 'लेरता' नामक एक गाँव का चित्रण हुआ है जो अब खाली है| वहाँ के आदिवासी अपनी खेती-बाड़ी छोड़कर ईंट-भट्ठे में काम पर जाते हैं| वे किसान से बंधुआ मज़दूर बन जाते हैं| वहाँ काम करते-करते सब बीमार पड गए हैं| वे अपने स्वच्छंद जीवन से वंचित है| ये लोग बंधुआ मज़दूर बन जाते हैं| विस्थापन द्वारा आदिवासी जमात अपनी धरती, रोजगार, घर सब खो बैठते हैं| इस प्रकार विकास के नाम पर हो रहे कार्यकलाप इनकी ज़िन्दगी को नरक बना देता है|

शारीरिक शोषण

सरकार, पुलिस एवं कंपनी मालिकों द्वारा इन पर बेवजह शारीरिक शोषण होता है| लडकियों का यौन शोषण करते हैं तो लड़कों को झूठे

[1] संजीव - पाँव तले की दूब , पृ : 28

इल्जाम में मारते पीटते हैं| "ग्लोबल गाँव के देवता" में लालचन दा के नेतृत्व में आन्दोलन चलाने पर उसे दबाने के लिए पुलिस गोली मारता है, सोमा एवं साथियों को बुरी तरह मारते-पीटते हैं| लालचन को गिरफ्तारी में रखकर मारने के साथ उसके खिलाफ गांववालों को भड़काते हैं| इस प्रकार वह घृणा के पात्र बन जाता है| एक ओर शारीरिक शोषण है तो दूसरी ओर मानसिक शोषण है| "पाँव तले की दूब" में फिलिप, गोपाल और अन्य छात्रों के नेतृत्व में ठेकेदारों व सरकारी अफसरों के खिलाफ आन्दोलन होता है| वे सुक्खूसिंह नामक ठेकेदार जो लड़कियों का यौन शोषण करता है उसे रोकतते हैं| इस कारण पुलिस इन आंदोलनकर्ताओं को गिरफ्तार करके बुरी तरह पीटते हैं| इससे दुःखी होकर फिलिप आत्महत्या करता है| इस संदर्भ में सुदीप्त यों कहता है – "फिलिप के संदर्भ में आंशिक सच्चाई को स्वीकारने का अर्थ होगा उस बड़ी सच्चाई को अस्वीकारना कि शोषण, पक्षपात और दुर्नीति की जो दमनात्मक कार्यवाइयां उन्हें सम्मानपूर्वक जीने के अधिकार से वंचित करती आई हैं, वही उन्हें अराजक बनने पर मजबूर करती हैं|"[1] इस प्रकार के शोषण

[1] संजीव - पाँव तले की दूब , पृ : 121

उनका आत्मविश्वास खत्म करके मानसिक संघर्ष एवं तनाव की ओर ले जाते हैं|

संजीव के “धार” में महेंदर बाबू, सीताराम पंडित और पुलिस अफसरों की मिलीभगत देख सकते हैं| जब मैना और मंगर उनको हज़ार रूपए देने से इंकार करते हैं तो पुलिस मंगर को ले जाकर बुरी तरह पीटते हैं| वह उनकी पिटाई से तडप-तडप कर रोता है| अंत में पैसा देने पर ही मंगर को छोड़ते हैं| महेंदर बाबू, सीताराम पंडित आदि फोकल को पैसे के लालच में फंसकर अपनी कारखाने में ले आता है| लेकिन जब फोकल ट्रक से टकराकर मर जाता है तो इनको दुःख नहीं होता| वे तो पुलिस के आने के पहले लाश को गाड देने की कोशिश करते हैं| महेंदर उसको नमक से भरकर गाड देने का आदेश देकर कहता है – “अरे मार रे| अभी ज़िन्दा ही है साला! मार के भर दे नून सब जगह|”[1] कई महीनों तक वफादार कुत्ते की तरह काम करते आए फोकल की तरह उसके बाप टेंगर भी तेज़ाब में जलकर मर गया था| यहाँ इन मासूम आदिवासियों की ज़िन्दगी इनके लिए सस्ती चीज़ है| वे जब चाहे, जैसा चाहे इनके साथ खिलवाड़ कर सकते हैं| जनखदान को नष्ट करने के

---

[1] संजीव - धार , पृ : 183

लिए बुलडोज़र आता है तो मैना के नेतृत्व में आन्दोलन चलता है| वह बुलडोज़र को रोकने की कोशिश करता है तो बुलडोज़र उसे रौंदकर आगे बढ़ता है| कई मज़दूर मारे-पीटे गए और कई लोगों को गिरफ्तार किया गया| लेकिन कानून और पुलिस के सामने इनकी संख्या नहीं आती|

"सावधान! नीचे आगा है" में झारिया के कोयला खदान के विषैले गैसों, धुँआ-धूल से सने हुए वायु एवं अक्सर होने वाली दुर्घटनाओं से आदिवासी मजदूरों को कई तरह के शारीरिक शोषणों का सामना करना पड़ता है| कोयला खदान से प्रकृति जिस तरह दुरुस्त हो जाती है उसी प्रकार मनुष्य का स्वास्थ्य भी खराब हो जाता है| खदान के आने के बाद आसपास के वायु, पानी, मिट्टी सब प्रदूषित हो गया है, गर्मी भी बढ़ गया है| मज़दूर घंटों तक गर्मी में काम करते-करते पसीने में भीग जाते हैं| इससे उन्हें घमौरिया होती है| उसी प्रकार खाँसी अथवा 'सैंडजूमो कोनियोसिस' से भी लोग परेशान है| 'ऊथम' नामक मज़दूर बताता है – "एक महीने में 58 किलो कोल डस्ट यानी साल में सात क्विंटल यहाँ हर आदमी फांकता है|"[1] ये मज़दूर सौ या उससे भी ज्यादा फीट गहराई वाले सुरंग में काम जरते हैं जहाँ आक्सीजन की मात्रा कम है| यहाँ उन्हें आजीविका के लिए काम करना ही

[1] संजीव - सावधान नीचे आग है , पृ: 19

पड़ता है| इसलिए बीच-बीच में बाहर आकर अपने फेफड़े में ऑक्सीजन भरकर साँस लेते रहते हैं| खदान में होने वाली दुर्घटनाओं से भी ये मज़दूर घायल होते हैं| 'गुरुबचन' नामक मज़दूर का आग में चेहरा झुलस जाना, जगन का अपाहिज होना, सुरंग में हुई दुर्घटना में 13 मजदूरों का मर जाना आदि इसमें चित्रित किया है| खदान मालिक एवं ठेकेदार इनकी सुरक्षा के लिए कोई भी साम्रगी देता नहीं है| इस कारण ये मज़दूर घायल होते हैं|

शैक्षिणक शोषण

सरकार ने आदिवासी बच्चों के लिए शिक्षा देने के उद्देश्य से कई पद्धतियाँ बनाई हैं| "ग्लोबल गाँव के देवता" में बिहार के बरवे जिले का भौरपाट गाँव के जनजातीय परिवार की बच्चियों के लिए निर्मित आवासीय विद्यालय और वहां की दयनीय स्थिति का ज़िक्र किया गया है| यह 'पीटीजी गर्ल्स रेजिडेंशियल स्कूल' पहाड़ के ऊपर जंगलों के बीच स्थित है| यहाँ नियुक्ति मिलने पर लेखक की तरह प्रत्येक अध्यापक वहाँ जाने से इनकार करता है| उस स्कूल में दो लेडीज़ टीचर्स और किरानी बाबू नामक एक मर्द टीचर थे| कैम्पस में टीचर्स क्वार्टर्स की हालत खस्ता थी| आज तक उनमें कोई नहीं रहा| उस क्वार्टर्स की दयनीय स्थिति का वर्णन लेखक ने किया है| सालों

से बंद पड़े रहने के कारण मकड़ी के जाल, धूल-धक्कड़ भरे हुए थे और किवाड़ और खिड़कियाँ सडी हुई थी| यातायात एवं रहने की सुविधा यहाँ नहीं थी| इसलिए टीचर्स शहर में ही रहते थे| 'भौरापाट' अविकसित एवं सरकार द्वारा उपेक्षित गाँव है जबकि 'पाथरपाट' विकसित है| वहाँ अच्छी-अच्छी सड़कें, अस्पताल, स्कूल आदि है| वहाँ के स्कूल आधुनिक सुख-सुविधाओं से संपन्न है| बच्चों के लिए छात्रावास है, माँ-बाप को बच्चों के साथ रहने की सुविधाएं है| वे खेल-कूद, चित्र-संगीत, वाद-विवाद सबमें होशियार थे| सरकार द्वारा जनजातीय बच्चों की उपेक्षा पर 'लालचन' नामक आदिवासी कहता है – "अरे मास्टर साहब! क्या तो आदिवासियों का आवासीय स्कूल! पहले जाकर पाथरपट का जगप्रसिद्ध स्कूल देख आइए| तब समझ में आ जाएगा कि असल स्कूल क्या होता है और फुसलाने वाला स्कूल क्या होता है|"[1] सरकार भी इन बच्चियों से भेदभाव कर रहे हैं और शिक्षा प्राप्त करने की मूलभूत अधिकारों से वंचित रखते हैं| रुमझुम बताता है – "माड-भात खिलाकर, अधपढ़-अनपढ़ शिक्षकों के भरोसे, फुसलवान स्कूल के हमारे बच्चे, ज्यादा से ज्यादा स्किल्ड लेबर, पिऊन, क्लर्क बनेंगे, और क्या? यही हमारी

[1] रणेंद - ग्लोबल गाँव के देवता , पृ : 14

औकात है| हमारी ही छाती पर ताजमहल जैसा स्कूल खड़ा कर हमारी हैसियत समझाना चाहते हैं लोग|"[1] शिक्षा रोज़गार दिलाने के साथ-साथ एक अच्छा नागरिक बनने का प्रशिक्षण भी देती है| भौरापाट स्कूल जो आदिम जाति परिवार की बच्चियों के लिए खोला गया वहाँ ज्यादात्तर बच्चियां हेडमिस्ट्रेस और टीचर्स के गाँव और उनकी ही जाति उराँव – खडिया, खेरवार परिवार की थी| छात्रावास और मेस में साफ-सफ़ाई नहीं होती थी| बच्चियों को दाल के नाम पर हल्दी वाला पानी, सब्जी के नाम पर दो टुकड़े आलू ही देते थे| इस पर सवाल करने पर हेडमिस्ट्रेस गुस्सा होती है| वह कहती है – "इन माकई के घट्टा खाने वालों को यहाँ भात-दाल मिल जाता है, वही बहुत है| ....कौन इन्हें अपने घरों में खीर-पूड़ी भेंटाता है कि आप मेस-व्यवस्था में सुधार के लिए मरे जा रहे है|"[2] इस प्रकार शिक्षकों से उपेक्षा भाव होने पर ये छात्राएँ जल्दी मुरझाती हैं| सरकार द्वारा छात्रवृत्ति और पौष्टिक आहार देने की योजना इन शिक्षकों और अधिकारियों की उपेक्षा से असफल या निरर्थक साबित होता है|

---

[1] रणेंद - ग्लोबल गाँव के देवता , पृ: 19

[2] वही - पृ : 20

"धूणी तपे तीर" में भी आदिवासियों की अशिक्षा का चित्रण हुआ है| 'गोविन्द' और 'कुरिया' द्वारा आदिवासियों को शिक्षा के महत्व के बारे में समझाते हैं| दोनों के अनुसार शिक्षा के माध्यम से ही नई पीढ़ी में चेतना एवं जागरण आएगी| इसके लिए वे पाठशालाएँ खोलकर शिक्षा के प्रचार करने का निर्णय लेते हैं| कुरिया बताता है – "जागरती अर्थात चेतना है तो उसे आगे से आगे फैलाया जा सकता है| और अक्ल आती है अनुभव व शिक्षा से| अगर हमारे पास इलाके का अनुभव है, हमने थोड़ी बहुत शिक्षा ग्रहण की हो, तभी तो अक्ल आयेगी और तभी हम भोले-भाले, अनपढ़, नासमझ लोगों के मन में चेतना जगा सकते हैं|" आदिवासियों को अशिक्षा के कारण राजा, ठाकुर आदि शोषण करते हैं| गोविन्द 'संप सभा' के माध्यम से आदिवासियों को शिक्षित कराने का प्रयास करते हैं|

आदिवासी नारी : यौन शोषण

प्रकृति आज जितना शोषित है उतना स्त्री भी है| आदिवासी स्त्रियाँ प्रकृति व पर्यावरण के साथ अधिक जुडी रहने के कारण ज्यादा शोषित है| औद्योगीकरण, बाज़ारवाद एवं शहरीकरण के चलते जितने लोग गाँव या जंगल आते हैं सब एक तरफ से प्रकृति का शोषण करते हैं तो दूसरी तरफ से

स्त्रियों का| बहुराष्ट्रीय कंपनियों के मालिक और ठेकेदार पुलिस एवं राजनीतिज्ञों को खुश करने के लिए इन औरतों को ले आते हैं| इनमें अधिकांश नाबालिक लड़कियाँ होती हैं| इसलिए वे इनकी गरीबी का फायदा उठाकर औरतों को नौकरी देने में ज्यादा दिलचस्पी लेते हैं| अंत में जंगल के साफ़ होने के साथ-साथ आदिवासी औरतें भी अपवित्र हो जाती हैं| प्रस्तुत उपन्यासों में नारी पर हो रहे यौन शोषणों का संवेदनशील चित्रण देख सकते हैं|

"मैकलुस्कीगंज" में आदिवासी कल्याण परियोजनाओं के लिए शहर से आने वाले सरकारी उफ्सरों द्वारा आदिवासी लड़कियों के यौन शोषण का जिक्र किया है| उनमें पैसे की भूख के साथ शरीर की भूख भी है| गंज के चर्च के फादर रेवरेंड और फादर टॉम लकड़ा के क्वार्टर तथा घर में आदिवासी लड़कियों को काम पर नियुक्त करके उनका यौन शोषण करता है|

"धूणी तपे तीर" में वनपालकों, थानेदारों व फौजों द्वारा आदिवासी औरतों की इज्ज़त लूटने की बात को चित्रित किया है| इसमें लेखक ने 'अणती' और 'दल्ली' नामक लडकियों पर बलात्कार होने का चित्रण किया है| गडरा गाँव के थानेदार गुल मोहम्मद पठान तोता नामक आदिवासी की बेटी 'अणती' का यौन शोषण करके उसका गला घोंटकर कुए में फेंक देता है|

तोता ने ठाकुर से शिकायत की| लेकिन थानेदार को बचाने के लिए दोनों तोता का क़त्ल करते हैं| उसी प्रकार आमलिया जंगल की आदिवासी लड़की 'दल्ली' जो बकरियों को चराने तथा लकड़ियाँ काटने जंगल जाती है तो वन रक्षक उसको पकड़ते हैं| जंगल से लकड़ियाँ चोरी करने के इल्जाम में रेंजर किसन सिंह के पास ले जाते हैं| वहाँ पर किसन सिंह एवं उसके दोस्त छावनी के सूबेदार लियाकत खान उसका बलात्कार करते हैं| - "दल्ली चीखी-चिल्लायी| प्रतिरोध भी डटकर किया था| सूबेदार को जोर से धक्का मारा था| छाती में जमकर लात भी मारी थी| उसने अपने माँ-बाप को पुकारा था| और हरिया को आवाज़ लगायी थी – 'इस जख्म से मुझे बSSचाSSलो!"[1] दल्ली की सगाई हरिया से हुई थी| लेकिन रेंजर एवं सूबेदार की नज़र में वह सिर्फ भोग वास्तु थी| बलात्कार के दौरान वह मर जाती है और दूसरे दिन उसकी लाश नाले के कीचड़ से मिलती है| इस प्रकार जिन लोगों को जनता की रक्षा एवं अधिकारों को बचाव करना चाहिए था वे ही उनका शोषण करते हैं|

[1] हरिराम मीणा - धूणी तपे तीर , पृ : 345

आदिवासी औरतों को कारखाने मालिक, जमींदार, उद्योगपति यहाँ तक कि शिक्षित शहरवाले तक उपभोग वास्तु मानकर यौन शोषण करते हैं| "ग्लोबल गाँव के देवता" में 'रामचन' नामक बिगडौल असुर जवान द्वारा तथा गाँव के खेत में काम करने वाले बाहरी लोगों द्वारा असुर लड़कियों के यौन शोषण का चित्रण किया है| गोनू सिंह गाँव के सयानी लड़कियों और औरतों को रामचन नामक दलाल की मदद से बाहर ले जाते हैं| वे दिल्ली जैसे शहरों में मालिशवाली दुकानदारिन के हाथों बेची जाती हैं| गोनू सिंह की भी गाँव-गाँव में कई रखेलियाँ हैं| कई लोगों को वह पहचानते तक नहीं| अपना उपयोग करने के बाद उसे छोड़ दिया जाता है| सखुआपाट के अंसारी ठेकेदार की रखेली है- रामरति| असुर जनजाति में गरीबी इतना अधिक है कि उन्हें अपनी नौजवान बेटियों को जानबूझकर डेरा, या खदान में काम के लिए भेजने पड़ते हैं| रामरति की तरह सौकड़ों असुर लड़कियाँ उनके हाथ की कठपुतली बनी हुई हैं| गाँव के बबुआनी के लोगों के अत्याचार के बारे में लेखक ने लिखा है – "दशकों से बबुआनी के लोग उस हाट पर राज करते थे| हाट में जिस भी बेहतरीन चीज़ पर नज़र पड़ जाती, वह उनकी हो जाती,

चाहे वह मुर्गी-खस्सी हो या जवान-जहान बहु-बेटी|"[1] ये बबुआनी लोग बरबे राज़ के राजा द्वारा मालगुज़ारी वसूलने के लिए बनारस से लाये गए पाँच-सात राजपूत परिवार वाले हैं| आज वे बढ़कर चालीस-पैंतालीस हो गए हैं| ये लोग अपना वर्चस्व हर तरह से बनाये रखे हैं| वे वहाँ के सभी चीज़ों पर अपना अधिकार मानते हैं| वहां के गरीब, दलित, आदिवासी लड़कियों को पीकदान की तरह इस्तेमाल करते हैं| अगर कोई उनसे शादी करते हैं तो कुछ ही दिनों में वे या तो परित्यक्ता होकर या विधवा होकर गाँव वापस आती हैं| डाक्टर बताता है कि वहाँ की लड़कियों की नाक-नक्शा, रूप-रंग सब इन बाबुओं से मिलने लगे हैं| क्योंकि सदियों से वे इनका उपभोग कर रहे थे| इसमें लिखा है – "कसाइयों के हाथ में पड़ी गाय सी ये बेटियाँ बार-बार पेट गिराने से असमय ही बूढ़ी हो जाती हैं| ये नवयुवती-वृद्धाएँ, दुःख विषाद से स्याह चेहरा-देह लिए जहाँ से गुज़रती हैं, एक उदासी सी छा जाती है| इनकी निगाहों में उग आये कँटीले सवालों की चुभन से समाज चेहरा छुपाता रहता है|"[2] उस गाँव में ऐसी कोई लड़की ही नहीं बची जो इनके हाथों से छूटी हो| इसके साथ 'शिवदास बाबा' नामक एक कपट सन्यासी द्वारा

---

[1] रणेंद - ग्लोबल गाँव के देवता , पृ : 48

[2] रणेंद - ग्लोबल गाँव के देवता , पृ: 50

कोयलांचल के कमसिन लडकियों के यौन शोषण का दर्दनाक चित्रण भी किया है| उसके डर से गाँववालों को चुपचाप सब कुछ सहना पड़ता है|

संजीव के "धार" में रेलवे पुलिस, ठेकेदार, जमींदार आदि के द्वारा यौन उत्पीडन से शोषित औरतों का चित्रण मिलता है| मैना को आदिवासियों पर हो रहे शोषण के खिलाफ व तेज़ाब फैक्टरी के खिलाफ आवाज़ उठाने के कारण जेल में बंद कर दिया था| जब वह जेल से छूटी तो एक बच्चा भी उसके साथ था| जेल में जेलर ने उसके साथ बलात्कार किया था| मैना इस बच्चे को वहीं छोड़ना चाहती थी पर पुलिस 'मंगर' के सिर पर यह गुनाह थोप देता है| इस प्रकार वे गरीब आदिवासियों के साथ अपनी मनमानी करते रहते हैं| यही नहीं गाँव के आसपास स्थित रेलवे स्टेशन से अक्सर रेलवे पुलिस गाँव आकर छापा मारते हैं साथ में लड़कियों को भी उठाकर ले जाते हैं| इसके बारे में मैना कहती है – "कोई भी जनाना ई कुत्ता लोग से बचा नई – को ∫∫∫ई नई|"[1] ठेकेदारों एवं अफ़सरों को मजदूरों के रूप में मर्दों से ज़्यादा औरतें पसन्द हैं| इसलिए आदिवासियों में से किसी को दलाल बनाकर औरतों को ले आने का आदेश देते हैं| "सावधान! नीचे आग

[1] संजीव - धार , पृ : 33

है” में छेदीलाल दूबे जैसे ठेकेदारों की दलाली करने वाले आदिवासियों का चित्रण किया है| कोयला खदान के मालिक बड़े-बड़े अफ़सरों व ठेकेदारों को खुश करने लिए महिला मज़दूरों का इस्तेमाल करते हैं|

“गगन घटा घहरानी” में डी.एस.पी. एक्का का बेटा ‘जुवेल’ द्वारा ‘मरियम’
नामक आदिवासी लड़की को भरे बाज़ार में छेड़ने का चित्रण किया है| वह उसे पकड़कर अपनी गाडी में बिठाने की कोशिश भी करता है| दारोगा, थाने के सिपाही, साहूकार आदि जुवेल के मित्र थे| इसलिए गाँववाले उससे डरते थे| सोनाराम उसे रोकने का धैर्य दिखाया था| वह बताता है – “गरीब की स्त्री उनके लिए सिर्फ भोग की वस्तु है, मनुष्य नहीं| मनुष्य तो केवल वही हैं| दुनिया की तमाम स्त्रियों को भोगने की लालसा लेकर उनकी जवानी चढ़ती है| आसमान में पंख लगाकर उडती हुई उनकी महत्वाकांक्षा गरीबों के बदन पर थूक के छीटें फेंकती है|”[1] ये आदिवासी औरतें वनोपज बेचने के लिए जंगल-जंगल भटकती हैं| उन्हें परिवार चलाने के लिए बाहर भी काम करना पड़ता है| उच्च समाज के सफ़ेद पोश लोग इनको छल-कपट से शोषण करते हैं| अमीर लोग कुत्तों की भाँती इनको नोंचते हैं|

[1] मनमोहन पाठक - गगन घटा घहरानी , पृ : 81

राजनीतिक शोषण

भारत के आज़ाद होने के इतने सालों बाद भी आदिवासी गरीबी, बेरोज़गारी एवं भुखमरी में जीवन बिता रही है| हर क्षेत्र में भ्रष्टाचार है| आदिवासी समाज राजनीति के चक्रव्यूह में फँस गया है| वे भ्रष्ट राजनीतिज्ञों के हाथ की कठपुतलियां बन गई हैं| राजनीतिक नेताओं द्वारा इन आदिवासियों के उत्थान के लिए बड़ी-बड़ी बातें करते हैं| लेकिन वोट प्राप्त करना ही इनका एकमात्र लक्ष्य है| बड़े-बड़े ठेकेदार, कारखाने मालिक आदि अपनी स्वार्थ पूर्ति के लिए इन नेताओं के साथ काम करते हैं| इनको पैसा, दारु आदि देकर खुश करते रहते हैं| इसमें आदिवासी बुरी तरह फँस गए हैं|

"धूणी तपे तीर" में मानगढ़ पर्वत में अंग्रेज़ों के खिलाफ हुई आदिवासी विद्रोह का चित्रण किया है| अंग्रेज़ों के शासन काल में भारत के राजा, ठाकुर आदि उनके साथ मिलकर आदिवासियों का शोषण करते थे| अंग्रेज़ों ने 'वन नीति' लागू करके जंगल को अपने कब्ज़े में कर दिया| इसके साथ जरायमपेशा घोषित करके कई आदिवासियों को गिरफ्तार किया| राजा-महाराजाओं ने अंग्रेज़ों से पहले ही पाल-मुखियाओं और गमेतियों के माध्यम

से आदिवासी पर नियंत्रण रखते थे| वे बेगार प्रथा के समर्थक हैं| अंग्रेज़ों, राजाओं व ठाकुरों की एक कौंसिल होती है तो उसमें सब लोग 'गोविन्द' नामक आन्दोलनकर्ता को किसी भी तरह दबाने का षडयंत्र रचते हैं| कौंसिल में दीवान बताता है – "दीक्षित जी ने बहुत ही समझदारी की बात कही है कि इन हालात में यदि कोई भी रियायत दी गयी तो उसका सारा श्रेय गोविन्द गिरि को मिलेगा| ऐसा करने से आदिवासियों की माँगें दिन-प्रतिदिन बढ़ती जाएगी जो हमारे लिए मुश्किलें पैदा कर सकती है| उनकी माँगे मानते रहने का अर्थ है कि उन्हें शासन के नियंत्रण से लगातार मुक्त करते जाना| ऐसा करने से तो राज्य के सारे आदिवासी एक हो जायेंगे और फिर भविष्य में दरबार के लिए शासन चलाना असंभव सा ही हो जायेगा|"[1] आदिवासी शोषण के बारे में गोविन्द द्वारा लिखी गई शिकायत पत्र का राजा-महाराजा कोई जवाब नहीं देते हैं| वे अंग्रेज़ों के साथ मिलकर गोविन्द द्वारा स्थापित धूणीयों का नाश करते हैं और आदिवासियों के मन में गोविन्द के प्रति विद्वेष पैदा करने की कोशिश करते हैं|

"ग्लोबल गाँव के देवता" में शिंडाल्को माइनिंग कंपनी के अवैध खनन तथा कंपनी के अन्य अत्याचारों के खिलाफ असर जनजाति आवाज़ उठाते हैं तो कंपनिवाले इनको चुप कराने के लिए शिवदास बाबा को गाँव ले आते हैं|

---

[1] हरिराम मीणा - धूणी तपे तीर , पृ : 216-217

राजनीतिज्ञों को पाट और असुर समाज के बीच सक्रिय रूप से आने-जाने का अवसर नहीं मिला था| उन्हें चुनाव में जीतने के लिए इनको साथ में रखना है| इसलिए विधायकजी बाबा को असुरों के गाँव भेजकर पूजा, हवन-यज्ञ आदि करवाते हैं| अशिक्षित गांववालों को अंधविश्वास में फंसाकर उनकी माल-संपत्ति यहाँ तक कि उनकी बेटियों की इज्ज़त भी लूटने लगते हैं| आगामी चुनाव में पार्टी के टिकट वितरण में बाबा महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है| राजनीतिक नेताओं के मन में इन असुरों के प्रति उपेक्षा भाव है| यह डाक्टर रामकुमार और एक नेता के बीच हुई बातों से हमें पता चलता है – "अरे क्या डॉगदर, कौन बुडबक देहाती भुच्च लोग से भेंट करवा दिए! एही लोग से परिचय पाती का स्टैंडर है का हमरा? हम तो ऐसन लोग से मुँह तक नहीं लगते|"[1] नेता बनने के बाद ये लोग बड़े-बड़े लोगों के साथ संबंध रखकर उनकी दलाली करते हैं| आदिवासियों को कंपनी से बचाने के बदले वे इस शोषण में अपना शेयर मांगते हैं| पूंजी, तकनीक, और लेबर के साथ कंपनी को ज़मीन भी अनिवार्य है जो बाबा और राजनीतिक नेताएं उन्हें दिलवाते हैं|

"पाँव तले की दूब" में आदिवासियों के लिए अलग राज्य झारखंड की स्थापना को लेकर 'हंसदा' नामक कांग्रेसी नेता के नेतृत्व में आन्दोलन चलता

---

[1] रणेंद - ग्लोबल गाँव के देवता , पृ : 74

है| उसका झंडा हरा था क्योंकि झारखंड हरा-भरा राज्य है| प्रधानमन्त्री द्वारा हंसदा की बातों पर अमल करने का वादा देता है| लेकिन कुछ नहीं हुआ – “दिखाने के लिए स्टेप्स उठाए भी गए, फिर धीरे-धीरे सब ठप्प| कहाँ का आश्रम और कहाँ के प्रयोग? उन्होंने जिस-जिसकी पीठ पर हाथ रखा उसके रीढ़ की हड्डी गायब हो गई| सब कुछ बाँट-बिखर गया|”[1] हंसदा को अंत में कांग्रेस पार्टी से संबंध विच्छेद करना पड़ता है| आदिवासियों के लिए काम करने के कारण सुदीप्त को मंत्रालय से धमकियाँ भरी पत्र आता है| उसमें सुदीप्त को देशद्रोही करार दिया था| सुदीप्त के खिलाफ अनुशासनात्मक कार्यवाई अपनाने की ओर भी पत्र में संकेत किया था| झारखंड राज्य आदिवासी अपने विकास एवं सुरक्षा के लिए माँग रहे थे| पर सुदीप्त जानता है कि अलग राज्य बनने पर राजनीति वहाँ भी घुसपैठ करेगी|

“सावधान! नीचे आग है” में कोयला खदान में दुर्घटना होने पर राजनीतिज्ञों द्वारा प्रहसन होता है| वे इधर-उधर खड़े होकर बड़े-बड़े भाषण देते हैं| वे इनको बचाने की कोशिश करने के बदले लोगों के सामने नाटक खेलते हैं| पत्रकारों के पूछने पर वे नकली कथा सुनाते हैं| इस्पात मंत्री और

---

[1] संजीव - पाँव तले की दूब , पृ : 89

उपायुक्त एवं लायंस क्लब की औरतों द्वारा मज़दूरों के परिवारवालों को भोजन सामग्री देता है| उपायुक्त के पास जो लिस्ट है उसमें मज़दूरों की संख्या कम और अन्य अफसरों की संख्या अधिक थी| वे पीड़ित मज़दूरों की मुआवजा हडपने के लिए लिस्ट में अपना नाम लिखवाया है| ये सब राजनीतिज्ञ और सत्ता की मिलीभगत है| जब फ्रांसिस हेम्ब्रम की पत्नी बच्चों के साथ मुआवज़ा लेने खड़ी थी तब उपायुक्त ने अपना लिस्ट देखा| लेकिन उसमें हेम्ब्रम का नाम नहीं था| उसे न मुआवजा मिलता है न राहत सामग्री| वे मंत्री से बताते हैं कि ये औरतें झूठ बोलकर मुआवजा लेने आई हैं| इस प्रकार पैसे के लालच में नेतायें जिन्हें इन मज़दूरों ने चुनाव में जिताया है, शोषण करते हैं| राजनीतिक नेतायें चुनाव के अवसर पर वोट बैंक भरने के लिए आदिवासी इलाके में जाते हैं| चुनाव में जीत जाने पर जानबूझकर वे इनको भुला देते हैं|

सरकारी अधिकारीयों की उपेक्षा

आदिवासियों के उत्थान के लिए सरकार द्वारा कई योजनायें बनाई हैं जो इन तक पहुँचते नहीं| सरकारी कर्मचारी ही अपनी स्वार्थ पूर्ति के लिए इन विकास योजानाओं में बाधा डालते हैं| वे आदिवासियों को सरकार द्वारा

प्राप्त सुख-सुविधायें अपने जान-पहचान के लोगों तथा मित्रों को देते हैं| इस प्रकार सरकार को भी धोखा देते हैं| आज भी वे अभावग्रस्त हैं| क्योंकि आदिवासी लोगों की ज़िन्दगी में अनगिनत समस्याएं हैं जिन पर सरकार, कानून एवं पुलिस उपेक्षा का भाव रखते हैं| गाँव में ज़मींदारों, उद्योगपतियों, खदान मालिकों द्वारा आदिवासी ज़मीन छीनने के लिए हत्या तक करते हैं, उनकी बहु-बेटियों की इज्ज़त लूटकर मार दिया जाता है| आदिवासी नवयुवकों द्वारा शिकायत करने पर भी वे चुप हैं| "ग्लोबल गाँव के देवता" में लालचन दा के चाचा की हत्या, खदानों के अवैध खनन पर समर्पित दरख्वास्त आदि पर जाँच तक नहीं हुआ है| लेखक बताता है – "उधर महुआटोली के धनहर खेत का धान पककर झड़ने लगा था, किंतु बात अभी तक सुलझी नहीं थी| मर्डर केस भी वहीं का वहीं| ज़मीन की जाँच भी वहीं की वहीं| पुरानेवाले मजिस्ट्रेट का ट्रान्सफर हो गया| नये वाले ने अभी चार्ज नहीं लिया| ऑफिस में बहानों के एक सौ एक तरीके चालु|"[1] इन लोगों की मुँह बंद करने के लिए वे एक-दो गड्ढे भरने का दिखावा किया, और कुछ लोगों को नौकरी दिया जिन्हें बाद में बेइज्ज़त करके निकाल दिया गया|

---

[1] 1 रणेंद - ग्लोबल गाँव के देवता , पृ : 66

एक ओर सरकार एवं वन विभाग विकास के नाम पर इनसे ज़मीन छीन लेते हैं तो दूसरी तरफ़ अपनी स्वार्थ पूर्ति के लिए प्राकृतिक संपदाएँ लूटती हैं| खेती-बाड़ी करने, तालाब या कुआँ खोदने आदि के लिए सरकार इन्हें पैसा नहीं देते| वन विभाग अपने लिए जंगल में कई एकड़ नाशपाती के बगान लगा रखे हैं| इससे उन्हें लाखों रूपए मुनाफा मिलते हैं| सरकार के कोई भी कर्मचारी इस जंगल में आकर इनकी वास्तविक जीवन देखने तक की मेहरबानी नहीं करते| लेखक ने सरकार द्वारा असुरों की उपेक्षा के बारे में लिखा है| विकास के नाम पर इन्हें केवल मच्छरदानी, बकरी-गाय आदि ही मिले हैं| सरकार चाहे तो मुख्यधारा समाज के साथ इन निरीह लोगों को भी विकास की पथ पर ला सकती है, पर वे निष्क्रीय हैं| "पाँव तले की दूब" में झारखण्ड के डोकरी गाँव में एन.टी.पी.सी. (नेशनल थर्मल पॉवर स्टेशन) के लिए सरकार द्वारा ज़मीन छीनने और आदिवासियों को बिना मुआवज़ा दिए अपनी धरती से बेदखल करने का चित्रण किया है| सुदीप्त बताता है – "अगर सरकार ईमानदारी से इनका हक़ दे दे तो एक ही छलांग में कई मंज़िलें अपने-आप तय हो जाती हैं – पर अन्याय देखो, आदिवासियों को, जिनकी ज़मीन पर ये कारखाने लग रहे हैं, उन्हें टोटली डिप्राइव किया जा रहा है – इस संपत्ति में उनकी भागीदारी तो खत्म की ही जा रही है, उन्हें ज़मीन से भी

बेदखल किया जा रहा है, मुआवज़ा भी अफ़सरों के पेट में|"[1] वन विभाग के अफ़सर इन आदिवासियों को घुसपैठिए मानकर उन पर बहुत सारे प्रतिबंध लगाते हैं| वन एवं वनसंपत्ति को अपना घर और आजीविका बनाने वाले आदिवासियों से वे सब छीन रहे हैं|

"पाँव तले की दूब" में वन विभाग के अफ़सर इन्हें अन्दर घुसने में तथा वन संपत्तियां लेने में पाबंदी लगाते हैं| 'कालीचरण किस्कू' नामक आदिवासी युवक कहता है - "साहब, सरकार तो बहुत मेहरबान हैं न हम पर?...........ये ई मेहरबानी है न कि जिस छोटा बुरु के जंगल शालवनी से हमरा बाप-दादा काठ काट के लाता रहा, अब हमरा लड़का-जनाना दतुअन भी नहीं तोड़ने सकता?"[2] ठेकेदार, वन विभाग के अफ़सर आदि तो जंगल काटकर बाहर बेचकर पैसा कमा रहे हैं तो दूसरी तरफ़ आदिवासी जीने के लिए संघर्ष कर रहे हैं| बिजली कारखाने से निरंतर निकलने वाली विषैली गैसों व राखों से जल एवं हवा प्रदूषित होते हैं| कई आदिवासी लकवा और फालिज के बीमार हैं| प्रकृति सूख रही है और धरती बंजर हो रही है| प्लांट बनने से पहले प्राकृतिक सौंदर्य से अनुग्रहीत मेझिया गाँव अब अँधेरे में डूब

---

[1] संजीव - पाँव तले की दूब , पृ : 20

[2] वही - पृ : 38

रहे हैं| प्लांट बनने से पहले सरकार, कंपनी मालिक एवं ठेकेदारों ने गाँवों में बिजली पहूँचाने, लोगों को रोज़गार देने की बड़ी-बड़ी वादे किए थे जो व्यर्थ साबित हो गई| आदिवासियों की नारकीय ज़िन्दगी की ओर सरकार ध्यान ही नहीं देते| सुदीप्त द्वारा कंपनी के सामने कई सुझाव रखे जैसे घटिया कोयले को रोका जाना, पर्यावरण प्रदुषण से बचने के लिए उत्सर्जित गैसों का फ़िल्टर करना, नाले की सफ़ाई प्लांट को उठाना, गाँवो में बिजली और सड़कें दिया जाना, स्थानीय लोगों को रोज़गार में प्राथमिकता देना, गाँवों की शिक्षा, सफ़ाई और स्वास्थ्य की समस्या को प्लांट अपना नैतिक दायित्व मानकर पूरा करना आदि| लेकिन इस पर अधिक ध्यान सरकार नहीं देते हैं| 'फिलिप' नामक आन्दोलनकारी सरकार की उपेक्षा के बारे में बताता है – "यह धरती, हमारी सोना उगलती है और उस सोने की धरती की हम कंगाल संतान हैं| प्रदेश की दो-तिहाई आय हमसे होती है और हमारी हालत न तन पर साबुत कपडा न पेट में भरपेट भात, दवा-दारु, पढ़ाई-लिखाई की बात छोड़ ही दीजिए|बहुत पैसा दिया सरकार ने- सरकार घोषणाएं करती नहीं थकती, लेकिन हम कंगाल के कंगाल|"[1] सरकार इनकी माँगों पर ध्यान न

[1] संजीव - पाँव तले की दूब , पृ : 112

देकर शोषक एवं अफ़सरों की बात सुनता है| इसमें राजनीतिज्ञों का भी खेल है| अफ़सर लोग इन आदिवासी आन्दोलनों को दबाने के लिए 'फूट डालो राज करो' की नीति अपनाता है| वे मज़दूरों को बहला-फुसलाकर अपने पक्ष में करता है| फिलिप को अराजक स्थिति में डालकर आत्महत्या के लिए प्रेरित करता है, गोपाल को सुदीप्त का दुश्मन बनाता है, सुदीप्त को देशद्रोही घोषित करता है, और सुदीप्त को भी आत्महत्या के लिए प्रेरित करता है|

"धूणी तपे तीर" उपन्यास की पृष्ठभूमि अंग्रेज़ी शासन एवं देसी सामंती प्रणाली है| इसमें अंग्रेज़ों के साथ-साथ देशी राजाओं, ठाकुरों, वन रक्षकों एवं पुलिस अधिकारियों द्वारा मीणा, भील एवं गरासिया आदिवासी जमातों पर किए जा रहे शोषणों का चित्रण किया है| अंग्रेज़ों ने वन नीति लागू करके आदिवासी को जंगल से बेदखल किया| इन्होनें जरायमपेशा घोषित करके कई जनजातियों पर कठोर नियम का भी पालन किया| लेखक ने लिखा है – "जंगल के पेड़ों और अन्य वनस्पतियों ने परंपरागत रूप से आदिवासियों को बहुत कुछ दिया था| दिया क्या, उनका जीवन ही इन पर आश्रित रहा| अब हालात बदल गए थे| सरकार द्वारा लागू की गयी वन-नीति और कानून-कायदों के कारण वनोपज पर आदिवासियों का अधिकार समाप्त कर दिया

गया था|"[1] जंगल से कुछ भी लेने के लिए इन्हें सरकार की मंजूरी लेनी पड़ती है| वन-रक्षक एवं जंगल के रेंजर आदि इस नियम का कठोर पालन करके आदिवासियों को लूटते हैं| वे इन मासूम आदिवासियों पर चोरी का इल्जाम लगाकर जेल में बंद करते हैं और आदिवासी औरतों का इज्ज़त लूटते हैं| गोविन्द गुरु के 'संप सभा' को नष्ट करने तथा आदिवासी विद्रोह को दबाने के लिए जरायमपेशा कानून का कठोर पालन करने हैं| 'थावरा भगत' इस अन्याय के बारे में बताता है – "निर्दोष लोगों को बिना वजह इस कानून के तहत थाना व चौकियों में बुलाया जाता है| उन पर चोरी व लूट के झूठे मुकदमें लगाकर गिरफ्तार किया जाकर जुल्म ढाये जा रहे हैं| 'संप सभा' के कार्यकर्ताओं के मनोबल को गिराने के लिए उन्हें थाना-चौकियों में बुलाकर उल्टे-सीधे सवाल पूछे जाते हैं और देर-देर तक वहाँ बिठा लिया जाता है|"[2] इस प्रकार राज-विरोधी स्वरों को दबाने के लिए सरकार इस कानून को आपराधिक प्रवृत्ति से जुड़े लोगों के खिलाफ इस्तेमाल न करके निर्दोष लोगों के स्वरों को दबाने के लिए करते हैं|

[1] [1] हरिराम मीणा - धूणी तपे तीर , पृ : 280
[2] [2] हरिराम मीणा - धूणी तपे तीर , पृ : 297

आदिवासी गाँवों में अच्छे अस्पताल और डाक्टर नहीं हैं| वहाँ अस्पताल की जगह दवाखाना होता है| वहाँ न डॉक्टर होते हैं न दवाइयाँ| वे इस दवाखाने से जल्दी छुटकारा लेकर शहर जाने की प्रयास करते रहते हैं| इस अस्पताल में पहुँचने के लिए उन्हें कई किलोमीटर पैदल चलकर आने पड़ते हैं| नकली दारु पीकर जब मज़दूर उलटी करने लगते हैं, और स्वास्थ्य खराब होता है तो वे दवाखाना आ जाते हैं| पर वहाँ पहुँचने से पहले बीमार मर जाते हैं|

"धार" में महेंदर बाबू के अवैध कोयला खदान को 'इंदिरा गाँधी खदान' नाम देकर संरक्षित करने तथा शोषकों के साथ मिलकर मज़दूरों के 'जनखदान' को बुलडोज़र से रौंदने का चित्रण हुआ है| सरकार की इस उपेक्षा भाव को देखकर अदिनाश कहता है – "सरकार ने आज तक हमें साफ़-साफ़ स्वीकार नहीं किया| उसकी स्वीकृति के बिना तो यह हमें सीधे-सीधे कोयला चोरों के दल में ठेलने जैसा हो गया|"[1] नेताओं व अफ़सरों को गाडी, रंडी और पैसे देने पर कुछ भी करने को तैयार होते हैं| पुलिस अफ़सर भी इनसे रिश्वत लेकर आदिवासियों को परेशान करते रहते हैं|

---

[1] संजीव - धार , पृ : 201

पर्यावरण प्रदूषण

बाज़ारवाद औद्योगीकरण एवं शहरीकरण के इस दौर में प्रकृति कई तरह से प्रदूषित हो रहा है| अपने अल्पकालीन लाभ के लिए मानव प्राकृतिक संपदाओं का दोहन करता आ रहा है| मानव के अमानवीय व्यवहारों, रासायनिक पदार्थों व कीटनाशकों का उपयोग, कोयला-बॉक्साइट खनन से उत्पन्न धुआ, धूल एवं बड़े-बड़े कारखानों से उत्सर्जित विषैले गैस आदि वायुमंडल के साथ मिट्टी एवं जल को प्रदूषित कर रहे हैं| ये सब वायु-जल-मिट्टी में मिश्रित होकर समस्त जीवन जगत को कुप्रभावित करते हैं| पेड़-पौधों व अन्य जीव जंतुओं के साथ मानव भी कई खतरनाक बीमारियों से ग्रस्त होते हैं|

वर्तमान समाज में प्रकृति का दोहन दुगुना हो गया है| वे भूल जाते हैं कि प्रकृति दुर्जय है| हम प्रकृति के प्रतियोगी कभी नहीं बन सकते| हमें उसके अनुकूल बनकर ही चलना है| मानव प्रकृति के बीच का रिश्ता माँ और बच्चे का है| आदिवासी लोग आज भी इस रिश्ते को आदर व डर के साथ निभाते हैं| लेकिन सभ्य शहरी मानव जंगल को काटकर इनकी ज़िन्दगी को दूभर कर दिया है| एक ओर इनकी संस्कृति नष्ट होती है तो दूसरी ओर इनका आवास व स्वास्थ्य भी|

"ग्लोबल गाँव के देवता" में शिंडाल्को बाक्साइट कंपनियों, कोयला खदानों और अन्य अंतर्राष्ट्रीय कंपनियों के आगमन के कारण प्रकृति पर हो रहे खिलवाड़ का चित्रण किया है| इन कंपनियों के निरंतर खनन से गड्ढे पड़ गए हैं और खेत व ज़मीन बंजर हो गए हैं| बॉक्साइट की खुली खदानें जीव-जंतुओं के साथ-साथ प्रकृति के लिए भी हानिकारक है| यहाँ बक्सईट खनन से जो गड्ढे पड़े हैं उन्हें देखकर लेखक दुखी होता है क्योंकि उसे देखकर ऐसा लगता है मानो धरती माँ के चेहरे पर चेचक के बड़े-बड़े धब्बे पड़ गए हो| इन गड्ढों में बरसात होने पर पानी भर जाता है उसमें मच्छर आ जाते हैं जिससे वहाँ रहने वालों को सेरेब्रल मलेरिया जैसी महामारी हो जाती है| हर रोज़ इस जानलेवा बीमारी से कोई न कोई मरता है| "पाँव तले की दूब" में बिजली के कारखाने से गन्दा पानी मनसा नाले में बहाने पर उसके किनारे रहनेवाले आदिवासियों को लकवा होता है| लकवा वह बीमारी है जिसमें कोई अंग निर्जीव हो जाता है| कारखाने के चिमनियों से ज़हरीली धुआं भी निकलती है जिससे हवा प्रदूषित होती है| 'माझी हडाम' नामक आदिवासी की बेटी का लकवा से मरने का ज़िक्र किया है| यही नहीं बसंत में पेड़ों पर आए नए पत्ते तक काले पड़ गए हैं| प्रकृति और आदिवासी पर बिजली

कारखाने की छाया है| सुदीप्त ने इस प्रदुषण के बारे में अपनी डायरी में लिखा है – "जब से प्लान्ड बना है, चिमनी से उड़ने वाली राख और गैसों के चलते प्रदूषण बढ़ा है और ज़मीन बंजर होती चली गई है| अब इन गाँवों के खेतों में पहले का एक चौथाई अनाज भी पैदा नहीं होता| ....कुओं के एक सिरे से प्रदूषित हो जाने और सूख जाने के बाद पानी का एकमात्र स्रोत मनसा नाला बचता है, जिसमें प्लांट और कॉलोनी का तमाम प्रदूषित जल बहाया जाता है| बीसों लोग फालिज के मारे हुए हैं| कुल मिलकर यह कि गाँवों की जिंदगी पहले से ज्यादा बदहाल है|"[1] इस प्रकार प्रकृति और आदिवासी इन कंपनी मालिकों के खिलवाड़ का शिकार होते रहते हैं|

संजीव के "धार" में बिहार के बांसगडा गाँव में तेज़ाब कारखाने के आने के बाद प्रकृति में आए बदलाव और इससे रोगग्रस्त आदिवासियों का चित्रण मिलता है| इस कारखाने के आने के बाद निरंतर गाड़ियाँ आती रहती है जिससे बस्ती में हमेशा घरघराहट की ध्वनि खरोंचती रहती है| 'शर्मा बाबू' नामक आन्दोलनकर्ता बताता है – "हवा जब गाँव की ओर घूमती है तो अपनी रही-सही जान लिए बांसगडा खाँसता है........ न, बांसगडा नहीं, उनकी उँगली फैक्ट्री की ओर उठ रही थी, वह उजली-उजली फफूँदी की

[1] संजीव - पाँव तले की दूब , पृ : 84

झुर्रियाँ में लरजती तेजाब की फैक्टरी खाँसती है, अपनी धीमी बत्तियों की बुझी आँखों की चिलम में गाँव को भरकर पीती और सों-सों की खुश्क आवाज़ के साथ उजला-उजला ज़हर उगलती हुई फैक्टरी|"[1] इस तेज़ाब कारखाने की वजह से अक्सर गाँव में तेज़ाब की बारिश होती है| मैना और अन्य गाँववालों का शरीर इस बारिश से छरछरा गई थी उसमें जलन एवं खुजली होती है| सब लोग अपने बच्चों को अपने आँचल में छिपा लेती है ताकि उन पर यह ज़हर न पड़े| लेकिन कई दिनों तक वे इससे छिप नहीं सकते थे| यही नहीं इनके गाँव में बड़े-बड़े कारखाने से लोहा-पीतल लेकर कूड़ागाडी आती है| वे इसे गाँव में फेंककर चले जाते हैं| गाँववाले इस षडयंत्र से अनजान हैं| वे इसे बटोरने के लिए आते हैं| इन वस्तुओं से गाँव एवं जंगल प्रदूषित होता है| उस गाँव में कुएँ, तालाब. पोखरा सबमें तेज़ाब है| इस तेज़ाब कारखाने की वजह से नष्ट होती प्रकृति की जीवंतता, सौन्दर्य एवं संपदाओं पर लेखक ने प्रकाश डाला है – "तेज़ाब की फैक्टरी कालिया नाग की तरह जब फुफकारा करती थी तो यह जंगल-मुरझाया रहता था| पेड़ भी शायद इसीलिए पतले और बौने रह गए, मगर अब उन्होंने फिर से पेंग बढाई है| इस साल की

[1] संजीव - धार , पृ : 37

बरसात ने इस जंगल को घना बना दिया है|"[1] इस प्रकार गाँव में जीव-जंतुओं के ऊपर ज़हर फूँकती तेज़ाब कारखाने हैं| वहाँ इधर-उधर कुल्हाड़ी की खट-खट या मोटोर गाड़ियों की घरघराहट ही सुनाई पड़ता है|

"सावधान! नीचे आग है" में बिहार के झरिया गाँव के कोयला खदान से उत्पन्न प्राकृतिक शोषण का चित्रण देख सकते हैं| कोयला खदानों में मिथेन, कार्बनमोनोक्साइड, एच-टू-एस आदि विषैले गैस होते हैं जो प्रकृति के साथ जीव-जंतुओं के लिए भी हानिकारक है| खदानों के चारों ओर जमी हुई गैसों से कभी-कभी आग लगने की संभावना है| मिथेन जैसे गैस अंतरीक्ष में आग की चिंगारी ज़रा भी गिरने पर आग पैदा करता है| इसमें पड़कर आदिवासी मज़दूरों के साथ जानवर, पशुपक्षियाँ एवं पेड़-पौधे राख हो जाते हैं| इसमें एक बार हुई आग में 'गुरुबचन' नामक पंजाबी मजदूर का चेहरा जल जाने का ज़िक्र किया है| यही नहीं कोयला खदान में बार-बार होनेवाली ब्लास्टिंग से चारों ओर अजीब गंध और कोयले की धूल भरा रहता है| इससे साँस तक घुटने लगते हैं – "ब्लास्टिंग के बाद बची-खुची हवा भी बारूद की

[1] संजीव - धार , पृ :

गंध और कोयले की धूल से इस कदर बोझिल है कि साँस तक घुट रही है|”[1] कोयला खदान के कारण झरिया गाँव गंदी एवं विषैले गैसों एवं आग लगने जैसे खतरनाक दुर्घटनाओं से भी ग्रस्त है| खदान के कारण बदले हुए झरिया का चित्रण यों किया है – “आग की नदी दामोदर और धुआंसे का शहर झरिया! कुहासा नहीं, धुआँसा! धूल, धुँआ और कुहासा- इनसे मिलकर एक शब्द बनता है धुआँसा| ......दोनों ओर खंड-खंड जुड़ते-टूटते हार्ड-कोक प्लांट की दैत्यमुखी ज्वाला की कतारें| बीच-बीच में लोहे के लंबे खांचे पर टंगी आकाश-चरखी से कोलियरियों के टॉप गियर, कोयले के स्तूपाकार मलबे और ढूहें| शमशान की चिता की तरह जलते कोयले|”[2] इसके आने के बाद नाले-नदी गायब होने लगे, दामोदर नदी एवं अन्य छोटी-मोटी कुएँ सूखने लगे| इससे इनकी कृषि चौपट हो गई| जब यह ज़मीन आदिवासियों का था तो वह हमेशा फला-फूला रहता था| रामप्रसाद ओझा इस प्रकार के ज़मीन का हकदार था| बाद में वह अंग्रेज़ों को बेचता है तो वहाँ खदान आ जाता है| वे प्रकृति पर हस्तक्षेप करके प्राकृतिक संपदाओं को नष्ट करने लगे| वह बताता है – “आज हालत ई कि नीचे कोइलारी के चलते ऊपर पानी ही नहीं टिकता|

---

[1] संजीव - सावधान नीचे आग है , पृ: 65

[2] वही - पृ : 12

सिरिफ एक पानी के बगैर पिछलका धान मर गया| अब कुआँ, तालाब, जोर(नाला) किसी में पूरा पानी नहीं कि पटा ही दें| पहले कम-से-कम परब-त्यौहार में दामोदर नेहा आते थे, अब ऊ हो सपना हो गिया| पैखाना करके पानी छूने भर का पानी तो रहियो नहीं गया.......... अलकतरा जइसन करिया भुजंग पानी| भूले-भटके पी लो तो सीधे सुरधाम|"[1] इस प्रकार बारूद की गंध, धुँआ, धूल आदि से प्राकृतिक संतुलन नष्ट हो जाता है| आदिवासी मज़दूरों को खाँसी, घमौरिया जैसी बीमारियाँ भी होती है|

"गगन घटा घहरानी" में वन संपदाओं से संपन्न सोनाहातू मोरंगा जंगल का वन विभाग द्वारा शोषण करने का चित्रण है| यह जंगल दक्षिण बिहार के सबसे धनी वनों में गिना जाता है| यहाँ हाथी, सीआर, बाघ, मुर्गा, खरगोश, मोर, वनैले सुअर आदि के साथ सागवान, शाल, केंदु जैसे पेड़ भी थे| अफ़सर लोग वहाँ की लकड़ियाँ काटकर नकली रिपोर्ट बनाकर बाहर बेचते हैं| पेड़-पौधों के नष्ट होने पर अनेक जीव-जंतुओं का वंश लुप्त हो जाता है| वन विभागों द्वारा जंगल से कटी हुई लकड़ियों की संख्या, चेकपोस्ट पर इनकी संख्या, डीपो की और डिपो से बिक्री होकर निकली हुई लकड़ियों की

---

[1] [1] संजीव - सावधान नीचे आग है , पृ: 49

संख्या में भारी अन्तर हैं| वे जंगल की चोरी करने के साथ आग भी लगा देते हैं| वन की सीमा पर काँटेदार तार की घेराबंदी और कीटनाशक दवाइयों के उपयोग से पशु-पक्षियां मर जाते हैं| -"वन तेज़ी से कट रहे हैं| किसिम-किसिम के रासायनिक कारखानों, अणु-आयुधों से विश्व का पर्यावरण असंतुलित होता जा रहा है| वन्य प्राणियों की संख्या में ह्रास हुआ है| कई नस्लें तो बिलकुल समाप्त हो गई हैं|"[1] गाँव में जंगलों के साफ़ होने के कारण अकाल पड़ गया है| खेतों में दरारें पड़ गईं, पेड-पौधे ठीक से नहीं बढ़ पाते हैं| इस प्रकार प्रकृति के साथ किए जा रहे अमानवीय व्यवहार मानव को संकट में डाल देता है|

शहरीकरण

उपभोक्तावाद के इस युग में मानव प्रकृति को अपने लाभ के लिए इस्तेमाल कर रहे हैं| वे जंगल को काटकर बडी-बडी इमारतें बनाते हैं तथा जंगलों का सफाया करके खनन शुरू करते हैं| इससे धरती बंजर हो जाती है| शहरवाले इनकी खेती चौपट करके ज़मीन हथियाकर वहाँ घर, कारखाने आदि बनाकर गाँव के स्थान पर नए शहर का निर्माण करते हैं| शहरीकरण

[1] मनमोहन पाठक - गगन घटा घहरानी , पृ : 38

से आदिवासी गाँव नष्ट होता है| इसके साथ ही बाज़ारवाद, औद्योगीकरण, निजीकरण एवं शहरीकरण से आदिवासी संस्कृति को नाशोन्मुख हो गयी है| "ग्लोबल गाँव के देवता" में शिंडाल्को बॉक्साइट कंपनी एवं वेदांग नामक विदेशी कंपनी के द्वारा आदिवासी इलाके का ग्लोबल गाँव बनने की नियति को चित्रित किया है| इसमें सखुआपाट नामक विकसित शहर और भौरापट नामक अविकसित आदिवासी गाँव का चित्रण हुआ है| सखुआपाट भी कभी गाँव हुआ करता था| लेकिन शिंडाल्को माइंस का ऑफिस और क्वार्टर्स वहाँ थे| वहाँ इस कंपनी के बड़े-बड़े अफ़सर और स्टाफ़ रहते थे| इनकी सुविधा के लिए वहाँ ग्रामीण बैंक, सरकारी स्वास्थ्य केन्द्र, कई सरकारी भवन, छोटे-मोटे होटल, परचून-किराने की दूकानों, पान-चाय की गुमटियां आदि से संपन्न चहल-पहल भरी एक बाज़ार बनवाया गया है| बॉक्साइट खनन से धरती पर गड्ढे पड़ गए हैं जो सभी के लिए खतरनाक हैं| बॉक्साइट कंपनियों ने खनन से उत्पन्न इन गड्ढों को समय-समय पर भरने का एग्रीमेंट लिखा था जो वे करते नहीं हैं|

इस गाँव में एक जगह है जिसे 'सिल्वर सिटी ऑफ़ इंडिया' कहलाते हैं| यहाँ बॉक्साइट से अल्यूमिनियम बनाता है| रुमझुम बताता है – "एक बार

घूमने का मौका मिला था! फूलों-पार्कों से लदी हरी भरी खूबसूरत कॉलोनी| एक से एक स्कूल, चमचमाते बाज़ार, क्लब, घर, योगा केन्द्र, लाइब्रेरी, खेल के मैदान और न जाने क्या-क्या! सुन्दर-सुन्दर कुत्तों को घुमाती सुन्दर-सुन्दर महिलाएं, बर्फ के गोलों से गुलथुल उजले-उजले बच्चे, रंग-बिरंगी गाड़ियाँ| लगा, इन्द्रलोक धरती पर उतर आया हो|”[1] यहाँ सब अमीर एवं आडम्बरप्रिय है| उनको कोई कमी नहीं है| उनके मेस में छत्तीस तरह के व्यंजन है| उधर आदिवासी लोग एक वक्त की रोटी के लिए तरसते हैं| इस प्रकार विकास कुछ ही लोगों तक सीमित हो जाता है|

इन बॉक्साइट कंपनियों से एक ओर बड़े-बड़े गड्ढे पड़ जाते हैं तो दूसरी ओर बॉक्साइट ट्रकों की ओवरलोडिंग की वजह से सड़क की हालत दयनीय है| कंपनियाँ इन सड़कों की मरम्मत करने के लिए फूटी कौड़ी तक नहीं देते| ये कंपनियाँ ज़मीन एवं प्राकृतिक संपदाओं पर अपना अधिकार जमा लेते हैं| वे आदिवासियों को घुसपैठिया समझकर वन विभाग के साथ मिलकर उन्हें ज़मीन से बेदखल करते हैं| इस प्रकार उद्योगपति एवं कारखाने मालिक अपने बड़े-बड़े कंपनियां बनवाते हैं| इसमें ‘वेदांग’ नामक कंपनी का ज़िक्र किया है| डॉक्टर बताता है – “ग्लोबल गाँव का बड़ा देवता है वेदांग| यह

---

[1] रणेंद - ग्लोबल गाँव के देवता , पृ : 16

ऊंगली पकड़कर बांह पकड़ने वाली बात लगती है| यह कंपनी है विदेशी और नाम रखा है 'वेदांग' जैसे प्योर देशी हो| कितना चालू-पुर्जा है इसी से पता चलता है|"[1] इन कंपनियों की वजह से आदिवासी गाँव उजड़ते हैं| इसके साथ गाँव धीरे-धीरे शहर का रूप धारण करता है| सदियों से वन में रहने वाले आदिम निवासी जंगल से विस्थापित होते हैं और पानी, ज़मीन आदि का निजीकरण होता है| छतीसगढ़ के रायगढ़ जिले के शिवनाथ नदी का निजीकरण होने पर वहाँ के गाँववाले, पशु-पक्षियाँ पानी के लिए भटकते थे| लेखक ने बहुराष्ट्रीय कंपनियों व उद्योगपतियों के इस अमानवीय शोषण पर यों लिखा है – "सामान्य तौर पर इन आकाशचारी देवताओं को जब अपने आकाशमार्ग से या सेटेलाइट की आँखों से छत्तीसगढ़, उड़ीसा, मध्यप्रदेश, झारखण्ड आदि राज्यों की खनिज सम्पंदा, जंगल और अन्य संसाधन दिखते हैं तो उन्हें लगता हैं कि अरे, इन पर तो हमारा हक़ है| उन्हें मालुम है कि राष्ट्र-राज्य तो वे ही हैं, तो हक़ तो उनका ही हुआ| सो इन खनिजों पर, जंगलों में, घूमते हुए लँगोटे पहने असुर-बिरिजिया, उराँव-मुंडा आदिवासी, दलित-सदान दिखते हैं तो उन्हें बहुत कोफ़्त होती है| वे इन कीड़े-मकोड़ों से जल्द

---

[1] रणेंद - ग्लोबल गाँव के देवता , पृ : 80

निजात पाना चाहते हैं| तब इन इलाकों में झाड़ू लगाने का काम शुरू होता है|"[1] सरकार भी इनके साथ मिला हुआ है|

संजीव के "धार" में बिहार के बॉसगडा गाँव का, तेज़ाब कारखाना, अवैध खनन आदि की वजह से बदलता रूप चित्रित किया है| तेज़ाब कारखाने के लिए एकड़ों ज़मीन हथिया ली है| वहाँ के प्राकृतिक संपदाओं को नष्ट करके ज़हर निकालनेवाली कारखाना बनाया| इसके बनने के साथ वहाँ के शांत व स्वच्छ वातावरण नष्ट हो गया| हमेशा पेड़ों के काटने या चोरी किए लकड़ी या कोयला ले जाने वाली मोटर गाड़ियों की घरघराहट सुनाई पड़ने लगा| कई तरह के अफ़सर, खदान मालिक आदि आकर बसने लगे| लेखक लिखते हैं – "पहले इस जंगल में सियार, वनबिलाव, चूहों, खरगोशों और साँपों का बसेरा था, कुत्ते यदा-कदा पहुँचकर इनको परेशान करते| यह सारा कुछ अब भी है सिर्फ जंतुओं ने आदमी की शक्ल अखित्यार कर ली है कोयले के दलाल, मज़दूर, उनके बच्चे कोल माफिया और यदा-कदा पुलिस|"[2] इस प्रकार इस अवैध खनन, तेज़ाब फैक्टरी और सरकार की मिलीभगत ने संथाल परगना को बंजर बना दिया है| उस गाँव के बदलते रूप को मंगर की

---

[1] रणेंद - ग्लोबल गाँव के देवता , पृ : 93

[2] संजीव - धार , पृ : 99

नज़रों से देख सकते हैं – “नंगी-अधनंगी पहाड़ियां जहाँ-तहाँ खड़े शाल, महुए, खजूर और ताड़ के पेड़, ढेरे की झाड़ियाँ बलुई बंजर धरती, सूखती नदियाँ, सूखते कुँए-तालाब भयंकर पोखरिया खादें, जहाँ-तहाँ सोये पड़े मुर्दे से लोग| मंत्रलित मंत्रकीलित पूरा इलाका| इंसानों को मवेशियों के रूप में हाँकते ले जा रहे हैं ठेकेदार रामपुर हाट, चित्तरंजन, जामताड़ा, वहाँ से ट्रेन पकड़कर असम, बंगाल, बिहार या कहीं और ....? है कोई जानगुरु (ओझा) जो इन्हें मंत्र से शापमुक्त कर दे?”[1]

“सावधान! नीचे आग है” में झरिया गाँव में कोयला खदानों के कारण आदिवासी गाँव का बदलना, उसमें हो रहे प्रदुषण आदि का चित्रण किया है| झरिया गाँव में अवैध खनन, ब्लास्टिंग आदि के कारण उत्पन्न गड्ढों, विषैले गैसों का भी ज़िक्र हुआ है – “जहाँ-तहाँ रेल लाइनों के जाल, पंक्ति-पंक्ति खड़ी मालगाड़ियाँ, उच्छवास फेंकते स्टीम इंजन, डिब्बीनुमा मकान और सर पर रह-रहकर काले खौफनाक परिंदे सी गुजरी रोप-वे की डोलियाँ|”[2] शहरीकरण ने जंगल में रहनेवाले पशु-पक्षियों के आवासीय व्यवस्था को भी नष्ट कर दिया है| इसके संबंध में ट्रक ड्राइवर रामसिंह बताता है – “सब ठाँठ

---

[1] संजीव - धार , पृ: 41

[2] संजीव - सावधान नीचे आग है , पृ: 12

हैं जी| पहिले चरे के जंगल रहल, अब कहाँ रहि गइल? अब तो जे-बा-से कोइला और कंकरीट के जंगल फैलते चलल जाता| आच्छा-आच्छा नसम के गाइ-भैंस आ गइलीं – हमरो टरक पे तो ऊहे बा| ले गए थे कोइला, ले आये हूँआं से भैंस-गाइ| अब ओकर आंगे कौन पूछेगा| इन ठांठ जानवर को? जौने दू-चार पैसा आ जाय ऊहे...............|”[1] कांक्रीट भवनों, कारखानों, जंगलों के नाश आदि ने आदिवासी एवं पशु-पक्षियों के स्वच्छंद एवं सहज जीवन को नष्ट कर रहे हैं|

“गगन घटा घहरानी” में लेखक ने ‘मुरहू’ और ‘लुपंगा’ नामक दो गाँवों की तुलना करते हुए शहरीकरण की भयावहता को चित्रित किया है| मुरहू, विकसित शहर है| वहाँ बड़े-बड़े मकान, कारखाने, सड़कें, मोटोरगाड़ियाँ हैं| वहाँ के लोग अपने को लुपंगावालों की तुलना में सभ्य मानते हैं और अपने भाइयों की गरीबी का मजाक उड़ाते हैं| मुरहू का बदलता रूप इस प्रकार है – “मुरहू के लोग अपनी भाषा भूल गए| अपनी वेश-भूषा, चाल-चलन सब उन्हें छोटा लगने लगा| सड़क के किनारे चाय पानी की दुकानें खुल गई| लड़के दिन-दिन भर उन दूकानों पर बैठकर अनाप-शनाप गप्पें हाँकते रहते हैं| दुकानों पर बजती हैं फ़िल्मी धुनें| रेडियो, रिकार्ड| अपना नाच-गाना,

[1] संजीव - सावधान नीचे आग है , पृ: 14

झूमर अखाड़ा सब भूल कर आती-जाती लड़कियों पर फिकरे कसते हैं| नए-नए कपड़ों, शर्ट और नुकीले जूते पहनकर ऐंठ कर चलते हैं|"[1] इस प्रकार वे रुपये-पैसों की चमक-धमक में अपनी स्थानीय संस्कृति एवं अस्मिता को भूलकर आलसी हो गए हैं| उनके घरों के बीच दीवारें खड़ी हो गई है| 'लुपुंगा' इससे बिल्कुल भिन्न है| वहाँ लोग मिलजुलकर रहते हैं| वहाँ सब कुछ सबका है, किसी के भी घर में जब चाहो घुस सकते हैं| वहाँ लोग आपस में बात करते हैं हाल-चाल पूछते हैं| किसी का दुःख-दर्द वहाँ सार्वजनिक हो जाता है| 'पैरुगुनी' जैसे बुजुर्ग अपने गाँव का बदलते रूप को लेकर परेशान है – "जंगल छोटा होता जा रहा है और इतिहास बड़ा-से बड़ा| पर रोज़-रोज़ इतिहास में नए-नए अध्याय जोडती यह दुनिया पठान पर उगे इस जंगल को, जंगल में बसे छोटे-छोटे गाँवों को क्या दे रही है? इन्हें परत-दर-परत उघाड़कर कानून और अधिकार के बर्छी-भाले भोंक-भोंक कर सभ्यता की जीभ को कौन सा स्वाद चखा रही है, पैरुगुनी नहीं समझ पाता है|"[2] इस प्रकार शहरीकरण ने जंगल को प्रदूषण के गिरफ्त में कर लिया है| पेय जल

---

[1] मनमोहन पाठक - गगन घटा घहरानी , पृ : 51

[2] मनमोहन पाठक - गगन घटा घहरानी , पृ : 169

की समस्या से लेकर शुद्ध वायु एवं मिट्टी तक की समस्याएँ इससे उत्पन्न होती हैं| इसके साथ मानवीय मूल्यों का भी प्रदूषण होता है|

आदिवासी जागरण

आदिवासी समाज को मुख्यधारा पर लाने के लिए कई आन्दोलनकर्ताओं ने प्रयत्न किया है| मद्य निषेध, अंधविश्वास एवं रुढियों का विरोध, शिक्षा का प्रसार आदि के माध्यम से वे उनमें जागरण लाने की लगातार कोशिश करते हैं| वे अपने भाषणों व कार्यों द्वारा उनमें आस्था एवं आत्मविश्वास बढाते हैं| सरकार द्वारा उनको शिक्षित करने तथा जीवन स्तर को ऊँचा उठाने के लिए कई परियोजनाएँ बनाई हैं| इन प्रयासों ने उनको मुख्यधारा समाज में कदम रखने का संबल दिया है| अपने ही समाज के अंधविश्वासों को तोडना, अपने अधिकारों के लिए मांग करना आदि इसी जागरण का परिणाम है|

"धूणी तपे तीर" में गोविन्द और उसके द्वारा गठित 'संप सभा' के द्वारा मानगढ़, बांसगडा, किशनगढ़, प्रतापगढ़ आदि अनेक आदिवासी इलाकों के मीणा, भील एवं गरासिया आदिवासियों को जागृत करते हैं| गोविन्द आदिवासियों को अन्धविश्वास, रुढी, आदि से मुक्त कराने तथा शिक्षा के

महत्व समझाने का प्रयास करते हैं| इसके लिए कुरिया भगत, थावरा, जोरजी भगत आदि अनेक आदिवासी भी साथ देते हैं| गोविन्द भूत, डायन, परीत आदि को मन का वहम बताता हुआ उन्हें समझाता है – "भूतों के किस्से वहम के किस्से हैं| ऐसी बेतुकी बातों पर विश्वास नहीं करना चाहिए| बेचारी औरतों को डाकिन बता कर मार तक देते हो| मुझसे भोपे नाराज़ क्यों हैं? इस सवाल पर सोचो! वह इसलिए कि ये भोपा लोग मंतर-तंतर, जादू-टोना, मूंठ देने और झाडा-फूंकी का ढोंग रचकर भोले-भाले लोगों को बहकाते हैं और ठगते हैं|"[1] गोविन्द के जागरण से अंधविश्वासों के साथ शराब पीना भी लोग छोड़ते हैं| वह कहता है – "दारु पीने से अक्ल भष्ट होती है| दारु पीने से नशा होता है और नशा बुद्धि को नष्ट कर देता है|"[2] गोविन्द अपने शिष्यों को अलग-अलग गाँवों में भेजकर दारु बंद कराने का उपदेश देते हैं| इनके प्रयासों से आदिवासी गाँव शराब से मुक्त होता है| 'गल्या' नामक शिष्य के प्रयासों से भूखिया, फालवा, पाडोला, कहवाडा आदि गाँव शराब से मुक्त होता है तो 'हादू' के समझाने पर टिम्बीमोती और गंगानलाई गाँव दारू बंदी का साथ देते हैं| आदिवासियों को मेहनत करने का उपदेश देकर

[1] हरिराम मीणा - धूणी तपे तीर , पृ : 177
[2] वही - पृ : 176

गोविन्द कहता है – "मेहनत सबसे बड़ी पूजा है| खेती-बाड़ी कर, ईमानदारी से अपने परिवार का पेट भरो| इज़्ज़त की जिन्दगी जीना सीखो| ऐसा करने से ही आदिवासी समाज की उन्नति होगी|"[1] गोविन्द हिंसात्मक वृत्तियों को बुरा कहकर अहिंसा के मार्ग पर चलकर अपने ऊपर हो रहे शोषणों का विरोध करने का उपदेश देते हैं|

शिक्षा के माध्यम से आदिवासी जमात जागने लगे हैं। गरीबी और भूख के बीच भी कम बच्चे ही पढ़ पाते हैं। "ग्लोबल गाँव के देवता" में एम.ए. पढने वाला एकमात्र व्यक्ति 'मेलन हेड' साहब है। उसके बाद दो बच्चे एक लालचन की भतीजी 'ललिता' और रुमझुम का छोटा भाई 'सुनील' इतिहास और गणित में एम.ए. कर रहे थे। इंटर-मैट्रिक के बाद बच्चे कई कारणों से आगे नहीं बढ़ पाते। वहाँ काम करने वाले डॉक्टर, लेखक और अन्य पढ़े-लिखे नौजवानों के प्रयासों से असुरों के मन में जागृति उत्पन्न होती है। उसी प्रकार "पाँव तले की दूब" का 'सुदीप्त' नामक आन्दोलनकर्ता आदिवासी लोगों के लिए पाठशाला चलाता है, हंसदा नामक आदमी उसके साथ है। यहाँ पढ़ानेवाले भी वे ही हैं। शिक्षा का प्रचार एवं मद्य निषेध द्वारा उनकी ज़िन्दगी में नई रोशनी आती है। सुदीप्त आदिवासियों के अंधविश्वासों को चुनौती देता है। कालीचरण किस्कू और अन्य आदिवासी अपने लोगों को कोई बीमारी होने पर डॉक्टर के पास न जाकर मंत्र-तंत्र करने वाले ओझा के

[1] हरिराम मीणा - धूणी तपे तीर , पृ : 70

पास जाते हैं। सुदीप्त इन सबका विरोध करके बीमारी का कारण बताता है। वहाँ के लोग लकवा से इसलिए मरते हैं कि बिजली कारखाने की वजह से हवा एवं जल प्रदूषित हो गया है। इससे मुक्त होने के लिए निरंतर परिश्रम करने का आह्वान देता है। वह कहता है – "तो यह जो दुखों का पहाड़ आपकी छाती पर वर्षो से अड़ा हुआ है, यह किसी तंत्र, मंत्र, पूजा, प्रार्थना से हट पाता तो इसे कालीचरण किस्कू ही क्या, बहुत पहले ही लोग हटा चुके होते। ....लेकिन आप हटा सकते हैं, बिलकुल हटा सकते हैं – लगातार कोशिश से! खोदते-खोदते एक पीढ़ी बर्बाद हो सकती है, दूसरी भी, हो सकता है तीसरी भी................लेकिन पहाड़ हटकर रहेगा अगर खोदना जारी रहा तो.............।"[1] सुदीप्त इन आदिवासियों का इलाज करवाकर दवाईयाँ भेज देता है, नई तरह से खेती शुरू करता है। उनको जागृत करके विकास के पथ पर लाने की निरंतर कोशिश करता है। वह बिजली कारखाने के मालिकों के सामने कई सुझाव रखकर उनको शोषणमुक्त करने का प्रयास करता है।

संजीव के "धार" में बिहार के संथाल परगना में स्थित तेज़ाब कारखाने वाले और महेंदर बाबू, सीताराम पण्डित जैसे ठेकेदार आदि के द्वारा मासूम अशिक्षित आदिवासियों पर हो रहे आर्थिक एवं श्रम शोषण को चित्रित किया है। संथाली आदिवासी मैना, शर्मा बाबू, असगर, सुनील, सुबास टुडू, जगन सोरेन आदि इसके खिलाफ आवाज़ उठाने के साथ इनको

[1] संजीव – पाँव तले की दूब, पृ : 81

जागृत करने का महत्वपूर्ण कार्य भी करते हैं। शर्मा बाबू उनसे आह्वान करते हैं – "तुम भोले हो अपने आदिम संस्कारों से जकड़े हुए हो। सभ्यता के फैलाव से डरकर कोने में सिकुड़ते जाने से क्या होगा? तुम्हे समय के बदलाव को समझते हुए, कुछ जड़ संस्कार छोड़ने होंगे और अपना छीना हुआ हक वापस लेना होगा।"[1] गाँव के अशिक्षित आदिवासीयों को पढ़ाने के लिए एक पाठशाला खोलता है, आदिवासी मजदूरों के लिए जनखदान का निर्माण करके सरकार से अनुमति लेता है और अंधविश्वासों, दवा-दारु जैसे नशीले पदार्थों से मुक्त कराने का भी प्रयत्न करता है। इस प्रकार ऐसे प्रयासों से उन्हें सजग बनाने तथा अपने अधिकारों के लिए लड़ने की प्रेरणा देता है। वह कहता है – "..............हम तो सिर्फ यह कह रहे थे कि ज्ञान का एक दरवाजा आपके लिए बंद क्यों रहे। आप खुद जानिये कि सरकार ने आपके लिए क्या सुविधाएँ दी हैं कागज़ों में और आपकी नियति क्या है। इस नियति को बदलने का रास्ता क्या हो सकता है? और............उसके साथ ही जिस तरह जुए इत्यादि गलत कामों से आपने तौबा कर ली है, शाराब से भी कर लें।"[2] अक्सर शोषक पैसा और मद्य की लालच में फंसाकर आदिवासियों के सोचने तथा सवाल करने की क्षमता को दबाते आए हैं। इस वजह से वह भीतर से कमज़ोर हैं। उसे आत्मविश्वास प्रदान करने के उद्देश्य से शर्मा के नेतृत्व में जन खदान शुरू करता है। इसके ज़रिए वह समझाना चाहता है कि कोयला

[1] संजीव – धार, पृ : 35
[2] संजीव – धार, पृ : 158

जितना सरकार का है, महेंदर बाबू का है उतना हमारा भी है। वह आदिवासियों का शंका निवारण करते हुए उदघोषणा करता है – "हम यह मानकर चलते रहे हैं कि कोयला सरकार का है और हम भी। हम एक-एक रोड़े का हिसाब सरकार को भेजते रहेंगे। हम उन्हें बतायेंगे कि वर्षों से खेती बारी चौपट रहने और कामधाम नहीं दे पा रहे हैं। इसलिए हमें मज़बूरी में यह काम शुरू करने दिया जाए।"[1] इस प्रकार शर्मा उनकी शोषण भरी ज़िन्दगी की सच्चाइयों को सामने रखकर सरकार की कूटनीति को पहचानने और प्रतिरोध करने का आह्वान करता है। मई दिन पर साम्यवादी पार्टी के महासचिव जयदेव, सिराज अहमद, जनखदान के मैनेजर पंडा आदि मज़दूरों के अधिकारों एवं मई दिन का महत्व समझाते हुए भाषण देता है। जयदेव बताता है – "हम मज़दूरों की कोई जाति नहीं होती, हमारा कोई धर्म नहीं है, हमारी लड़ाई तब तक चलती रहेगी, जब तक इस धरती से हर तरह का शोषण, गैर बराबरी, गुलामी और नाइंसाफी मिट नहीं जाती।"[2] इस प्रकार मज़दूरों में एकता एवं साहस जगाने की कोशिश करते हैं।

"गगन घटा घहरानी" में बिहार के संथाल परगना के उरांव आदिवासी का ज़मीदार रायबहादुर के शोषणों के शिकार होने का चित्रण किया है। रायबहादूर प्राकृतिक संपदाओं जैसे पोखरा, कुआँ आदि को अपनी निजी संपत्ति बनाकर रखता है। इस कारण पानी न मिलने पर उनकी खेती चौपट

[1] संजीव - धार, पृः 137
[2] संजीव - धार, पृ : 163

हो जाती है। कई सालों तक वे शोषण सहते रहे। अंत में सोनासाम, तपेसर मिस्त्री जैसे लोगों के कहने पर उनमें जागरण होते हैं। बनवारी जैसे अनपढ़ यों सोचता है और कहता है – "देखो भाई, पोखरा गाँव की संपत्ति है। इस पर सबका हक़ है। धान मरिए जाएगा तो पोखरा का पानी कि आदमी मूँह धोने के लिए रखेगा? कि उसमें अपना चेहरा निहारेंगे।"[1] सोनाराम, तपेसर मिस्त्री जैसे लोग प्रगतिशील विचारों वाले हैं। आदिवासी दारण पीकर दुःख-दर्द भूलते हैं। यह उनके जीवन का अभिन्न अंग है। ज़मीदार, अफ़सर आदि इनकी इस आदत का फायदा उठाते हैं। इसलिए सोनाराम इस आदत से मुक्त होने को कहता है। वह उनको जागृत करता हुआ कहता है – "दारु हमारे दिमाग को भोथरा कर देता है। हमारी समझ में कुछ नहीं आता और दिकू हमें गुलाम बना देते हैं। हमारी ज़मींन पर कब्ज़ा कर लेते हैं। हमारे ही घर से हमें बेघर कर देते हैं और हम देख भी नहीं पाते। दारु हमारी आँखें और हमारी समझ को ढंके रखता है।"[2] वे इस भ्रष्ट सामाजिक व्यवस्था को पहचानने लगे है। नवउपनिवेशवाद के इस युग में भी वे कई तरह के शोषणों से गुज़र रहे हैं। इनसे मुक्ति पाने के लिए उन्हें निरंतर सतर्क रहना होगा। तपेसर मिस्त्री कहता है – "ज़मीदारी प्रथा समाप्त कहाँ हुई? रूप बदलकर बड़े किसानों और उनके परिवारों में ही तो सिमटी है। सामंती हुकूमत भी तो यहाँ ज्यों-का-त्यों है। हाकिम और पुलिस का सहारा लेकर बल्कि और भी

---

[1] मनमोहन पाठक - गगन घटा घहरानी, पृ : 103

[2] वही , पृ : 120

परवान चढ़ी है।"[1] सोनाराम अशिक्षित गाँववालों से शिक्षा प्राप्त करने का उपदेश भी देता है। इस प्रकार समकालीन उपन्यासकार आदिवासी समाज को अपने स्वत्व एवं मूलभूत अधिकारों के प्रति सजग बनाने का महत्वपूर्ण कार्य करते हैं।

आदिवासी अस्मिता

आदिवासी जागरण ने उन्हें स्वत्व के प्रति सोचने को मज़बूर बनाया है। वे अब अपने अस्मिता को बचाने के लिए निरंतर संघर्षरत हैं। "धूणी तपे तीर" में गोविन्द एवं उनके साथियों के कारण आदिवासियों का जागरण होता है। वे अपने ऊपर हो रहे शोषण को पहचानकर गोविन्द के साथ मिलकर उसका विरोध करते हैं। इसमें 'कुरिया दनोत' नामक आदिवासी इस शोषण के बारे में बताता है – "मुझे अचम्भा इस बात का है कि इस पूरी धरती पर हम आदिवासियों की बहुसंख्या है और राजपूत बहुत कम संख्या में है। उनके साथ कुछ अन्य जातियाँ हैं। इतने कम लोग हम पर न जाने कब से राज चला रहे हैं। इस प्रकार के राज में हम भूखे-नंगे और सताए हुए लोग हैं।"[2] कुरिया एवं उसका समुदाय सदियों से सताए हुए हैं। गोविन्द के द्वारा समझाने पर कुरिया में चेतना उत्पन्न होती है। वह अपने को पहचानने लगता है। इसके साथ वास्तविकताओं का बयान करके अपने साथियों में भी अस्तित्व बोध जगाता है। इस चेतना ने अंत में अंग्रेज़ों के खिलाफ युद्ध करने की

---

[1] मनमोहन पाठक – गगन घटा घहरानी, पृ : 238

[2] हरिराम मीणा – धूणी तपे तीर, पृ : 185

प्रेरणा उन्हें दी है। लेखक ने इनके अन्दर उत्पन्न चेतना के बारे में लिखा है – "भूखे पेट, अधनंगे व दुर्बल शरीरों वाले इन लोगों के पास और कुछ नहीं, मगर बुलंद हौसला था, मंज़िल तक पहुँच सकने का इरादा था, आँखों में बहतरीन दिनों की उम्मीद की चमक थी। अपनी जी-जान उस गुरु पर न्यौछावर करने वाला यह रेला था जिस गुरु ने इन्हें सिखाया कि हमारी दुर्दशा के लिए एक सीमा तक हम स्वयं जिम्मेदार हैं। अगर हम एकजुट होकर अत्याचारों, शोषण व दमन का विरोध करें तो हालात हमारे पक्ष में बनते चले जायेंगे। गुरु की बातों का गहरा असर आदिवासी जन पर हुआ। अब वे मानने लग गए थे कि वे भी इंसान हैं। अन्य लोगों जैसे इज्जतदार इंसान।"[1] प्राकृतिक परिवेश में जीने वाले आदिवासी शोषण को भाग्य या नियति मानकर जीते आ रहे थे। लेकिन गोविन्द गुरु ने इस भाग्यवाद को तोडा और उनमें अस्तित्व बोध जगाया।

"धार" में 'मैना' नामक आदिवासी युवती अपने समाज पर हो रहे अमानवीय शोषण के खिलाफ आवाज़ उठाती है। वह खुद इसके लिए लड़ाई लड़ने के साथ अपने भाई-बहनों को भी प्रेरणा देती है। वह सरकार, ज़मींदार, कारखाने मालिक, नेतागण आदि के षड्यंत्र को जानती है। उसमें अपना अस्तित्व बोध जागृत होता है। इसलिए वह कहती है – "हमको याद आता, जब हम बच्च था, खेती से चार-छः महिना का काम चल जाता, आज एक दिन का भी नईं ! खेत-खतार, पेड़, रुख, कुआँ, तालाब, हम और हमरा

[1] हरिराम मीणा - धूणी तपे तीर, पृ : 140-141

बाल-बच्चा तक आज तेज़ाब में गल रआ है, भूख में जल रआ है। पहले हम चोरी का चीज़ है, नई जानता था, भीख कब्भी नईं माँगा, चुगली-दलाली कब्भी नईं किया, इज्जत कब्भी नईं बेचा, आज हम सब करता, आदत पड़ गया है, बल्कि कहें, इसके बिना गुज़ारा नईं।"[1] अविनाश शर्मा, मैना आदि आदिवासियों के अस्तित्व को बचाने तथा उन्हें इज्जत दिलाने की प्रयास करते हैं। उनके जागरण के फलस्वरूप उरांव आदिवासी मज़दूर अपने इलाके में इस ज़हर की फैक्ट्री को चलने न देने, तथा न खुद और न दूसरों को काम करने देने का महत्वपूर्ण निर्णय लेते हैं। क्योंकि इस कारखाने के कारण कई पारिस्थितिक संकट उत्पन्न हुए हैं जो प्रकृति के साथ आदिवासियों के लिए भी खतरनाक है। वे प्रकृति की सलामती करके खुद की रक्षा करने का क्रांतिकारी निर्णय लेते हैं।

"पाँव तले की दूब" में एन.पी.सी, ज़मीदार, सरकारी अफसर आदि के द्वारा प्रकृति एवं आदिवासी जीवन में दखल का चित्रण हुआ है। ये लोग अपने लिए अलग राज्य 'झारखंड' की मांग करते हैं ताकि उनका जीवन इन शोषकों से बचे रहे। फिलिप, गोपाल, सुदीप्त आदि जाति-धर्म की भिन्नताओं की परवाह किए बिना अपने अस्तित्व के लिए संघर्ष करते हैं। फिलिप भाषण में कहता है – "हममें न कोई हिन्दू है, न क्रिश्चियन, न मुंडा.......... ओराँव, हो या संताल – हम झारखंडी हैं, सिर्फ झारखंडी।"[2] उनके सामने

---

[1] संजीव - धार, पृ : 56

[2] संजीव - पाँव तले की दूब, पृ : 113

जाति-धर्म की समस्या, अमीर-गरीब की समस्या नहीं, अस्मिता का संकट ही मुख्य है। इसलिए उपन्यास के अंत में व्यवस्था, सरकार एवं दुश्मनों से लड़कर फिलिप आत्महत्या करता है साथ ही उस परिवेश का भी नाश करता है जिसके चलते इतने साल वे शोषित रहे। सुदीप्त ने आदिवासियों की पहचान एवं अस्तित्व को छीनकर उन्हें अराजक बनाने वाली व्यवस्था के प्रति क्रोध प्रकट करते हुए कहा है – "फिलिप के संदर्भ में आंशिक सचाई को स्वीकारने का अर्थ होगा उस बड़ी सचाई को अस्वीकारना कि शोषण, पक्षपात और दुर्नीति की जो दमनात्मक कार्यवाईयां उन्हें सम्मानपूर्वक जीने के अधिकार से वंचित करती आई हैं, वही उन्हें अराजक बनने पर मज़बूर करती है।"[1] यहाँ फिलिप अपनी आत्महत्या के ज़रिए यह सिद्ध किया कि प्रकृति ही आदिवासियों की संपत्ति है, पहचान है और उसका शोषण आदिवासी शोषण है। "सावधान नीचे आग है" में आदिवासियों के इस संकट की ओर लेखक ने इशारा किया है। इतिहास में बड़े-बड़े विजेताओं, राजा-महाराजाओं, आदि की ही कथा अंकित है। सबाल्टर्न समाज हमेशा इतिहासकारों की दृष्टि से भी दूर है। श्रीवास्तव बाबू और विष्टदा के बीच एक संवाद होता है। श्रीवास्तव सभी भारतीयों की तरह गंगा, हिमालय आदि को श्रेष्ठता देते हैं और उसे ही पुराना मानता है। विष्टदा इसका खण्डन करता है। उसका कहना है कि बिंध्या, छोटानागपुर बेल्ट,दामोदर नदी आदि हिमालय व गंगा से पुरानी है। लेकिन श्रीवास्तव इतिहास के पन्नों को सच मानता है।

---

[1] संजीव - पाँव तले की दूब, पृ वही , पृ : 121

तब विष्टदा कहता है – "तब तो आप यह भी पूछना चाहेंगे कि अगर आदिवासी भारत के मूल निवासी हैं तो आर्यों पर इनका प्राधान्य होना चाहिए? निष्पक्ष भाव से विचार किया जाए तो गंगा तो यमुना से भी छोटी है। इतिहास लिख देना एक बात है और इतिहास की हकीकत एक बात।"[1] यमुना, दामोदर आदि के साथ द्रविड़ लोग मुख्यधारा से दूर है। आर्यों के वर्चस्व ने भारत के मूल निवासियों का अस्तित्व सदियों पहले ही नष्ट किया था।

कोयलांचल में सब लोग मज़दूर है। काले-काले कोयलों के बीच, बारूद गंध सहकर जीने के लिए अभिशप्त जीव। इन काली-काली चेहरों में पंजाबी, बंगाली, बिहारी, हिन्दू, मुसलमान, सिख सब है पर किसी का अलग कोई अस्तित्व नहीं। ऊधम एक पंजाबी मज़दूर है। वह बंगाली मज़दूर आशीष से यों कहता है – "यह कोयलांचल है। यहाँ किसी की संस्कृति सुरक्षित नहीं। इस काली संस्कृति की नाद में भागते हुए आ डूबे हैं हम सभी। सब कुछ विसर्जित कर देना है इस काले जल में।"[2] इस प्रकार आदिवासी जमात एवं अन्य निम्न तबके के लोगों की ज़िन्दगी किसी दूसरे के पैरों तले कुचल पड़े हैं। "ग्लोबल गाँव के देवता" में असुर जनजाति एवं शिंडाल्को बॉक्साइट कंपनी द्वारा इनका शोषण चित्रित है। मुख्यधारा समाज असुर जनजाति को घृणा या भय की दृष्टि से देखते हैं। क्योंकि पुराण, इतिहास एवं

---

[1] संजीव – सावधान! नीचे आग है, पृ : 56

[2] वही , पृ : 77

मिथकों में असुरों को ऐसा ही चित्रित किया है। इनकी पहचान वह है जो हमने पढ़ा या सुना है। लेकिन इनका अपना अलग अस्तित्व है जिसे कोई निकट से नहीं देखा है। अपने ऊपर आरोपित इस नकली अस्मिता को चुनौती देकर 'रुमझुम' नामक असुर युवक पूछता है – "ठीक कहते हैं। असुर सुनते दो ही बातें ध्यान में आती हैं। एक तो बचपन में सुनी कहानियों वाले असुर, दैत्य, दानव और न जाने क्या-क्या! वर्णन भी खूब भयंकर। दस-बारह फीट लम्बे। दांत-वांत बाहर। हाथों में तरह-तरह के हथियार नरभक्षी, शिवभक्त, शक्तिशाली। किंतु में अंत में सारे जानेवाले। सारे देवासुर संग्रामों का लास्ट सीन पहले से फिक्स्ड। दूसरी एंथ्रोपोलोजी की 1926, 1947 या 1966 की किताबों में छपी केवल कापिन पहने मर्द और छाती तक नंगी औरतों वाली तस्वीरों वाले असुर। अब आप खुद ही तय कर लीजिए मास्टर साहब कि हम क्या है?"[1] मनुष्य के रूप में जन्म लेने पर भी असुर एक पहेली बनकर लोगों के सामने हैं। आज भी कुख्याधारा समाज उनके अस्तित्व को स्वीकारने से कतराते हैं।

आदिवासियों का अस्तित्व प्रकृति से जुड़ा हुआ है। प्रकृति के अलावा किसी और दैवी शक्ति में विश्वास नहीं रखते। प्रत्येक आदिवासी अपने को प्रकृति पुत्र मानकर उसे माँ का दर्जा देता है। इसलिए वह प्रकृति पर अपना अधिकार मानकर अपना अस्तित्व प्रकट करने लगा है। "गगन घटा घहरानी" में 'मानसुख' नामक युवक बताता है – "सोना दा, बोलता है, यह जंगल

[1] रणेंद्र – ग्लोबल गाँव के देवता, पृ : 17

हमारा है वैसे ही जैसे इस गाछ का है, यहाँ के जानवरों का है। यहाँ की नदी, झरने, पहाड़ और ये खेत भी हमारे हैं। इन्हें किसी को बेचा नहीं जा सकता। हमारा शारीर, इसकी ताकत, हमारे माँ-बाप और गाँव-समाज का दिया है, हम इसे दूसरों को गिरवी कैसे रख सकते हैं। इसलिए कोई सेवकिया नहीं है। कोई किसी का सेवकिया नहीं बन सकता।"[1] सत्ता एवं समाज ने एक ही पल में जनजाति को अपने ही भूमि का अतिक्रमण करने वालों में तब्दील कर दिया था। आज उनके अन्दर के स्वत्व बोध जाग उठा है। अपना और प्रकृति के बीच का संबंध और प्रकृति पर निर्भर जीवन के प्रति सजग है। इसी स्वत्व बोध उनमें भरी परिवर्तन लाएगा। ऐसा ही परिवर्तन "मैकलुस्कीगंज" के नवयुवकों में देख दकते हैं। 'बिफना गंझू' जैसे युवक अपनी समाज पर सदियों से हो रहे शोषण से मुक्त होने की इच्छा रखते हैं। वे निर्णय लेते हैं कि आगे उन पर कोई हाथ नहीं उठाएगा। इसलिए वह कहता है – "हम लोग अब पत्ता उबालकर नहीं पिएंगे रोबिन्बाबू..........। घोंघा-सितुआ नहीं बटोरेंगे.........। जुल्म की नरेटी चांप देंगे........। आदिवासियों को आज तक भरम में ही रखा गया है...........।"[2] इस प्रकार आदिवासी जो इतिहास बनकर, आदिम वासी बनकर तडपते हुए जीवित रहने को विवश है, आज अपने बंधनों को तोड़कर आगे आ रहे हैं।

[1] मनमोहन पाठक – गगन घटा घहरानी, पृ : 250

[2] विकास कुमार झा – मैकलुस्कीगंज, पृ : 360

आदिवासी प्रतिरोध

आदिवासी जो आज शिक्षा के माध्यम से जागृत होकर अपने स्वत्व को पहचान लेने लगे हैं, अपने ऊपर हो रहे शोषणों के खिलाफ विद्रोह करने लगे हैं। वे अपने अधिकार की मांग करने लगे हैं। "ग्लोबल गाँव के देवता" में गोनू सिंह नामक जमींदार है जो आदिवासियों से उनका ज़मीन जबरदस्ती छीन लेते हैं। ज़मीन पाने के लिए हत्या तक करता है। उसके अन्यायों के खिलाफ असुर जनजाति विद्रोह करते हैं। जब गोनू सिंह गाँव से बाहर गया तब लालचन एवं अन्य लोगों के नेतृत्व में खेत में रोपनी करने का निर्णय लेते हैं। उसमें औरतें, बच्चे-बूढ़े सब शामिल थे। इनके पास सिर्फ तीर-धनुष एवं कुल्हाड़ियाँ ही थीं। अचानक उन पर राइफल एवं बंदूकें लेकर आक्रमण होता है। सात लोग बुरी तरह घायल होते हैं। अंत में उन्हें पीछे हटना पड़ते हैं। डॉक्टर, लेखक आदि के नेतृत्व में वे कनारी के 'नवयुवक संघ' के साथ मिलकर गोनू सिंह और बबुआनी के लोगों के अत्याचार के खिलाफ आन्दोलन करने का निश्चय करते हैं। नवयुवकों में एक संघर्ष चेतना है जो मार-पीट, थाना-पुलिस आदि होने पर भी नहीं बुझा था।इसलिए उनके साथ मिलकर आदिवासी आन्दोलन को आगे बढाने का निर्णय लेते हैं। इस संघ के मदन, श्याम, जेम्स, फिलिप सब जाति-धर्मगत भेद के बिना एकजुट होकर विद्रोह करता है। क्योंकि इनकी माँ-बहन-बेटियाँ यौन उत्पीडन के शिकार हुई है। वे खनन कंपनियों के अवैध खनन, ज़मीन का अपहरण, बबुआनी लोगों द्वारा अत्याचार आदि के खिलाफ गाँववालों के मांग-पत्र तैयार करके बड़ा जुलूस निकालते हैं। इससे खदान का काम ठप्प हो जाता है। वे कलेक्टर को मांग

पत्र देकर जल्दी कार्यवाई करने का आह्वान देता है। उनके प्रयासों से सात दिनों तक खदान बंद पड़ जाता है। बाद में वन विभाग द्वारा सैंतीस गाँवों को खाली करने के आदेश देने पर गाँव के बड़े-बूढ़े, पूजार-महतो सब जुटकर तथा आन्दोलन ज़मीन के लिए शुरू करता है। वे 'जान देंगे-ज़मीन नहीं देंगे' का नारा लगाकर आन्दोलन किया |लालचन दा के नेतृत्व में 'संघर्ष समिति' का गढ़न करता है। गाँव में पुलिस और अन्य अधिकारियों का आना जाना रोकने के लिए पेड़ों को काटकर हर गाँव के मुहाने पर 'चेक नाका' बना देता है। रुमझुम प्रधानमंत्री को एक चिट्ठी तक लिखता है। पुलिस द्वारा सोमा पर अत्याचार होता है। इससे वे और भी शक्तिशाली बनकर आगे बढ़ते हैं। पुलिस थाने पर मोर्चा करते हैं। जब पुलिसवाले उन की माँ-बाप-बेटियों के बारे में गन्दी बातें करने लगता है तो लोग पुलिस पर टूट पड़ता है। पुलिस इन पर गोली चलाता है। छह लोग इसमें मर जाते हैं। बाद में वेदांग कंपनी से बातचीत करने के लिए गए बारह लोगों को भी वे मारते हैं। लेकिन इन सबके मरने के बाद भी आदिवासी समाज चुप नहीं बैठते। इसमें दिल्ली में पढनेवाले सुनील और साथियों द्वारा लड़ाई आगे बढाने का संकेत लेखक देता है।

"पाँव तले की दूब" में हंसदा एवं सुदीप्त के नेतृत्व में आदिवासी लोग महाजन के खिलाफ आन्दोलन चलाते हैं। वे इन आदिवासियों की ज़मीन व खेत जबरदस्ती हडप लिए गए थे। इसलिए ये लोग उस खेत में जबरन बीज बोकर जबरन काट ली जाने का निर्णय लेता है। वे सारा धान काटने में

सफल भी होता है। डोकरी में सरकार द्वारा एन.टी.पी.सी. के लिए आदिवासियों की ज़मीन का अधिग्रहण करते हैं। वे इनको कोई मुआवजा नहीं देते हैं। इसके खिलाफ 'विजय' नामक आन्दोलनकर्ता एक आन्दोलन चलाता है। वह ज़मीन के मुआवज़े की लड़ाई यह नारा लगाकर करते हैं कि – 'मुआवजा या फिर नौकरी नहीं तो छोडो डोकरी'। सुदीप्त भी आदिवासियों को जगाकर मुक्ति पथ पर लेने की इच्छा रखते हैं। वह यह बताना चाहता है कि वह जागकर खुद को और दुश्मन को पहचान ले। वह बताता है – "मुझे बहुतों की तरह यह नहीं लगता कि इनकी मुक्ति की लड़ाई, शेष गरीब और शोषित तबकों की लड़ाई से अलग है। सांस्कृतिक स्तर पर इसी बोध को मैं पनपाना चाहता हूँ।"[1] वह निरंतर आदिवासी को अन्धविश्वास महा आदि से मुक्त कराने के लिए आन्दोलन चलाता है।

कालीचरण किस्कू नामक आदिवासी भी अपने साथ हो रहे अन्यायों से त्रस्त होकर विद्रोही हो जाता है। वह प्लांट में चपरासी था। एक दिन गाँव की ओर से मनसा नाले पर बाँध बनाने के सिलसिले में एक दरख्वास्त लेकर सिन्हा साहब के पास जाता है तो वह उसे लेने के बजाय उसे इधर-उधर भेजता है। अंत में परेशान होकर वापस आकर सिन्हा का गर्दन पकड़कर चीखकर पूछता है – "हमको साहब लोग हियाँ से हुआँ भटकता। का

[1] संजीव – पाँव तले की दूब, पृ : 22

हम कुत्ता हैं?"[1] वह यूनियन में जाकर कार्य करने लगता है। एक बार यूनियन लोगों के साथ किस्कू भी मज़दूर की बोनस बढ़ाने के सिलसिले में सुदीप्त से मिलने आता है। जब कंपनीवाले इंकार करता है तो वह चिमनी पर चढ़कर आत्महत्या करने की कोशिश करता है। अंत में नीचे गिर कर घायल होता है और अंत में जेल में बंद किया जाता है।

किस्कू की लड़ाई को उसका बंटा गोपाल और फिलिप जैसे नवयुवक आगे बढ़ाता हैं। वे झारखंड आन्दोलन में भाग लेते हैं। फिलिप आदिवासियों को जागृत करते हुए उन्हें संघर्ष करने का आह्वान देता है। वह कहता है – "हम अपने झारखंड से आपको एक चीज़ भी बाहर ले जाने नहीं देंगे – न कोयला, न लोहा, न जिंक, न अलमुनियम, न पत्थर, न लकड़ी कुछ भी नहीं। ....आप हर तरह से अपने को तौलकर फैसला कीजिए। पर एक बात फैसला लेते समय याद रहे जहाँ आप बैठे हैं, वहाँ कभी पेड़ हुआ करते थे – कहाँ चले गए?"[2] ये नवयुवक प्रकृति एवं आदिवासियों पर हो रहे अमानवीय व्यवाहर के प्रति विद्रोह प्रकट करते हैं, वे सत्ता से सवाल करने लगते हैं। अंत में सरकार, राजनीतिज्ञ, जमींदार आदि की मिलीभगत ने उसे आत्महत्या के लिए प्रेरित करता हैं। यह भी उसका एक प्रतिरोध था। उसने जाते-जाते अपने साथ जंगल को भी आग लगा दिया था। सुदीप्त को देशद्रोही, बताकर आत्महत्या के लिए प्रेरित करता है। सुदीप्त ने मेझिया गाँववालों के मन में

---

[1] संजीव - पाँव तले की दूब, पृ: 97
[2] संजीव - पाँव तले की दूब, पृ: 113

विद्रोह की चिंगारी डाली थी जो उसकी मृत्यु के बाद भी सफल होता है। मेझिया गाँववाले सुदीप्त को अपना नायक मानकर आन्दोलन को आगे बढाते हैं। 'माझी हडाम' एक आत्मविश्वासी एवं सक्रिय नेता है। वह सुदीप्त की मृत्यु की खबर सबसे छुपाकर अपने ऊपर दायित्व लेकर आन्दोलन का नेतृत्व करता है। लेखक वहाँ भी पाठकों को एक प्रतीक्षा देता है कि सुदीप्त, गोपाल, फिलिप आदि एक-एक करके आये और गए और उनकी जगह नये-नये आ जायेंगे और अपने अन्दर की चिंगारी को जलाते रहेंगे।

संजीव के 'धार' में भी फिलिप जैसा एक पात्र है और वह है 'मैना'। वह अपने गाँव के तेज़ाब कारखाने एवं अवैध कोयला खदान के खिलाफ निरंतर आवाज़ उठाती है। इस कारण पिता 'टेंगर' और पति 'फोकल' उससे संबंध विच्छेद करता है। लेकिन वह शर्मा बाबू, सुनिल, असगर जैसे आंदोलनकर्ताओं के अन्दोलानों में सक्रिय भाग लेती है। अविनाश शर्मा जनमोर्चा का प्रतिनिधित्व करता है। आदिवासी उत्कर्ष को वह अपना लक्ष्य मानता है। उनको रोज़ी-रोटी, इलाज, शिक्षा, काम आदि दिलवाने के लिए योजनाएं बनाता है। इसको साकार करने के लिए वह जनखदान शुरू करता है। वह बताता है – "हम लोगों ने सोचा है कि एक पोखरिया खाद शुरू किया जाए। इसमें बीस गाँव के लोगों को रोज़ी-रोटी मिलेगी। ....जब कोयला निकलना शुरू होगा तो मज़दूरी भी कोयले में मिलेगी। इस खदान के ज़रिए आपका डाक्टरी इलाज, कर्ज, पढ़ाई-लिखाई का भी बन्दोबस्त

होगा।"[1] शर्मा उन्हें नई ज़िन्दगी, नया दिमाग और जीवन में नयी चेतना देता है।

"धूणी तपे तीर" में भील, मीणा एवं गरासिया आदिवासियों का अंग्रेज़ी तथा देसी सामंतों के खिलाफ हुए आन्दोलन का चित्रण किया है। गोविन्द गुरु एवं उनके साथियों द्वारा आदिवासियों से अपने ऊपर हो रहे शोषणों का विरोध करने का उपदेश देते हैं। गोविन्द एवं कुरिया बंगार प्रथा का विरोध करते हैं। गोविन्द कहता है – "राज क्या देता है तुम्हें? तुम सब भाई अपनी मेहनत की कमाई से पेट भरते हो। अगर कोई मज़दूरी करता है तो पगार दे, चाहे वह दरबार हो या कोई सेठ-साहूकार।"[2] वे राजा-ठाकुर के विरोध में आन्दोलन चलाते हैं। इसमें लेखक ने आदिवासियों द्वारा किए गये आन्दोलनों का ज़िक्र किया है। जोरिया भगत, टंट्या आदि नेताओं के नेतृत्व में कई गाँवों में अंग्रेज़ों के खिलाफ विद्रोह होता है। जोरिया के नेतृत्व में राजगढ़ पुलिस थाने पर धावा बोल देते हैं। अंत में जोरिया को फांसी देता है। दूसरी ओर आदिवासियों की हक़ के लिए टंट्या भील के नेतृत्व में भी आन्दोलन होता है। टंट्या के नेतृत्व में पुलिस चौकी, ज़मींदारों के घर आदि पर आदिवासी हमला करते हैं। टंट्या को अंग्रेज़ 'इंडियन रोबिन हुड' कहते थे। अंग्रेज़ों ने टंट्या को भी फांसी की सज़ा दिलाई थी। आगे चलकर गोविन्द एवं कुरिया के नेतृत्व में यह आन्दोलन दूसरा रूप लेता है। गोविन्द गुरु एवं

[1] संजीव - धार, पृ : 159
[2] हरिराम मीणा - धूणी तपे तीर, पृ : 67

कुरिया के नेतृत्व में अंग्रेज़ों के खिलाफ युद्ध होता है। कई आदिवासी मारे जाते हैं। गोविन्द एवं अन्य आदिवासियों को गिरफ्तार करने पर भी वे हार नहीं मानते हैं। कुरिया घायल होने के बावजूद 'धूमाल' के लिए आह्वान करता है। उपन्यास के अंत में गोविन्द गुरु उसे मन में आशीर्वाद देते हुए कहता है – "अब तू ही मेरी दाहिनी भुजा है। तू लड़ते रहना मेरे बांका भगत! धरम के कुरछेत्तर में देर-सवेर भोलेनाथ हमें ज़रूर जितायेगा!!!"[1] उपन्यास के अंत में आदिवासी प्रतिरोध कुरिया के नेतृत्व में आगे बढने की सूचना मिलते हैं।

"सावधान! नीचे आग है" में झरिया कोयलांचल के ठेकेदारों, खदान मालिकों के शोषणों के खिलाफ आदिवासी मोर्चा करते हैं। एक बार जब चंदनपुर खदान के मज़दूर इतवारी मियाँ कनपटी में कोयला लगने से मर जाता है और एक दिन के लिए खदान बंद करने की मांग करता है तो दलाल तिवारी मना करता है। तब मज़दूर उसकी लाश को उठाकर खूनी मैनिजमेंट जवाब दो! का नारा लगाकर आन्दोलन चलाते हैं। चौदह दिन तक चली इस आंदोलन में सौ से ज़्यादा मज़दूर शामिल थे। कई यूनियन नेताओं ने मज़दूरों को वापस काम पर भेजने की कोशिश की। अंत में मैनेजमेंट को मज़दूरों की शर्त मानने पड़ते हैं। उन्हें आर्च की मरम्मत और सुरक्षा का उपाय भी करने पड़ते हैं। कोयला खदान में दुर्घटना होने पर कई मज़दूर सुरंग में फँस जाते हैं। मैनेजमेंट और सरकार इनको बचाने की कोशिश तक नहीं करते। यह

[1] हरिराम मीणा – धूणी तपे तीर, पृ : 376

दुर्घटना भी खदान मालिकों द्वारा सुरक्षा सामग्रियाँ न देने पर हुई थी। कई सालों से मज़दूर अपने जान को जोखिम में डालकर काम कर रहे थे। अंत में सुरंग में फँस जाने के बाद मज़दूर विद्रोही हो उठते हैं। लेखक स्वयं लिखते हैं – "माफिया सरदारों, यूनियन के भ्रष्ट दलालों, नेताओं, तस्करों, डकैतों, बलात्कारियों, खूनियों, अफ़सरों, मंत्रियों को अपराध-बोध नहीं कचोटता और वे निर्लज्ज भाव से सीना तानकर जीते हैं। काश, कभी एक बार भी मंगतू की तरह उन्हें कोई कचोट होती, तो इस दुनिया का नक्शा ही कुछ और होता।"[1]

"गगन घटा घहरानी" में जमींदार राय बहादुर, पुलिस, वन विभाग, ठेकेदार आदि के द्वारा आदिवासी पर हो रहे शोषण के खिलाफ सोनाराम नामक आदिवासी युवक विद्रोह करता है। भरे बाज़ार में डी.एस.पी. के बेटे जुवेल द्वारा लड़की को छेड़ने पर सोनाराम उसे पीटता है। वह इस व्यवस्था को बदलना चाहता है। वह टूना पहान से कहता है – "कौन सेवकीया बनना चाहता है? कौन किसी की बेगारी करना चाहता है? सेवकीय बनना कोई नहीं चाहता। जागो दादा को तो हमारे ही समाज, हमारे ही धरम के नियम से मरे हुए ससुर के किरिया-करम के लिए कर्जा लेना पड़ा था, समाज को दारु-हंडिया पिलाने के लिए। सब ने खाया होगा, सबने पिया होगा। इसलिए दण्ड भोगना है तो पूरा समाज भोगे। अकेले-अकेले कोई क्यों

[1] संजीव – सावधान! नीचे आग है, पृ : 181

भोगेगा?"[1] एक दिन जागो की मरने की अफवाह् गाँव में फ़ैल गई तो आदिवासी तीर-धनुष लेकर रायबहादुर के घर सच जान ने के लिए जाते हैं। वे सब जमींदार से डरते थे। लेकिन सोनाराम और पैरुगुनी के द्वारा मिली आत्मविश्वास उनमें विद्रोह पैदा करता है। उनके यहाँ 'करमा' का पर्व है जो सबसे बड़ा त्यौहार है। इसलिए वे इस युद्ध को त्यौहार के रूप में लेकर नगाड़ा बजाकर नाच-गाकर जाते हैं। - "युद्ध भी एक त्यौहार है। त्यौहार भी एक युद्ध है। मनहूसियत के खिलाफ प्रसन्नता का युद्ध। मनुष्य या प्रकृति के अत्याचार सहता-सहता तो लोक जड़ हो जाता है। इसलिए वह नगाड़े की आवाज़ से मृत्यु को जगाता है।"[2] यही नहीं राय बहादुर गाँव का पोखरा, कुआँ आदि को ठेके पर ले लिया है। वहाँ से पानी न मिलने पर इनकी खेती चौपट हो जाती है। तपेसर मिस्त्री के नेतृत्व में वे रात को कुदाल, खुरपी, लेकर पोखरा काटते हैं| ये लोग खेत में दिन रात मेहनत करने पर कम मज़दूरी देते हैं और धान पर इनका कोई हक़ नहीं होता। इसके विरुद्ध झारखंड में मुंडा-उरांव आदिवासी किसान आन्दोलन किया था। यहाँ रामधनी, तपेसर, सोनाराम आदि के नेतृत्व में आन्दोलन चलता है। मज़दूर हड़ताल करते हैं। यह न्यूनतम मज़दूरी की मांग को लेकर यानी आठ घंटे के लिए कम से कम। 6 रु. 50 पैसे की मांग, चल रहा हड़ताल सरकार एवं विधायकों के मुँह पर एक तमाचा है जिसे वे और भी मज़बूत बनाना चाहते हैं। इसकी दूसरी पड़ाव था अपने ही खेत की चोरी। इस प्रकार वे अपने

---

[1] मनमोहन पाठक - गगन घटा घहरानी, पृ : 86

1.मनमोहन पाठक - गगन घटा घहरानी ,पृ.94

स्वत्व एवं अधिकारों को पहचानकर, उसके छीन लेने पर संघर्ष एवं विद्रोह करते हैं।

मैकलुस्कीगंज में झारखण्ड के आदिवासी विद्रोह का चित्रण हुआ है। एक ओर वे अलग झारखण्ड राज्य के लिए आन्दोलन करते हैं तो दूसरी ओर अपने ऊपर हो रहे शोषणों के खिलाफ। वे बिहार, उड़ीसा, मध्यप्रदेश और पश्चिम बंगाल के आदिवासी बहुल हिस्सों को मिलकर अलग आदिवासी प्रांत बनाने की मांग करते हैं। वहाँ एम.सी.सी नामक संगठन भी कार्यरत है। पुलिस ने उन्हें उग्रवादी घोषित किया है। बिफाना गंझू नामक आदिवासी युवक बताता है – "हमारे बाप दादा ने तो काट ली ....पर हम लोग....? हम लोग अब पत्ता उबालकर नहीं पिएंगे रॉबिन बाबू.....। घोंघा-सितुआ नहीं बटोरेंगे.....। जुल्म की नरेटी चांप देंगे............। आदिवासियों को आज तक भरम में ही रखा गया है.........।"[1] यहाँ नवयुवक के मन का आक्रोश व्यक्त किया है। पुरानी पीढ़ी के बहादुर उरांव ने 'आत्मरक्षा समिति' का गठन करके अपनी लड़ाई खुद लड़ने का आह्वान करता है। उन्होंने पेड़ों को काटकर ले जाने वाले अफसरों को पकड़कर बाँध दिया था। बहादुर के बाप रॉबिन नामक अंग्लो-इन्डियन युवक इन आदिवासियों के लिए सक्रिय कार्य करते हैं। इस प्रकार अशिक्षित आदिवासियों को अपनी समस्याओं से जूझने का संबल मिलती है।

[1] विकास कुमार झा – मैकलुस्कीगंज, पृ : 360

आदिवासी नारी एवं प्रतिरोध

आदिवासी औरतों अपने ऊपर हो रहे शोषणों के प्रतिरोध करने के साथ प्रकृति एवं संपूर्ण जनजातीय समाज पर हो रहे शोषणों के खिलाफ आवाज़ उठाती हैं। मध्यप्रदेश या भारत के अन्य आदिवासी इलाकों में हुए आन्दोलनों में औरतें ही नेतृत्व करते दिखाई देते हैं। ये औरतें स्वाबलंबी हैं और परिश्रमी भी। अशिक्षित होने पर भी इनमें चेतना है। वे बड़े-बड़े कारखानों व खदान मालिकों एवं कॉर्पोरेटों के खिलाफ आवाज़ उठाती हैं।

"मैकलुस्कीगंज" में बहादुर उरांव की बेटी 'नीलमणि' अपने पिता के रास्ते पर चलकर क्रांतिकारी बनती है। वह 'आत्मरक्षा समिति' का नेतृत्व लेकर आदिवासियों के लिए संघर्ष करती है। कोयला कंपनी वाले गाँव को उजाड़ने के निर्णय लेने पर नीलमणि सबको संगठित करके आन्दोलन चलाती है। वह उन आदिवासी नेताओं को दलाल कहती है जो अफसरों की चमचागिरी करते हैं। इसलिए बड़े-बड़े अफ़सर उससे डरते हैं। वे नीलमणि को शेरनी कहते हैं। जब रॉबिन को अपने पिता की तरह झूठे इल्जाम में फँसाते हैं तो गाँववालों से कहती है – "होगा क्या.....? हम सब अभी इसी दम यहीं से रांची के लिए चल पड़ेंगे...........। पाँव-पैदल..........। जान दे देंगे हम लोग.............।"[1] इस प्रकार पुलिस के सामने भी वह न्याय के लिए मांग करती है।

---

[1] विकास कुमार झा – मैकलुस्कीगंज, पृ : 434

"धूणी तपे तीर" में 'पूंजा धीरा' नामक आदिवासी गोविन्द भगत के संप सभा के साथ मिलकर शोषणों के खिलाफ विद्रोह करता है और गाँव-गाँव जाकर आदिवासियों को जागृत कराने का कार्य भी करता है। उससे प्रेरणा पाकर उसकी युवा बेटी 'कमली' भी गोविन्द गुरु की पत्नी गनी के साथ संप सभा के कार्यों में भाग लेती है और स्त्रियों में जागृति का काम करने लगती है। वह अपनी सहेलियों को अंग्रेजों एवं राजा एवं ठाकुरों के शोषण के बारे में समझाती है। वह कहती है – "जागीदारों और राज के आदमियों द्वारा ली जाने वाली बेगार का भगत लोग व गुरु बाबा विरोध करते हैं। इससे भूरेटीये नाराज़ है। उनके कहने से ही तो गुरु महाराज को डूंगरपुर कैदखाने में पटका था। तो ये सारी मोटी-मोटी बातें हैं, जिनकी वजह से भूरेटीयों और राज से हमारी अनबन हुई। तो इससे निजात पाने के लिए तो हम सब को मिलकर धूमाल करना पड़ेगा ना।"[1] उसकी बातों से प्रेरित होकर गोफन से पत्थर के टुकड़े फेंकने का अभ्यास करती हैं। इसके द्वारा लड़ाई में वे अंग्रेज़ों के खिलाफ लड़ना चाहती हैं। यह उनका पुश्तैनी नाम था। वे फसल को नुकसान पहुँचाने वाले जंगली जानवरों को भागने के लिए गोफन का इस्तेमाल करती थीं। उपन्यास के अंत में मानगढ़ पर्वत पर अंग्रेज़ों व आदिवासियों के बीच हुए युद्ध का वर्णन किया गया है। इस युद्ध में कमली एवं कई औरतों भी भाग लेती हैं। कमली इस लडाई में मर जाती है। लेकिन उससे प्रेरणा पाकर मांगिया नामक युवती इस लड़ाई को आगे बढाती हैं। वह

[1] हरिराम मीणा – धूणी तपे तीर, पृ : 315

सभी औरतों को संगठित करके, गोफन धनुष-बाण एवं कुल्हाडियों को हथियार बनाकर लड़ाई पर उतरती है। इन औरतों में जो प्रतिरोध चेतना थी उसने इस युद्ध में काफ़ी योगदान दिया है।

संजीव के "धार" में तेजाब कारखाने को बंद करने के लिए संघर्ष करती 'मैना' नामक एक संथाल आदिवासी युवती का चित्रण किया गया है। इस कारखाने के लिए ज़मीन देने वाले पिता टेंगर और पति फोकल से संबंध विच्छेद करने का साहस दिखाती है। इसके बारे में मंगर (दूसरा पति) जब सवाल करता है तो पूछती है – "काहें, मरद औरत को छोड़ सकता और औरत मरद को नई छोड़ सकता?"[1] अशिक्षित मैना इतनी जागृत औरत है कि गलती करनेवाले बाप-पति से भी रिश्ता तोड़ती है। अपनी निजी जीवन से ज़्यादा संपूर्ण आदिवासी जमात और प्रकृति से उसे तालुक है। फोकल द्वारा उसे अपनाने को तैयार होने पर भी वह तैयार नहीं होती है। वह एक स्त्री के साथ-साथ आन्दोलनकर्ता भी है। उसमें एक ओर ममता, दया, करुणा है तो दूसरी ओर शोषकों के प्रति विद्रोह, ईर्ष्या, एवं घृणा है। जेल में जेलर के बलात्कार से मिली बच्चे को अपने साथ ले आने में उसका ममतामयी रूप देख सकते हैं, वही अपने डिब्बे में छः पियक्कड़ लोगों का छेड़ने के लिए आने पर उन पर तेज़ाब छिड़काने वाली मैना में विद्रोही रूप देख सकते हैं। वह स्वाभिमानी औरत है। देह बेचने से उसे घृणा है और चोरी से भी। वह मेहनती औरत है। उसकी बहादुरी पर बेटा टिपका बोलता है - ।डरपोक हैं

[1] संजीव – धार, पृ: 14

सब, एक माँ ही बहादुर है। घर, डब्बा, बांसगडा जंगल उसे हर जगह बिजूके सी दोनों बाहें फैलाएं अभयदायिनी माँ खड़ी दिखाई देती – विराट रूपा माँ।"[1] यहाँ उसकी ममता का अंकन है।

अविनाश शर्मा, सुनील आदि आंदोलनकर्ताओं से मिलकर आन्दोलन करनेवाली एक और रूप भी उसमें है। जब महेंदर, सीताराम आदि आकर कोयले की पैसा देने को कहता है तो वह उनसे चीखकर कहती है – "साला गुण्डा सब। देख-देख के छाती पे सांप लोटता सबका की मैना अकेले कइसे खाता-पीता; काय नई हमरा गोड के नीचे रहता। नईं रएगा रे भंडवा लोग, नईं रएगा, तुमरा धौंस का नीचे, चाहे भूखा मर जाए।"[2] टेंगर, फोकल के साथ मंगर भी उसे छोड़कर जाता है, उसका छोटा बच्चा मर जाता है, गाँववाले उसे डायन घोषित करता है फिर भी वह निराश होकर पीछे नहीं हटती है। जनखदान के पाठशाला में जाकर पढ़ाई करके आदिवासियों को शिक्षा के मार्ग पर आने को प्रेरित करती है। वह सरकार, ठेकेदार एवं जमींदार के शोषण के बार में समझाती है – "धन्न मनाऊं रेल कंपनी का कि बछड़ा-बकरा कट जाता और हमको भोज खाने को मिल जाता। धन्न मनाऊं रेलवई पुलिस का, हमको सिलतोड़ी कराता, हमरा बहिन-बेटी माँ के साथ रंडीबाजी करता की हमको दू-चार पैसा भेंटा जाता, धन्न मनाऊं सरदार निहाल सिंह का कि हमरा चोरी हजम करके टरक से रेलवई कारखाना का

---

[1] संजीव - धार, पृः 88
[2] संजीव - धार, पृ : 104

कूड़ा हियां फेंकता कि हम लोहा-पीतल बीन-बान के उनको बेचके पेट चलाता और धन्न मनाऊं महेंदर बाबू का कि तेज़ाब का फैक्टरी खोल के हमरा कुछ आदमी को रोज़ी देता, चाहे कुत्ता बनाके ही काये न दे।"[1] इस प्रकार मैना अनपढ़ होने पर भी चारों ओर चलने वाले शोषणों के प्रति निरंतर सतर्क है। अंत में सरकार द्वारा जनखदान के राष्ट्रीयकरण करने पर वह विरोध करती है। बुलडोज़र जब खदान को नष्ट करने आया तो वह सीना तानकर सामने आती है। पर बुलडोज़र के नीचे पड़कर वह मर जाती है। लेखक बताता है – "जहाँ-जहाँ बुलडोज़र पहुँचता है, उहाँ-उहाँ मैना होती है। ......यह मरी नहीं, मर सकती ही नहीं, जिस दिन सब बुलडोज़र को उलट आयेगी, वह फिर हमारे बीच चली आयेगी।"[2] मैना को आदिवासी विद्रोही औरत के रूप में प्रतिष्ठत करके तथा अन्याय के जन्म होने पर वहाँ-वहाँ मैना का पुनर्जन्म चित्रित करके लेखक उसके विद्रोही रूप को पाठकों के मन में प्रतिष्ठित करता है।

"गगन घटा घहरानी" में दारोगा कच्छप ज़मीन्दार रायबहादुर के षड्यंत्र से लुपुन्गा गाँव में छापा मारते हैं। बन्दुक लेकर गाँव पर आक्रमण करता है। वे लड़कियों के साथ छेड़छाड़ भी करते हैं। इसमें जागो सेवकिया की बेटी 'हीरामनी' पर एक सिपाही जबरदस्ती करने की कोशिश करता है तो वह उसका बाँह काटकर नोंच लेती है। जब गाँव छोड़कर जंगल में रहना

---

[1] संजीव - धार, पृ: 56
[2] संजीव - धार, पृ : 209-210

पड़ता है तो हीरामनी हार नहीं मानती। मर्दों के साथ हीरामनी और अन्य औरतें खेत में धान की चोरी करने जाती हैं। हीरामनी अब पुलिस से डरती नहीं। वह पुलिस से बदला लेना चाहती है।

"ग्लोबल गाँव के देवता" में नवयुवक संघ के नेतृत्व में खदान मालिकों के खिलाफ जो आन्दोलन हुआ उसमें बुधनी, ऐतवारी आदि औरतें सक्रिय भाग लेती हैं। वे समिति का बड़ा बैनर लेकर जुलूस के आगे-आगे जाती हैं। वेदांग कंपनी के शोषणों के खिलाफ आवाज़ उठानेवाली बुधनी दी में क्रन्तिकारी चेतना है। उसके साथ ललिता एवं ऐतवारी भी हैं। ये अशिक्षित हैं फिर भी सजग हैं। वेदांग कंपनी से बातचीत करने के लिए लालचन दा, गंदूर और अन्य मर्दों के साथ बुधनी और ऐतवारी भी जाती हैं। लेकिन बम विस्फोट में वे सब मर जाते हैं। इन लोगों द्वारा आदिवासियों को विद्रोह करने की क्षमता मिलती है। इनके साथ आदिवासियों के लिए कार्यरत मणिपुर के इरोम शर्मिला, केरल की सी.के.जानु, महाराष्ट्र के सुरेखा दलवी, मध्य प्रदेश के दुवसिया देवी, छिन्दवाडा गोंड गाँव की दयाबाई आदि का ज़िक्र किया है। वे सब स्त्री हैं जो प्रकृति के साथ शोषण के शिकर हैं। लेखक ने लिखा है – "धरती भी स्त्री, प्रकृति भी स्त्री, सरना माई भी स्त्री और उसके लिए लड़ाई लडती सत्यभामा, इरोम शर्मीला, सी.के.जानु, सुरेखा दलबी और यहाँ पाट में बुधनी दी और सहिया ललिता भी स्त्री। शायद स्त्री ही स्त्री की

कथा समझाती है। सीता की तरह धरती की बेटियाँ – धरती में समाने को तैयार।"[1] पारिस्थितिक स्त्रीवाद की ओर लेखक ने संकेत किया है।

प्रतिरोध की भाषा

संजीव के 'धार' में तेज़ाब कारखाने और महेंदर बाबू, सीताराम पंडित, जैसे शोषकों, सरकार एवं पुलिस अफसरों के शोषणों और आदिवासी नारी के ऊपर किए जा रहे कई तरह के शोषणों के खिलाफ मैना, अविनाश शर्मा, सुनील आदि तेज़ भाषा में आवाज़ उठाते हुए देख सकते हैं। सरकार द्वारा सैंताल आदिवासियों का शोषण और उनके प्रति उपेक्षा पर क्रुद्ध होकर मैना कहती है – "पानी का पाइप हमरा छाती पर से गुज़रता हमको एक बूँद पानी नई, रेललाइन बगले में है, मगर हमरा खातिर सौ कोस दूर, वोट देने को हमको आज तक कोई बोला नई, हमरा चिट्ठी-पत्री निहालसिंह के दूकान के पत्ते पर आता। हमरा कोई पता-ठिकाना नई............. लेकिन हम बोलता रजिस्टर में सब है, ई बांसगडा भी, गाँव का मालिक भी है, मुखिया, महेंदर बाबू जो हियां हम दलिद्दर लोग का साथ नई रएता, उसको गैस में जलना नई पड़ता और भी बहोत कुछ है। मगर हमरा खातिर नई। काये नई-इस खतिर कि हम अपना किस्मत उनका पास बंधक रख छोड़ा है। कोइला का खजाना पे हम रएता है, फिर भी कंगाल? कब तक अइसा माफिक चलेगा?"[2] वे पहचानने लगे हैं कि इतनी सारी वन संपदाओं के

[1] रणेंद्र – ग्लोबल गाँव के देवता, पृ : 92
[2] संजीव – धार, पृ : 57

बीच रहने पर भी वे कंगाल क्यों बन रहे हैं? उनमें यह जागरण आ गया है कि बाहरी वाले ठेकेदार, अफसर उसके लिए कुछ भी नहीं करेगा, जो करना है उन्हें खुद करना होगा।

मैना एक विद्रोही, संघर्षशील एवं प्रगतिशील औरत है। उसका अपने पति फोकल को त्यागने और बाद में मंगर को पति के रूप में स्वीकारने पर गाँव भर में कई तरह के अफवाहें उठ रही थी। जब उसकी भतीजी रमिया इस पर सवाल करती है तो वह चीखकर कहती है – "………मैना का जब मन चाहा मरद किया, मन से उतर गया, छोड़ दिया, मरजी से किया, मज़बूरी से नई।"[1] यहाँ उसकी स्वच्छंद जीवन का चित्रण है। वह समाज की व्यवस्था को बदलना चाहती है।

"ग्लोबल गाँव के देवता" में रुमझुम द्वारा वेपांग कंपनी के शोषणों का चित्र मिलता हैं। वह कहता है – "आखिर हमारी छाया से भी क्यों चिढ़ते हैं ये लोग? माड भात खिलाकर, अधपढ़-अनपढ़ शिक्षकों के भरोसे, फुसलवान स्कूल के हमारे बच्चे, ज़्यादा से ज़्यादा स्किल्ड लेबर, पिऊन, क्लर्क बनेंगे, और क्या? यही हमारी औकात है। हमारी ही छाती पर ताजमहल जैसा स्कुल खड़ा कर हमारी हैसियत समझाना चाहते हैं लोग।"[2] यहाँ असुरों को किरात समझकर मुख्धारा से दूर रखने की साजिश के प्रति असुर युवक का प्रतिरोध चित्रित किया है। "पाँव तले की दूब" में कालीचरण किस्कू वन विभाग के

[1] संजीव – धार, पृ : 67
[2] रणेंद्र – ग्लोबल गाँव के देवता, पृ : 19

विभाग के अन्यायों के बारे में आक्रोश के साथ यों कहता है – "साहब, सरकार तो बहुत मेहरबान हैं न हम पर? ....ये ई मेहरबानी है न कि जिस छोटा बुरु के जंगल शालवनी से हमरा बाप-दादा काठ काट के लाता रहा, अब हमरा लड़का-जनाना दतुअन भी नहीं तोड़ने सकता?"[1] यहाँ सरकार के शोषणों के प्रति किस्कू का प्रतिरोध व्यक्त होता है। यह आक्रोश एवं निराशा उसे क्रांतिकारी बना देता है।

"सावधान नीचे आगा है" में गाँव के बेकार लड़कों के डीपो खोलने का आप्लिकेशन वापस लेने की बात सरकार एवं अन्य अफ़सर कहता है तो सत्यप्रकाश ओझा नामक बूढ़ा कहता है – "तो हमारा सन्देश भी कह दे जाकर। बाहर से आकर यहाँ हमारी छाती पर ऊ डीपो खोल सकते हैं, हम नहीं खोल सकते अपनी ही ज़मीन पर? हमी दोषी है? चूहा बन के घुसरे रहे मांद में? ....बाप का माल समझ रहे हैं? गाड देंगे चंदनपुर में, कोइला बन जाएगी लोथ।"[2] इसीप्रकार "गगन घटा घहरानी" में जमींदार रायबहादुर जैसे शोषक किसानों से उनकी खेती छीन लेते हैं। अंत में गाँव से विस्थापित आदिवासी अपने ही खेत की चोरी करने का निश्चय करते हैं। हीरामणि कहती है – "अपने खेत में इनका हक़ नहीं तो और किसका है? ....रूपया पैसा कर्जा लिया तो कर्जा भर देगा रुपया पैसा से ही।"[3]

---

[1] संजीव – पाँव तले की दूब, पृ : 37-38
[2] संजीव – सावधान! नीचे आग है, पृ :
[3] मनमोहन पाठक – गगन घटा घहरानी, पृ : 191

इस प्रकार भाषा के माध्यम से पात्रों को प्रतिरोध के मार्ग पर लेखक खड़ा कर देता है।

आदिवासी संस्कृति

आदिवासी की अपनी अनोखी संस्कृति है। उनकी संस्कृति में सजीवता, सहजता एवं सादगी होती है। उनकी संस्कृति प्रकृति से जुडी हुई रहती है। कृत्रिमता की जगह सहजता, व्यावसायिकता के स्थान पर श्रम का महत्व है। संस्कृति की आकर्षक एवं मनोरंजन अभिव्यक्ति गीत, नृत्य तथा अन्य कला कृतियों में देखा जा सकता है। इन सब में सामूहिक एवं सह-अस्तित्व का भाव देख सकते हैं जो भद्र संस्कृति में नहीं है। इसके साथ इनके देवी-देवता, पंचायत व्यवस्था, भाषा, बोली, अन्धविश्वास, रहन-सहन, भोजन, रीती-रिवाज़, पर्व-त्यौहार आदि की भी अलग पहचान हैं। बाज़ारवाद के इस युग में ये सब नष्टप्राय है। अपसंस्कृति के इस दौर में इन महान्त्व्पूर्ण पहलुओं का व्यवसायीकरण हो रहा है। आलोच्य उपन्यासों में रचनाकारों ने सांस्कृतिक विशेषताओं को भी उजागर किया है।

देवी-देवता

आदिवासी समाज प्रकृति को पूज्य भाव से देखते हैं। वे प्राकृतिक शक्तियों को देवता मानते हैं। उनके लिए प्रकृति जीवन का अभिन्न अंग है। वे सूर्य, चन्द्र, इंद्र, वरुण, शिव, धरती, आकाश, आदि में दैवी शक्तियों का आरोप करके उनको पूजते हैं। “ग्लोबल गाँव के देवता” में सूरुज देव सिंगबोंगा, धरती माई, सरना माई, पाट देवता, महादनिया-महादेव आदि

देवी-देवताओं के प्रति आस्था रखने का विवरण दिया है। वे लोग बैगा-पुजार-पाहन, पर्व-त्योहार, नक्षत्र-काल आदि देखकर सरना स्थल पर पूजा-पाठ करते हैं। इन देवी-देवताओं से यही प्रार्थना करते हैं कि उनके गाँव-घर, खेत-खलिहान, गाय-गरु, बाल-बच्चा, परिवार-टोला सबका कुशल मंगल हो। इन देवी-देवताओं के साथ पितर-पूर्वज को भी हमेशा याद करते हैं। इनको खुश रखकर गाँव निश्चिन्त होकर सो सकते हैं। ललिता नामक असुर लड़की उनके देवी-देवताओं के बारे में बताती है – "हम प्रकृति के पूजक है। हमारे महादनिया महादेव वही नहीं हैं जो लंगटा बाबा के हैं। हमारे महादेव यह पहाड़ है। यह पाट है जो हमें पालता है। हमारी सरना माई न केवल सखुआ गाछ में बल्कि सारी वनस्पतियों में समायी हैं।"[1]

"पाँव तले की दूब" में 'सिवोंगा' नामक देवता का ज़िक्र हुआ है। वह सिंगबोंगा ही है। "धार" में संथाल आदिवासियों के देवी-देवताओं का ज़िक्र हुआ है। वे 'सरना' धर्माविलंबी है। इस धर्म में 'चांदोबोंगा' (सूर्य), माराङ बुरु (देव), जाहेर आयो (देवी), गोंसाय एरा (देवी), गोंसाय (देव), मोडेको – तुरुइको (पञ्च परमेश्वर) आदि देवी-देवताओं को सर्वशक्तिमान व सर्वव्यापी मानते हैं। वे निराकार हैं। इस उपन्यास में नौकरी मिलने पर मैना कहती है – "मारा बुरु (संथालों के सबसे बड़ा देवता) का किरपा से काम मिल गया।"[2] इसी प्रकार 'बधना देवी' की भी पूजा करते हैं। टेंगर का तेज़ाब में गिरने पर

---

[1] रणेंद्र – ग्लोबल गाँव के देवता, पृ : 72
[2] संजीव – धार, पृ : 28

गाँववाले बधना देवी को पुकारते हैं। अविनाश शर्मा से मिलने मैना आधीरात को जंगल से गुज़रती है तो वह चाँद के देवता का मन ही मन आभार मानकर कहती है – “बहुत रास्ता दिखाये, चांदो अब तुम आराम से डूब सकते हो?”[1] वे बाबा बैजनाथ को भी पूजते हैं। प्राकृतिक शक्तियों के प्रति असीम श्रद्धा रखनेवाले संथालों का ग्राम देवता (गोराम बोंगा) और देश देवता (दिसोम बोंगा) में भी विश्वास है। मैना द्वारा ‘जाहिर थान’ जाकर ग्राम देवता को प्रणाम करने का ज़िक्र लेखक ने किया है। ये देवतायें पारलौकिक शक्तियों से बचाव हेतु पूजे जाते हैं तो माराङ बुरु और अन्य देवी देवतायें सभी की भलाई के लिए पूजे जाते हैं। इस प्रकार वे स्वास्थ्य, रोग निवृत्ति, परिवार की सुरक्षा आदि के लिए अपनी कुल देवी या देवता की कृपा पाने हेतु निरंतर कोई-न-कोई लोक अनुष्ठान करते रहते हैं।

“धूणी तपे तीर” में भोलेनाथ, भैरव भैमाता, महादेव आदि को मुख्य देवता के रूप में मानते हैं। लेखक ने लिखा है – “आदिवासियों के मन में उनके लोक देवताओं के अलावा कोई भगवान् नहीं था। हाँ, महादेव बाबा को वे अपना आदिदेव अवश्य मानते आये थे और पार्वती को माता के रूप में।”[2] इसमें गोविन्द गुरु द्वारा धूणी स्थल पर कहीं भी कोई देव-प्रतिमा नहीं है। भरत्या नामक आदिवासी अपने जवान बेटे की मृत्यु के बारे में सोचकर

---

[1] संजीव - धार, पृः 79

[2] हरिराम मीणा – धूणी तपे तीर, पृ : 175

कहता हैं – "भैमाता के लेखा में गबरू की इतनी सी ही उमर थी.......।"[1] आगे वह निराश होकर कहता है – "ए महादेव बाबा रे हिरकुलिया देव, अरे गुरु महाराज, बेटा तो चल बसा सो गया।"[2] उपन्यास के अंत में गोविन्द गुरु द्वारा लड़ाई के लिए उद्घोष करते हुए कहता है – "जय भोलेनाथ! जय भैरव बाबा!!"[3] इस प्रकार मीणा-भील एवं गरासिया आदिवासी शिव को आदिदेव मानकर पूजा करते हैं।

'सावधान! नीचे आग है' में झरिया एवं चंदनपुर के कोयालाचंल में बसते आदिवासियों द्वारा कापालिनी देवी या काली के मंदिर में दिया जलाने व बकरी एवं कबूतर की बलि देने का चित्रण किया गया है। उसे वे 'माँ एबारे' कहते हैं। खदान में दुर्घटना होने पर ओवरमैन पार्थ बोस यों कहता है – "माँ एबारे तुमि देखो।"4 वे अपने माल-संपत्ति सब देवी की चरणों में अर्पित करते हैं। वे 'सुरुज देव' (सूर्य) के भी भक्त हैं। "गंगन घटा घहरानी" में उरांव आदिवासियों का प्राकृतिक शक्तियों के प्रति अटूट विश्वास का चित्रण हुआ है। उनका विश्वास है कि प्रकृति से दूर रहने पर देवता क्रुद्ध हो जायेंगे। इसमें 'सिंगबोंगा' (सूर्य) के प्रति श्रद्धा भी दिखाया है। "मैकलुस्कीगंज" में भी उरांव आदिवासी का सिंगाबोगा एवं सरना देवी की प्रार्थना करते हुए चित्रित किया है। उसी प्रकार वे वनदेवी में विश्वास रखते हैं जो घने वृक्षों के बीच

---

[1] हरिराम मीणा - धूणी तपे तीर, पृ : 166

[2] वही , पृ : 168

[3] वही , पृ : 370

4. संजीव - सावधान! नीचे आग है ,पृ.65

रहकर गाँव की रक्षा करती है। ये विश्वास प्रकृति से आत्मीय संबंध स्थापित करने में सहायक होते हैं।

इसके साथ वे भूत-प्रेतों तथा मृत आत्माओं एवं पितरों में आस्था रखते हैं। उनका विश्वास है कि इनके नाराज़ होने पर कई तरह की बीमारियाँ होती हैं। इसलिए इनको खुश करने के लिए कई प्रकार के त्यौहार-पर्व मनाते हैं, पूजा करते हैं, बलि चढाते हैं, पितरों के नाम बच्चों को देते हैं आदि करते हैं।

पितरों के प्रति श्रद्धा

संथाल आदिवासी पितरों को श्रद्धा से देखते हैं। उनको वे हमेशा खुश रखना चाहते हैं ताकि उनका आशीर्वाद सब को मिले। उनका विश्वास है कि उनके कोप से अनर्थ हो जाता है। संथालों की परंपरा के अनुसार किसी की मृत्यु होने पर दो महीने तक एक कटोरी खाना बाहर रखते हैं। उनका विश्वास है कि मरे हुए व्यक्ति की आत्मा आकर उसे खा लेगा। जब मैना की छोटा बच्चा खदान में हुए ब्लास्टिंग में मर जाता है तो कटोरी भर खाना बाहर रखती है। कैली नामक आदिवासी औरत एक कटोरे में दाल-भात लाकर मैना को यों समझाती है – "ऊ बेचारा तो सरग गया देवलोक में। लेकिन अन्न खाने वाला बच्चा था, किरिया करम नई होगा तो का? उसका खातिर दू महिना तक एक कटोरी खाना अलग कर दरवाजे पे रख देना। तोर तो अशौच हो गया, ऊ वहीँ से बाहर ही बाहर आके खा लेगा।"[1] उसी प्रकार

[1] संजीव, धार, पृ : 125

टेंगर को जहाँ गाड दिया था वहाँ सीताराम पंडित के कहने पर पूजा अर्चना करने तथा साल में एक बार बकरी की बलि चढाने का आह्वान करता है। इस प्रकार पूर्वजों एवं बुजुर्गों के प्रति आदर सम्मान एवं श्रद्धा का भाव है। जो साधन उन्हें पुरखों से प्राप्त है उसका उपभोग करते समय पितरों के प्रति कृतज्ञता का भाव जागता रहता है। उनकी स्मृतियों को बचाए रखने के लिए उनकी पूजा करते हैं। "मैकलुस्कीगंज" में आदिवासियों के भूत-प्रेत के प्रति डर को व्यक्त किया है। इमली और जामुन के पेड़ पर भूत का निवास मानते हैं। इसलिए रात को उस रास्ते पर जाने से डरते हैं।

अंधविश्वास

आदिवासियों के बीच कई अंधविश्वास प्रचलित हैं| यहाँ पर नामकरण, बीमारी आदि से जुड़े अंधविश्वासों तथा बाबा और ओझा लोगों के प्रति श्रद्धा आदि पर विचार किया गया है|

नामकरण

आदिवासी लोग मन्त्र-तंत्र में विश्वास रखते हैं। उनके बीच कई अंधविश्वास प्रचलित हैं। "ग्लोबल गाँव के देवता" में गन्दूर नामक असुर युवक के नामकरण की अजीब कहानी बताया है। गन्दूर के पहले ही माँ-बाप को बच्चे होते थे। लेकिन वे बचते नहीं थे। इसलिए गन्दुर के जन्म के समय टोटका किया गया। उसकी दादी ने उसे पैदा होते ही कपडे में लपेटा और घर के अहाते के बाहर कूड़े के ढेर पर धर दिया। थोड़ी देर के बाद जब देखा तो

बच्चा जीवित था। कूड़ा का ढेर 'गन्दूर' कहा जाता है। इसलिए घरवालों ने उसको गन्दूर नाम दिया। वे पितर-पूर्वजों को नामकरण के समय याद करते हैं। उनका विश्वास है कि ऐसे अवसरों पर वे उनके बीच उपस्थित होते हैं। नए जन्मे बच्चे के नामकरण यों करते है – "दोना के पानी में पूर्वजों का नाम ले-लेकर चावल के दो-दो दाने डाले जाते। जिनके नाम से दाने पड़ते और डूब जाते तो यह माना जाता कि वह पितर बच्चे को अपना नाम देने को इच्छुक नहीं। जिनके नाम से डाले गये दाने न केवल पानी में तैरते रहते बल्कि उनके सिरे भी सट जाते तो, उसी पित्तर का नाम बच्चे को मिल जाता।"[1] उनके यहाँ पितरों पूर्वजों को देवता मानकर सम्मान करते हैं।

"गगन घटा घहरानी" में पैरुगुनी नामक ओझा के नामकरण के पीछे प्रचलित अंधविश्वास की ओर लेखक ने संकेत किया है। उसके जन्म के समय धरती पर सबसे पहले पैर ही पड़े थे। गाँव में लड़का पैर से पैदा हुआ है तो उसमें ईश्वर का अंश है ऐसा मानते हैं। इसलिए उसका नाम 'पैरुगुनी' पड़ गया| गाँव में किसी को कमर दर्द होने पर पैरुगुनी के पैरों से उसकी पीठ छुआने पर दूर होता है। इस प्रकार पैरुगुनी में दैवी शक्तियों का आरोप करते हैं।

बीमारी

आदिवासी कई तरह के मन्त्र-तंत्र में विश्वास रखते हैं। उन्हें कोई बीमारी या और कोई समस्या होने पर उसकी जडें खोजने के बदले किसी

---

[1] रणेंद्र - ग्लोबल गाँव के देवता, पृ : 29

बाबा के पास जाकर मन्त्र-तंत्र करते हैं। बीमार व्यक्ति का इलाज न करने पर वह जल्दी मर जाता है। "पाँव तले की दूब" में बिजली कारखाने की वजह से हवा-पानी के प्रदूषित होने पर आदिवासी लोग कई तरह की बीमारियों से ग्रस्त होते हैं। वे डॉक्टर के पास न जाकर मंत्र-तंत्र करते हैं, जादू-टोना करते हैं। यहाँ 'माझी हडाम' नामक आदिवासी की बेटी लकवा से ग्रस्त होती है तो वह रोग कुदाने के लिए जाता है। उनका विश्वास है कि रोग कुदाने पर वह रोगमुक्त हो जाएगी।

"मैकलुस्कीगंज" में आदिवासी जंगल में वन देवी का वास मानते हैं। इसलिए वे पेड़-पौधे काटने से डरते हैं। एक बार जब ठेकेदार ने वहाँ के पेड़ों को काटा तो खून की उलटी करके मर जाता हैं। इसमें वे वनदेवी का श्राप देखते हैं।

बाबा और ओझा

आदिवासी अशिक्षित होने के कारण जादू-टोना, प्रेत-पिशाच आदि के साथ कपट बाबाओं में भी विश्वास रखते हैं। "ग्लोबल गाँव के देवता" में शिवदास बाबा द्वरा कंठी अभियान चलाना, कंठी पहनने वालों द्वारा मांस न खाना, हडिया-दारू छोड़ना, आँगन में पीपल, तुलसी लगाना, सियानियों को सवेरे जागकर रात को पति के पैर छूना, अखाड़े में हर गुरूवार को भजन गाना, गैर-कंठी वाले आदमी का छुआ पानी तक न पीना, काला वस्त्र, काले गाय-गरु, मुर्गी, सूअर, आदि से दूर रहना आदि कड़े नियम गाँववालों पर थोपने का चित्रण हुआ है। काले जानवर को पिशाच कहकर गाँववालों को

उनके गाय-बछड़े व मुर्गी को बेचने पर मज़बूर करता है। कम दाम में वे इसे हाट में बेचते हैं। वहाँ से यह बाबा और साथी लोग इसे खरीदकर दुगुनी दाम में बाहर बेचकर पैसा कमाते हैं। वह बच्चियों के लिए स्कूल खोलकर यौन व्यापार भी करता है। नवयुवकों को अपने पक्ष में लाने के लिए बड़े-बड़े वादे देते हैं। "गगन घटा घहरानी" में जमुना पंडित की बातों में आकर आदिवासी लोग समय और थकान की परवाह किए बिना मेहनत करते हैं। उसका कहना था कि एक ही दिन में रोपनी पूरी नहीं होगी तो धान में दाना नहीं भरेगा।

आदिवासी क्षेत्रों में डायन से बचने के लिए ओझा का सहारा लेते हैं। ये झाड-फूंक के अलावा जंगली जड़ी-बूटियों के अच्छे जानकार होते हैं। इन्हें कभी-कभी देवड़ा भी कहते हैं। इसकी भूमिका सकारात्मक होती है। समाज के हित के लिए काम करनेवाले इन ओझाओं को समाज में आदर के साथ प्रतिष्ठित किया है। जादू-टोना, अंधविश्वास आदि के साथ ओझा भी इनकी संस्कृति का अभिन्न अंग है।

"पाँव तले की दूब" में मंत्र-तंत्र में फँसे हुए कालीचरण किस्कू का चित्रण किया है। प्रत्येक आदिवासी गाँव में एक ओझा होता है उसके कई चेले भी होते हैं। मेझिया गाँव के ओझा सुधीर मुरमू है और किस्कू उसका चेला है। वे इस ओझा के प्रति अंधविश्वास रखते हैं। ओझा के कहने पर बाँझ मंगरी को डायन घोषित करके मार देते हैं। वे भूत-प्रेत, मंत्र-तंत्र के ज़रिए सभी समस्याओं का हल निकालते हैं। इस ओझा को किस्कू 'जान गुरु' कहता है। किस्कू के पास कपडे की थैली है। उसमें बाघ का नाख़ून, हाड आदि होते हैं।

जब वनविभाग द्वारा जंगल काटने पर पेटीशन देने की बात होता है तो किस्कू इसे मना करके अपने मंतर से ठीक करने की बात करता है। शीला केरकट्टे नामक औरत के प्रति सुदीप्त को प्रेम होता है तो शीला को अपने मंतर से बाँध के ले आने की बात करता है। उसी प्रकार थैले से हाड निकालकर दूर पड़े छोटा बुरु पहाड़ की ओर देखकर हाड घुमाकर उसे हटाने की कोशिश करता है। पहाड़ के उस पार स्थित अपने ससुराल को बचाने के लिए पहाड़ को पूरा न हटाने का ढोंग रचता है। अशिक्षित लोग किस्कू की बातों में आ जाते हैं। “धार” में ओझा (जानगुरु) का ज़िक्र है। उसके कहने पर मैना और उसकी माँ को गाँव की विपत्तियों का दोषी ठहराने तथा उसे डायन मानने का चित्रण हुआ है।

“गगन घटा घहरानी” में पैरुगुनी नामक ओझा है। उसकी गले में ढेर सारी मालाएँ होती हैं, जो बाघ के नख और फूलों के बीजों से बनी हुई हैं। गाँव के किसी को सांप के काटने या बिच्छु के डंसने पर, घर में भूत आने पर पैरुगुनी के पास आते हैं। “सावधान! नीचे आग है” में परभू ओझा को सब मानते हैं। किसी के बीमार होने पर सब परभू के पास आते हैं। “मैकलुस्कीगंज” में झाड-फूंक एवं मंत्र-तंत्र करनेवाले पारसनाथ का चित्रण किया है। उसके दादा बिहार के घनघोर जंगल में रहनेवाले गंझू और मुंडा उरांव आदिवासियों के बीच झाड-फूंक करने व जड़ी देनेवाला अकेला ‘ओझा-गुनी’ था। सब उनको सम्मान करते थे। ओझा को वे लोग ‘जानगुरु’ भी कहते हैं। वे इनमें दैवीय शक्तियों को देखते हैं।

डायन

जनजातियों में जादू-टोना, अदृश्य व अज्ञात शक्तियों के प्रति गहरी आस्था है। कुछ व्यक्ति जादू के प्रभाव से लोगों में, पशुओं-पक्षियों, पेड़-पौधों व खेतों में बीमारी फैलाने या उनको हानि पहुँचाने जैसे अहित कार्य करते हैं। उनका विशवास है कि ऐसी बुरी शैतानी शक्ति किसी स्त्री में प्रवेश करके 'डायन' बनकर बदला लेते हैं। डायन के प्रकोप से बच्चे का खून पीकर उसे सुखा देता हैं, सोते हुए व्यक्ति का कलेजा निकाल लेता है, गाँव के देवी-देवताओं को गाँव के विरुद्ध खड़ा करता है। इस प्रकार के अनिष्टों से बचने के लिए डायन को गाँव से भगा देते हैं। डायन उस स्त्री पर आरोपित करता है जिनका बच्चा नहीं हुआ हो या जिनके पति की अकाल मृत्यु हुई हो। इन्हें 'डायन' या 'योगिन' कहकर प्प्रताडित करते हैं।

"पाँव तले की दूब" में मेझिया गाँव में आदिवासियों द्वारा एक औरत को डायन घोषित करके मार डालने का ज़िक्र किया है। उसका नाम 'मंगरी' था। वह बाँझ थी| इसलिए उसको डायन करार देकर पीट-पीटकर बेहरहमी से मार डाला था। संजीव के "धार" में मैना और उसकी माँ को डायन घोषित करने का चित्रण हुआ है। मैना जब छोटी थी तब उसकी माँ को डायन कहकर गाँव से भगाया था। इसके पीछे महेंदर बाबू का षड्यंत्र था जो उसके पति टेंगर और अशिक्षित गाँववाले नहीं जान पाये। ये लोग गाँव में कोई भी अनहोनी होने पर उसे भूत-प्रेत का किया मान लेते हैं। 'शंकर काका' नामक आदिवासी के मुर्गे गायब हो जाते हैं तो सब लोगों ने कहा कि उसे भूत

ने उठा लिया है। मैना की तरह उसकी माँ भी तेज़ाब कारखाने के खिलाफ थी। इसको लेकर टेंगर के साथ झगड़ा होता था। इस समय श्याम का भैंस तेज़ाब मिले पानी पीकर मर जाता है। महेंदर बाबू जनगुरु (ओझा) को दो सौ रुपये रिश्वत देकर इसका दोष मैना की माँ पर थोप देता है। ओझा की बातें सभी गाँव वाले मान लेते हैं। ओझा के कहने पर गाँववाले उसे घेरकर डायन-डायन कहकर परेशान करते हैं। उसकी माँ से दो सौ रूपया मांगते हैं। उसके पास पैसा नहीं था तो उसे गाँव छोड़ना पड़ता है।

मैना की माँ की तरह वह भी तेज़ाब कारखाने एवं अफसरों के खिलाफ है। इसलिए उसे भी डायन घोषित करता है। उसके घर के कुँए को सब लोग संदेह भरी दृष्टि से देखते हैं। गाँववालों के अनुसार दुलाल की भैंस का मरना, बुला के लड़के का बीमार होना, मिरांडी का हँड़िया पीकर मरते-मरते बचना सब मैना के कारण ही है। इस प्रकार मैना पर आरोपण करके उसको लेकर गांववालों के मन में विद्वेष एवं डर पैदा करते हैं।

“धूणी तपे तीर” में भरत्या नामक आदिवासी की पत्नी ‘ननकी’ को गाँववाले डायन घोषित करते हैं। लेकिन वह अपने बेटे ‘गबरु’ की मौत के कारण बावली हो गई थी। आदिवासी परंपरा के अनुसार जादू-टोना, तंत्र-मंत्र आदि करने पर भी वह ठीक नहीं होती है। लेखक ने लिखा है – “वह आज भी पागल है। टापरी के आगे आँगन में गुमसुम बैठी रहती है। जब कभी कोई युवक उसे सामने आता-जाता दिखता है तो वह उसकी ओर भागने का प्रयास करती है। नासमझ लोग तो उसे बावली से भी ज़्यादा डायन व भूतनी

का नाम देते रहे हैं और बालक उससे डरते हैं।"[1] 'मेवाड़ भील कोर' ने आदिवासी समाज में व्याप्त अंधविश्वासों व कुप्रथाओं का विरोध किया था। सन 1852 में 'मेवाड़ भील कोर' के सिपाही 'संपला' ने एक बूढ़ी औरत को डायन के शक में मार दिया। उस सिपाही को सात वर्ष की सजा दिलवाई गई। उस समय डायन की हत्या के आरोप में कई आदिवासियों को कठोर दण्ड दिया गया। सन 1854 में ब्रिटिश रेजिडेंट ब्रुक्य की सलाह पर मेवाड़ के महाराणा ने एक आदेश ज़ारी दिया जिसके द्वारा डायन अत्याचार एवं वध पर रोक लगायी गई।

बलि प्रथा

आदिवासी जनजातियों में बलि प्रथा बहुत प्रचलित है। रोग से मुक्ति अथवा देवी-देवताओं को प्रसन्न रखने के लिए बलि दी जाती है। ज़्यादातर मुर्गियों की बलि दी जाती है। प्रत्येक जनजाति प्रत्येक अवसर पर बलि देते हैं। संथाल बीमारियों एवं दुर्घटनाओं से मुक्ति के लिए बलि चढाते हैं तो भील शीतला माता की शांति के लिए भैसों की बलि देते हैं। गोरो जाति में विवाह के अवसर पर मुर्गे की अंतड़ियों देखकर ही दाम्पत्य जीवन में सुख-दुःख का निर्णय किया जाता है। संथालों में डायन की बलि चढाते हैं। आदिकाल के उड़ीसा राज्य की खौंड (कंघ) जाति में नरबलि की प्रथा प्रचलित थी। शिक्षा, वैज्ञानिक प्रौद्योगिकी आदि के कारण बलि देने की प्रथा धीरे-धीरे समाप्त हो रही है।

---

[1] हरिराम मीणा - धूणी तपे तीर, पृ : 166-167

"ग्लोबल गाँव के देवता" में भौरापाट और आसपास के आदिवासी इलाके में प्रचलित विचित्र अंधविश्वास का चित्रण हुआ है। गाँववालों का विशवास है कि धान को आदमी के खून में सानकर बिचड़ा डालने से फसल बहुत अच्छी होती है। इस कारण हर खरीफ के सीज़न में 'मुड़ीकटवा' घूमते हैं। लालचन घायल हो गया तो वह बताता है कि यह मुड़ीकटवा से टकराने पर हुआ है। कमटी गाँव के एक मुड़ीकटवा है 'बुधराम सिंह खरेवार'। उसकी आँखें बड़ी-बड़ी है, चेहरा भयावह है और हमेशा नशे में रहता है। ये मुड़ीकटवा लोहे का तेज़ कटार और बोरा लिये अनजान इलाके में घूमते हैं। देवी को जब बलि की ज़रूरत महसूस होती है तब नगाड़े की आवाज़ आता है। तब यह मुड़ीकटवा बाहर आकर किसी को मारता है। बलि के शिकार व्यक्ति को 'पूजा' कहता है। उनका विश्वास है कि देवी की शक्ति के कारण देवी पूजन के सीज़न में बलि खुद-ब-खुद गाँव आ जाता है। गाँव के लोग इस पर कितना विश्वास करते हैं यह लालचन के इन शब्दों से व्यक्त होता है – "आप ही लोग बताइए, देवी को नाखुश करके पूरा गाँव पर संकट मोल लें हम लोग? मज़बूरी में करना पड़ता है ई सब। आप लोग दो अक्षर पढ़ गए हैं तो सब कुछ मज़ाक लगता है। हँसी -मज़ाक नहीं है समझे! फेरा में पडियेगा तो समझ में आ जाएगा।"[1] लोग आज पढने लिखने लगे हैं, फिर भी वे इस विश्वास को मानते हैं। लेकिन आज वे मारने के बजाय उसकी कानी ऊँगली

[1] रणेंद्र – ग्लोबल गाँव के देवता, पृ : 13

थोडा चीरकर खून की कुछ बूँद ही देवी-थान चढाते हैं। इस प्रकार करने पर भी उनकी देवी खुश हो जाती है।

"सावधान! नीचे आग है" में कापालिनी देवी के मंदिर में देवी को खुश करने के लिए बकरी और कबूतर की बलि देने का ज़िक्र हुआ है। मंदिर के सामने बलि की वेदी है। वहाँ पर बकरी का गला काटता है। वहाँ बड़े-बड़े मंत्री अफ़सर आकर कबूतरों को दाना चुगाते हुए छुरी से गर्दन काट देता है। बलि देने के बाद कभी-कभी वे बकरी आदि के मांस खाते भी हैं। इस प्रकार बलि देने की प्रथा कानून द्वारा रोक दिया गया है तो भी छिप-छिप कर वे ऐसा करते हैं।

लोक गीत

लोक गीत आदिवासी संस्कृति का श्रेष्ठ पक्ष है। यही उनके सुख-दुःख का सबसे बड़ा संबल है। वे कठिन से कठिन दुखों व आनंद को लोक संगीत से व्यक्त करते हैं। वे दिन भर के कठोर परिश्रम के बाद रात को संगीत के ताल-लय में डूब जाते हैं। इसके अलावा जन्म से मृत्यु तक के विभिन्न संस्कारों, विभिन्न अनुष्ठानों, पर्व-त्योहारों में तरह-तरह के गीत गाते हैं। परिश्रम के वेला में, हडिया-मदिरा पीकर आराम करते हुए भी वे गीत के ताल-लय में डूब जाते हैं। "ग्लोबल गाँव के देवता" में लेखक, रुमझुम, एतवारी, लालचन और पत्नी के साथ हडिया पीकर, कटहल भात खाकर लालचन की पत्नी की 'देवर-भाभी' वाले गीत में डूब जाने का चित्रण है :

"काहे रे देवरा मन तोरा कुम्हले,

काहे रे मन सुखी गेला रे,

भूखे रे देवरा मन तोरा कुम्हले,

पियासे मन सुखी गेला रे।"[1]

इससे उनका दुःख एवं गरीबी का चित्रण मिलता है। असुर लडको द्वारा असुर लड़कियों के वेश्या बनने या उसके साथ बलात्कार जैसे यौन शोषण के बारे में तथा उन्हें सावधान करने के लिए गीत गाने का चित्रण है। लड़के इस प्रकार गाते हैं –

"काठी बेचे गेले असुरिन,

बांस बेचे गेले गे,

मेठ संग नज़र मिलयले,

मुंशी संग लासा लगयले गे,

कचिया लोभे कुला डूबाले,

रूपया लोभे जात डूबाले गे।।"[2]

इस गीत का अर्थ यों है – लकड़ी और बांस बेचने गयी असुरिन, तुमने खदान के मेठ के साथ नज़रे क्यों मिलायीं? तुमने खदान के मुंशी के साथ लगाव क्यों बढ़ाया? पैसे (कचिया) के लोभ में तुम कुल का नाम डूबा रही हो? रुपये के लोभ में जाति का नाम डुबा रही हो।

---

[1] रणेंद्र - ग्लोबल गाँव के देवता, पृ : 25-26

[2] रणेंद्र - ग्लोबल गाँव के देवता, पृ : 38

आदिवासी गीतों में प्रकृति भरा-पड़ा देख सकते हैं। उसमें चाँदनी रात, सूर्योदय, पतझड़, पानी, जंगल, फूल-पौधे सबका सुन्दर वर्णन मिलते हैं। यहाँ लेखक को अपने आदिवासी मित्रों से ऐसे एक गीत सुनने का मौका मिलता है –

"फुलझर पहाड़े, गुड मीठा चुआं,
रसा-रसा पझराय पानी,
रसा-रसा पझराय।
पानी गे पझराय, निरमला पानी,
सैया संगे भरब पानी,
सोना संगे भरब
रसा रसा पानी
रसा रसा
फुलझर पहाड़े.............।"[1]

इसमें यहाँ बताया गया है कि फुलझर पहाड़ पर गुड-मीठ चुआं है, जहाँ से रसे-रसे, धीरे-धीरे पानी झर रहा था या बह रहा था। उसी निर्मल पानी को सैयाँ संग जाकर भरने की कामना एक साथ जमुनिया, चाँदनी और गुलईंची फूल कर रही थी।

---

[1] रणेंद्र - ग्लोबल गाँव के देवता, पृः 47

असुर एवं अन्य आदिवासियों को वन-विभाग द्वारा जंगल से बेदखल करने का षड्यंत्र रचता है तब यह सुनकर रुमझुम एक गीत गाता है। उसमें संपूर्ण जमात की हताशा झलक रही थी :–

“शिकारियों के बूटों की धमक
साफ़ सुनाई दे रही है
बच नहीं पाओगे
जख्मी हिरण
बच नहीं पाओगे।”[1]

रुमझुम द्वारा असुर जनजाति पर सालों से हो रहे शोषण से हताश होकर दूसरा गीत गाने का चित्रण है :–

“.............हमारी रात
भरपूर काली रात होने का
आश्वासन हमें दे रही
उदास हवाएँ
दूर कहीं विलाप कर रही
एक जख्मी हिरण
अपने पीछे आते हुए
शिकारी की आवाज़ सुनकर
अपने आप को

[1] रणेंद्र - ग्लोबल गाँव के देवता, पृ : 78-79

अपनी पूर्ण मृत्यु के लिए

तैयार कर रहा है..........

अपनी पूर्ण मृत्यु..........।"[1]

"पाँव तले की दूब" में एक आदिवासी गीत का चित्रण किया है –

"हो-हो-हो-हो तेञ लाडणयेन

कोयेक-कोयेक तेञ मोकायेन

हाय रे आदिवासी बोयहा

मित घाव हो वाड पे गोंङ लेत।"[2]

(पुकारते-पुकारते मैं थक गया और देखते-देखते मैं निराश हो गया, फिर भी ऐ आदिवासी भाई, एक बार भी तुमने मेरी आवाज़ न सुनी।)

संथाल आदिवासियों को प्रकृति के प्रति असीम लगाव है। वे प्रकृति और पेड़-पौधों का महत्व अच्छी तरह जानते हैं। संजीव के "धार" में चतरपुर जनखादन में वन विभाग द्वारा दिए गए पौधों को सड़क के दोनों किनारे लगाते समय संथाली गीत गाने का चित्रण किया है :-

"नोडाक केदा लाङ दुआर केदा

बांद केदा लाङ पुखुर केदा

रोहोयालङ सारी नुथे से तालेदारे

गूंजुक गुरूक रे अतुय तोहन!"[3]

---

[1] रणेंद्र – ग्लोबल गाँव के देवता, पृ : 90-91
[2] संजीव – पाँव तले की दूब, पृ : 44
[3] संजीव – धार, पृ : 144

(हमने घर बनाया, द्वार बनाया, बाँध बांधे और पोखरे खोदे। प्यारे चलो अब हम आम एवं ताड़ के पेड़ भी लगायें, क्योंकि मृत्यु के बाद वही हमारी यादगार रह जायेंगे।) यहाँ वृक्षारोपण का महत्व कहा गया है।

जनखदान के एक सम्मलेन समारोह में मैना के नेतृत्व में एक पारंपरिक सैंताली गीत गाती हैं :–

"लेयाड गाडा धारे रे, हमन हमन दारे
काहाऊ आकान पेडा नाई, वाहा थारे थारे
वाहा लागि हायरे मने, जिऊंगा आखान थारे।"[1]

यहाँ जनखदान को वे शिशु के रूप में देखते हैं। इसका अर्थ है – बारहों महीने पानी से भरे रहने वाले छोटे से नाले के बगल के फूल वाले पेड़ में जगह-जगह फूल खिले हैं रे शिशु। फूल बगीचे में है और शिशु है दूर। फूल के लिए आकुल है शिशु।

संथाल आदिवासियों का जागरण गीत भी प्रसिद्ध है। इसमें जनखदान के सम्मलेन के अंतिम दिन एक सांस्कृतिक दल द्वारा नृत्य के साथ यह गीत गाते हैं :–

"दे वाहा बिरिट पे – ए लगन लगन बिरिट पे – ए
जापित रे दो आदो वोया वन वन ताहे ना
लुदनिदा पारो सेना मासली सेटा सेटेरे ना

[1] संजीव – धार, पृ : 162

नाउवा बेडा हि्डी-झिरी कुवरे राका वेन

माझरा-माझरा रामकाताते आदो वनवन भुलोया

बुलकाते आदो वोया वन वन ताहे ना।"[1]

(सभी लोगों, जागो, उठ खड़े हो, जल्दी उठ खड़े हो। अब हम सोये नहीं रहेंगे, रात बीतने को आई है, सुबह फिर लौट आई है। सूर्य की तेज रश्मियाँ चारों ओर झिलझिला उठी है। (रामनामी ओढ़े) साधू लोगों के धोखे में अब हम नहीं पड़ेंगे और नशे की खुमारी में भी नहीं पड़े रहेंगे हम, अब हम जग उठेंगे ही।)

"सावधान! नीचे आग है" में केतकी नामक आदिवासी लडकी द्वारा रोपनी का गीत गाने का चित्रण है। वह गाती है –

"हाय! नून-तेल लकड़ी की चक्कर में ईंधन की तरह

झुलस गयी सुंदरी तो!

पइयाँ परत हौं, मैं चंदा सुरुज के, मोला तिरिया

जनम जनि देऊ सुआ रे..............।"[2]

इस गीत में कोयालाचल का अवसाद भरा चित्र है।

वे धार्मिक अनुष्ठानों-पर्व-त्योहारों के अवसरों पर सामूहिक गीत गाते हैं। कापालिनी देवी के मंदिर में ये लोग प्रत्येक दल बनकर बैंड-बाजे के साथ जाते हैं। और वहां इकट्ठे होकर दुर्गापूजा के अवसर पर औरते यों गाती हैं :-

---

[1] संजीव - धार, पृः 166

[2] संजीव – सावधान! नीचे आग है, पृ : 69

"कांचे ही बांस की बहँगिया, बहँगी लचकत जायु,
बनह बड़का बाबा सहइया, दौरा वहाँ पहुँचाय।
....
....
बाटहिं पूछिहैं बटोहिया, दौरा किन कर जाए,
आँखि के अंधा रे बटोहिया दौरा छठिय मैंचा के जाय
दौरा सुरुज देव के जाय ।"[1]

"धूणी तपे तीर" में चाँदनी रात में आदिवासियों की गीत सुनाई देने का चित्रण हैं :-

"काली रे कोयलडी ने वन बगडा ने गयी तीरे
वन बगडा में रेती ने बनफल वेणी खाती रे
बनफल वेणी खाती ने सरवर पानी पीती रे
...."[2]

इसके अलावा कानहेंग आदिवासी को लेकर प्रचलित गीत भी है। वह थूर पाल का गमेती है जो आदिवासियों को अकाल से बचने का उपदेश देकर मर जाता है:-

"भाईया थूर बाजी रे जी कानहेंग हुरमाल रे
भाईया पड़जों, काडी काले कानहेंग हुरमाल रे
भाईया मगरो खुटो सारो कानहेंग हुरमाल रे

---

[1] संजीव - सावधान! नीचे आग है, पृ: 144
[2] हरिराम मीणा – धूणी तपे तीर, पृ : 129

भाईया गायें मरवें लागी कानहेंग हुरमाल रे”[1]

आदिवासियों के कई परंपरागत नृत्य हैं जिनमें हाथजोडीया, पगपासणियाना, जालणियाना, उड़णियाना, फदुकचाला, मूरिया, गैर, गवरी आदि नृत्य विधाएँ थीं। इस समूह गीत में झाँझ, मजीरा, खरताल, थाली, मटका, मादड, ढोलकी, बाँसुरी जैसे वाद्य यंत्रों का भी इस्तेमाल करते हैं। इसमें फदुकचाला नृत्य के साथ गीत गाने का ज़िक्र हुआ है :–

“काली रे कोयलडी ते वन बगडे ने गयी तीरे
वन बगडा में रेती ने वनफल वेणी खाती रे
बनफल वेणी खाती ने सरवर पानी पीतरी रे।”[2]

आमलिया गाँवव के धूणी स्थल पर इकतारा के साथ हालिया भगत द्वारा ‘हीडा गीत’ गाने का भी ज़िक्र किया है :–

“हूँ.......ऐ ....ही............डो........
हूँ.......ऐ ....ही............डो........
हूँ.......ऐ ....ही............डो........”[3]

“गगन घटा घहरानी” में आदिवासी औरतों, लड़कियों द्वारा गीत गाकर अँधेरी रात को खेत से अपने घर जाने का चित्रण है। वे दिन भर ज़मींदारों के खेत में रोपनी करके थक चुकी थीं। रात भी गहरा हो गया था।

---

[1] हरिराम मीणा - धूणी तपे तीर, पृ: 143
[2] हरिराम मीणा - धूणी तपे तीर: 204
[3] हरिराम मीणा - धूणी तपे तीर, पृ : 287

वे अपनी थकान दूर करने और पीछे-पीछे आनेवालियों को रास्ता दिखाने के लिए गीत गाती हुई आगे बढ़ती हैं :-

“ऊनि गुडी चोना निङ
तरदी योता योता पतर योता योता
चोना निङ (कुडुख)
चलो सहेली जाएँ दीपक देखते हुए प्रकाश
देखते हुए चले(हिन्दी)
तरदी जो मोलिवकि खोड झुङ
जो इरिफोए अनि गुडी एङ
नानङि अनिंपउ राजी (कुडुख)
दीपक भी बुझ गया, रास्ता भी भूल गए,
चलो सहेली लौटे अपने देश (हिन्दी)
....
बिजली जो लावकेताज गॉड झुड जो योताज
अनि गुडी चोनातिङ अनियअ राजी (कुडुख)
बिजली भी चमक रही है, रास्ता भी दीख रहा है,
चलो सहेली लौटे अपने देश (हिन्दी)”[1]

इस प्रकार गाते हुए वे बीच-बीच में पूछती हैं – “सुना, सुन रही हो?” हाँ जवाब पीछे आनेवाली औरते देती हैं तो वे अपने गीत को आगे बढाती हैं।

[1] मनमोहन पाठक – गगन घटा घहरानी, पृ : 9

"मैकलुस्कीगंज" में बिहार के झारखंड के आदिवासियों द्वारा कई लोक गीत गाने का चित्रण हुआ है। इसमें टुइयां गंझू और खुशिया पाहन आदिवासी नागपुरिया गीत गाते हैं जिसमें गंज की प्रकृति का दृश्य है :–

"छोटे-मोटे महुआ। झबरल जाय
रे हाय रे हाय। टपा-टिपी गिरे सगर राति
रे हाय रे हाय। टपा-टिपी गिरे सागर राति..|
एको टोपी बिछाय। दुइयो टोपी बिछाय
लइये गेलइ हडिया दोकान।"[1]

आंगलो इंडियंस के फाउंडर्स डे के लिए आदिवासी उरांव गीत गाते हैं: –

"पेलो ही चिञ्चिका
जवा पूंपन
हाडे का डला जोग वादैया
हाडेकन तिसीगोन
जवा पूंपन ....।"[2]

(इसमें नायक कहता है, मेरी प्यारी ने मुझे फूल दिया तो उसे बक्से में रखा। जब मैं बक्सा खोलता हूँ और फूल को देखता हूँ तो मुझे लगता है मैं अपनी प्यारी का मुख देख रहा हूँ।)

---
[1] विकास कुमार झा – मैकलुस्कीगंज, पृ : 10
[2] वही , पृ : 421

वे शादी, मुंडन आदि पर भी गीत गाते हैं। शादी के दिन गंझू औरतें गाती हैं :- “के रे लानल मोरा सिंदूर। नयन भरी काजर गुइयाँ। सैया रे लानल मोरा सिंदूर। नयन भरी काजर गुइयं।”[1] (कौन लाया सिंदूर और नयन भर काजल मेरे लिए। मेरा प्रियतम लाया मेरे लिए सिंदूर और नयन भर काजल........।)

“गगन घटा घहरानी” में जोखन नामक आदिवासी अपने भैंस को पानी पिलाते हुए गाता है :–

“आज पिअवली आहर-पाहर
काल्ह पिअवाली दू पहर
भैंस के लोटल काजर पानी
बदूरी बतीसी रानी हे.........अव ह......।[2]

इस प्रकार लोकगीत उनके जीवन में ऊर्जा का संचार करवाता है। आभाव, विवशता, गरीबी, प्रकृति का प्रकोप और अन्य प्रतिकूलताओं के बीच भी वे अपने जीवन का गीत गाए जा रहे हैं । यही उनकी खासियत हैं।

लोक नृत्य

लोक नृत्य मनोरंजन के साथ-साथ जीने की प्रेरणा भी देती है। अधिकांश लोक नृत्य सामूहिक होने के कारण रिश्तों में मजबूती आती है। वे निश्चित वेश-भूषा से सज्जित होकर वाद्य यंत्रों के ताल-लय के साथ नाचते हैं।

---

[1] विकास कुमार झा – मैकलुस्कीगंज, पृ : 175
[2] वही , पृ : 101

वे पर्व-त्यौहार, विवाह, आदि पर प्रत्येक नृत्य करते हैं। भूरिया जनजाति का श्रावण माह में खेलनेवाली 'गेंडी नृत्य', घोटुल-मुरियों के होली का 'डंडारी नृत्य', 'करसाड नृत्य', दोरला जनजाति का 'दोरला नृत्य', भीलों का 'गवरी नृत्य', मीणा एवं गुजर का 'लंगुरिया नृत्य', संथालों का 'सोहराय', 'वाहा सेरेंज', 'लांगडे सेरेंज', 'दसांच', 'दोंग', 'सोहराय' आदि विश्वप्रसिद्ध हैं।

आदिवासियों में लोक नृत्य का अभिन्न स्थान है। उनका नृत्य सामूहिक है। गाँव के अखाड़े में गाँव के मुखिया द्वारा मांदर पर उद्घाटन संकेत ताल बजाता है तो गाँव के सारे जवान लड़के-लड़कियां वाद्य-यंत्रों के ताल में नाचने लगते हैं। सामाजिक धार्मिक अनुष्ठानों में अलग-अलग तरह के नृत्य होते हैं। उनका संगीत एवं नृत्य प्रकृति से लयबद्ध होकर घटती है। "ग्लोबल गाँव के देवता" में त्यौहार एवं पर्व पर अखाड़े में वाद्य-यंत्रों के ताल में नाचने का चित्रण किया है। लेखक बताते हैं – "रात भर गाँव-गाँव से जवान लड़के जुटते। लड़कियाँ जुटती। झूमर, जदुरा के बोलों पर रात भर चाँद नाचता। सखुआ और पलाश नाचता। कनेर और अमलतास नाचता। नदी-झरना पहाड़ नाचते। एक साथ पूरी प्रकृति नाचती।"[1] इसी प्रकार है उनका 'झूमर नाच'। इसमें अर्द्धवृत्ताकार में झुककर कुछ कदम आगे बढ़ाता है फिर सिर उठाकर पीछे हटता है।

"धूणी तपे तीर" में मानगढ़ की पठारी धरती पर अलग-अलग पालों के आदिवासी समूह द्वारा हाथजोडिया, पगपासणियाना, जालणियाना,

---

[1] रणेंद्र – ग्लोबल गाँव के देवता, पृ : 26

उड़णियाना, फदुकचाला, मुरिया, गैर, गवरी आदि परंपरागत नृत्य करने का ज़िक्र है। इसमें वे ढोलकी, बाँसुरी, मटका जैसे कई वाद्य यंत्रों के साथ तरह-तरह के गीत भी गाते हैं। इन नृत्यों के बारे में लेखक ने लिखा है – "गवरी नृत्य के दौरान चारों प्रमुख पात्र-राई, बुडिया, भोपा और पुजारी अपने अभिनय का कुशलता से प्रदर्शन कर रहे थे। इस नृत्य में केवल पुरुष भाग ले रहे थे। उड़णियाना नृत्य में केवल युवतियाँ समूहों में नाच गा रही थी। मुरिया नृत्य में युवक व युवतियाँ हाथ पकड कर सांग किए हुए दुल्हे व दुल्हन को घेरे हुए झूम रहे थे।"[1] इन समूह नृत्यों में सभी भाग लेते हैं। इस उपन्यास में मानगढ़ पर्वत के नीचे बसे आमलिया व ढालरिया गाँवों की युवतियों द्वारा 'गेर नृत्य' करने का चित्रण हुआ है। गेर नृत्य में युवकों का भी होना अनिवार्य है। इस नृत्य में ढोल, चंग, मांदल, बाँसुरी व थाली जैसे वाद्य यंत्रों के साथ गीत गाकर नाचते हैं। होली के दिन आदिवासी गेर नृत्य करते हैं –" दिन के चौथे पहर के आगाज के साथ गेर नृत्य आरंभ हुआ जो साँझ ये कुछ समय पहले समाप्त हुआ। युवकों के हाथों में बन्दुक, डोने व लाठियां थी। युवतियाँ लेजम, कावर व रुमाल लिए हुए थी। नाच के साथ मांदल व कुंडी बजायी गयी। युवक-युवतियों ने हाथों में हाथ डालकर खूब नृत्य किया।"[2] इस नृत्य में भाग लेने के लिए युवक-युवतियाँ सज-धज कर आती हैं।

---

[1] हरिराम मीणा – धूणी तपे तीर, पृ : 204-205

[2] हरिराम मीणा – धूणी तपे तीर, पृ : 319

लोक कथा

आदिवासी प्रकृति पुत्र हैं। सदा ही प्रकृति की गोद में खेलते हैं। इनके धर्म, समाज, जाति, एवं देवी-देवता संबंधी कई कथाएँ प्रचलित हैं। इन लोक कथाओं का कोई शिल्प नहीं होता और ये प्राचीन काल से ही पीढ़ी-दर-पीढ़ी चली आती हैं। इन कथाओं का नायक व्यक्ति न होकर पशु-पक्षी, पेड़-पौधे एवं देवी, दानव आदि हैं। संजीव के “सावधान! नीचे आगा हैं” में कापालिनी मंदिर को लेकर प्रचलित लोक कथाओं का ज़िक्र किया है। उस गाँव के ओझा का कहना है की राजरापा में छिन्नमस्तिका, कतारम में मोइलिदेवी, साईथान में कल्याणेश्वरी, तारापीठ में तारा और कलकत्ता में काली नाम से प्रचलित देवी एक ही है। वह राजरप्पा से कलकत्ता और कलकत्ता से राजरप्पा आती जाती है। इसी रास्ते में है चंदनपुर गाँव। इसलिए देवी ने इस गाँव में भी एक ठिकाना बनाया। जगन नामक आदिवासी युवक के अनुसार बराकर नदी में डैम बनने से अपवित्र होने पर देवी यहाँ आ गई थी।

रणेंद्र के “ग्लोबल गाँव के देवता” में असुर जनजाति का चित्रण किया है। ऋग्वेद के प्रारंभ के लगभग डेढ़ सौ श्लोकों में असुर देवताओं के रूप में है, जैसे वरुण, अग्नि, रूद्र आदि। बाद में असुर दानव के रूप में पुकारे जाने लगते हैं। देवता सिंगबोंगा द्वारा असुरों को सजा देने की कथा प्रचलित है। असुर लोग एक्कासी मैदान और तेरासी तांड में केला के घोंद और फलों के गुच्छों की तरह झुण्ड के झुण्ड रहकर दिन रात धौंकनी धौंकते रहते हैं, जिससे आकाश में आँधी चलती है, धरती पर कुहासा छा जाता है। सारे जीव-वनस्पतियाँ

आंच से कुम्हला रहते हैं, कीड़े-मकौड़े, फुनगे-पतिंगे मरने लगते हैं। पोखरा एवं कुए सूखने लगते हैं, मुंडा लोग भी इनके साथ दानी-पानी के आभाव में तड़प रहे थे। यही नहीं भगवान सिंगबोंगा और देवी कुमारी भी धुएँ से परेशान थी। असुरों की धौंकनी बंद करने का सन्देश सिंगबोंगा द्वारा देने पर वे मानते नहीं। अंत में उनको सज़ा देने के लिए चर्म रोग्वाले लड़के का वेश धारण कर असुरों के यहाँ रहने जाता है। फिर सोने-चाँदी के लालच में फंसाकर असुरों को उनकी भट्ठी में जलाकर मार डाला। लौटते समय असुर औरतें सिंगबोंगा के पैरों में लटक गयी तो उन्होंने अपना पैर झटका और वे पहाड़, जंगल, नदी, झरना में जा गिरि और भूत बनकर रहने लगीं। वनों के दुर्बोध रहस्यों तथा जीव जंतुओं के क्रिया-कलापों ने लोक-कथाओं को प्रचलित किया है।

"धूणी तपे तीर" में मानगढ़ पर्वत को लेकर प्रचलित लोक कथा का ज़िक्र है। इस पर्वत का पुराना नाम माकणिया पहाड़ था। हल्दी घाटी की लड़ाई में चित्तोड़गढ़ के तीन चौहान भाइयों मानसिंह, दारासिंह व मालदाराणा ने राणा प्रताप का साथ दिया था। युद्ध में दोनों भाइयों की मृत्यु के बाद मानसिंह बैरागी बनकर माकणिया पहाड़ पर भगवान् शिव की तपस्या करने लगता है। सर्दी, गर्मी और बारिश से बचने के लिए उसने पत्थरों का छोटा सा घर भी बनाया। आदिवासी लोग उसे साधू के रूप में अपनाता है। संतरामपुर के शासक के पास किसी ने खबर पहुँचाई कि मानसिंह सन्यासी का छद्म वेश धारण करके आदिवासियों को संगठित करके

नया राज्य स्थापित करने की कोशिश कर रहा है। राजा ने गुप्तचर भेजकर मानसिंह को वहाँ से उठवाकर क़त्ल का देता है। उसका मृतदेह किसी को नहीं मिलता है तो लोगों ने सोचा कि वह रमता जोगी है और कहीं चला गया है। कहा जाता है कि तभी से माकणिया पर्वत का नाम 'मानगढ़' पड़ गया।

आदिवासियों का लोकगीत है – हीडा। इसमें वे हीडा की कथा को गा कर सुनाते हैं। हालिया नामक आदिवासी गीत गाने के बाद यह कथा सुनाता है। ऊजेण नगरी का राजा सदण का पुत्र 'हरिसण' को सौतेली माँ की वजह से बारह बरस का वनवास मिलता है। वह जंगल में घूमकर ब्राह्मण विधवा के पास पहुँचता है। उसके दोनों बेटे उस देश के राजा के शेर ने खाया। हरीसण ने आटे के ज़हर मिलाकर आदमी का पुतला बनाता है और उसे खाने के लिए आए शेर को तलवार से मारता है। उसके बाद तलवार को नदी में साफ़ करते समय एक राजकुमारी दिखाई देता है। हरीसण का देखते ही वह गर्भवती होती है। राजा ने कुंवारी बेटी की सन्तान को मार देने का आदेश देता है। लेकिन दासियाँ उसे मारने के बदले गड्ढे में छोड़कर वापस आता है। एक कुम्हारिन उस बच्चे को उठाकर अपने घर ले जाती है। उसका नाम 'वागुडिया' रखता है। वागुडिया जब बड़े होकर कुन्हारिन के गधे को चराने जाता है तो चौदह राजकुमारियों से उसकी भेंट होती है। वागुडिया उन चौदह लडकियों के साथ फेरे लेता है। इस कारण कोई भी पंडित इन युक्तियों का लगन-मुहूर्त नहीं निकाल पाता है। राजा ने इनकी शादी वागुडिया से कर देता है। बारह बरस बाद तक भी किसी को कोई संतान पैदा नहीं हुई।

भगवान् शिव की पूजा करने पर चौबीस स्त्रियों के एक-एक पुत्र पैदा होने का वरदान मिलता है। लेकिन उसने यह भी कहा कि सबसे बड़े पुत्र 'भोज' को एक साधू भीख माँगने के बहाने ले जाएगा और उसे मार कर खा जाएगा। पुत्र होने के बाद वागुडिया इस बात को भूल जाता है। एक साधू उसके बड़े बेटे को ले जाता है। उस साधू के पास 'बोली बसेरी' नामक पवन रूपी घोड़ी थी। वह साधू जो मारकर सोने की घोड़ी से धुपती बन जाता है। भोज की शादी वाजुडा की राजकुमारी 'जेलुनार' से पक्की होती है। लेकिन राणा दीवाणा भी राजकुमारी से शादी करने आता है। राणा से शादी करने के बाद राजकुमारी माफ़ी माँगने के बहाने करके भोज के पास जाता है। भोज एवं राजकुमारी राणा को धोखा देकर घोड़े पर सवार होते हैं। राणा उन्हें ढूँढ़ नहीं पाता है।

इस उपन्यास में सेंगाजी नामक साधू द्वारा भील, मीणा एवं अन्य रारचरों की सृष्टि की कथा सुनाता है। विरमा व भैमाता पुरुष और नारी के रूप में लाऔलाद रहे थे। आदमजात पैदा करने की इच्छा से धरती माता के हिस्सों से माटी लेकर नर-नारी का रूप बनाया और उनके हाथ में तीर व कमान दे दिया। बिरमा इनमें प्राण फूंकता है। इनका नाम 'भील' रखा। दूसरी बार बनाये नर-नारी के जोड़े को 'मीणा' कहा। भील जोड़ा निखालिस काली माटी से बनाया और मीणा जोड़े के लिए काली माटी में थोड़ी भरी माटी मिलायी। इनके बाद अन्य किस्म के रंग रूप वाले इंसानों को भी बनाया। लाल माती के इन्सान को सबसे बाद में बनाया। इनको प्राण

मिलता है। बिरमा से विनती की कि उन्हें जादू-मंतर की सीख दे। लेकिन बिरमा ने मना कर दिया। आदमजात की सृष्टि के बाद अन्य प्राणियों की रचना की। अंत में इन्दर की सृष्टि करके उसे अपना धरम पूत बना लिया और जादू-मंतर की सीख दी। लाल माटी के इंसानी जोड़े ने धोखे से इस मंतर को सुन लिया। यह बात जानने के बाद बिरमा उन्हें श्राप दिया कि यह जादू चाला के मंतर की अक्ल उन्हें कलूकाल में ही आ पायेगी। सोंगाजी बताते हैं कि लाल माटी से बने इंसान ही फिरंगी है जिनके पास कलजुग में इन्दरजाल की विद्या है। इस विद्या से उन्होंने राजा-महाराजाओं, ठेकेदारों को कब्जे में कर दिया है। वह चेतावनी देता है कि ये लोग अब आदिवासियों को भी अपने कब्जे में करेगा।

त्योहार – पर्व

पर्व त्योहार जातीय संस्कृति के अभिन्न अंग है। इन पर्वों में उत्साह, आशा, आत्मविश्वास और लगन के साथ जीने, दूसरे को जिलाने और जीवन में रस का बौछार करने की भावना निहित है। यह पर्व-त्योहार एक दूसरे से आत्मीय संबंध रखने में मदद करते हैं। वे समभाव से इसमें भाग लेते हैं। उनके प्रायः सभी पर्व कृषि से जुड़े हुए हैं। प्रत्येक जनजाति के पर्व-त्योहारों में थोड़ी बहुत भिन्नताएँ हैं।

संथालों का पर्व प्रत्येक माह में संपन्न होता है। माघ में 'माघबोंगा', फागुन में 'बाह्य बोंगा', चैत में 'रोहनी', वैशाख में 'एरो बोंगा', जेठ में

'मुचरी', आषाढ़ में 'आसाडिया', सावन में 'गोमहा' या 'करम बोंगा', भाद्र में 'जानताड', आश्विन में 'दोसाय', कार्तिक में 'सोहराय बोंगा', और पौष में 'सकरात यामकर' पर्व है। इस प्रकार बारह महींने में बारह पर्व हैं। ये पर्व और त्यौहार ऐसा सामाजिक समारोह हैं कि बच्चे-बूढ़े, औरत-मर्द सब आते हैं। वे नाचते एवं गाते हैं। इससे उनके बीच हमेशा जान-पहचान एवं संबंध बनाये रहते हैं। संजीव के "धार" में 'बधना पर्व' का वर्णन मिलता है। गाँव के लोग इकठ्ठा होकर, नाच-गाकर यह पर्व मनाते हैं। उसी प्रकार सरहुल बसंत के समय आता है। "सावधान! नीचे आग है" में भी सरहुल, मनसा पूजा, करमा, दुर्गापूजा आदि का ज़िक्र किया है। दुर्गापूजा के अवसर प्रत्येक दल बांड-बाजे की गीत गाकर मंदिर जाते हैं। 'सरहुल' एक वन देवता है। इनके प्रति सरहुल पर्व के दिन नाच-गाकर अपना विनम्र अभिनन्दन करते हैं। "गगन घटा घहरानी" में करमा पर्व का वर्णन है। इस पर्व में कई गाँव के लोग एक गाँव या किसी सार्वजनिक स्थान में इकट्ठे होकर नाच-गाकर मनाते हैं। खजुरी गाँव के बच्चे-बूढ़े, युवक-युवती आदि ढोल-मांदल बजाकर सज-धजकर लुपंगा गाँव आते हैं। वे झूमर नाचते हैं। एक-एक दिन एक-एक गाँव दूसरे गाँव जाकर, दारु-हँड़िया पीकर, नाच-गाकर मस्ती करते हैं। करमा को 'करमा एकादशी' भी कहते हैं। इसमें करमा का वर्णन यों किया है – 'कल करमा का दिन है। आज कहीं मजदूरी नहीं करनी। ....आज की रात कोई बाहर नहीं रहता। सब शाम तक अपने गाँव लौट आते हैं। गाँव में ही रात भर नाच-झूमर चलता है। सुबह एकादशी के दिन गाँव से लोग ढोल-

मांदर बजाते, नाचते-गाते सोनाहतु पहुँचते हैं। गढ़ी के सामने लोगों का मेला जैसा लग जाता है। शाम ढले सोनाहातू से गिरते-पड़ते लौटते हैं सब। यही इस इलाके में हर साल का नियम है।"[1] "मैकलुस्कीगंज" में खेत की रोपनी के बाद 'करमा परब' मनाने का ज़िक्र किया है। उस गाँव में मुंडा, उरांव आदि मिलजुलकर रहते हैं। मुडमा बस्ती में विजयदशमी का उत्सव और उसके आठ दिनों बाद मनानेवाले 'मुडमा मेला' का वर्णन किया है। इस मेले में खेती में काम आनेवाले औजार और आदिवासियों के हथियारों से लेकर आदिवासियों के नाच-गाने में काम आनेवाला मांदल और नगाड़ा आदि बेचते हैं। ये सभी पर्व सामाजिक स्तर पर संपन्न होते हैं।

"धूणी तपे तीर" में गोविन्द द्वारा स्थापित धूणी स्थल पर मनाये जाने वाले मेले का चित्रण किया है। छाणी मगरी पर स्थित धूणी स्थल पर ग्रामीण अखण्ड ज्योति जलाते थे। पूरणमासी के दिन वहाँ स्थानीय मेला लगता था। उसमें भाग लेने के लिए पडोसी गाँवों से आदिवासी आते हैं। वे वहाँ इकट्ठे होकर धूणी में नारियल डालते, घी का हवन करते और संप सभा के गीत भी गाते। इसमें भाग लेने के लिए आने वाली औरतें घाघरा-चोली और ओढनी पहनकर सज-धजकर आती हैं। पुरुष अधोवस्त्र के नाम पर रेजे का पंजा पहनता है। युवा व अधेड़ माथे पर अंगोछे का मंडासा और वृद्ध लोग पगड़ी बाँधते हैं। धूणी में घी के होम करने के साथ अन्न का दान भी करता है। इसमें आदिवासियों द्वारा होली मनाने का चित्रण भी हुआ है। इस

[1] मनमोहन पाठक - गगन घटा घहरानी, पृ : 74

दिन गाँव के चौक में परंपरानुसार होली का थम्म रोपता है। आमलिया गाँव में होली मनाने के लिए सेमल के पेड़ की पाँच- छः हाथ लम्बी हरी लकड़ी का थम्म बनाया गया था। सूरज डूबने के साथ होली-दहन कर दिया जाता है। बाद में होलिका पूजन और नाच-गाना भी होती है।

मुर्गा लड़ाई

यह आदिवासियों के बीच प्रचलित एक पर्व है। इसे वे उत्सव की तरह मनाते हैं। मुर्गों को प्रशिक्षण देकर पैरों में लोहे का चाकू जिसे 'काति' कहा जाता है बाँधकर आपस में लडवाते हैं। यह लड़ाई तब तक चलती है, जब तक कोई एक मुर्गा शहीद न हो जाए। इसमें जीतने वाले मुर्गे का मालिक हारे गए मुर्गे को ले जाता है। लड़ाई के बीच लोग मुर्गों को लेकर बोलियां लगाते हैं। यह कभी-कभी मार-पीट, खून-खराबे तक ले जाती है। "सावधान! नीचे आग है" में छुट्टून मियाँ और महादेव मियाँ के मुर्गो के बीच लड़ाई होती है। इसमें महादेव का मुर्गा घायल होकर हार जाता है। जो जीतता है उसे दारू, पैसा और मुर्गा भी मिलता है। इस लड़ाई के लिए बाज़ार से अच्छे स्वस्थ्य मुर्गों को खरीदकर, महीनों तक अच्छा भोजन एवं प्रशिक्षण देकर पालता है। कई महीने बाद गाँव के अखाड़े में उनकी लड़ाई होती है।

आदिवासी घर

आदिवासी जंगल में प्रकृति से जुड़कर रहते हैं। उनकी ज़िन्दगी प्रकृति के साथ अजीब तालमेल एवं सामंजस्य रखता है। उनका घर प्रकृति को कोई नुकसान किए बिना बनवाते हैं। वे प्राकृतिक चीज़ों से घर बनाते हैं।

"ग्लोबल गाँव के देवता" में घर निर्माण का विवरण दिया है – "दीवारें पहले काली मिट्टी से जातन से लीपी जातीं! कमरों के फर्श को भी काली मिट्टी डालकर चिकने पत्थर से इतना रगडा जाता कि वह चिकने-चुपड़े सीमेंट के फर्श का भ्रम देता। दीवारों पर काली मिट्टी के लेप सूखने के बाद उन पर सफ़ेद मिट्टी का लेप चढ़ाया जाता। फिर पूरी हथेलियों को नचा-नचाकर एक वृत्ताकार आकृति उभारी जाती, जिनमें उनकी हथेलियों की छाप झलक मारती। यह अद्भुत हथेलियों की छापवाले चित्र न केवल दरी-दीवार पर बल्कि खेतों-खलिहानों, जंगल-बगानों, खानों, नदी-नालों, चुआं, पझरा, सोतों, झरनों में हर कहीं दिखाई देते।"[1] उनके घर मिट्टी के हैं, उसमें बड़ा सा अहाता है, कोठरियाँ एवं आँगन है। एक कोने में लंबा सा गोहाल, बरामदे में मुर्गियों के बाड़े हैं। वे गाय-गोरु, बकरी-छगरी, मुर्गी-सुअर आदि भी पालते थे। इन आदिवासियों के पास खुबसूरत एवं ऊंची सोच हैं जो सभी जीव-जंतुओं को सम्मान देती है। ललिता बताती है – "हम सारे जीवों से अपने गोत्र को जोड़ते हैं। छोटे जीवों-कीट-पतंगों को भी अपने से अलग नहीं समझते। हमारे यहाँ 'अन्य' की अवधारणा ही नहीं है।"[2]

संजीव के "धार" से संथाल आदिवासियों के घर का चित्रण मिलता है। वे घर-आँगन को साफ सुथरा रखते हैं। घर कभी-कभी छाजन फूस की है। तो कभी खपड़े की। लेकिन सभी घरों के दीवारों का ऊपरी भाग मिट्टी से

[1] रणेंद्र – ग्लोबल गाँव के देवता, पृ : 23
[2] वही , पृ : 72

लीपा हुआ है। लेखक बताता है – "दीवारों का ऊपरी भाग सफ़ेद चिकनी मिट्टी से और नीचे स्याह सलेटी मिट्टी से लिपे हुए ठीक सैंताल औरतों की किनारीदार साड़ियों की तरह।"[1] ज़्यादातर घरों के सामने कोने में पत्थर की छिछली नाद है, जिसमें माड डालते ही सूअरों और छौनों का दल घों-घों करके आते हैं। वे अपने घर में सुअर, भैंस, बकरा, गाय आदि को पालते हैं। वे इसे कृषि के साथ दूध के व्यवसाय में इस्तेमाल करते हैं। इनकी संस्कृति के संबंध में अविनाश शर्मा बताता है – "मंगर जी, अपने यहाँ कुछ ब्राह्मणों के भी घर ऐसे हैं कि अन्दर चले जायें तो गंदगी से आपका सर फटने लगे लेकिन आपको एक भी आदिवासी का घर गन्दा नहीं मिलेगा न अन्दर से, न बाहर से, चाहे वे सूअर ही क्यों न पोसें। ....आदिवासी औरतें सर पर एक गमछा रख लेगी जो पीठ के नीचे तक फैला होगा, चाहे वे कोयला ही क्यों न ढो रही हों जबकि दूसरी, देशवाली औरतों में ये चीज आपको नहीं मिलेगी। आदिवासी संस्कृति तो इस मायने में आर्य संस्कृति से बेहतर थी, भले ही वे साँवले हों और आर्य गोरे। हमारे पास जो कुछ भी है उसका ज्यादात्तर भाग आदिवासी संस्कृति से लिया हुआ है।"[2] इस प्रकार वे साफ़-सफाई में निपुण हैं।

"धूणी ते तीर" में मेवाड़ एव उसके आसपास के आदिवासी गाँवों एवं उनके रहन-सहन का चित्रण हुआ है। इसमें नटवा नामक एक गाँव है जहाँ

[1] संजीव, धार, पृ :38
[2] संजीव - धार, पृ : 39

पाँच-सात से दस-बारह घरों की बिखरी हुई बस्तियों का समूह है। आदिवासी आंचलों में इस तरह के गाँव समूहों को 'पाल' कहा जाता है। प्रायः एक पाल में एक ही गोत्र के आदिवासी बसे होते हैं। गोत्र के नामकरण का आधार वंश विशेष के गण-चिह्न होते हैं। गोत्र, वंश, और गण चिह्न में काफी समानता होती है। उन्हें 'कुल' भी कहा जा सकता है। ये आदिवासी दिन-भर खेती-बाड़ी, मेहनत, मजदूरी एवं अन्य धंधों में व्यस्त रहते। लेखक ने इसमें मेवाड़ की राजधानी उदयपुर और आबू पर्वत तक ओगणा, पानरवा, मेरपुर होते हुए आगे सिरोही तक व्याप्त आदिवासी इलाकों का चित्रण किया है। उन्होंने लिखा है – "सिरोही की सीमा तक सारे क्षेत्र में आदिम जातियों और उनके जन-समूह अपनी आदिमयुगीन सभ्यता और जंगली स्वाधीनता सहित बसे हुए पाये जाते हैं जो वंशानुगत पदवी धारण करते हैं। ऐसा स्वशासित 'रावत' अपने एक आदेश से पाँच हज़ार धनुर्धारियों को एकत्र कर सकता है। ये न किसी की प्रभुसत्ता मानते हैं और न किसी को नजराना ही देते हैं। स्थायी परंतु संपूर्ण सादगीयुक्त अपने गणतंत्रों के अगुआ ये स्वयं हैं। चरागाहों और सुरक्षा की दृष्टि से महत्वपूर्ण स्थानों के निकट घाटियों के बीच बिखरे और छितरे टपरे और झोपड़ियाँ इनके निवास स्थान हैं।"[1] ये लोग पहाड़ियों की तलहटियों-टेकरियों-ढलानों पर रहते हैं।

आदिवासी घने जंगलों, बड़े-बड़े पहाड़ों, घाटियों वाले प्रदेश में रहते हैं। इसी जंगल के किसी टीले पर कोई न कोई आदिवासी गाँव वास्ता है।

[1] हरिराम मीणा – धूणी तपे तीर, पृ : 60

"गगन घटा घहरानी" में सोनाहातु नामक आदिवासी गाँव का चित्रण है – "गाँव क्या मुश्किल से आठ दस घरों का समूह, पूस अथवा खपरैल। सभी घर साफ़ सुथरे, लिपे-पुते। कोस-दो-कोस की परिधि में चार-पाँच गाँव मिल जायेंगे। इन गाँवों में आकर लगेगा, दुनिया इतनी ही बड़ी है।"[1] इसी प्रकार वृक्षों की घनी छाँव में बसी गाँव को "मैकलुस्कीगंज में देख सकते हैं। इन घरों को 'एडपा' कहते हैं। - "एकदम साफ़ सुचिक्कन। गोरुआ और सफ़ेद रंगों से मिट्टी की दीवारों पर बनाए गए एक से एक लोकचित्र ....। पेड़ों के चिडियों के, फुल और नदी के चित्र........।"[2] इस तरह इनके जीवन में हर पल प्रकृति का सान्निध्य रहता है। उनका विश्वास है कि जंगल से मुँह मोड़ने पर देवता क्रुद्ध हो जाते हैं। इसलिए जंगल को ही अपना घर बना लिया है।

भोजन

प्रकृति पर निर्भर आदिवासियों की आहार व्यवस्था भी प्राकृतिक कारकों पर निर्भर है। वे खेती और पशुपालन करते हैं। इनसे मिले फल, अनाज, गाय-भैंस-बकरी का मांस, दूध, मुर्गी आदि के साथ शिकार करके मछली, चूहा, कछुआ भी पकड़ते हैं और खाते हैं।

आदिवासी लोग गरीब हैं। खेतीबाड़ी करने के लिए ज़मीन न होने के कारण अधिकांश आदिवासी जंगल से प्राप्त महुआ, कटहल, कई तरह के कंद और साग सब खाते हैं। उनको एक कंदा मिलता हैं तो उसे खाने के लिए

[1] मनमोहन पाठक - गगन घटा घहरानी, पृ : 15
[2] विकास कुमार झा - मैकलुस्कीगंज, पृ : 161

काफी मेहनत करना पड़ता है। "ग्लोबल गाँव के देवता" में इसका चित्रण है – "पहले उसे लकड़ी की राख के साथ उबाला जाता। फिर रात भर दोन खेत में उसे छोटे नाले के नीचे रखा जाता, जिससे छोटी-पतली धार गिरती हो। रात भर धार के नीचे रहने के बाद भी उन कंदों में कस्सापन बचा तो रहता किंतु खाने लायक हो जाता।"[1] ये लोग माँसाहारी भी हैं। संजीव के "धार" में संथाल आदिवासियों द्वारा परिंदे का शिकार करने का चित्रण मिलता है। वे पंडा बाबू के पोखर पर जाकर लाए गए लट्ट को अलग-अलग करते हैं। वे कील के सहारे बांस के कई टुकड़े जोड़कर बनाते हैं। बांस के ऊपरी सिरे में लंबा नुकील लोहा था, जो इतना लंबा था कि पेड़ पर बैठे परिंदे के पेट को भी खुभो सकते हैं। इस अजीबो-गरीब शिकार में वे तेरह बगुले, सात सारस, आठ मैनाए एक लोमड़ी मारते हैं। इसे घर लेकर इनके चमड़े उताकर साफ करते हैं। वे बछड़े को भी खाते हैं। उसका भी चमड़ा उतारते हैं। मंगर हिन्दू होने के कारण बछड़ा का मांस नहीं खा सकते तो अविनाश शर्मा समझाता है – "सैतालों की यह परंपरा है, वे भोज उत्सव में बछड़े का मांस उसी तरह खाते हैं जैसे हम दिकू लोग बकरे का मांस। यह दिकुओं का भोज नहीं है, सैतालों का भोज है।"[2]

"गगन घटा घहरानी" में बिहार के उरांव आदिवासियों का चित्रण हुआ है। वे कृषि करते हैं साथ में मछलियाँ भी पकड़ते हैं। वे मांसाहारी हैं।

---

[1] रणेंद्र - ग्लोबल गाँव के देवता, पृ : 24

[2] संजीव - धार, पृ : 53-54

पैरुगुनी नामक ओझा बेटे मानसुख को आदेश देता है – "माँ को बोलकर मछलियाँ ठीक से भूनकर रखा।"[1] उरांव आदिवासी जाती के शिकारी हैं। वे पशु-पक्षियों की स्पर्श तक समझ लेते हैं। इस प्रकार जंगल को ही वे अपना घर, एवं आर्थिक आय एवं भोजन का स्रोत बना दिया है।

शादी

आदिवासी लोगों के बीच अजीब विवाह प्रथा प्रचलित है। कुआंरा लड़का और लड़की शादी से पहले माँ-बाप एवं परिवारवालों के इच्छानुसार एक साथ जीते हैं। जब दोनों के बीच अच्छा संबंध जैम गया तो वे इस रिश्ते को आगे बढाएगा नहीं तो लड़की वापस अपने घर लौट सकती है। उसी प्रकार 'सहिया जोड़ना' भी उनका एक रस्म है। सहिया जोड़ने का मतलब है लड़का-लड़की का दोस्ती की विधिवत घोषणा करना। वे परिवारवालों की अनुमति से एक साथ ज़िन्दगी गुजार सकते हैं। आधुनिक समाज में इसे 'लिविंग टुगेदर' कहते हैं जो आज फैशन बन गया है। लेकिन आदिवासियों के बीच यह प्राचीन काल से मान्यता प्राप्त रस्म है। "ग्लोबल गाँव देके देवता" में ललिता नामक शिक्षित आदिवासी लड़की द्वारा लेखक को इसके बारे में समझाती है। शादी में कोई कठिनाई आ रही हो तो लड़का-लड़की साथ रह सकते हैं। लेकिन बेटा-बेटी की शादी से पहले माँ-बाप की शादी करवाना ज़रूरी है। आर्थिक कठिनाई से अगर साथ रह रहे हो तो विवाह का खर्च

---

[1] मनमोहन पाठक – गगन घटा घहरानी, पृ : 18

इकट्ठा होते शादी की रस्म में पूरी कर ली जाती है। ललिता बताती है कि यही से 'लिविंग टुगेदर' का फैशन शुरू हुआ है।

संजीव के "धार" में मैना द्वारा अपने पूर्व पति फोकल को त्यागकर मंगर नामक सोनार जाति के आदमी को चुनकर उसके साथ बिना शादी के रहते हैं। गाँव में इससे कई सवाल उठते हैं। लेकिन संथालों की विचार सभा लॉबिर में अपने पसन्द के अनुसार जीने की अनुमति मैना को देती है। इस प्रकार अपने जीवन साथी चुनने की स्वतंत्रता इनमें है। "धूणी तपे तीर" में मेले या उत्सव के अवसर पर युवक युवतियों का आकर्षण और बुजुर्ज रिश्तेदारों की मध्यस्थता में उनका विवाह करने का चित्रण किया है।

हाट बाज़ार

हाट बाज़ार जिसे 'हटवाडे' भी कहते हैं विपणन व्यवस्था के प्रारंभिक काल में विकसित हुआ और कालान्तर में आदिवासी और ग्रामीण अंचलों में प्रचलित हुआ। बाज़ारवाद एव मॉल कल्चर के इस युग में यह साप्ताहिक बाज़ार आदिवासी बाज़ार व्यवस्था के मुख धरोहर के रूप में कायम है। हर सप्ताह में निश्चित स्थान व दिन पर लगने वाले हाट सभी जाति, धर्म, व्यवसाय के लोग आकर क्रय-विक्रय करते हैं, पारिवारिक, सामजिक, राजनीतिक चर्चाएँ भी करते हैं। कभी-कभी परिवारवालों या ब्याही गई बेटी और मायकेवालों की मुलाकात की भी वेदी होती है। यही कारण है कि इस तेज दौड़ती युग में भी हाट का अपना अस्तित्व है। उनके लिए यह सामाजिक संस्था है। साधारणतया हाट ऐसे स्थान पर होता है जहाँ दूर-दूर

से भी लोग आसानी से पहुँच सके। हाट में कृषि उपजों की प्रधानता होती है जिन्हें ग्रामीण लाते हैं। इसके अलावा कई तरह के औजारों, बर्तनों, मिठाइयों, कपडा व सौन्दर्यप्रसाधनों, बन पदार्थों की भी बिक्री होती है। यहाँ पशुओं का भी क्रय-विक्रय होता है। इसी प्रकार एक स्थान पर सभी वस्तुओं को उपलब्ध कराने की सूपर मार्किट की कल्पना हट से ही आई होगी। यह हाट उनके लिए मनोरंजन प्रदान है। इससे उनकी एकरसता दूर होती है। इसमें रिश्तों का नवीनीकरण होता है, और कई नई रिश्ते भी जुड़ते हैं। स्थानीय उत्पादक अपने मालों की बिक्री करते हैं और अपने लिए आवश्यक चीजें खरीदते हैं। सरकार द्वारा परिवार कल्याण, पोषाहार, जननी कल्याण, शिक्षा अभियान आदि का प्रचार हाट में करते हैं।

"ग्लोबल गाँव के देवता" में सखुआपात के हट का चित्रण किया है। लेखक बताता है – "आदिवासी जीवन में हाट केवल खरीद-बिक्री की जगह नहीं थी बल्कि वह सामाजिक सम्मेलन की भी जगह थी। दस-पन्द्रह मील तक के सगे-संबंधियों से भेंट होती। बहुएँ अपने नैहर के लोगों से मिलतीं, तो उनकी छलकती ख़ुशी को देखकर कोई भी अंदाजा लगा लेता कि ढेर दिन बाद मुलाकात हुई है। यहीं शादियां तय होती तो गिले शिकवे भी कहे-सुने जाते। अपनों का सर-समाचार मरनी-जीनी, सबकी खबरें हाट में ही मिलती।"[1] वह छोटी-मोटी हाट उनके अरण्य जीवन का अभिन्न अंग है। "पाँव तले की दूब" में छोटे-बड़े हाटों का वर्णन किया है। वहाँ शनिवार को

---

[1] रणेंद्र – ग्लोबल गाँव के देवता, पृ : 85

पशुओं की हाट होती है, बुधवार की हाट छोटी होती है। वहाँ आदिवासी खासकर औरतें फटी-पुरानी कपडे पहनकर शाक- सब्जी, केकड़े, मिट्टी के बर्तन, मुर्ग-मुर्गियाँ, बकरे-बकरियां और भेड़ें बेचती हैं। इसे खरीदने के लिए दूर-दूर से गैर आदिवासी आते हैं। वहाँ भात की शराब और पकौड़े तीर भी बेचते हैं। दिकुओं के कपडे, आभूषण व साज-श्रृंगार की चीजों वाले दुकानों में आदिवासी लड़कियाँ चीजें खरीदने आती हैं। ये लड़कियाँ इस मेले का मुख्य आकर्षण है।

संजीव के “धार” में रात्रि- उत्सव और उससे संबधित बाज़ार -हाट का वर्णन है। मैना और मंगर उस हाट में जाकर आटा, चावल, सस्ती किस्म की दाल, नमक, मसाला, बची-कुची आधी सड़ी सब्जियाँ, आलू, सीता के लिए छापे वाली चटख साडी, बच्चों के लिए बासी जलेबियाँ और अपने लिए देशी ठुर्रे की एक बोतल, मिट्टी का तेल अदि खरीदने का ज़िक्र किया है।

“गगन घटा घहरानी” में पैरुगुनी का हाट जाने तथा वहाँ परिचित लोगों से बातचीत होने का वर्णन किया है। कई महीने बाद हाट में आकर वह अपने मित्रों से मिलता है और हाल चाल पूछता है। वहाँ लोग पेड़ों की छाव में महुआ, साल, करंज के बीज भरे बोरे एवं तराजू लेकर ग्राहकों के इंतज़ार में बैठे थे। कई व्यापारी ऐसे थे जो हर हाट में जाते हैं और इधर की बातें उधर पहुँचा देते हैं। पैरुगुनी, जीतन और एक लड़के ने अपनी मुर्गियों, एवं खरगोश को बेचकर आवश्यक चीजें खरीदने आये थे। इस प्रकार हाट-बाज़ार परिचितों व रिश्तेदारों की रिश्तों के ताज़ा बनाए रखने में भी सहायक है।

"मैकलुस्कीगंज" में भी हर बुधवार को लगने वाले 'ग्रामीण बाज़ार' या हाट का जिक्र देख सकते हैं। मि.मेंडेज़ रॉबिन को समझाता है कि आदिवासी-हरिजन-मुस्लिम आदि अपने खेतों की सब्जी, फल, अनाज आदि यहाँ आकर बेचते हैं। वहन औरत-मर्द बैठकर तरह-तरह के सामान बेच रहे थे। रॉबिन को यह बाज़ार विश्व बाज़ार से ज़्यादा सुन्दर लगता है। लोग हाट को उत्सव की तरह मना रहे थे।

पंचायत एवं लॉबीर

संथालों के कई गाँवों को मिलकर एक 'परगना' होते हैं। संजीव के "धार" में बिहार के बाँसगडा गाँव के संथाल परगना का चित्रण हुआ है। उनका समाज पितृसत्तात्मक है। इनके यहाँ 'लॉबीर' और 'बिटलाहा' व्यवस्था है। 'लॉबीर' अंतिम विचार सभा है। मैना फोकल को त्यागकर मंगर को पति स्वीकार करती है तो यह बात लॉबीर में चर्चा की जाती है। लॉबीर के पहले गाँव में शाल के पत्ते लिए, डुगडुगी बजाकर इसकी घोषणा करता है – "देकावन हिजूकान राते लॉबीर वयसी बांसगडा रे होइया...........।"[1] (अर्थात रात को लॉबीर की बैठक बांसगडा में होने जा रही है।) इस लॉबीर में मैना को भ्रष्ट करके श्राद्ध मनाते हैं। संथालों में किसी के भ्रष्ट होते ही लॉबीर बुलाकर चबूतरे पर सबके सामने श्राद्ध कर देते हैं। चबूतरे के पास मैना की कलिपत समाधि (कब्र) बना कर हाथ जोड़कर पिता और पति खड़े होकर संथाली भाषा में कहते हैं – "आज तुम हमारी इस

[1] संजीव – धार, पृ : 54

दुनिया को छोड़कर देवताओं के लोक में जा रही हो। हमारी प्रार्थना है कि देवता तुझे सुखी रखे।"[1] लॉबीर की उपेक्षा करके दूसरे लॉबीर बुलाकर फोकल और टेंगर ने श्राद्ध मनाया तो गाँव के लॉबीर सजा देते हैं। उन दोनों को जातिच्युत करके मैना को पुनर्विवाह की अनुमति देते हैं। लॉबीर के अलावा 'बिटलाहा' व्यवस्था (बेटी भागने पर विचार सभा) भी है। इसमें भागी हुई लड़कियों को समाज से निष्कासित करने का निर्णय लेता है।

"धूणी तपे तीर" में पंचायत का चित्रण किया गया है। आदिवासी किसी भी विषय पर निर्णय लेने के लिए पुलिस या कानून की सहयता माँगने से पहले पंचायत बुलाते हैं। इसमें बहुमत द्वारा जो निर्णय लेते हैं वे सब लोग स्वीकार करते हैं। पालपा गाँव के पृथ्वीसिंह द्वारा धमकाने पर गाँव का गमेती पीतरजी भाई पंचायत बुलाते हैं। इसका मकसद उन युवकों को पकड़ना था जो गोविन्द गुरु के साथ मिलकर विद्रोह करते हैं। पंचायत में सभी लोग इकट्ठे होते हैं और युवकों को सामने आने का मौका देता है। वे सामने आकर अपनी बात सबके सामने पेश करते हैं। गाँव में जब ठाकुर पृथ्वीसिंह आता है तो पीतरजी पंचायत बुलाकर स्वागत करता है। पृथ्वीसिंह इस पंचायत में आदिवासियों की समस्याएँ सुनने के साथ-साथ गोविन्द गुरु से दूर रहने का फैसला भी सुनाता है।

"गगन घटा घहरानी" में जागो सेवकीया को चीते के आक्रमण से मर जाने पर गाँववालों के नेतृत्व में पंचायंत बुलाने का चित्रण है। वहाँ इस खबर

---

[1] संजीव - धार, पृः 55

पहुँचाने वाले चैतू-दामडू से सवाल करते हैं और पैरुगुनी नामक ओझा अपने मंत्र-तंत्र के द्वारा वस्तुस्थिति का पता लगाने का प्रयास भी करता है। वे तीर-धनुष कुल्हाड़ी लेकर ढोल-मांदल बजाकर पंचायत में इकट्ठे होते हैं।

आंचलिक भाषा

भाषा कथा साहित्य का मूल उपकरण है। इन आदिवासियों की ज़िन्दगी के चित्रण करने के लिए उपन्यासों में ग्रामीण आदिवासी भाषाओँ व शब्दों का प्रयोग किया है। उनके सूक्ष्म भावों, वनांचल की सांस्कृतिक विशेषताओं एवं उनकी समस्याओं आदि को चित्रित करने में यह भाषा समर्थ साबित हुई है।

"पाँव तले की दूब" में लेखक ने समीर नामक संवादाता के द्वारा सुदीप्त नामक अन्दोलानकर्ता को ढूँढने तथा उसकी डायरी पढ़कर आगे बढ़ने का चित्रण है। सुदीप्त द्वारा लिखित डायरी के साथ कथा आगे बढ़ती है। इसमें बंगला और संथाली में बोलने के कई उदाहरण देख सकते हैं। आदिवासी डायन में विश्वास रखते हैं। मंगरी नामक औरत को डायन घोषित करके मार डाला। इसके बारे में गाँववालों से पूछताछ करता है – ओकरा चलते बीमारी होता था, लेरु-काडा मरता था।

"उसी के चलते?

जान गुरु (ओझा) बोला।

जान गुरु सब कुछ जानता है क्या?

जनबे करता है।

पुलिस भी नहीं पकड सकती उसे

ऊ छुट जाएगा।"[1]

यहाँ गांववालों के जादू-टोना, मंत्र-तंत्र व डायन आदि में आस्था रखने की ओर इशारा किया है। कालीचरण किस्कू जमींदार एवं वन विभाग द्वारा जंगल काटकर ले जाने के प्रति आक्रोश प्रकट करता है – "हूँह, बचाने के लिए.......और ठेकेदार अपिसर टरक का -टरक जंगल काट के ले जाता, सो..........? हियाँ प्रीतम सिंह का गोला में का है जा के देखिए।"[2] यहाँ लेखक ने आंचलिक भाषा में आदिवासी शोषण का खुलासा किया है।

संजीव के धार में संथाली भाषा बोलने वाले संथाल आदिवासियों के जीवनचरित का चित्रण हुआ है। प्रस्तुत उपन्यास की पृष्ठभूमि बिहार के बाँसगडा गाँव है। इसमें प्रांतीय भाषा का चित्रण हुआ है। जमींदार एवं खदान मालिक द्वारा अशिक्षित गांववालों को नौकरी पैसा आदि देकर धोखे में रखते हैं। टेंगर गाँव के तेज़ाब कारखाने को किसी भी तरह बचाकर रखना चाहता है। वह यों कहता है – "ई फैटरी अन्नपूरना माई है, ई बंद नई होगा चाहे इसकी खातिर हमको धरमजुद्ध ही करना पड़े।"[3] टेंगर की इन बातों से उनकी अज्ञानता का पता चलता है। "सावधान! नीचे आगा है" में बिहार को पृष्ठभूमि बनाया है। इसमें वहाँ के कोयलांचल में कार्यरत आदिवासी मजदूरों

---

[1] संजीव – पाँव तले की दूब, पृ : 32
[2] वही , पृ : 38
[3] संजीव, धार, पृ : 22

की व्यथा कथा को चित्रित किया है। कोयलांचल का वर्णन लेखक ने यों किया है – “एक पूरा का पूरा तारों भरा आसमान गहरे काले सागर में औन्धा पड़ा होगा। इसी काले सागर में लंगर डाले पड़े हैं सैकड़ों जहाज-झरिया की कोयला खदानें।”[1] यहाँ कोयलांचल के अवैध खनन से झरिया जैसे प्राकृतिक सौन्दर्य से संपन्न जंगली गाँव के बदलते तेवर का भयानक दृश्य प्रस्तुत किया है। रामसिंह नामक एक ड्राईवर के संवादों के द्वारा झरिया के पर्यावरण प्रदुषण को भोजपूरी मिश्रित हिन्दी में यों कहता है – “अब तो जे-बा-से कोइला और कंकरीट के जंगल फैलते चलल जाता। आछा-आछा नसल के गाई-भैंस आ गईलीं – हमरो टरक पे तो ऊहे बा। ले गये थे कोइला, ले आये हुआ से भैंस-गाई।”[2] इसके साथ भाषा में प्रवाहमयता है। सुरंग में फँस जाने के बाद ऊधम सिंह एक डायरी में उस दुर्घटना का वर्णन करता है। लिखते-लिखते डायरी का पन्ना और सुरंग में फँसे लोग कम होते गए। लेखक इसके बारे में लिखता है – “डायरी और ज़िन्दगी में होड़ लगी थी – कौन पहले शेष होती है। कई बार पानी से फीकी हो आई स्याही, कई बार पुनसंचित कर ज़िन्दगी को सींचती आयी जिजीविषा...........अब दोनों में कोई दम नहीं। फिर भी डायरी हार गयी,

[1] संजीव -सावधान नीचे आग है , पृ.1
[2] संजीव - सावधान नीचे आग है , पृ. 14

ज़िन्दगी जीत गयी। शायद रचना जगत से वस्तु जगत महान होता है।"[1] इसमें संकेतों-प्रतीकों के माध्यम से लेखक ने ज़िन्दगी की सच्चाई को उजागर किया है। प्रादेशिक बोलियों को पात्र संवाद करते हैं –सहुआइन और आशीय के बीच संवाद है। तब सहुआइन कहती है – "सब डरता है, जेकरा मिले वाला बा, ऊहो और जेकरा ना मिले वाला बा ऊहो।"[2] यहाँ साधारण बोलचाल की भाषा के माध्यम से संवादों को रचा है।

मनमोहन पाठक ने "गगन घटा घहरानी" में प्राकृतिक सौन्दर्य के वर्णन के साथ-साथ प्रकृति के छोटे-मोटे बदलावों, पेड़-पौधों, नदी-वर्षा आदि के मानवीकरण द्वारा मानव जीवन के हर्ष-संघर्ष, दुःख एवं विसंगतियों का चित्रण किया है। जब गाँव में अकाल पड जाता है तो आदिवासी समाज को भी गरीबी का सामना करना पड़ता है। उनके इस विषम परिस्थिति को "तार-तार फटी धोती सी आसमान की दरिद्रता हवा में उड़ रही है" कहकर व्यक्त किया है। उन्होंने अकाल को 'विषैले सांप' से तुलना की है जिसने सबको डंस लिया है। उसी प्रकार बरसात को 'ब्याह के बाद विदा की गई बेटी' से तुलना की है। आदिवासियों के प्रधान नेता पैरुगुनी जब मृत्यु शय्या में होता है तो उसकी तुलना बिन पत्तेवाले पेड़ों से करते हैं – "अब नहीं, अब और नहीं बहुत सह लिया, बहुत कुछ देख सुन लिया, बार-बार बिंध-बिंध कर पत्ते उगाए, टहनियां निकाली फूल और फल से लद-लद कर सारा कुछ लूट

[1] संजीव, सावधान! नीचे आग है, पृ :178
[2] संजीव, सावधान! नीचे आग है, पृ : 227

लिया। बस अब कुछ नहीं बचा! अब यहीं टूट कर गिर जाने दो........।”[1] यहाँ एक छायादार वयस्क पेड़ के टूटकर गिर जाने का दृश्य चित्रित करके पैरुगुनी नामक बुजुर्ग की मृत्यु शय्या का चित्रण लेखक ने प्रस्तुत किया है।

“धूणी तपे तीर” में मीण, भील आदिवासियों की आंचलिक भाषा का थोडा बहुत चित्रण किया है। इसमें हरिया नामक आदिवासी युवक दल्ली की हत्यारे को मारकर कहता है – दल्ली ऽऽऽ ! मेंई बैर लेइ ली दो!!”[2] इसका अर्थ है – दल्ली मैंने बदला ले लिया है। उपन्यास के अंत में गोविन्द गुरु अपने साथी कुरिया को आशीर्वाद देते हुए कहता है – “रे कुरिया भाई, हम एक माँ के पेट के जाय तो नहीं, पर धूणी माता की गोद में पलकर हम एक से भगत बने हैं। मुझ जैसे साधु की साधना का पूण्य-परताप तेरे साथ है।”[3] लेखक ने इसमें प्रकृति का वर्णन विस्तार से किया है। - “बैसाख का महिना था। ऊपर तना हुआ था नीला चंदोवा। चंदोवा में जड़े हुए असंख्य नक्षत्र। ये नक्षत्र अपनी कोटि-कोटि किरणों से भेज रहे थे धरती पर कोई अज्ञात सन्देश।”[4] प्रकृति के सूक्ष्म भावों एवं प्रतीकों के माध्यम से आदिवासी शोषण एवं अन्य बातों को चित्रित करने का प्रयास लेखक ने किया है जैसे अंग्रेज़ों द्वारा आदिवासियों पर आक्रमण होने की खबर सुनकर आदिवासी जमात के साथ पूरी प्रकृति भी सहमे हुए थे। प्रकृति किसी दुर्घटना की सूचना दे रही थी –

---

[1] मनमोहन पाठक - गगन घटा घहरानी, पृ :

[2] हरिराम मीणा - धूणी तपे तीर, पृ : 373

[3] वही , पृ : 375-376

[4] वही , पृ : 169

"जंगल के सितारों की आवाज़ में घुटन थी और गाँव के कुत्तों की भौंक में अनहोनी की आशंका। महुआ के दरखत चुपचाप टप-टप आँसू बहा रहे थे।"[1] लेखक ने यहाँ प्रकृति एवं आदिवासी समाज की आत्मीयता को दर्शाते हुए प्रकृति का रोना चित्रित किया है। लेखक ने इसमें कुछ मुहावरों का भी प्रयोग किया है जैसे – 'बात का बतंगड़ बनाना', 'न आव देखा न ताव', 'ऊँट के मुँह में जीरा' आदि।

आंचलिक शब्द

एतना (इतना), भगत (भक्त), भगती (भक्ति), ई (ये), आयो (माँ), गोमकाइन (मालकिन/पत्नी), सुरुज (सूर्य), ओतना (उतना), का (क्या) ["ग्लोबल गाँव के देवता" से], नंय (नही), ओकरा (उसीके), उधिर के (वहाँ के), गां(गाँव), ऊ (वह), डागडर (डॉक्टर), पइसा (पैसा), नयँ (नहीं), बखत (वक्त), अंगरेज (अंग्रेज़), दूनों (दोनों), फेन (फिर), वोइसा (वैसा), का (क्या), हियाँ पे (यहाँ पर), मर (मगर), परिसरम (परिश्रम), सुफल (सफल), जिकर (जिक्र), भरम (भ्रम), फउज (फ़ौज), ओकर (उसका), ["पाँव तले की दूब" से]; कायें (क्यों), हुआं (वहाँ), दीकू (हिन्दू), हियाँ (यहाँ), मौगी (औरत), कब्भी (कभी), तब्भी (तभी), जेहल (जेल), फैटरी (फैक्टरी), परीशानी (परेशानी), पण्डिज्जी (पंडितजी), धरमजुद्ध (धर्मयुद्ध), शास्तर (शास्त्र), सराध (श्राद्ध), सत्त नरायन (सत्यनारायण), बामन (ब्राह्मण), दू (दो), सुवीकार (स्वीकार),

[1] हरिराम मीणा - धूणी तपे तीर, पृः 357

हमरा (हमारा), पतनी (पत्नी), फैदा (फायदा), डागडर (डॉक्टर), पंचेत (पंचायत), परनाम (प्रणाम), चेंगा (बच्चा), चाएता (चाहता), परमोसन (प्रमोशन), भौत (बहुत), मुसला (मुसलमान), असत (जरायमपेशा खानाबदोश), जगा-उग्ग (यज्ञ-वज्ञ), चास-बास (खेती-बारी), कोच्छ (कुछ), परधान मंतरी (प्रधानमन्त्री), किदर (किधर) ["धार" से] ;उनियन (यूनियन), जइसा (जैसा), ककही (कंघी), आपन आदमी (अपना आदमी), एसों (इस साल), ईहाँ (यहाँ), चुपेचाप (चुपचाप), ओतना (उतना), किरपा (कृपा), तुमरा (तुम्हारा), सिरफ (सिर्फ), हुशियार (होशियार), सरग (स्वर्ग), मनीजर (मैनेजर); इसके साथ कोयला खदान से जुडी कई शब्द हैं - जैसे पिट (खदान), चाणक (खदान का कुआँ), बंकर (जहाँ कोयला जमा होता है), चाल (सुरंग की छत), वाशरी (कोयले का कचरा साफ़ करने का संयंत्र), फायर ज़ोन (झरिया का वह क्षेत्र, जिसके नीचे वर्षों से आग धधक रही है) आदि ["सावधान! नीचे आग है" से]; पिरथा (प्रथा), धुमाल (दुश्मन पर हमला), तैने (तूने), भुरेटीया (फिरंगी) आदि ["धूणी तपे तीर" से]

निष्कर्ष

आदिवासी जीवन से जुड़े उपन्यासों का लक्ष्य आदिवासी जीवन के समस्त पहलुओं को उद्घाटित करना है। इन उपन्यासों से देश के विभिन्न क्षेत्रों में स्थित पिछड़े आँचल एवं आदिवासियों के जीवन के विभिन्न संदर्भ रूपायित हुए हैं। विकास की धारा से दूर, अपनी संस्कृति की रक्षा करने में प्रयासरत आदिवासियों का जीवन संघर्ष आज नए मोड पर आ गए हैं।

उपन्यासकारों ने विकास के नाम पर उनके ऊपर हो रहे शोषण और विस्थापन की ओर ध्यान आकृष्ट किया है। यही नहीं राजनीति एवं प्रशासनिक स्तर पर सक्रिय गठजोड़ किस तरह उनके जीवन को भयावह और ओझल बना देता है, यह भी चित्रित किया है। आदिवासी उपन्यासों के लेखक रचनात्मक स्तर पर इनकी संघर्ष चेतना को वाणी देकर उनके संघर्ष में साथ देते हैं।

पाँचवाँ अध्याय

समकालीन हिंदी उपन्यासों में अन्य लघु-संस्कृतियाँ

समकालीन हिन्दी उपन्यासों में अन्य लघु - संस्कृतियाँ

भारत में दलित एवं आदिवासी के साथ-साथ और भी कई ऐसे वर्ग हैं, जो हाशिएकृत हैं। इनमें मुस्लिम, बौद्ध, जैन, सिक्ख, पारसी, अंगालो इंडियन, मारवाड़ी, हिजड़े, समलैंगिक, बेडिया-कंजर-नट जैसे खानाबदोश जनजातियाँ आदि आते हैं। समकालीन हिन्दी उपन्यासों में बौद्ध, जैन, पारसी एवं सिक्खों की समस्याओं व संस्कृति को लेकर अधिक चर्चा नहीं हुई हैं। लेकिन भारतीय समाज एवं संस्कृति इन लोगों की चर्चा के बिना अधूरी है। इस अध्याय में उपर्युक्त अल्पसंख्यकों पर लिखे गए उपन्यासों को चर्चा का विषय बनाया गया है। प्रत्येक अल्पसंख्यकों की समस्याओं व सांस्कृतिक विशेषताओं पर अलग से चर्चा की जाएगी।

मुस्लिम

'इस्लाम' अरबी भाषा का शब्द है जिसका अर्थ है – सुख, शांति एवं समृद्धि। इससे 'सलाम', 'मुस्लिम', 'मुस्लिमीन', 'मुस्लमून' जैसे शब्द बने हैं। इस्लाम का उदय अरब में हुआ था। अरबों ने ईरानवालों को जीत लिया था। इस प्रकार फ़ारसी भाषा इस्लाम की भाषा और ईरानी संस्कृति मुसलामानों की संस्कृति बन गई। अरब जाति 'सामी' (sematic) थे और ईरान आर्य थे। इस्लाम के उदय से पूर्व अरबों के बीच कई अंधविश्वास एवं रूढ़ियाँ प्रचलित थी। ऐसे समय में मक्के में हज़रत मुहम्मद का जन्म हुआ। उसे ईश्वर का पैगम्बर माना गया। उन्होंने अत्यंत सरल धर्म का उपदेश देकर कर्मकाण्डों का विरोध किया। कई लोगों ने षड्यंत्र रचकर उनको मदीना भगा दिया।

मुहम्मद साहब ने अत्यंत सरल धर्म का उपदेश दिया था। आदमी-आदमी के बीच भेदभाव न रखने के कारण निम्न स्तर के लोगों ने भी इसे ग्रहण किया। इन्होंने छह पवित्र कर्मो पर बल दिया – 1.) कलमा पढ़ना (यह बात दिल में बिठाने के लिए जाप करना कि ईश्वर एक है और मुहम्मद उसके दूत हैं। वे इस मंत्र का जाप करते हैं – ला इलाह इल्लल्लाह मुहम्मदुर्रसूल्लाह), 2.) नमाज़ पढ़ना या प्रार्थना करना, 3.) रोज़ा रखना (रमज़ान के महीने में उपवास रखना), 4.) जकात (अपनी आय का ढाई प्रतिशत दान में दे देना) और 5.) हज्ज (तीर्थ यात्रा करना), 6.) जिहाद (ईश्वर के मार्ग में बलिदान करना, जिसमें आक्रामकता नहीं होगी)। मुहम्मद ने मूर्तिपूजा, अंधविश्वास, आदि का विरोध किया। इस कारण कई लोग मुहम्मद को मदीना भगा दिया। इस कारण अरबों ने तलवार उठाया। मुसलामानों को संगठित करके अरबों की एकता कायम रखने के लिए वे संगठन बनाये जो अरब साम्राज्य का केन्द्र था, जिसके नेता खलीफा कहलाने लगे। खलीफा उनके राजा के साथ-साथ धर्मगुरु भी था। आरंभिक दिनों में इस्लाम क्रांतिकारी धर्म था। वे समता, सौहार्द्र, एकेश्वरवाद, आदि के प्रचारक थे। जहाँ-जहाँ मुसलमान अनुयायी गए वहाँ-वहाँ भारी परिवर्तन आया। मुहम्मद की मृत्यु के बाद अराजकता आ गई, भोग लिप्सा बढ़ गई, खलीफा पद के लिए आपसी मारपीट शुरू हो गई। मुसलामानों में शिआ-सुन्नी भेद इन झगड़ों से ही पैदा हुआ है। विद्वानों के अनुसार हज़रत अली के

(पहला पैगम्बर या इमाम) को 'शीआ' कहा जाता है। 'सुन्नी' संप्रदाय मुसलामानों के बहुसंख्यक वर्ग का प्रतिनिधित्व करता है।

मुहम्मद साहब ने सन 622ई. में मक्का छोड़कर मदीने की हिजरत की, जिस वर्ष से इस्लाम का वास्तविक आरंभ माना जाता है। लेकिन 700ई. लगते-लगते इस्लाम ईराक, ईरान और मध्य एशिया में फ़ैल गया तथा सन 712ई. में सिंध मुसलमानों की अधीनता में चलता गया। उसी समय स्पेन में भी मुस्लिम राज्य की स्थापना हुई। मुसलामानों का पहला बेडा सन 630ई. में उमर की खिलाफ़त में हिन्दुस्तान में आया। नवीं सदी के खत्म होने के पहले ही, मलाबार का राज्य 'चेरमन पेरूमल' मुसलमान हो गया। भारत में सबसे पहले उसी ने अरबों को अपना धर्म फैलाने की सुविध दे दी थी। इस प्रकार उनकी सैकड़ों मस्जिदें भी यहाँ बन गयी। उत्तर के राज्य भी इस्लाम को उदारता से देखते थे। जब महमूद गज़नी ने भारत पर आक्रमण करके यहाँ के मंदिरों को नष्ट करके भारत की संपत्ति लूटने लगी, तब से हिन्दू जनता इस्लाम को घृणा भरी दृष्टि से देखने लगे। बाद में विलासिता के कारण अरब साम्राज्य का पतन हुआ। इसके कई टुकडे हो गए। वहाँ पर मुसलमान बने तुर्क सरदार शासन करने लगे। बाद में भारत की स्वतंत्रता के साथ मुस्लिम लीग की मांग पर भारत का विभाजन हुआ और पाकिस्तान के रूप में एक स्वतंत्र मुस्लिम राष्ट्र की स्थापना हुई। इस प्रकार भारत के अधिकतर मुस्लिम सम्प्रदाय के लोग वहाँ चले गए और कुछ भारत में रह गए और वे अल्पसंख्यक हो गए। आज भी भारत के मुसलमानों को विदेशी या

आतंकवादी घोषित करके उन्हें भारत से निकाल देने का षड्यंत्र चल रहा है। हिन्दुत्ववादी शक्तियाँ इन पर निरंतर अन्याय कर रही हैं। वे इन्हें भारत के नागरिक होने का दर्जा नहीं देते हैं। आज भी देश के कोने-कोने में मुस्लिम समाज पर निरंतर अत्याचार हो रहे हैं। आज भी देश भर में इन्हें संदेह भरी दृष्टि से देखने की प्रवृत्ति पनप रही है। इनके जीवन में सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक कई प्रकार की समस्याएँ हैं। सांप्रदायिक दंगों में मुसलामान ही सबसे अधिक शिकार हो रहे हैं। उस समय उनकी बीवी-बच्चे बलात्कार के शिकार हो जाते हैं। उत्तर और दक्षिण भारत में, दलित एवं मुसलमान मुख्यधारा समाज से दूर किसी बस्ती में रहते हैं। वहाँ दलितों व मुसलामानों के लिए अलग-अलग बस्तियाँ हैं। समकालीन हिन्दी उपन्यासों में इन पर हो रहे विविध शोषणों तथा उनकी सांस्कृतिक विशेषताओं का चित्रण किया है। इसके लिए शिवमूर्ति का 'त्रिशूल', अब्दुल बिस्मिल्लाह के 'झीनी-झीनी बीनी चदरिया', 'मुखड़ा क्या देखे', और 'अपवित्र आख्यान', नासिरा शर्मा का 'ठीकरे की मंगनी' और 'ज़िन्दा मुहावरे', मोहनदास नैमिशराय के 'जख्म हमारे', और भगवानदास मोरवाल का "काला पहाड़" उपन्यासों को चुना है।

सांप्रदायिकता और मुस्लिम

सांप्रदायिकता जो सदियों से हमारे समाज में मौजूद है, एक नया और विकराल रूप धारण करके सामने आ गया है। सांप्रदायिकता आज हमारी सब से बड़ी समस्या है, जिसने संपूर्ण राष्ट्र की अस्मिता को छिन्न-भिन्न कर दिया है। सन 1922 से 1927 तक भारत में सांप्रदायिक हिंसा का एक दौर

चला था। विश्वयुद्ध के दौर में यह अपनी चरम सीमा पर थी। 15 अगस्त 1947 को भारत विभाजन हुआ और कई लोग विस्थापित हुए। कई सांप्रदायिक दंगे हिन्दू-मुसलमानों के बीच हुए। उसके बाद 1984 में सिख हत्याकांड हुआ। इंदिरा गाँधी की हत्या ने ही सिखों को दुश्मन मानने की मानसिकता पैदा की थी। लोग सिखों को चुन-चुनकर मारते रहे। बाद में 1991 में बाबरी मस्जिद ध्वंस हुआ जो भारत के मुसलमानों के आत्मसम्मान को ठेस पहुँचाया। इन छोटे-मोटे दंगो ने साधारण जनता को अविश्वास, असुरक्षा, एवं अराजक ज़िन्दगी में धकेल दिया। कश्मीर, अयोध्या, गुजरात-गोधरा हत्याकांड आदि इस साप्रदायिकता के भयानक रूप हैं। आज सांप्रदायिकता को सांस्कृतिक या अंध राष्ट्रवाद की उलझी हुई समस्या के रूप में देखा जा सकता है।

बाबरी मस्जिद के स्थान पर मंदिर होने की कानूनी विवाद की शुरुआत सबसे पहले सन 1885 में हुई थी। उस ज़माने में इस पर कई मुकदमें हुईं। महंत रघुवरदास ने कहा कि मस्जिद के सामने वाले चबूतरे के स्थान पर राम पैदा हुए थे। इस लिए वहाँ मंदिर बनाने की अनुमति दी जानी चाहिए। यह काफी विवाद का विषय बन गया। 23 दिसंबर 1949 को यह मसला नए सिरे से उठा। 22-23 दिसंबर की रात में कुछ लोगों ने विवादित स्थल पर राम की मूर्ति रख दी। 30 अक्तूबर 1990 को कार सेवकों ने बाबरी मस्जिद तोड़कर झंडा फहरा दिया। हिन्दू-मुसलमानों के बीच दंगे शुरू हुई। राख के नीचे चिंगारी जिस प्रकार दबी रहती है और हवा के बहने

पर भभकने लगते हैं उसी प्रकार आज भी यह विवाद चल रहा है और इसके नाम पर दंगे भी हो रहे हैं। शिवमूर्ति ने 'त्रिशूल' में इसका भयानक रूप चित्रित किया है। बाबरी मस्जिद ध्वंस से उत्पन्न सांप्रदायिक विद्वेष हिन्दू-मुसलमानों को शत्रु बना देता है। हिन्दू परिवार का नौकर महमूद को मुस्लिम होने के कारण रामभक्तों व पुलिस अफसरों के मार-पीट का शिकार होना पड़ता है। मोहल्ले के शास्त्रीजी जैसे धर्मांध लोग मुसलामानों को संदेह भरी दृष्टि से देखते हैं। गली के मुसलमान नाई के पास जाने से लोग डरते हैं – "बाप-बेटे हाथ पर हाथ धरे बैठे रहते हैं। शायद 'शेव' करने वाले अंदर ही अंदर नाई की नीयत पर शक करने लगे हैं। कहीं दाढ़ी-बनाते-बनाते गले पर ही उस्तरा न फिरा दें।"[1] पुलिस एवं राजनीतिज्ञों व धार्मिक पुरोहितों की मिलीभगत से शहर में दंगा भड़कने लगता है।

भगवानदास मोरवाल कृत 'काला पहाड़' में बाबरी मस्जिद ध्वंस की छाया में मेव समुदाय की नष्ट होती सांस्कृतिक एकता का चित्रण किया है। वहाँ की हिन्दू-मुस्लिम एकता नष्ट होती है। मेवात के आर्य प्रचार सभा के कार्यकर्ता स्वामी रुपानंद सरस्वती हिंदुओं के मन में मुसलामानों के प्रति विद्वेष भरता है। वह यह आह्वान करता है – "इन सुसरे कटुओं के खातर जब अलग से पाकस्तान बनवा दिया तो फेर ये इस मूलक में क्योंकर पड़े हैं …………इन काफिरों का मूलक तो पाकस्तान है………इन बाब्रों की औलाद को तो उडे ते भगाण ज़रूरी है, जभी इस मूलक में सुख-समरद्धि

[1] शिवमूर्त - त्रिशूल, पृ : 33

आएगी.........”[1] सांप्रदायिक उन्माद मेमात की मेलजोल संस्कृति को नष्ट करती है। बाबरी मस्जिद ध्वंस के पश्चात् गुजरात में साबरमती एक्सप्रेस के छह डिब्बे जला दी और इसके पश्चात् गुजरात में नरसंहार हुआ। मोहनदास नैमिशराय ने ‘जख्म हमारे’ में गुजरात के सांप्रदायिक तांडव का मार्मिक चित्रण किया है। भारत और कश्मीर के मुसलमानों को विदेशी या पाकिस्तानी घोषित कर दी गई। कश्मीर के दंगे का असर गुजरात के सादिया नामक लड़की पर पड़ती है। उस पर आक्रमण होता है। शहर में दंगे होते हैं और मुसलमान मारे जाते हैं। इसका वर्णन लेखक ने किया है – “क़त्ल बाज़ार में सप्ताह भर पहले हज़ारों मुसलामानों को बेरहमी से क़त्ल कर दिया गया था। उनमें ग्राहक थी थे। दूकानदार भी, बच्चे भी थे और बूढ़े भी। मर्द भी थे और औरतें भी। हत्यारों के लिए किसी तरह का कोई बंधन न था।”[2] दंगा करने वाले मुसलामानों को आतंकवादी घोषित करते हैं।

“झीनी-झीनी बीनी चदरिया” में बनारस के हिन्दू-मुसलामानों के बीच हुए दंगे का चित्रण हुआ है। वहाँ दो गलियाँ हैं – हिन्दू और मुसलामानों की। दुर्गापूजा के दिन दुर्गा की मूर्ति मुसलमान गलियों से गुजरता है तो अचानक को ईंट का टुकड़ा मूर्ति पर फेंक देता हैं। इसके साथ पत्थरों, खाली बोतलों और तेज़ाब भी फेंकते हैं। फिर भीड़ में से लोग छूरा, बंदूक आदि लेकर आक्रमण करते हैं और दुकानों तथा घरों को जलाते हैं। सब जगह खून ही खून

---

[1] भगवानदास मोरवाल – काला पहाड़, पृं : 373

[2] मोहनदास नैमिषराय – जख्म हमारे, पृ : 168

था। मनुष्य के भीतर छिपा हुआ असुर धीरे धीरे बाहर आ जाता है। - "पूरा शहर फनफना उठता है। इतना कह देना ही पर्याप्त है कि हिंदुओं और मुसलमानों में झगडा हो गया है। इस मुल्क में अब हिंदुओं और मुसलामानों के झगडे का सीधा अर्थ है – दंगा! ....सो बनारस शहर में दंगा हो जाता है। दालमंडी में जो हिन्दू खरीददारी कर रहे थे वे छुरे और छर्रों के शिकार हो गये। लड़कियों और जवान औरतों पर जिस्मानी हमला किया गया। बँटवारे का बदला भला और कैसे लिया जा सकता है?"[1] इस प्रकार सांप्रदायिकता की भीषणता को व्यक्त किया है। सांप्रदायिकता का प्रभाव सबसे ज़्यादा औरतों पर पड़ता है। दंगेवाले अपनी जीत सुनिश्चित करने के लिए औरतों का यौन शोषण करते हैं।

हिन्दुत्ववादी राजनीति एवं मुस्लिम

सांप्रदायिकता का मुख्य कारण अंध राष्ट्रवाद है जो आज की राजनीति एवं साम्राज्यवादी शक्तियों की मिलीभगत से जन्म ली है। संघ परिवार का दीर्घकालीन एजेंडा है – भारत को हिन्दू राष्ट्र बनाना और भाजपा का राजनीतिक जनाधार बढ़ाना। ये दोनों एक दूसरे के पूरक हैं। हिन्दू वोट बैंक भरने के लिए अल्पसंख्यकों पर निरंतर वैचारिक एवं भौतिक हमले हुए। इसके लिए मुसलमान विरोधी उन्माद पैदा करते, उन्हें विदेशी करार देने, उर्दू को विदेशी भाषा घोषित करने आदि का प्रयास हो रहे हैं।

---

[1] अब्दुल बिस्मिमल्लाह - झीनी-झीनी बीनी चदरिया, पृ : 162

राष्ट्र पर काबिज हिंदुत्ववादी शक्तियों का रूप "जख्म हमारे" में देख सकते हैं। वे देश को 'रामराज' में बदलने को आतुर हैं। सरकार एवं राजनीतिज्ञ सत्ता प्राप्ति के लिए हिन्दू-मुसलमानों का करीब आने से रोकते हैं। इसमें दलित युवक 'राजू' बताता है कि सरकार दलित एवं मुसलमानों पर कड़ी निगरानी रखता है। "त्रिशूल" में भी हिन्दू राष्ट्र बनाने को आतुर भाजपा सरकार की ओर इशारा किया है। बाबरी मस्जिद दंगे के बाद शास्त्रीजी लड्डू बाँटता है तो पुलिस व नेताएं दंगों को प्रश्रय देते हैं। 'ज़िन्दा मुहावरे' में हिन्दुत्ववादी शक्तियों के बारे में बताती है – "सितासी नेताओं के व्यक्तिगत आकांक्षाओं और नफे नुकसान के हाथों अंजाम गुनाह सिर्फ उनके जीवन तक सीमित नहीं रह जाता है बल्कि पूरी कौम रहती सारा मुल्क झेलता और नई आनेवाली नस्लें भी आरोपों के घेरे में फँसी सदियों तक तडपती हैं।"[1] इस हिन्दुत्ववादी मानसिकता के कारण 'काला पहाड़' में आर्य प्रचार सभा के नेताओं के नेतृत्व में एक हिन्दू को नगीना के सरपंच बनाने का निर्णय लेते हैं। इसके लिए वे हिन्दू धर्म में निम्न माने जानेवाली सभी जातियों को अपने पक्ष में कर देते हैं।

विस्थापन और मुसलमान

भारत विभाजन के बाद भारत से कई मुसलमान विस्थापित हुए। उनमें अनजान मुल्क में परदेशी या पराया बनकर जीने की निराशा, अपने मुल्क छोड़ने की निराशा, है। "ज़िन्दा मुहावरे" में 'निजाम' अपना देश

---

[1] नासिरा शर्मा – ज़िन्दा मुहावरे, भूमिका

छोड़कर पाकिस्तान चला जाता है। कई संघर्षों के बाद वह धीरे-धीरे नई ज़िन्दगी शुरू करता है। पाकिस्तान गये लोग अपने देश, रिश्तेदार आदि से दूर हैं। उन्हें ज़िन्दगी के हर पल में इनकी याद आते हैं। इसके संबंध में अख्तर नामक युवक कहता है – "यह तजुर्बा कितना संदेह तकलीफदेह होता है कि जहाँ आप पैदा हों, जिस ज़मीन को आप अपना वतन समझें, उसे बाकी लोग आपका गलत कब्ज़ा बताएं। कदम-कदम पर यह एहसास दिलाए कि तुम यहाँ के नहीं बाहर के हो।"[1] इसके साथ भारत में रहनेवाले तथा विस्थापित मुसलमान एवं उनके परिवार को पुलिस संदेह भरी दृष्टि से देखता है।

"काला पहाड़" में कई हिन्दू एवं मुस्लमान भारत विभाजन के समय विस्थापित हुए थे| बाबरी मस्जिद ध्वंस से उत्पन्न दंगों के करण कई हिन्दू दिल्ली भाग गए थे| क्योंकि मेवात में मुस्लिम बहुसंख्यक हैं| विस्थापित हुए हिन्दू एवं मुसलमानों के बारे में सलेमी बताता है – "..............मोहाजर और सन्नार्थी एक जैसा होवे हैं..........भगी में हिन्दुस्तान सू जो मुसलमान पाकस्तान में जाके बसगा हा, वे सब मोहाजर हैं।"[2] इस प्रकार वे जीवन पर्यन्त शरणार्थी बनकर इधर-उधर भटकते हैं। उनकी जड़े काटकर ज़मीन और आसमान के बीच छोड़ दिया जाता है।

---

[1] नासिरा शर्मा – ज़िन्दा मुहावरे, पृ :101

[2] भगवानदास मोरवाल – काला पहाड़, पृ : 342

कट्टर धार्मिकता एवं मुस्लिम

समाज में कुछ लोग ऐसे हैं जो सभी चीज़ों को धर्म की दृष्टि से परखते हैं। वे धर्मनिरपेक्ष लोगों पर भी धर्म थोपने की कोशिश करते हैं। "त्रिशूल" में शास्त्रीजी ऐसे ही आदमी है जो हिन्दू के अलावा किसी और को बर्दाश्त नहीं कर पाते। लेखक जो हिन्दू है शास्त्रीजी के मोहल्ले में आता है तो विशेष स्थान मिलता है। वह धर्मनिरपेक्ष लेखक के मन में धार्मिक भावनाएँ उत्पन्न करने की कोशिश करता है। वह लेखक के घर में गाय को देखकर कहता है – "गाय पालकर आप सच्चे हिन्दू का धर्म निबाह रहे हैं। गो-ब्राह्मण की सेवा।"[1] उसी तरह लेखक के नौकर महमूद के मन में हिंदुओं के प्रति विद्वेष पैदा करने की कोशिश करता है। लेखक और महमूद के बीच के आत्मीय संबंध को नष्ट करने का प्रयास कट्टर हिन्दू और मुसलमान धर्माविलंबी करते हैं।

"मुखड़ा क्या देखे" में हिन्दू-मुसलमानों के बीच मौजूद भाषागत-जातिगत भेदभाव पर प्रकाश डाला है। संस्कृत को हिंदुओं की तथा उर्दू को मुसलमानों की भाषा मानते हैं। इसलिए जो शब्द संस्कृत या हिन्दी के हैं उसका प्रयोग मुस्लमान नहीं करते। अली अहमद और जलील जंगल में लकड़ी काटने जाते हैं तो जलील जंगल को देवता कहता है तब अली समझाता है – "देवता नहीं, फ़रिश्ता कहो। यह न भूलो कि तुम मुसलमान हो।"[2] 'भाउजी' शब्द को हिन्दू शब्द मानने के कारण वे सत्तर की माँ को

---

[1] शिवमूर्ति - त्रिशूल, पृ : 7

[2] अब्दुल बिस्मिल्लाह - मुखड़ा क्या देखे, पृ : 71

भाभी पुकारते हैं। "ज़िन्दा मुहावरे" में सबीहा और निजाम के बीच इकबाल नामक शायर को लेकर संवाद होता है। तब निजाम इकबाल को भारत का शायर कहता है तो सबीहा उसे पाकिस्तानी मानती है। क्योंकि वह उर्दू में लिखता है। "अपवित्र आख्यान" में भाषा, साहित्य एवं अन्य क्षेत्रों में प्रचलित अंध धार्मिक भावनाओं को व्यक्त किया है। बचपन में जमील द्वारा रामचरितमानस पढने पर पंडित उसे पीटता है। क्योंकि एक मुसलमान इसे पढ़ नहीं सकता। ज़मील जब बड़े होकर हिन्दी में लिखता है तो लोग उससे चिढ़ते हैं और उसे 'हिन्दी का मुसलमान लेखक' कहकर मज़ाक उठाते हैं। दूसरी ओर हिन्दू द्वारा उर्दू के प्रयोग करने पर हिन्दू धर्मावलंबी गुस्से होते हैं। उनका कहना है – "उर्दू हमारे देश की भाषा नहीं है। शुद्ध रूप से विदेशी है। मुसलामानों की भाषा है। इस भाषा को महत्व देने का अर्थ है उन्हें शक्तिशाली बनाना।"[1] भारत में भाषा, धर्म, वेश-भूषा आदि को भी संदेह भरी दृष्टि से देखने की प्रवृत्ति है। "काला पहाड़" में आर्य प्रचार सभा के प्रधान लाला अभयाचंद, स्वामी रुपानंद सरस्वती आदि कट्टर हिन्दू धर्मावलंबी नगीना में हिंदुओं के मन में मुसलमानों के प्रति विद्वेष पैदा करते हैं। मेवात में हिन्दू-मुसलमान एकता के साथ रहते थे। हिन्दू धर्म के लोग चमार, कुम्हार जैसे निम्न जातिवालों से दूर रहते थे। लेकिन नगीना के सरपंच के लिए चुनाव होता है तो उसमें एक हिन्दू को जिताने के लिए आर्य प्रचार सभा के लोग निम्न जाति के 'जगनी' जैसे लोगों के घर में जाते हैं। जगनी के अनुसार

[1] अब्दुल बिस्मिल्लाह – अपवित्र आख्यान, पृ : ४४

कोई भी सरपंच बन सकते हैं। लाल ज्ञानचंद बताता है – "अरे, मेवात तो ये ठान ली है के अब के सरपंच मेव ही होगा.....और इधर हमने भी पक्का इरादा कर लिया है कि चाहे सन सत्तावन हो जाए, सरपंची किसी भी हालत में मेवों के पास नहीं जाने देंगे।"[1] इस तरह कुछ अंध धार्मिक नेताओं व राजनीतिज्ञों की संकुचित मानसिकता कुछ मुसलमानों के प्रति हिंदुओं में विद्वेष पैदा करते हैं।

मुस्लिम नारी और यौन शोषण

पुरुषसत्तात्मक समाज में नारी हमेशा किसी न किसी प्रकार के शोषणों का शिकार होती रहती हैं। इसमें मुस्लिम भी आती हैं। साम्प्रदायिक दंगे होते समय सांप्रदायिक शक्तियाँ बलात्कार, लूटपाट, आगजनी एवं मारपीट को ध्वंस या हथियार के रूप में इस्तेमाल करते हैं। वे अपना बदला नारी पर आक्रमण करके पूरा करते हैं। वे छोटी बच्चियों, गर्भवती औरतों से लेकर बूढ़ी औरतों तक का निर्मम बलात्कार करते हैं। इन पर आतंक मचाकर वे अपनी बाहुबल एवं शक्ति का ऐलान करते हैं। गुजरात एवं गोधरा हत्याकाण्ड, कश्मीर में हो रहे आतकवादी हमले और देश के कोने-कोने में हो रहे दंगों में औरतें भयानक बलात्कार के शिकार हो रहे हैं। ऐसी औरतें आत्महत्या कर लेती हैं, कई लोग मानसिक तनाव के शिकार होती हैं और कुछ शरणार्थी कैम्प में निर्जीव ज़िन्दगी गुज़ार लेती हैं।

---

[1] भगवानदास मोरवाल – काला पहाड़, पृ : 384

"जख्म हमारे" में लेखक ने तीव्र हिंदुत्व के बीच असुरक्षित मुसलमान औरतों का चित्रण किया है। कश्मीर में दंगे होने पर भारत में मुसलमानों पर आक्रमण हुआ था। इसमें सादिया पर भी बलात्कार करने की कोशिश होती है। दंगे के बाद बलात्कार की शिकार मुमताज़, शबनम, शकीला, रुखसाना आदि औरतें पुनर्वास केन्द्र में पहुँच जाती हैं। इस विकृत मानसिकता पर लेखक ने लिखा है – "जीती हुई ज़मीन और हारे हुओं की औरतें तब उनके सामने थी। क्या हम फिर से इतिहास का तो नहीं दोहरा रहे हैं? ज़मीन अभी भी थी औरतें भी। हमलावर उन्हें भोगने को आतुर थे। और उन्होंने भोगा भी था। महिलाओं के भीतर दर्द था जबकि दंगाइयों में वासना का समन्दर। जवान मुसलमानियों के नाड़े तोड़ डाले गये थे और उनकी चोलियाँ फाड़ दी गई थीं।"[1] विभाजन, दंगा, युद्ध आदि का असर सबसे ज़्यादा औरतों व बच्चों पर पड़ता है। "झीनी-झीनी बीनी चदरिया" में बनारस में हिन्दू-मुसलमानों के बीच हुए दंगों में औरतों के यौन शोषण का चित्रण हुआ है। दंगों व कर्फ्यू के समय मोहल्ले में पुलिस पहरा करते थे। सब दंगेवालों के साथ पुलिसों से भी डरते थे। इसलिए औरतें घर में छिपी रहती हैं। - "जिनकी छतों पर पुलिसवाले पहरा दे रहे होते हैं, वे पुलिस के भय से ही रात-भर नहीं सो पाते, क्योंकि उन्होंने सुन रखा है कि दालमंडी में पुलिस

[1] मोहनदास नैमिषराय – जख्म हमारे, पृ : 192

और पी.ए.सी वालों ने मिलकर औरतों की बेईज्ज़ती की है और दूकानें लूटी हैं।"[1] मुस्लिम औरतों पर पुलिस एवं फौजी लोग भी आक्रमण करते हैं।

आर्थिक शोषण

अर्थ जीवन का अनिवार्य अंग है। इसके अभाव में हमें कई प्रकार के दुःख झेलने पड़ते हैं। "ज़िन्दा मुहावरे" में भारत से विस्थापित हुए मुसलमानों की आर्थिक स्थिति का चित्रण हुआ है। निजाम, नादिर खां, शरफुद्दीन आदि भारत के अमीर थे। जब ये भारत छोड़कर पाकिस्तान गए तो वे गरीब बन जाते हैं। विभाजन एवं दंगों के समय कई मुसलमानों की संपत्ति लुट ली गई। "मुखड़ा क्या देखे" में 'अली अहमद' नामक चूड़ीहार रामवृक्ष पाण्डे के शोषण का शिकार होता है। लेखक ने अली की निर्धनता का चित्रण किया है – "और हालत यह थी कि घर में एक दाना नहीं था। पाई-पाई ने करके गुल्लक में उसने जो कुछ बचाया था वह सोउरी-बरही में खर्च हो गया। और अभी सवा महीने से पहले वह गाँव-गंवई जा ही नहीं सकती थी। फिर नाउन-चमाइन को देना था सो अलग। ऐसी हालत में कर्ज की न सोचे आदमी तो फिर और क्या करे।"[2] अली का परिवार जिन्दगी भर ज़मींदारों के कर्जदार बनने के लिए विवश है।

"झीनी-झीनी बीनी चदरिया" में बनारस के बुनकरों की अभावग्रस्त जीवन का चित्रण किया है। गरीब बुनकर महीनों के मेहनत के बाद साडी

---

[1] अब्दुल बिस्मिमल्लाह – झीनी–झीनी बीनी चदरिया, पृ : 163

[2] अब्दुल बिस्मिमल्लाह – मुखड़ा क्या देखे, पृ : 31

बुनते हैं। लेकिन उसे अपनी मेहनत की कीमत नहीं मिलते। जब साडी बेचने के लिए गिरस्तों के पास जाते हैं तो कोई न कोई कमी ढूँढकर साडी की कीमत घटाते हैं। बुनकरों के लिए अलग सोसाइटी बनाने के सिलसिले में अलीमुन और मतीन के बीच हुए संवादों से इनकी गरीबी का पता चलता है – “रूपया कहाँ से लायेगें लोग? जो लोग बानी पर बीनते हैं उन्हें मजदूरी इतनी कम मिलती है कि हफ्ते का खर्च चलाना ही मुश्किल हो जाता है। जो लोग अपना माल खरीदकर बीनते हैं उनके ऊपर कतान और कलाबत्तू का कर्जा इतना होता है कि इधर से आया और उधर गया। गिरस्ता के घर जाकर मजूरी पर बिननेवालों की हालत तो और भी खराब है।”[1] बनारसी साडी बिकने के बाद इन्हें 400 या 300 ही मिलता है। इनमें सौ से ज़्यादा कर्जदार हड़प लेते हैं। इस प्रकार महीनों के मेहनत बेकार हो जाता है। बुनकारों के लिए सरकार से जो कर्ज मिलता है वह अमीर लोग हडप लेते हैं। इस बीच जब दंगा होता है तो शहर में कर्फ्यू होती है। गरीब बुनकर न ही काम पर जा पाते हैं और न ही बीनने वाली साड़ी गिरसों को बेच पाते हैं। यह दंगा इन्हें और भी आर्थिक कठिनाइयां प्रदान करती हैं । “काला पहाड़” में गरीबी, बेरोज़गारी और आर्थिक अभाव आदि के कारण लोग शहर की ओर पलायन करते हैं। सरकार एवं राजनीतिज्ञ मेवात में कारखाने लगवाने, रेल की पटरी बिछाने तथा बेरोज़गारी दूर करने की बड़ी-बड़ी बातें करते हैं। यहाँ के पढ़े-लिखे नई पीढ़ी बेरोजगार हैं। वे छोटे-मोटे काम करते-करते ऊब जाते हैं। गाँव को लेकर

[1] अब्दुल बिस्मिमल्लाह – झीनी–झीनी बीनी चदरिया, पृ : 30

लोगों के मन में भ्रम है कि वहाँ खुशहाली है। लेकिन सलेमी सच्चाई बताता है – "......कौन सी खुसाली है मेवात में........अरे, छोटी-मोटी जात सू लेके थोड़ी बहोत ज़मीन वाला मेव तो खाण-कमाण कू गाँवन्ने छोड़-छोड़ के जा रा हैं और ई कह रो है इलाका खुसाल है..........।"[1] गाँव में मूलभूत सुख-सुविधाओं से वंचित गरीब लोग अपना घर एवं खेती-बाड़ी छोडकर शहर चले जाते हैं।

श्रम शोषण

दलित, आदिवासी लोगों के समान निम्न जाति के मुसलमानों का भी जमींदार, साहूकार, कारखाने मालिक आदि द्वारा श्रम शोषण होता है। "मुखड़ा क्या देखे" में अली अहमद, मखदूम आदि निम्न जाति के गरीब मुसलमान हैं। इनमें गाँव के अमीर ब्राह्मण और जमींदार कम पैसे देकर काम करवाते हैं। मखदूम नाऊ जो बाल काटने का काम करता है ब्राह्मणों व अमीरों के भी बाल काटते हैं। कभी-कभी ये लोग मुफ्त में काम करवाते हैं। मखदूम दुःख के साथ कहता है – "सान चढ़वाने के लिए पइसा चाहिए कि नहीं? और रिवाज़ अइसा है कि बडमनइन के हियाँ सोउरी से लेके बियाह के बख्त तक लड़िकन का बाल मुफ्त में ही बनाना पड़ता है। बदले में एक डब्बल नहीं मिलता। ....कभी दुई पइसा एक आना देंगे भी तो ऐसे मानो कर्ज दे रहे हों।"[2] इस प्रकार "झीनी-झीनी बीनी चदरिया" में बुनकरों के साथ

---

[1] भगवानदास मोरवाल – काला पहाड़, पृ : 86

[2] अब्दुल बिस्मिमल्लाह – मुखड़ा क्या देखे, पृ : 34

हो रहे श्रम शोषण का चित्रण हुआ है। लत्तीफ-मतीन, बशीर, अल्ताफ जैसे गरीब बुनकर बड़े-बड़े एवं अमीर लोगों के कारीगर हैं। दिन-रात मेहनत करके ये लोग दुनिया में प्रसिद्ध एवं कीमती बनारसी साड़ियाँ बनाते हैं। ये लोग गुलाम की तरह मेहनत करके खूबसूरत साड़ियाँ बनाते हैं पर इनके मालिक उनका पैसा कम ही देता है। हाजी रसीद के कारीगर 'अल्ताफ' कुछ दिन के लिए छुट्टी लेता है तो रसीद उसके घर में जाकर धमकी देता है। बनारस के मऊ के बुनकरों के शोषण पर अखबार में रिपोर्ट आती है – "बुनकरों ने बताया कि सरकार की निगाह में हम बुनकर नहीं है। बुनकर वे है जो मिल तथा साइजिंग खोलकर शोषण तथा ऋण-अदायगी में आनाकानी करते हैं। हम तो इनके यहाँ मजदूरी पर कार्य करते हैं।"[1] सरकार द्वारा बुनकरों की सहायता के लिए बनाई गई समितियाँ कार्यरत नहीं है। जितने सरकारी समितियाँ हैं वहाँ बड़े-बड़े सरमायदारों की माल निर्यात करती हैं। छोटे-छोटे बुन्करों की माल ये लोग नहीं लेते हैं।

जातिगत भेदभाव एवं मुसलमान

मुसलामानों में भी उच्च वर्ग एवं निम्न वर्ग है। उच्च वर्ग मुसलमान होते हुए भी निम्न जाति के मुस्लमान भाइयों से नफरत करते हैं। वे गाँव के जमींदार तथा उच्च वर्ग के लोगों के साथ मिलकर गरीबों का शोषण करते हैं। "मुखड़ा क्या देखें" में अली अहमद चूड़ीहार है जो नीची जाति का है। वह

[1] अब्दुल बिस्मिमल्लाह – झीनी–झीनी बीनी चदरिया, पृ : 143

गरीब है इसलिए मदद माँगने तथा रामवृक्ष पाण्डे नामक जमींदार की शिकायत करने अपने ही मुस्लमान जात के जब्बार मौलवी साहब के पास जाता है तो मदद नहीं करता है। वह अपनी पत्नी से निचली जाति के चूड़ीहारों के घर न जाने तथा उनसे रिश्ते न रखने का उपदेश देती है। लेखक बताता है – "मुस्लमान और मुसलमान में भी फर्क होता है। जैसे हिन्दू और हिन्दू में फर्क होता है। कुछ हिन्दू और मुसलमान एक जैसे होते हैं, उनके सोचने का ढंग एक जैसा होता है। वे कुछ दूसरे हिंदुओं और कुछ दूसरे मुसलमानों से अलग होते हैं............."[1] अली जब इलाहाबाद जाता है तो मुसलमान होने के कारण उसे पानी खुद पीने नहीं देता, पिलाता है। उसी प्रकार एक और दुकानदार मुसलमान बताने के बाद पूछता है – 'खां हो कि सैयद', जो कि दोनों उच्च जाति है।

मुसलमानों में उच्च जातिवाले निम्न जाति से शादी तक नहीं करते। अगर ऐसा होता है तो उस इंसान को अपमानित करते हैं। "मुखड़ा क्या देखे" में चुनिया की शादी में कल्लू नामक युवक बेहना जाति की लड़की से शादी करने के कारण अपमानित होता है। सृष्टिनारायण सत्तार से उसकी जात-बिरादरी के होने के कारण बुधुवा के संबंध में बात करता है तो वह नाराज़ होकर कहता है – "ऊ चूड़ीहार है और हम तुरक। एक जात-बिरादरी के कैसे

[1] अब्दुल बिस्मिमल्लाह – मुखड़ा क्या देखे, पृ : 33

हुए?"[1] इस प्रकार "झीनी-झीनी बीनी चदरिया" में बनारस के शिया-सुन्नी मुसलामानों के बीच के भेदभाव को दर्शाया है। उन दोनों में दासिपुर की एक मस्जिद और कब्रिस्तान को लेकर झगडे होते हैं। ज़मीन की कीमत बढ़ने के साथ इनके बीच का फासला भी बढ़ जाता है। हाजी अमीरुल्ला और सिब्ते हसन के बीच झगड़ा है। अंत में शिया की कब्रिस्तान से सुन्नियों की कब्रें उखाड़ने की फैसला सुप्रीम कोर्ट लेता है।इस प्रकार मुसलमानों का हिंदुओं के साथ झगड़ा होने के साथ-साथ अपने ही धर्म के निम्न जातिवाले के साथ भी झगडा है। वे निरंतर इनका शोषण करते हैं।

हिन्दू-मुस्लिम एकता

हिन्दू-मुसलमान एक दूसरे के साथ आत्मीय संबंध भी रखते हैं। "त्रिशूल" का लेखक एक धर्मनिरपेक्ष आदमी है। उन्होंने हिन्दू-मुसलमान, ईश्वर - अल्लाह में कोई फर्क नहीं किया। उनका धर्म संबंधी विचार खुला एवं प्रगतिशील है। इसलिए वह महमूद को अपने भाई की तरह मानता है। वह शास्त्रीजी से कहता है – "..........मेरी कल्पना का ईश्वर केवल हिंदुओं का ईश्वर नहीं है। वह सभी धर्माविलंबीयों का है। विभिन्न धर्मों के उद्भव से पूर्व था। और इनके न रहने पर भी रहेगा।"[2] महमूद को जब आतंकवादी घोषित करके पुलिस ले जाते हैं तो लेखक उसे छुडाता है। "मुखड़ा क्या देखे" में अली अहमद की भतीजी चुनिया की शादी पर हिंदुओं का आना तथा गीत गाने का

[1] अब्दुल बिस्मिमल्लाह - मुखड़ा क्या देखे, पृः 141
[2] शिवमूर्ति, त्रिशूल - पृ : 11

ज़िक्र है। उसी प्रकार दशरत पाण्डे आकर चुनिया को पाँच रूपए नेक भी देता है। यहाँ हिन्दू-मुस्लिम संबंधो की आत्मीयता को दर्शाया है। "काला पहाड़" में भूरे खां अपने बेटे की शादी पर हिंदुओं को न्यौता देते हैं। वह उनके लिए खान-पान के अलग इंतजाम करता है।

"अपवित्र आख्यान" का जमील नामक युवक प्रगतिशील विचारों वाला है। वह धर्म, भाषा सन्बन्धी विभाजन बर्दाश्त नहीं कर पाता है। वह धमकियों के बावजूद हिन्दी में साहित्य लिखता है और हिन्दू परिवार की शादी में भाग लेता है और हिन्दू-देवी-देवताओं को मानता है। वह 'तूणीर' पत्रिका के संपादक श्री रामप्रसाद हठी से कहता है – "आप गाँवों में जाकर देखिए वहाँ के हिन्दू और मुसलमान कैसे हैं ? उनका जीवन एक जैसा है, उनकी समस्याएँ एक जैसी हैं। जो समस्या हिन्दू किसान की है, वही समस्या मुस्लिम किसान की है।"[1] जमील ने हिन्दू-मुसलमान के बीच के आत्मीय संबंध को यहाँ व्यक्त किया है।

मुस्लिम प्रतिरोध

भारत में मुसलमान अल्पसंख्यक हैं और उन्हें परदेशी मानते हैं। उन पर कई तरह के शोषण भी हो रहे हैं। लेकिन वे अपने ऊपर हो रहे शोषणों के खिलाफ आवाज़ भी उठाये हैं। भारत में निरंतर मुसलमानों पर हो रहे अत्याचारों से तंग आकर "ज़िंदा मुहावरे" के निजाम पाकिस्तान चला जाता है। वह इस यात्रा का समर्थन करते हुए कहता है – "ज़मीन ....! ज़मीन

[1] अब्दुल बिस्मिल्लाह – अपवित्र आख्यान, पृ : 133

से चिपके रहना, तभी तक भला, जब वह अपनी पहचान हो, इज्ज़त हो, अपने बीज, अपनी फसल हो, मगर जब सब कुछ बेगाना बना दिया जाए और साबित करना पड़े कि यह मिट्टी.......... इससे अच्छा वह टुकड़ा है, जो काट कर दामन में डाल दिया गया हो।"[1] भारत में जब निरंतर उन्हें संघर्षों से गुज़रना पड़ा तब निजाम जैसे लोग अपनी नई ज़िन्दगी की शुरुआत करने के लिए पराये देश में जाते हैं। कई संघर्षों के बाद वहाँ अपनी ज़िन्दगी खड़ा करते हैं। लेकिन भारत की यादें उन्हें निरंतर सताते हैं।

"झीनी-झीनी बीनी चदरिया" में सेठों व गिरसों द्वारा गरीब बुनकरों का निरंतर शोषण होता है। महीनों तक मेहनत करके एक बनारसी साडी बुनते हैं तो उसमें कोई न कोई कमी बताकर उसका दाम घटाते हैं। हाज़ी नज़ीर के कारीगर अल्ताफ निरंतर शोषण सहते-सहते विद्रोही बन जाता है। वह नज़ीर के धमकियों से तंग आकर कहता है – "हमरा जब मन होइए तब बिनेंगे। कर्जा खाये हैं मगर गुलामी नाहीं लिखायें हैं। समझेव हाई साब!"[2] वह अपनी इच्छानुसार बुनने लगता है और शोषण के खिलाफ आवाज़ उठाने की प्रेरणा देता है। इक़बाल जैसे शिक्षित युवक बुनकरों पर हो रहे शोषणों के खिलाफ आवाज़ उठाने की प्रेरणा देता है| वह कहता है – "यह कटौती, यह साजिश, यह बद-इन्तजामी खत्म होनी चाहिए। सरमायादारों की तिकड़ में अब टूटनी चाहिए और आम बुनकरों को अपना हक़ मिलना ही चाहिए।

---

[1] नासिरा शर्मा – ज़िंदा मुहावरे, पृ : 9
[2] अब्दुल बिस्मिमल्लाह – झीनी–झीनी बीनी चदरिया, पृ : 121

हमारे बापों ने भले सब कुछ बर्दाश्त किया, पर हम नहीं करेंगे।"[1] इकबाल के नेतृत्व में शोषकों का पुरजोर विरोध होता है और जुलाहों को मिलाकर आन्दोलन भी चलाता है। "अपवित्र आख्यान" में जमील कट्टर धार्मिक कर्मकांडों तथा विश्वासों का विरोध करता है। वह क्रांतिकारी लेखक है और वह मानवता के धर्म में विश्वास रखता है। वह रोज़ मस्जिद नहीं जाता है और न ही नमाज़ पढता है। यास्मीन जब इस पर सवाल करता है तो वह बताता है – "क्या नमाज़ पढने या पूजा करने से यूनिवर्सिटी में लेक्चरशिप मिल सकती है? अगर ऐसा होने लगे तो सारी तो सारी यूनिवर्सिटियां नमाजियों और पुजारियों से भर जाएँ।"[2] वह हिन्दू मुसलामानों के बीच सांप्रदायिक विद्वेष फैलानेवाले शक्तियों का विरोध करता है। "काला पहाड़" में मेवात गाँव में गर्मी का बढ़ना, इधर-उधर आग लगाना चित्रित किया है। जब राजनीतिज्ञ इनको हज़ार-हज़ार रूपए की राशि देने का निर्णय लेता है तो सलेमी इसका विरोध करता है। क्योंकि उनका नुकसान सिर्फ हज़ार रूपए का नहीं है। उसका यह निर्णय राजिनीतिज्ञों के गाल पर थप्पड लगाने के समान था। सलेमी के साथ पूरा गाँव भी खड़ा होता है।

मुस्लिम नारी और प्रतिरोध

"जख्म हमारे" में सादिया पढ़ी-लिखी प्रगतिशील विचारों वाली मुस्लिम नारी है। वह मुसलमान तथा दलितों के साथ हो रहे दो नंबर के

---

[1] अब्दुल बिस्मिमल्लाह - झीनी-झीनी बीनी चदरिया, पृ: 192

[2] अब्दुल बिस्मिल्लाह, अपवित्र आख्यान, पृ : 97

व्यवहार के खिलाफ आवाज़ उठाती है। मुस्लिम औरतें जो धर्म का पालन करके बुरके में बंद रहने के लिए विवश हैं। इसके विपरीत सदिय इन सबका विरोध करके समाज के आगे आती है। वह अपने अब्बा से पूछती है – "अब आप ही बताओ खालाजान हम लड़कियाँ अगर बिना बुरके के घर के बाहर जाए तो हमें कौन मुसलमानी कहेगा।"[1] धार्मिक रुढियों के साथ सामजिक असमानताएँ मिटने के लिए राजू नामक दलित के साथ काम करती है। दंगे के बाद कैंप में उन महिलाओं व बच्चियों के पास जाकर आत्मविश्वास बढाती है जो बलात्कृत हुई थी। वह अखबारवालों से कहती है – "शर्म आनी चाहिए तुम्हें और तुम्हारे लोगों को। अरे मासूम बच्चियों पर मर्दानगी दिखाई अपनी उन्होंने। निहत्थे मुसलामानों को मारा तुम्हारे जाबांजो ने।"[2] सादिया के साथ अन्य औरतें भी विरोध करती हैं और आक्रोश के साथ कहती है कि हम बाज़ारू नहीं है कि हमारे नंगे फोटो खिंचवाये।

"ठीकरे की मंगनी" की महरुख में प्रगतिशील विचार है। उसे घरवालों की बात मानकर राफत से शादी करके दिल्ली जाना पड़ता है। फिर भी पढ़ाई को आगे बढाती है। महानगर में अपने-आपको फिट करने में काफी संघर्ष झेलती है। एक दिन राफत उसे अकेला छोड़कर अमरिका चलता जाता है तो दुखी होती है। लेकिन वह अपनी मकसद को छोड़ता नहीं। जब राफत वापस आकर दुबारा महरुख से शादी करके साथ बिताने की बात करता है तो

---

[1] मोहनदास नेमिषराय – जख्म हमारे, पृ : 58
[2] वही - पृ : 194

वह कहती है – "रहम खाईए, रफत भई, मुझ पर रहम खाइए। मुझे फिर तराशने और चमकाने की ज़िम्मेदारी मत कीजिए| मुझे फिर एक खुबसूरत ज़िन्दगी का भुलावा मत दीजिए। मेरा सुकून मत छीनिए। मैंने बड़ी मुश्किलों से दुबारा इसे पाया है।"[1] एक नारी और वह भी मुसलमान नारी से ऐसा एक निर्णय सुनना काफ़ी मुश्किल है। क्योंकि उसे हमेशा मर्दों ने पर्दे के पीछे दबाकर रखा है। वह आक्रोश के साथ कहती है कि वह कोई चीज़ नहीं कि जब चाहे ख़रीदा और जब चाहे बेच दिया। वह भी संवेदनाओं से भरी औरत है। वह एक छोटी सी गाँव में अध्यापिका बनकर काम करती है। वहाँ भी जब राफत आता है तो वह कहती है – "घर का मतलब अगर ईंट, गारे, पत्थर की चहारदीवारी होता है और शोहर का मतलब जिंदगी की बुनियादी ज़रूरतों का ज़रिया, तो फिर वे दोनों चीजें मेरे पास मौजूद है।"[2] महरुख पढ़-लिखकर अपने अस्तित्व को पहचान लेती है और घरवालों को भी समझाती है। बुढापे में भी वह बाकी की ज़िन्दगी इसी गाँव में बिताती है।

मुस्लिम संस्कृति

इस्लाम का जीवन कुछ मूल्यों पर आधारित है। इस्लाम धर्म के अनुसार मुसलामानों के लिए मुस्लिम समाज की सामाजिक-व्यवाहिरिक-धार्मिक आचार संहिता का सबसे पुराना प्रामाणिक पवित्र ग्रंथ – 'कुरआन शरीफ़' है। इसे इंसान नहीं खुदा ने जारी किया है। इसके अनुसार खुदा की

---

[1] नासिरा शर्मा – ठीकरे की मंगनी, पृ : 116

[2] वही - पृ :125

वाणी ही कानून है। उसका पालन खुदा का हुक्म है। कुरआन में जो-जो नियम या आचार संहिता बताया गया है उसे 'शरीअत' या 'धार्मिक कानून' कहा जाता है। मुसलमान को इन कानूनी हुकुमों का पालन करके जीवन व्यतीत करना चाहिए। मुस्लिम संस्कृति के कई 'धार्मिक विश्वास', 'रीति-रिवाज़', 'त्यौहार – पर्व' आदि हैं। इन पर आगे चर्चा किया जाएगा।

नमाज

इस्लाम धर्म के अनुसार मुसलमान मर्द और औरत दिन भर पाँच वक्त की नमाज करना अनिवार्य है। इस्लाम के पैंगम्बर हजरत मुहम्मद मक्का से मदीना गए और उनसे अल्लाह ने पाँच वक्त की नमाज़ करने को कहा। उसे दिवसीय समय सीमा के अनुरूप पाँच वक्तों में विभाजित किया गया जो फज़र, जोहर, असर, मगरिब और इशा के नामों से जानी जाती है। हर क्यक्ति के लिए नमाज़ अनिवार्य कर्तव्य है। अमीर, गरीब, शिक्षित, अनपढ़, काले-गोरे सब एक पंक्ति में खड़ा होकर नमाज़ करते हैं। "काला पहाड़" में इसका चित्रण है – "जनसभा के विसर्जित होते-होते जुहू की नमाज़ का समय भी हो गया। कुछ ने नमाज़ महू की महजतों में पढ़ी, तो कुछ ने वहीँ इधर-उधर खाफी-गमछे बिछा कर पढ़ ली।"[1] मुस्लिम समाज में नमाज़ के पालन करने वाला व्यक्ति का आदर-सम्मान होता है।

[1] भगवानदास मोरवाल – काला पहाड़, पृ : 24

हज्ज

हज्ज मुस्लिम समाज की प्राचीन आराधना है। मक्का में अल्लाह की इबादत का पवित्र एवं सर्वप्रथम घर स्थित हा जिसका पुनर्निर्माण 'हज़रत इब्राहीम' ने किया था। इस्लामी कानूनों के अनुसार हरेक संपन्न व्यक्ति को अल्लाह के पवित्र घर 'मक्का शरीफ' (मस्जिद) तक पहुँचकर विधिवत उसकी परिक्रमा करना है और अल्लाह से प्रार्थना करना है। फिर मक्का मदीना में स्थित पवित्र स्थानों की यात्रा करते हुए हज़रत इब्राहीम की सारी प्रवृतीयों का अनुसरण करना चाहिए। इसी प्रक्रिया को 'हज्ज' कहते हैं। हज्ज के लिए जानेवाले मुसलमान को सारा कर्ज चुकाना है। उसी प्रकार दूसरों के साथ किए अन्यायों या जुल्मों के लिए माफ़ी मांगना है। उसे यात्रा पर जाने से पूर्व मित्र, रिश्तेदार, पडोसी, विधर्मी आदि से छोटे-मोटे अपराधों के लिए क्षम मांगना चाहिए। "झीनी-झीनी बीनी चदरिया" में हाजिअमिरुल्ला का हज्ज पर जाने का चित्रण हुआ है। उस समय उसे देखने तथा आशीर्वाद देने के लिए लोग आते हैं। वह गली-गली घूमकर दोस्त-दुश्मन सभी से विदा लेता है। इस प्रकार विश्वास का पालन करता है।

तलाक एवं बहुपत्नीत्व

मुस्लिम समाज में व्याप्त एक कुप्रथा है 'तलाक'। पुरुष जब चाहे स्त्रीको बिना बताए बिना कारण कभी भी तलाक दे सकता है। तलाक केवल पुरुष दे सकता है। तलाक का अर्थ है 'खारिज करना' या 'समाप्त करना'। "झीनी-झीनी बीनी चदरिया" में लतीफ अपनी पत्नी कमरून को एक छोटी

सी झगड़े के कारण तलाक देता है। कमरून को वहाँ बोलने का कोई अधिकार नहीं है। मतीन यह खबर सुनकर यों सोचता है – "तलाक तो बिरादरी में आम बात हो गई है! औरत जात की आखिर हैसियत हि क्या है? जब चाहो चूतड पर लात मारकर निकाल दो! औरत का और इस्तेमाल ही क्या है? कतान फेरे, हांडी चूली करे, साथ में सोये, बच्चे जने और पाँव दबाये इनमें से अगर किसी भी काम में हीला-हवाली करे तो कानून इस्लाम का पालन करो और बोल दो कि मैं तुम्हे तलाक देता हूँ। तलाक! तलाक! तलाक!"[1] शिक्षा आदि के आने पर भी औरतों को वे दबाकर ही रखना चाहते हैं। तलाक के बाद औरत को सभी दोषी ठहराते हैं। वह एक पल में अनाथ हो जाती है। अपने बच्चों तथा तमाम खुशियों से दूर रखा जाता है।

मुस्लिम शरीअत के अनुसार एक बार तलाक होने पर दुबारा उसे पूर्व पति के पास जाने के लिए किसी दूसरे मर्द से शादी करके एक रात एक साथ रहना पड़ता है। फिर वह तलाक देकर पूर्व पति के पास जा सकती है। इसे 'हलाला' कहते हैं। इस प्रकार 'तलाक' हो या 'हलाला' दोनों में पुरुष का एकाधिकार है या उसे ही मुनाफा मिलता है। कमरून तलाक के बाद पति-बच्चों से दूर घुटन भरी जिंदगी गुजारती है। लतीफ़ रेहाना से दूसरी शादी करता है। दोनों में दस-बीस उम्र की फासला है। लतीफ़ उससे खुश नहीं है। घर में कुछ अनहोनी या दुर्घटना होने पर उसे जिम्मेदार बताता है। अंत में रेहाना को भी तलाक देता है। बाद में जब लतीफ़ बीमार पड़ता है तो

[1] अब्दुल बिस्मिमल्लाह – झीनी–झीनी बीनी चदरिया, पृ : 49

कमरून आकर उसकी मदद करती है। अब दोनों मजहब के नियमों को तोड़कर एक होते हैं। इस कारण बिरादरी वाले लतीफ को धमकी देता है। कमरून एवं रेहाना के साथ नाज्बुनिया भी पति द्वारा त्याज्या है। समाज में ऐसी कुप्रथा के कारण बड़ी-छोटी सभी औरतें अपने अधिकारों से वंचित होती है।

तलाक के बाद पति शादी कर सकता है। बहुपत्नी प्रथा इस समाज में प्रचलित है। "झीनी-झीनी बीनी चदरिया" की लतीफ़ अपनी बीवी कमरून को तलाक देकर कम उम्र की रेहाना से शादी करता है। उसी प्रकार मतीन अपनी बीवी अलीमुन को तलाक देकर राउफ चाचा की बेटी नजबुनिया से शादी करता है। कई लोग पत्नी को बच्चों के साथ निकाल दिया जाता है और भरण-पोषण के लिए पैसे तक नहीं देते हैं।

पर्दा प्रथा

मुसलमान समाज में पर्दा प्रथा का प्रचलन है जिसे उनका विशिष्ट गुण माना जाता है। मुस्लिम औरतें बुरका पहनकर ही बाहर निकल सकती है। उसी प्रकार स्त्रियों को घर में भी बड़े-बुजुर्गों, रिश्ते नातेदारों, बाहरी लोगों से पर्दा करना अनिवार्य है। "झीनी-झीनी बीनी चदरिया" में मतीन के घर में उसके दोस्त आने पर उसकी पत्नी नज़बुनिया परदे के पीछे छुपती है। लेखक बताता है – "मतीन इस पर्दे को अपने बचपन से देखता आ रहा है। उसकी माँ तो कब्र के मुर्दे की तरह खुद को गोल-मटोल छींटके नकाब में बंद करके

चला करती थी। अलीमुन भी पर्दा करती है और यह नज़बुनिया भी।"[1] अशिक्षा आदि के कारण खुद औरत ही इस कुप्रथा का पालन करती हैं। पर्दे के पीछे रहना मुस्लिम मौरतों का विशिष्ट गुण माना जाता है।

लोक कथा

मुसलामानों के भी कई लोक कथाएँ प्रचलित हैं। "झीनी झीनी बीनी चदरिया" में इकबाल द्वारा 'बकरीद' को लेकर प्रचलित कथा पढता है। कथा इस प्रकार है - मुसलामानों का पैंगम्बर है 'हज़रत इब्राहीम'। एक दिन उनके स्वप्न में अल्लाह आकर अपनी कोई प्यारी चीज़ की कुरबानी देने को कहता है। वह सब कुछ कुर्बान करने पर भी हर दिन सपना आता है। अंत में अपने बेटे इस्माइल को ही कुर्बानी देने का निश्चय करता है। लेकिन कुरबानी के चंद क्षण पहले अल्लाह आकर रोकता है। इस्माइल की जगह एक दुम्बा को लिटा देता है। इब्राहीम छुरी हवा में उछाल दी तो उस छुरी से आसमान पर उड़ने वाली टिड्डियाँ कट गयी और वह छुरी समुन्दर में जा गिरि तो सारी मछलियों के गल्पुड़े फट गए। तभी से कुरबानी अनिवार्य हुई। और तभी से टिड्डियाँ और मछलियाँ हलाल हुई। तभी से इस मौके पर बकरे और मेमनों की क़ुरबानी देने लगी।

त्योहार

संसार के सभी देश, धर्म व समाज में त्यौहारों का अपना विशिष्ट स्थान हैं। किसी भी समाज में लोगों में पारस्परिक स्नेह, सहकारिता आदि

[1] अब्दुल बिस्मिमल्लाह - झीनी-झीनी बीनी चदरिया, पृ : 158

बढ़ाने में त्योहारों का विशिष्ट स्थान है। मुस्लिम समाज में कई ऐसे त्यौहार है जिनमें रमजान, मुहरम, बकरीद आदि प्रमुख हैं। इससे उनकी आस्थाएँ, धार्मिक विश्वास और लोगों के आनन्दोल्लास का वास्तविक दर्शन होता है|

बकरीद (ईद-उल-जुहा)

हर धर्म में कुरबानी को भगवान् को पाने की सशक्त हथियार माना जाता है। मुस्लिम धर्म में भी खुदा को पाने के लिए अपनी प्यारी चीज़े कुरबान कर देता है। उनका महत्वपूर्ण त्यौहार 'बकरीद' इस क़ुरबानी की याद दिलाती है। बकरीद के अलावा दो और ईद है – 'ईदुलफित्र' या 'रमज़ान ईद' और 'मिलादुन्नबी'। ये तीनों ईद भाईचारे, त्याग, समर्पण एवं इंसानियत की सन्देश देती है। 'बकरीद' का संबंध 'बकरे' से है। इस दिन सब ईदगाह में जाकर नमाज़- ईद पढ़कर खुदा की शुक्रिया अदा करते हैं। "झीनी-झीनी बीनी चदरिया" में बकरीद और उसके पीछे प्रचलित लोक कथा का ज़िक्र हुआ है। इसमें सब ईद के चाँद की आने की प्रतीक्षा करते हैं। अगर बादल या किसी वजह से चाँद न दिखाई दिया तो दो नमाजी परहेजगार लोगों द्वारा चाँद देखने की गवाही देने पर ईद की शुरुआत होती है। - "और ईद की चहल पहल शुरू हो गयी है। गोशबाड़ों और चिकावों की दूकानों में गोश्त खरीदनेवालों की भीड़ लग गयी है। कल तो कोई दूकान खुलेगी नहीं। ....लोग लुंगी का टोंका उठाये, टोपियाँ लगाए, झोला लिए भीड़ में खड़े है

और कसाइयों से झगड़ रहे हैं।"[1] ईद के दिन बनारस में लंबी छुट्टियाँ होती है। ईद के सातवें दिन छोटी ईद में मेला आदि होती है। कुरबानी के लिए जानवरों की खरीददारी शुरू होती है। कच्ची बाग़, बड़ी बाज़ार, पठानी टोला, छितनपुरा के सड़कों पर भैसों की मार्किट है। वहाँ ऊँटों की भी क़ुरबानी होती है। क़ुरबानी के गोश्त के तीन हिस्से करने की शरीअत में सलाह है। एक हिस्सा गरीबों में, दूसरा दोस्तों में तथा तीसरा अपने घर में इस्तेमाल करना चाहिए। गरीबों के पास बकरी आदि खरीदने के पैसा न होने के कारण सड़ी हुई मांस खरीदते हैं। लेकिन अमीररुल्ला अपनी बूढ़ी माँ के नाम पर बकरी की बलि तथा भैंस की क़ुरबानी देकर रिश्तेदारों को मांस देते हैं। चमड़ा आदि वह यतीमखाने भिजवाता है। सच्चे मुसलमान इस पर्व को अल्लाह की इबादत समझकर मनाते हैं।

"ठीकरे की मंगनी" में ईद के चाँद दिखने के बाद घर की तैयारी एवं चहल-पहल का चित्रण हुआ है – "ईद का चाँद हो गया था। चारों तरफ से मुबारक सलामत का शोर उठा। जहाजनुमा घर के चारों दरवाज़े खुल गए और सेवई भुनना, गिरी कटना और मेहंदी लगना शुरू हो गई।"[2] घर में सभी रिश्ते-नाते लोग आते हैं। उनकी चहल-पहल से घर गूँज उठती है। "ज़िन्दा मुहावरे" में निजाम के यहाँ ईद के दिन ईद मनाने के लिए दावत रखने तथा घर में मेहमानों की चहल-पहल का जिक्र किया है।

---

[1] अब्दुल बिस्मिमल्लाह – झीनी–झीनी बीनी चदरिया, पृ : 75
[2] नासिरा शर्मा, ठीकरे की मंगनी, पृ :108

मुहर्रम

इसे मुस्लिम समाज में इस्लामी वर्ष का प्रथम महीना माना जाता है। प्राचीन काल में इसी महीने की दसवीं तारीख को अल्लाह के पैगम्बर हज़रत मूसा और बादशाह फिरऑन जिसने अपने आपको खुदा करार दिया था और अपनी प्रजा पर आतंक मचाया। इसके बाद मूसा के नेतृत्व में फिरऑन की आतंक से जनता को मुक्ति दिलाई, इसी की स्मृति में मुस्लिम समाज में दो दिन का व्रत उपवास रखते हैं। मुस्लिम समाज में कई शासक रहे जैसे 'हज़रत अबूबकर', 'हज़रत उस्मान', 'हज़रत पुरुक' आदि। बाद में 'हज़रत हुसैन' आ गए। अमीर मआविआ ने अपने बेटे को उत्तराधिकारी बनाने के लिए हुसैन से युद्ध करता है। मुहर्रम के प्रथम दस दिनों में इन वीर योद्धाओं की स्मृति में शोक प्रकट करते हैं। आज भी मुस्लिम समाज में हज़रत हुसैन की समाधि के प्रतीकात्मक रूप में ताजियों को बनाया जाता है। इस अवसर पर घोड़े, ध्वजपताकाएं व हज़रत अली के हाथों के निशान आदि प्रदर्शित करते हैं। इस शोक के दिनों में शादी जैसे शुभकार्य नहीं करते। ताजियों को लेकर जुलुस होता है, लोग शोकमय गीत गाते हैं। अंत में इसे कर्बला के मैदान में विसर्जित किया जाता है।

"झीनी-झीनी बीनी चदरिया" में मुहर्रम के दिन अखाड़े में लड़कों की वीरता प्रदर्शिन को चित्रित किया है – "छोटे-छोटे लड़के लुंगियाँ पहने और टोपियों लगायें, हाथों में तलवारें उठाये बड़ी अदा के साथ एक-एक पाँव उठाकर थिरकते हैं और पलकें झपकते ही अपनी वीरता का परिचय देने

लगते हैं। नारा लगता है : बोलो बोलो महमदी, या ऽऽ हुसैऽन!"[1] उसी के साथ हज़रत अली के घोड़े को फूल मालाओं से सजाकर छितनपुरा, दालमंडी और नयी सड़क की सड़कों पर ले जाने का चित्रण है। उसी प्रकार एक सजे हुए शामियाने के नीचे ताजिया सजाकर रखते हैं। शिया सुन्नी लोग इसे अलग-अलग तरह से मनाते हैं – "दोपहर बाद जब कर्बला के लिए ताजिये निकले तो नवयुवकों के दल छाती पीट-पीटकर मातम करते हुए आगे आगे चले। गम को उत्सव की तरह मनानेवाले ये नौजवान यह दिखा देना चाहते थे कि हुसैन की हत्या का असली गम बस हमी को है। शिया युवकों ने तो ब्लेड से अपने सीनों पर चीरे लगा रखे थे और उनसे खून की बूँदें छलक रही थी। अनेक युवक लोहे की सिगड़ियों से अपनी पीठ पर चोट कर रहे थे।"[2] इस प्रकार खुद को समाज के लिए प्रस्तुत करता इस इबादति महीने का असली पैगाम है।

"ठीकरे की मंगनी" में मोहर्रम के चाँद दिखने तथा शिया मुसलमानों के विश्वास के अनुसार शोक मनाने के लिए चूड़ियाँ उतारना, जेवर न पहनना, उत्सव के रंगोंवाली लाल, पीले, नीले आदि कपडे न पहनना ख़ुशी के अवसर पर सिर्फ काले कपडे पहनना, आँखों में सुरमा और सर में तेल न डालना आदि का विवरण किया है। - "घर की चारों बहुएँ इमामबाड़े में अलम खड़े करके चूड़ियाँ बढ़ाने लगी। नाक की कील छाड़ कर सारे जेवर उन्होंने

---

[1] अब्दुल बिस्मिमल्लाह – झीनी–झीनी बीनी चदरिया, पृ : 94
[2] वही - पृ : 98

उतार दिए। मातम हो जाने के बाद तय हुआ कि रात के खाने के बाद इमामबाड़े सजाया जाएगा।"[1] वे शोक में गीत गाते हैं, नाटक भी खेलते हैं। अमीर होने के कारण महरुख के घरवाले रोजे तोड़ने वालों के लिए मस्जिद में भोजन भेजते हैं। हुसैन की शहादत का तीसरा दिन 'सैवुम' कहता है। उस दिन औरतें आँखों में सुरमा डाल कर शोक मनाते हैं। इस प्रकार मुहर्रम मुसलमानों की जिंदगी का महत्वपूर्ण पर्व है, जिसको लेखकों ने उसी महत्व एवं विशेषताओं के साथ चित्रित किया है।

रमज़ान

इसे 'ईदुलफित्र' भी कहा जाता है। ईद का अरबी भाषा में अर्थ है – 'बार-बार लौटनेवाली चीज़'। मुस्लिम समाज में यह त्यौहार पवित्र रमज़ान मास की समाप्ति पर शव्वाल महीने की पहली तारीख को मनाया जाता है। इस अवसर पर घर के मुखिया अपने परिजनों के नाम पर धन-संपत्ति निर्धनों में बांटते हैं। यह दान ईद की नमाज़ अदा करने के पूर्व दिया जाता है। रमज़ान महीने के अंतिम दिन आसमान में चाँद नज़र आने पर ईद की ख़ुशी आ जाती है। सब एक दूसरे को बधाई देकर, नए-नए कपडे पहनकर, एक दूसरे के गले मिलकर मनाते हैं। वे ईदगाह में नमाज़ अदा करके अपने अपराधों के लिए क्षमा मांगते हैं। फिर प्रत्येक मुसलमान एक दूसरे के गले मिलकर ईद की ख़ुशी व्यक्त करते हैं। "झीनी-झीनी बीनी चदरिया" में चाँद

---

[1] नासिरा शर्मा - ठीकरे की मंगनी, पृ : 50-51

को देखते ही 'रोज़े' रखने, तरह-तरह के पकवान बनाने आदि का चित्रण है। उनका विश्वास है कि एक रोजा अगर छूट गया तो हज़ार रोजे टूटने का गुनाह होगा। मस्जिद तथा घरों में तरह-तरह के भोजन होते हैं – "पूरे रमज़ान भर मस्जिदों में लाउडस्पीकर भी फिट रहता है ताकि अजान की आवाज़ दूर-दूर तक सुनायी पड सके। शाम को जो अज़ान होती है वह इस बात का संकेत है कि अब खाना-पीना शुरू कर देना चाहिए और भोर की अज़ान इस बात की ओर इशारा करती है कि अब खाना-पीना सब बंद।"[1] इस माह में दोजख (नरक) के दरवाजे बंद कर दिए जाते हैं और जन्नत की राह खुल जाती है। "ठीकरे की मंगनी" में रमज़ान और रोजे रखने की ओर इशारा किया है। महरुख की दादी की तबियत बिगड़ने की वजह से मौत होती है। उनका विश्वास है कि रमज़ान महीने में मृत्यु होने के कारण दादी को जन्नत मिल जाएगी। यह पाक महीना है जो समूची मानव जाति को प्रेम, भाईचारे और इंसानियत का सन्देश भी देता है। इस महीने में सभी तरह से अपनी संवेदनाओं - भावनाओं पर नियंत्रण रखता है।

भाषा

इन उपन्यासों की भाषा शैली, सरल एवं पात्रों की सामाजिक स्थिति के अनुरूप है। उपन्यासकारों ने पात्रानुकूल संवाद व प्रसंगानुकूल वातावरण का निर्माण किया है। इनमें आचालिक शब्दों, बोलियों व मुसलमान धर्म से जुड़े संवाद देख दकते हैं। "काला पहाड़" में मेवात के मेव मुसलामानों की

[1] अब्दुल बिस्मिमल्लाह – झीनी–झीनी बीनी चदरिया, पृ : 68

जीवन कथा को चित्रित किया है। इसमें मेवात के प्राकृतिक सौन्दर्य सांस्कृतिक विशेषताओं को भी चित्रित किया है। इसमें कई मुहावरों, लोकोक्तियाँ व कहावतों का प्रयोग भी किया गया है जैसे – 'कहीं का ईट कहीं का रोड़ा', 'भानुमति ने कुनबा जोड़ा', 'अपनी ऐसी-तैसी कराना', 'भैंस के आगे बीन बजाना', 'नौ दो ग्यारह होना', 'खोदे पहाड़ और निकले मूसी' आदि। इसमें मेव मुसलामानों के आचलिक भाषा का प्रयोग हुआ है। छोटे लाल और सलेमी के बीच संवाद होता है। छोटेलाल कहता है – "काका, ई तो या नत्थू की मेहरबानी होगी, नहीं तो में कहीं को न रहतो...........।"[1] इसका उत्तर सलेमी देते हुए कहता है – "छोटेलाल, ये सब तो पुरानी बात होगी.......... बावला, अब तो ई ज़मीन तेरी ही रहेगी।"[2] इस प्रकार अशिक्षित मेवों की आचलिक बोली को महत्व दिया है।

"ठीकरे की मंगनी" में नासिरा शर्मा ने पात्रों के संवादों में कई उर्दू शब्दों का प्रयोग किया है और धार्मिक विश्वासों पर प्रकाश डाला है। महरुख की चाची कहती है – "सच कहा है किसी ने लड़की घर की बरकत होती है।"[3] उसी प्रकार शाहिदा अपनी बहु के बारे में कहती है – "इस दुनिय में हसद का तो कोई इलाज नहीं है। मेरी बहु है ही कोहेकाफ की परी।"[4] इसमें 'बरकत',

---

[1] भगवानदास मोरवाल – काला पहाड़, पृ : 191

[2] वहीं

[3] नासिरा शर्मा – ठीकरे की मंगनी, पृ : 12

[4] वही , पृ : 37

बरकत', 'कोहेकाफ' आदि उर्दू शब्द है। कई मुहावरों का प्रयोग भी देख सकते हैं – 'जिस घर बेरी का पेड़ होगा, ठेले तो आयेंगे', 'रूप परखे बार-बार आदमी परखे एक बार', 'कलेजा मुँह को आना', 'चिड़िया चुग गई खेत', 'घोड़े बेचकर सोना' आदि। "ज़िन्दा मुहावरे" में अनपढ़ गरीब मुसलमान आंचलिक भाषा में संवाद करते हैं। इसमें रहीमुद्दीन नामक पात्र कहता है – "छुट्टे सांउ की तरह डोलव हिआं से हुआ। एही दिन देखे के वास्ते ख्वाजा साहब से ताका माँगा रहा।"[1] इसमें भी मुहावरों का प्रयोग देख सकते हैं – 'घोड़े बेचकर सोना', 'धोबी का कुत्ता न घर का न घाट का', 'सांप निकल जाए और लकीर पीटने रहना', 'इंसान को बन्दर का नाच नचाना' आदि।

"झीनी-झीनी बीनी चदरिया" में बनारस के बुनकरों की आंचलिक भाषा का प्रयोग देख सकते हैं। एक चाय के दूकान पर बुनकरों के बीच हुए संवाद से इसका पता चल जाता है। मतीन संवाद शुरू करते हुए कहता है –

"अबे एकठेचाय देवे।"

"अमाँ अमरीका में एकठे बिलिडंग में आग लग गई अउर कई आदमी मारे गयेन।"

"हाँ, म्याँ ऊ बहुत बड़ी बिलिडंग रही अऊर आठ करोड़ की लगत से ऊ बनी रही।"[2]

---

[1] नासिरा शर्मा – ज़िंदा मुहावरे, पृ : 11

[2] अब्दुल बिस्मिमल्लाह – झीनी-झीनी बीनी चदरिया, पृ : 22

लेखक ने कई प्रतीकों के माध्यम से वातावरण का चित्रण किया है।सांप्रदायिक दंगे से तनाव ग्रस्त का वातावरण के बारे में यों कहा है – "पूरा वातावरण किसी आदमखोर बाघ से आतंकित जंगल की तरह भयानक हो उठता है।"[1] जब कर्फ्यू लगती है तो कहता है – "पक्षी फिर पिंजरों में बंद कर दिए गये।"[2]

"मुखड़ा क्या देखे" में ग्रामीण भाषा एवं शब्दों का प्रयोग देख सकते हैं। इसमें अली अहमद नामक चूड़ीहार और झबरा के बीच का संवाद इस प्रकार है –

"अरे हम हई हो, अल्ली।"

"जाए दे रे, गाँव के मनई के काहे परेसान करे थे"

"चिन्हते नांहीं का? चल ईहाँ आव।"[3]

इसमें प्रतीक व मानवीकरण द्वारा कई समस्याओं को प्रस्तुत किया है। जब जमींदारी प्रथा खत्म होता है तब जमींदार सृष्टि नारायण पाण्डे निराश होता है। उसके चारों ओर अंधकार छा जाता है। लेकिन गाँववाले इससे खुश है। प्रकृति वर्णन के माध्यम से लेखक ने इसे यों प्रस्तुत किया है – "सूरज ढल रहा था। आसमान में झुण्ड के झुण्ड पक्षी मंडरा रहे थे। खेतों में कटी हुई फसल के डंठलों को डूबते सूरज की किरनें अपने सुनहरे जाल से नहला

---

[1] अब्दुल बिस्मिमल्लाह - झीनी-झीनी बीनी चदरिया, पृः 165

[2] वहीं

[3] अब्दुल बिस्मिमल्लाह – मुखड़ा क्या देखे, पृ : 24

नहलाकर ताजादम बनाने की कोशिश कर रही थी।"[1] इस प्रकार मानवीकरण द्वारा जमींदार प्रथा के खत्म होने की ख़ुशी एवं नई ज़िन्दगी की प्रतीक्षा को व्यक्त किया है।

शब्द

इन उपन्यासों में आचलिक शब्दों, उर्दू शब्दों तथा मुस्लिम धर्म से जुड़े शब्दों का प्रयोग देख सकते हैं। "ठीकरे की मंगनी" में कई उर्दू शब्दों का प्रयोग देख सकते हैं, जैसे 'एतमाद', 'हसद', 'कोहेकाफ', 'तोहफा', 'मुनायना', 'तोहमत', 'मसरूफ', 'मुख़्तसर', और 'मुख्तलिफ', 'रहनुमाई', 'मुखातिब', 'मुतमईन', 'फिक्रमंद', 'दुश्वार', 'अलफ़ाज़', 'इबादत', 'इल्हाम', 'इत्तिफाक', 'इतिला', आदि।

"ज़िन्दा मुहावरे" में कई आंचलिक शब्दों को देख सकते हैं – जैसे 'लोगन' (लोग), 'बेटवा' (बेटा), 'हिआं' (यहाँ), 'कहत है' (कहते हैं), 'कौनव' (कोई), 'सकत' (सकता), 'तोका' (तुझे), 'बुलाई लै बै' (बुला लेगा), 'नाही' (नही), 'मिलत है' (मिलता है), 'पूछत हन' (पूछते हैं), 'कउन' (कौन) आदि।

"झीनी झीनी बीनी चदरिया" में बुनकरों की कथा चित्रित है। इसमें बुनकरी से जुड़े कई शब्दों का प्रयोग हुआ है, जैसे 'रेज़ा' (निर्माणाधीन साडी), 'तार' (सुनहरा धागा), 'बेठन' (करघा जिस वस्त्र से ढंका होता है), 'नरी' (बिनकरी का एक यंत्र, जिसमें धागा भर जाता है), 'जोडिया'(बिनकरी सीखनेवाला लड़का), 'फल्ली' (थोडा सा बिना हुआ भाग), 'ढरकी' (बिनकरी

[1] अब्दुल बिस्मिमल्लाह – मुखड़ा क्या देखे, पृ : 30

का मूल यंत्र), 'फू' (मुँह में पानी भरकर बिने हुए वस्त्र पर फुहार मारने की क्रिया), आदि।

इसके अलावा बनारस के कई आंचलिक शब्दों का भी प्रयोग हुआ है, जैसे – 'ऊ' (वह), 'एकठे' (एक), 'अउर' (और), 'लगेते' (लगते), 'मछरी' (मछली), 'अट्ठारा' (अठारह), 'नाँहीं' (नहीं), 'का' (क्या), 'बनेते' (बनते), 'बइठ' (बैठ), 'सकेतेन' (सकते), 'कईसे' (कैसे), 'केतना' (कितना), 'चइए' (चाहिए) आदि। "मुखड़ा क्या देखे" में 'काहे' (क्यों), 'परेसान' (परेशान), 'नाँहीं' (नहीं), 'ईहाँ' (यहाँ), 'होएवाला' (होनेवाला), 'के' (क्या), 'कछु' (कुछ), 'ऊ' (उस), 'अउर' (और), 'सिकाइत' (शिकायत) आदि ग्रामीण शब्दों का प्रयोग हुआ है।

"काला पहाड़" में मेवाती भाषा के कई शब्दों का प्रयोग देख सकते हैं। जैसे – 'ई' (यह), 'मेरो' (मेरा), 'सबसू' (सबसे), 'परधानमंत्री' (प्रधानमंत्री), 'पिलसण बढ़ाण' (पेंशन बढ़ाना), 'डिरामा' (ड्रामा), 'लीडरन' (लीडर), 'देणो चाहिए' (देना चाहिए), 'कौण' (कौन), 'बणाता, (बनाता), 'हमन्ने' (हमें), 'माणस' (मानव), 'अपणो' (अपना) आदि। इसमें कई उर्दू शब्दों का भी प्रयोग किया गया है जैसे – 'तसरीफ लाना', 'फखर', 'मरजी', 'लिहाज' आदि। इसमें मेवात के कई सांस्कृतिक शब्दों का प्रयोग भी देख सकते हैं – जैसे 'इतवाई' : मेवात का एक लोक गीत, 'गोल' : मटके से बड़ा मिट्टी का बर्तन, 'जेघड' : मटका और घडिया का जोड़ा, 'ओतारी दा छाणा' : एक प्यार भरी मुल्तानी

गाली, 'न्यौता' : मेवात की ऐसी परंपरा है जिसके अंतर्गत विवाह पक्ष को अपनी पुत्र या पुत्री के विवाह करने में आर्थिक सहयोग मिलता है। इस परंपरा के तहत वही पैसा विवाह करने वाले को वापस मिलता है जो उसके द्वारा समय-समय पर दूसरे के यहाँ विवाह अवसरों पर दिया जात है। 'बाखली' : उबले हुए गेहूँ और चने, 'सोबड' : बच्चा पैदा होने के एक सप्ताह बाद का वह पहला दिन, जिस दिन घर की सफाई कर उसे शुद्ध किया जाता है।

खानाबदोश जनजातियाँ (कंजर, बेडिया, नट)

भारत में कई जनजातियाँ हैं जो चोरी, डकैती, लूटमार, आदि आपराधिक कृत्यों, वेश्यावृत्ति, नाच-गाना आदि धंधो से जुडी रहती हैं। इनमें कई लोग आज ऐसे कृत्यों को छोड़कर एक स्थान पर बसकर ईमानदारी से आजीविका चलाते हैं, कुछ निश्चित स्थान पर बसकर प्रत्यक्षतः कोई न कोई धंधा करते हैं किंतु मूलतः वे परंपरागत कृत्यों से जुड़े रहते हैं और अन्य लोग आज भी घुमक्कड़ एवं आपराधिक धंधे करने वाले हैं। ये जनजातियाँ कबीलाई या घुमक्कड़ जनजातियाँ हैं| ये भारत में पूर्णतः बस गए थे। प्राचीन काल से ही इनको असभ्य मानकर मिटने की कोशिश हुई है। चन्द्रगुप्त द्वितीय विक्रमादित्य ने काठियावाड़ से लेकर वराणसी तक फैले शक –कुषण कबीलों पर ज़ोरदार हमला किया और उनकी पहचान मिटाने के लिए मजबूर किया। वे अपनी रक्षा के लिए विध्यांचल की घाटियों, कंदराओं में छिपकर रहने लगे। जिन कबीलों ने हिन्दू धर्म स्वीकार करके भारत को अपनी जन्म भूमि

मान लिया उनमें काशी के क्षत्रप बहुप्रतापी बनस्पर कुषण का कबीला भी था। कबीलों में ये जिन्हें बनाफर कबीले के नाम से जाने जाते हैं, वे आर्यों से किसी भी आर्थ में कम नहीं है।

ब्रिटीश शासन काल में भारतीय जन जातियों पर घोर अन्याय हुआ। इनको अपराधी जनजाति घोषित करके कई नियम थोप दिए गए। सबसे पहले सन 1871 में एक अंग्रेज़ जेम्स स्टीफन ने इनको मिटाने के लिए नए नियम बनाए। बाद में सन 1886 से 1924 के बीच जेन्किन्स, सर जेम्स क्रेशर, सर अलक्सैण्डर कारड्यू ने इसके संशोधन में हस्तक्षेप करके इस अधिनियम को और भी कठोर बना दिया। मेरठ से मद्रास तक राहजनी में लगे अनगिनत कबीलों को गिरफ्तार किया गया। इनमें कंजर जनजातिवाले थे। 1874 तक आते-आते उत्तरप्रदेश, बुंदेलखंड, मथुरा तथा आगरा जिलों में कंजरों द्वारा विद्रोह शुरू हुआ। 19वीं शती में ठगों और डाकुओं के भय और आतंक के कारण उत्तरी भारत में असुरक्षा का वातावरण था। इनको मिटाने के लिए बनाए 'क्रिमिनल ट्राइब्स एक्ट 1924' में सरकार ने सैंतालिस जरायमपेशा जनजातियों को रखा है – 'भाट', 'डोम', 'सिंगिवाला, 'महावत', 'बावरिया', 'बधक', 'कुरमाँगता', 'कंकाली', 'बहेलिया', 'करवाल', 'कन्मैलिया', 'खुरपालता', 'कनफट्टा', 'गोदनहार', 'वैद औघ्यड़', आदि। इन सबको 'कंजर' नाम से जाने जाते हैं। एक अंग्रेज़ अफसर क्रक्रूस के अनुसार कंजर एक बहुत बड़े कबीले का हिस्सा है। इनके नजदीक के संबंधी 'सांसी',

'हाबूडा', 'बेडिया' और 'भाँतू' हैं तो नट, बंजारा, बहेलिए दूर के संबंधी है। आज कंजर, भाँतू, बेडिया, हाबुडा, बावरियों में भेद करना मुश्किल है।

इस बात को प्रमाणित करनेवाली एक कथा भी प्रचलित है – 'साँसमल' और 'साँसी' नाम के दो भाई थे। बाद में साँसीमल के वंशज 'बेडिया' और साँसी के 'साँसिया' या 'साँसिया भार' कहलाए। सांसिया बेड़ियों को 'ढोली' और अपने को 'भाँतू' कहते थे। जबकि बेडिया साँसियों को 'महेश' कहते थे। साँसी कंजर इन्हीं में से निकली एक जाति है। कुछ लोगों के अनुसार जाट जाति को साँसी कंजर में मानना चाहिए। क्योंकि जब दोनों भाई ज़िन्दा थे तब पुंज जाट के एक वंशज मुब्लानर जाट ने सांसियों को कुछ 'खिराज' (राजस्व कर) उन्हें देने का हुकुम देता है। पुराने ज़माने में ये अपने आपको 'जाटों का भाट' कहते थे। आगे चलकर सांसिया लोग इसे अपने नाम के साथ जोड़ दिया और जाट सांसियों को अपना संबंधी या भाई मानने लगे। सांसियों में – 'कल्हास' और 'मल्हास' नामक दो गोत्र मुख्य हैं। कभी-कभी ये कंजर कहलाते हैं। लेकिन अब ये अपने आपको कंजर नहीं मानते फिर भी बेडिया और साँसी दोनों कंजरों की शाखाएँ हैं। मुसलमानों में भी कंजर होते हैं पर साँसी सब हिन्दू धर्म वाले हैं।

आगे इन बेडिया समाज पर लिखित "पिछले पन्ने की औरतें"(शरद सिंह); कंजर समाज पर लिखित "रेत"(भगवानदास मोरवाल); और नटों पर केन्द्रित "शैलूष"(शिवप्रसाद सिंह) उपन्यासों के आधार पर इन जनजातियों की समस्याओं व सांस्कृतिक पहलुओं पर पर विचार किया जाएगा।

कंजर और बेडिया जनजाति

जनजातीय महिला एवं यौन शोषण

पुरुषवर्चस्ववादी समाज ने स्त्री को एक देह या वासना पूर्ति के उपाय के रूप में देखा है। पुरुष की इसी सोच ने समाज में वेश्या, रखैल, गणिका, नगरवधू, देवदासी आदि को जन्म दिया है। इसके लिए वे धर्म का खाल भी ओढ़ते हैं। सवर्ण पुरुष दलित स्त्रियों की इज्जत लूटकर उसे अपने पैरों की दासी बनाने की हिंसात्मक खेल खेलते आ रहे हैं। वे धार्मिक कर्मकाण्डों व अंधविश्वासों के ज़रिए इन दलित औरतों का भोग करते हैं। भारत में कई पिछड़ी जातियाँ हैं जो वैश्यावृत्ति को अपनाए हुए हैं। कर्नाटक के 'वात्मीकी' तथा अन्य निम्न जाति, कर्नाटक के दलित जाति , महाराष्ट्र के 'कोल्हाटी' समुदाय, बुदेंलखंड की 'बेडिया', 'कंजर' आदि इसके उत्तम उदहारण हैं। इन दलित बच्चियों को मंदिर में समर्पित करके ईश्वर की मूर्ति के साथ शादी कराये जाते हैं। बाद में सवर्ण पुरुष, पुरोहित आदि इनके साथ यौन संबंध रखते हैं। इस प्रकार वे 'देवदासी' बनती हैं। मंदिर के साथ इनके लिए अलग कोठरियां भी होती हैं। आज भी मर्दवादी समाज में यह कुप्रथा चल रही है। 2014 में भी कर्नाटक के 'दावनगरे जिले के उच्चुंगी दुर्गा' के मंदिर में देवदासी बनाने की पूजा हुई थी। कई दलित लड़कियों को देवदासी बना दिए गए। बाद में कानून द्वारा इसे स्थगीत किया गया। फिर भी दूर- दूर के गाँवों में निर्बाध रूप से यह प्रथा चल रही है।

प्रत्येक जाति में जन्म लेने के कारण देह व्यापार को अपनी नियति मानकर चलने वाली औरतों का चित्रण शरद सिंह के "पिछले पन्ने की औरतें" तथा भगवानदास मोरवाल के "रेत" में देख सकते हैं। "पिछले पन्ने की औरतें" में बेडिया जाति में जन्म लेने वाली बेड़िनी औरतों के यौन शोषण का जिक्र हुआ है। बेडिया समाज में 'सिर ढंकने' का रस्म करने के बाद लड़कियाँ बेडनी बनकर देह व्यापार करने लगती हैं। जमींदार अमीर सेठ, पुलिस, और अन्य लोग कच्ची उम्र की लड़कियों का सिर ढंकना करके भारी रकम देकर खरीदते हैं। उस लड़की का दायित्व इन मर्दों का मनोरंजन करना एवं काम वासना को शांत करना मात्र है। लेखिका इनके शोषण पर यों लिखती है – "वह अपने साथी पुरुष को यौन सुख देती है, उसके प्रति पत्नी के कर्तव्यों को पूरा करती हैं, जबकि वह पुरुष उसे देता है भरण-पोषण के लिए आर्थिक सहयोग और अवैध संतानें।"[1] 'श्यामा' नामक बेड़िनी को बचपन में फिल्म में काम दिलाने का वादा करके यौन शोषण करता है और फिर धंधा करवाता है। जब गरभवती होती है तो छोड़ दिया जाता है। बाद में पुलिस सिपाही उसका यौन शोषण करता है। उसके बाद वह देह-व्यापार को अपना पेशा स्वीकारती है। उसकी बेटी 'गुड्डी' को शादी बाद भी ससुराल में काफी पीडाएं सहनी पड़ती है। बेड़िनी होने के कारण पति उसे अपने दोस्तों को बेचता है। इस प्रकार नई पीढ़ी भी इससे मुक्त नहीं हो पाती है।

[1] शरद सिंह – पिछले पन्ने की औरतें, पृ : 146

'फुलवा' नामक बेड़िनी को डोलन सिंह अपना रखैल बनाता है। बाद में उसे देह-व्यापार करके डोलन की देखभाल करने की नौबत आती है। जब वह गर्भवती होती है तब भी शारीरिक संबंध के लिए मजबूर करता है। मर्द की नज़र में स्त्री देह या कामसुख देने वाली एक चीज़ मात्र है। 'नचनारी' नामक बेड़िनी अपने ऊपर हमदर्दी दिखानेवाले लाट साहब से कहती है – "मुझे कौन काम देगा? मैं जहाँ भी जाऊँगी वहाँ भी मालिकों की दृष्टि के तो रहूँगी एक बेड़िनी ही.......लोग काम देने के बदले मुझे अपने बिस्तर पर ले जाना अधिक पसन्द करेंगे।"[1] इस प्रकार वह चाहकर भी इस धंधे से मुक्त नहीं हो पाती है।

"रेत" में कंजर औरतों का यौन शोषण चित्रित है। पुलिस इन कंजरों को बिना वजह पकड़कर थाने ले जाती है और पैसा वसूल लेने के साथ यौन शोषण भी करते हैं। कंजर औरतों को 'मत्था ढकाई' के बाद धंधे में थकेल दियाया जाता है। 'रम्भा' नामक एक किशोर लड़की की मत्था ढकाई एक हृष्ट-पुष्ट अधेड़ उम्र की अमीर से करवाती हैं। कंजरी औरतों का अपना कोई अस्तित्व नहीं है। धंधे में प्रवेश करने के बाद कोई उसका नाम तक बुलाता नहीं। सब 'खिलावडी' नाम से पुकारते हैं। उपन्यास में संतो और मंगल की बेटी 'पिंकी' खिलावडी बनने की इच्छा प्रकट करती है तो उसकी माँ संतो को छोड़कर सब खुश होते हैं। इसके साथ उसे ट्रेनिंग देने के लिए मुंबई भेजती हैं। कंजर जनजाति की अधिकांश स्त्रियाँ इसी को अपने आजीविका के रूप में

[1] शरद सिंह – पिछले पन्ने की औरतें, पृ : 115

चुनती हैं। यह खिलावडी घर में सिर्फ कमाऊ चीज़ ही रह जाती हैं। इन्हें 'बुआ' कहकर पुकारते हैं। कमला सदन इन कंजर बुआओं का वास स्थान है। इस घर में हर दिन नए - नए ग्राहक आते रहते हैं। समाज में देह व्यापार आज भी जीवित है तो इसलिए कि पुरुषों में स्त्री देह का खरीदने की प्रवृत्ति अज भी मौजूद है।

आर्थिक शोषण

कंजर, बेड़िनी जनजातियाँ आर्थिक दृष्टि से कमज़ोर है। देह व्यापार एवं नाच-गाना ही मुख्य धंधा है। इनके घर के मर्द पियक्कड़ एवं आलसी होते हैं। वे दिन-भर शराब पीकर मस्त रहते हैं। तब परिवार चलाने के लिए घर की औरतों को ही धंधा करना पड़ता है। ठाकुर, जमींदार आदि के रखैल बनने पर उसे ढेर सारी संपत्ति मिलेगी। लेकिन ग्राहक सब एक जैसा नहीं होते। उसी प्रकार पुलिस एवं अन्य अफसर भी इनको लूटते हैं। "पिछले पन्ने की औरतें" में बेड़िनीयों का परिवारवाले, पुलिस और रखैल पुरुषों द्वारा लूटने का चित्रण हुआ है। परिवारवाले उसे कमाऊ यंत्र के रूप में देखते हैं। बेड़िनियों को भाई की गृहस्थी चलाने की ज़िम्मेदारी भी उठानी पड़ती हैं। पैसों के लिए भाई अपनी बहनों को देह-व्यापार के लिए उकसाते हैं। 'रामखेलावन' नामक पात्र अपनी बेड़िनी बहन से नफरत करता है। वह आलसी है। इसलिए बहन को वेश्यावृत्ति करना पड़ा। इसका समर्थन करते हुए वह कहता है – "रोकते कैसे? यदि रोकता तो घर के सब लोगों को

खिलाता कहाँ से?"[1] इस प्रकार पैसों के लिए देह व्यापार के लिए उकसाते रहते हैं। दूसरी तरफ 'सिर ढंकना' करने वाला पुरुष भी उसे आजीविका के लिए पैसा नहीं देते। इस कारण उन्हें अन्य पुरुषों के साथ संबंध रखना पड़ता है। इसमें 'श्यामा' नामक बेड़िनी को रखैल पुरुष द्वारा छोड़ने पर दूसरे पुरुषों की खोज करनी पड़ती हैं। ये लोग भी अपना मन भरने के बाद श्यामा को छोड़ते हैं। 'सिर ढंकने' के नियम के अनुसार उसे हर महीने थोडा पैसा बेडनियों को देना है। उस नियम का पालन कोई करता नहीं है उसी प्रकार उनके साथ रहनेवाले 'सोहबतिया' या 'वाद्य मंडली' बेड़िनी और लंबरदार के बीच दलाली करते हैं। राई नृत्य से बेडनी को कम पैसे ही मिलते हैं। बाकी सारा पैसा ये लोग वसूल करते हैं। उसी प्रकार लंबरदार (ग्राहक) से बेडनियों को मिलाकर अच्छी रकम कमाते हैं। गरीबी एवं आर्थिक तंगी के कारण बेड़िनियों को सब लोगों के बीच रहने पड़ते हैं।

"रेत" में भी देह व्यापार में संलग्न कंजर औरतों की आर्थिक शोषण का ज़िक्र हुआ है। इसमें कंजर औरतों को परिवारवालों द्वारा पैसे के लिए देह-व्यापार में थकेल देने का चित्रण है। 'रम्भा' नामक खिलावडी जो कम उम्र की सुन्दर लड़की है एक मुस्लिम ड्राईवर से शादी करने की इच्छा रखती है। लेकिन रम्भा को सोने की अंडा देने वाली मुर्गी समझने वाली दादी माँ ड्राइवर से डेढ़ लाख मांगती है। अंत में रम्भा उतना पासा घरवाले को देकर ड्राइवर के साथ चली जाती है। कमला सदन में सुशीला बुआ का बेटा मंगर

[1] शरद सिंह - पिछले पन्ने की औरतें, पृ : 228

की बेटी 'पिंकी' को इनकी पोती है, रजस्वला होते ही धंधे पर भेजने की सोचती है। क्योंकि पिंकी काफी सुन्दर एवं आकर्षित थी तो घरवालों ने अंदाजा लगाया कि वह बहुत कमाएगी। कमला बुआ कहती है – "अब तो इसके महीने भी चालु हो गए हैं। मरे, हमारे ज़माने में तो महीने का भी इन्तजार नहीं होता था। जहाँ थोड़ी सी छाती निकली नहीं, वहाँ 'मत्था ढकाई' हुई नहीं। अब ज़माना बदल गया है। तब तो ये राय साब, दीवान साब, खान बहादुर, राय बहादुर जैसे बड़े-बड़े इज्ज़तदार भूखे भेडिये से ऐसी ही खिलावडीयों को ढूँढ़ते फिरते थे।"[1] वे इन अमीरों के पैसों की लालच में अपनी बच्चियों को बेचती हैं। इसके साथ पुलिस भी शोषण करते हैं। वे इनकी बस्ती में छापा मारकर पैसे लूटते हैं। इसके साथ जेल ले आकर रोज़ हाजिरी देने को कहता है। 'बचना' नामक कंजर को ऐसे ले जाते हैं और टाइम पर हाजिरी देने न आने पर दो सौ रूपए जुर्माना भी देने की धमकी देते हैं। इस प्रकार एक ओर देह-व्यापार करने के लिए सज़ा दिलाते हैं तो दूसरी ओर इनके पैसे लूट लेते हैं।

जनजाति प्रतिरोध

जनजातियों पर हो रहे शोषणों के विरुद्ध आज विद्रोह शुरू हुआ है। "पिछले पन्ने की औरतें" और "रेत" में मातृसत्तात्मक परिवार का चित्रण है। वहाँ स्त्री का स्थान प्रथम है। वे ही देह व्यापार करके अपने परिवार को संभालती हैं। वे व्यवस्था, कानून, पुलिस एवं ग्राहकों से हो रहे शोषणों से

[1] भगवानदास मोरवाल - रेत, पृ : 121

अवगत हैं। वे साहसी परिश्रमी एवं आत्मविश्वासी है। "रेत" में 'कस्तूरी' नामक कंजरी का पुलिस से डटकर मुकाबला करने का चित्रण हुआ है। वह अपने ऊपर थोपे गए नियमों पर प्रश्न चिह्न लगाती है। जब उसे जेल में रखने की बात करता है तो वह पुलिस को चुनौती देकर पूछती है – "सीधे-सीधे मुद्दे पर आओ! रही बात जमानत की तो वह हो ही जानी है। वैसे भी थाना-कचेडी आना हमारा रोज़ का काम है.........जमानत का डर मत दिखाओं हमें। कंजरों को जेल हवालात से नहीं लगता है डर.......कितने दिन रखोगे हवालात में एक दिन, दो दिन।"[1] यहाँ पुलिस द्वारा कंजरों के शारीरिक एवं आर्थिक शोषण के प्रति औरतों की तीखी प्रतिक्रिया स्पष्टतः मुखरित हैं।

इसमें 'रूक्मिणी' नामक खिलावडी सदियों से अपने जमात पर हो रहे शोषणों के खिलाफ आवाज उठाने तथा उन्हें शोषण मुक्त कराने के लिए राजनीति में मुरली एवं सावित्री के साथ प्रवेश करती है। जब उसे पता चलता है कि दोनों ने उसे धोखा दिया है तो वह मुरली से कहती है – "अगर आप मुझे रूक्मिणी खिलावडी की तरह बुलवाते तो मैं खुद ही दौड़ी चली आती क्योंकि मेरा तो यह धंधा है ....और धंधा करने वाली के लिए मेहनत मजूरी करने वाला भी ग्राहक है आप जैसा इज्ज़त आबरुवाला भी।"[2] यहाँ उसने कंजरों की उसूल समझाकर मुरली के गाल पर तमाचा मारा है।

---

[1] भगवानदास मोरवाल - रेत, पृ : 55

[2] वही , पृ : 194

वह 'जनजाति महिला उद्धार सभा' की नेतृत्व संभालकर राजनीति में प्रवेश करती है। वह चुनाव में मुरली को हराकर जीत लेती है। रूक्मिणी ने मुरली के षड्यंत्र के बदले दूसरा षड्यंत्र रचाकर उसे फंसाती है। वह पिंकी की सहायता से मुरली को अपमानित करती है। अंत में वह अपने देह, ताकत, एवं दौलत पर गर्व करती है। इसमें 'सन्तो' नामक पात्र है जो कंजरों के घर की बहु है। कई साल तक गुलामों की तरह चहारदीवारी में बंद रहने के बाद एक दिन वह एक इज्ज़तदार के साथ भाग जाती है। वह भाभी से बुआ बनती है और देह व्यापार करने लगती है। उसी प्रकार सावित्री जो मुरली की पत्नी है अपने चरित्र पर शक करने वाले पति से तंग आकर देह-व्यापार करने लगती है। इस प्रकार दोनों औरतों में अपने ऊपर हुए शोषणों के विरुद्ध विद्रोह देख सकते हैं।

"पिछले पन्ने की औरतें" में प्रत्येक जाति विशेष होने के कारण देह-व्यापार करने के लिए अभिशप्त बेड़िनियों को देख सकते हैं। वे आम औरतों की तरह यौन शुचिता, पातिव्रत्य आदि में विश्वास नहीं रखते। उनकी परंपरा, जिसे खुद पुरुष ने बनाया है, हज़ारों पुरुषों के साथ यौन संबंध रखने का है। इसी कारण स्त्रीत्व का दुरुपयोग करने वाली ये औरतें अपने को बलात्कृत नहीं मानतीं। इसमें 'श्यामा' नामक बेड़िनी जो माँग में सिंदूर डालती है, राई करती है, देह-व्यापार करती है और जिनके अवैध संताने है, समाज से डरती नहीं है। वह लेखिका से अपने बारे में खुलकर बताती है। उसे अपने ऊपर शर्म नहीं आती है। वह कहती है – "इसमें अच्छा- बुरा लगने

वाली तो कोई बात ही नहीं है। मेरा जन्म बेड़ियों में हुआ तो मुझे बेड़िनी तो बनना ही था।"[1] वह अपनी समाज पर सवर्ण पुरुष वर्ग द्वारा थोपे गए नियमों के प्रति गुस्सा प्रकट करती है। इस प्रकार व्यवस्था के प्रति समझौता करके आगे बढ़ने वाली श्यामा में भी विद्रोह है। इसलिए वह अपनी बेटी को खिलावडी न बनने देकर शादी करवाती है। लेखिका कहती है – "हाँ श्यामा ही शायद वह औरत हो जो अपनी बेटी गुड्डी के रूप में अपने बेडिया समुदाय की औरतों को शोषण के पिछ्ले पन्ने से निकालकर विकास की मुख्यधारा से अगले पन्ने पर ले आए.....।"[2] ये औरतें समाज की दृष्टि में बेड़िनी है और इनसे अत्पन्न संतान अवैध कहलाते हैं। इन्हें अपने पिता का नाम, दौलत या अधिकार नहीं मिलता। ग्राम पथरिया की पैंतालीस वर्षीय 'संजोबाई' अपने बच्चे को पिता का नाम न देकर पढ़ा-लिखाकर बड़ा करना चाहती है। वह कहती है – "हमें ही क्यों लगना चाहिए.......जैसे ये हमारे बेटा-बेटी है वैसे उनके भी तो हैं.........जब वे कुछ नहीं सोचते तो हम ही क्यों सोचें?"[3] वे सकूल में भरती करवाने के लिए अपने बच्चे के पिता के स्थान पर 'पैसा' या 'रूपए' लिखवाती है। 'नचनारी' नामक बेड़िनी बच्चे के पिता के बारे में कहती है – "वह कोई मानूष नहीं है, हुजुर। वह तो पैसा है........पैसा। लोग पैसे के बल पर ही तो हमारी कोख में अपना बीज डाल जाते हैं| फिर वही

[1] शरद सिंह – पिछले पन्ने की औरतें, पृ : 25
[2] वही , पृ : 304
[3] वही ,पृ :, पृ : 155

पैसा तो बाप बनकर हमारे बच्चों को पालता है ।"[1] हर बेड़िनी माँ की सच्चाई एवं अवैध संतानों की दर्दनाक जीवन को यहाँ प्रस्तुत किया है। पुरुषवर्चस्ववादी समाज में माँ से ज़्यादा पुरुष या पिता को स्थान दिया जाता है। अवैध संतानों को जन्म देने के कारण पुराण की कुंती से लेकर आधुनिक महिला तक या तो बच्चे का परित्याग करती है या आत्महत्या करती है। बेड़िनी औरतें के आगे पुरुषवर्चस्ववादी समाज के सारे आदर्श, स्त्री मुक्ति संगठनों के नारे सब बौने हो जाते हैं। इनकी ज़िन्दगी में पुरुष सिर्फ ग्राहक है न ही कोई नियंता या संरक्षक।

कंजर - बेडिया संसकृति

सिर ढंकना / मत्था ढकाई

बेडिया एवं कंजर जनजाति की औरतें वेश्यावृत्ति करने वाली हैं। जब इस जाति की लड़की रजस्वला होती है तब यह रस्म करती है। बेडनी समाज में इसे 'सिर ढंकना' और कंजरों में 'मत्था ढकाई' कहते हैं। लोग अपनी लड़की की रजस्वला होने के बाद कई पुरुष, बूढ़े, अमीर, जमींदार, पुलिस अफसर आदि इसके प्रति आकृष्ट होकर आते हैं। ऐसे पुरुष अपने नौकरों-सेवकों के माध्यम से सौदा तय करके 'सिर ढंकना' करता है। 'सिर ढंकना' एक प्रकार से रखैल बनाकर रखने का रस्म है। प्रायः सवर्ण लोग ही यह रस्म करने आते हैं जो निकटवर्ती गाँव के होते हैं। इस रस्म को औरतें अपने आर्थिक स्रोत को स्थायित्व देने वाली प्रथा के रूप में महत्व देते हैं। एक

[1] शरद सिंह - पिछले पन्ने की औरतें पृ : 115

धनिक व्यक्ति अपनी पसन्द की बेड़िनी पर अपना अधिकार स्थापित करने के लिए कुछ रकम देता है। यह पाँच हज़ार रूपए तक हो सकती है। यह रस्म एक सामाजिक समारोह के रूप में पूरी की जाती है। यह बेडिया समुदाय विशेष की जातीय रस्म है। इसके लिए लड़की, उसकी माँ एवं परिवारवालों की सहमति चाहिए। जो लड़की राई नृत्य करना या वेश्यावृत्ति करना पसन्द नहीं करते, उसकी विधिवत शादी की जाती है। इस रस्म पर मिली धनराशी से सामूहिक भोज (भंडारा) किया जाता है। भोज से बची धनराशी उस लड़की को दे दी जाती है जिसका 'सिर ढंकना' हो रहा होता है। यह उसकी व्यक्तिगत संपत्ति है। 'सिर ढंकने वाला' व्यक्ति भरण-पोषण के लिए वार्षिक राशि की घोषणा भी करता है जिसका वह भविष्य में भुगतान करेगा। यह धनराशी कभी-कभी तुच्छ होती है। यह राशि न देने वाले भी होते हैं। इस रस्म को 'सिर ढंकना' इसलिए कहा जाता है कि इसके द्वारा बेड़िनी को आर्थिक संरक्षण मिलता है। बेड़िनी को पैसे के अलावा और कोई अधिकार नहीं मिलता है। उसका कर्तव्य मनोरंजन करना तथा पुरुषों की यौन पिपासा बुझाना है। उसे अपने घर नहीं ले जाते हैं। कभी-कभी बेड़िनी को अन्य पुरुषों के साथ यौन संबंध रखने की भी अनुमति दे दी जाती है। "पिछले पन्ने की औरतें" में 'कौशल्या बाई' की सिर ढंकना करने का चित्रण है। सोलह वर्ष की कौशल्या का सिर ढंकना एक अधेड़ उम्र का ठाकुर करता है। वह शादीशुदा एवं बाल-बच्चेवाला भी है। इन सबसे बेड़िनी का कोई लेना-देना नहीं। उन्हें आजीविका चलाने के लिए पैसा चाहिए।

'मत्था ढकाई' कंजरों के लिए विशेष रस्म है। वे धंधे में जाने से पहले यह रस्म पूरा करती हैं। कमला बुआ इस रस्म के बारे में बताती है – "हमारे यहाँ जो इज्ज़तदार मत्था ढकाई करता है, उमर भर उसका जमाई की तरह मान किया जाता है। एक ब्याहता मर्द की तरह अपनी खिलावडी के पास आने-जाने की पूरी छूट होती है। उससे कभी पैसे नहीं लिए जाते हैं बल्कि जमाई की तरह पूरे नेग दस्तूर के साथ उसकी विदाई दी जाती है।"[1] इसमें 'वंदना' नामक कंजरी का जमाई है – 'नंदजी'। उसे वह अपना पति मानती है। एक बार किसी के साथ 'मत्था ढकाई' की सौदा तय किए बिना दूसरे के साथ नहीं जा सकती। पिंकी की 'मत्था ढकाई' न करके एक पुलिस उसकी मांग करता है तो कस्तूरी नामक कंजर मना करती है। पुलिस अगर मत्था ढकाई के लिए तैयार हुए तो ही पिंकी उसे मिलेगी।

"रेत" में 'रम्भा' नामक एक किशोरी की 'मत्था ढकाई' का वर्णन है। उस दिन शादी की तरह मनाते हैं। घर को सजाकर, मेहमानों को बुलाकर दावत देते हैं। लड़की को भी नए कपडे एवं गहने पहनाते हैं। उस दिन का सारा खर्च इज्ज़तदार का है। इसके अलावा वह लड़की को भारी रकम भेंट करता है। इस रस्म के बाद रम्भा देह व्यापार में प्रवेश करती है। तब से वह 'खिलावडी' नाम से जानी जाती है। यही वह रस्म है जो बेड़िनियों व कंजरों को वेश्यावृत्ति में थकेल देता है। कई बार इस रस्म से पहले लड़की की

---

[1] भगवानदास मोरवाल – रेत, पृ : 27

अनुमति पूछी जाती है। अन्धविश्वास एवं परंपरा के कारण अधिकांश लड़कियाँ इसके लिए सहमत होती है।

लोक गीत

वेश्यावृत्ति करने वाली औरतें लोगों का मनोरंजन करने के लिए नृत्य एवं गीत का इस्तेमाल करती है। उत्तरी भारत में शादी व जन्मोत्सव के अवसर पर इनके नृत्य एवं गीत रखते हैं। "रेत" में धंधा करते समय कमला बुआ मेहमानों के लिए 'दादरा' गीत गाती है –

"ओ बेपदर्दी सुपने में आ जा
कुछ तो बिपत्तियाँ कम होई जाऽऽए
हम ही ना जानियो साजन
नैना के मिलकै जुलुम होई जाए"[1]

"पिछले पन्ने की औरतें" में लेखिका ने व्यंग्यात्मक एवं अश्लील तथा वासनात्मक मनोदशा को उत्तेजित करने वाले गीतों का ज़िक्र किया है। जैसे –

1. "धरे लटके अनार, राजा पियारे जिन आ टोरियो......"
2. बरफी हो गए गाल, जोबना मद कैसे लडुआ...........
3. गोरी ऐसो कंजरा न देओ हीड़े परोसी को लड़का..........
4. कोसे की हाठी चढ़ी जंगला छैला मिले सो बेई कंगला.....

[1] भगवानदास मोरवाल – रेत, पृ : 37-38

5. गुदना हरें गोद गुदनारी. कसकत बाय हमारी.........”[1]

इन के गीत ‘टोरा’, ‘ख्याल’, ‘फाग’, ‘लटका’ एवं ‘सौबत’ के नाम से जाने जाते हैं।

लोक नृत्य

वेश्यावृत्ति करने वाली बेडनी औरतें ‘राई नृत्य’ करके लोगों का मनोरंजन करती हैं। ‘बेड़िनी’ शब्द का अर्थ है – ‘बांधे रखने वाली’ या ‘वश में करने वाली’। राई नृत्य के द्वारा वे अपने ग्राहकों को वश में करती हैं। राई नृत्य के दौरान ‘स्वांग’ भी होता है। स्वाँग का स्वरूप लघु नाटक या प्रहसन की भांति होता है। “पिछले पन्ने की औरतें” में बुंदेलखंड में प्रचलित ‘महुलिया’, ‘कचरिया बोने’ – ‘लौंगबोने’, ‘भांगबोने’, ‘कुचबंदिया नवाब’, ‘पटवारी’ आदि स्वांगो का विवरण दिया है। राई और स्वांग का लक्ष्य वासना का व्यापार करके पुरुषों को उत्तेजित करना है। धन प्राप्त करने के इच्छुक नर्तकी वासना एवं अश्लील भरी चेष्टाओं, कटाक्षों एवं संवादों और गीतों के द्वारा दर्शकों को आकृष्ट करती है। राई नृत्य करने वाली बेड़िनी घेरदार लहंगा और चोली पहनती है जो चटख रंग का सुनहरे चमकीले गोटे से सजा हुआ होता है। उनका कमर का भाग खुला रहता है और मुख घूँघट से ओढती है। वह अपने हाथ में रुमाल बांधे रखती है। नृत्य के दौरान जिस पुरुष के ऊपर रुमाल डालती है उसे बेड़िनी को पैसा देना पड़ता है। वह नृत्य

[1] शरद सिंह – पिछले पन्ने की औरतें, पृ : 253

के दौरान भ्रमर के समान तेज़ी से घूमकर अपने घेरदार लहंगे से दर्शकों में से किसी पुरुष के सिर को ढंक देती है|

बुंदेलखंड और उत्तर भारत में जन्मोत्सव, विवाह, नामकरण आदि पर अमीरों के घर में मशालों की रोशनी में नचनारियों की नाच होती है। इसे गौरव की बात माना जाता था। “रेत” में मंगल की शादी पर खिलावडीयों द्वारा ‘फाग’ खेलने का जिक्र हुआ है। यह एक नृत्य रूप है। राई नृत्य के समान ही है। राई नृत्य में गाने वाली गीतों में ‘फाग’, ‘टोरा’, ‘लटका’, ‘ख्याल’ एवं ‘सौबत’ आदि हैं।

बेड़िनी के साथ पुरुषों का दल भी होता है वे ‘वादक मंडली’ हैं। इन्हें ‘सोबत’ या ‘सोहबत’ अथवा ‘रइया’ कहते हैं। इस दल में मृदंग, करताल, डफली, ढोलक, मंजरा, टिमकी, नगाडीया आदि वाद्ययंत्र बजानेवाले तथा स्वांग करने वाले शामिल हैं। इनमें ‘ब्राह्मण’, ‘यादव’, ‘गोंड’ आदि किसी भी समुदाय के भी पुरुष होते हैं। ये बेडीनियों पर निर्भर हैं। कई वादक मंडली, बेड़िनी और ग्राहक के बीच दलाली भी करते हैं। इनमें बेडनियों के ‘ग्राहक पुरुष’ या ‘रखैल पुरुष’ भी शामिल होते हैं।

रहन - सहन

जनजातियों में खानाबदोश या बंजारा जनजातियाँ घुमक्कड़ प्रकृति वाले हैं। इनके कोई निश्चित पेशा या स्थान नहीं होते हैं। उनमें वेश्यावृत्ति करनेवाले, भीख माँगनेवाले, कई तरह के करतब दिखाकर मनोरंजन करने

वाले आदि हैं। "रेत" में कंजर औरतों की ज़िन्दगी का चित्रण हुआ है। वे मूलतः वेश्यावृत्ति करने वाली हैं। कमला सदन में रहनेवाली सभी औरतें 'मत्था ढकाई' के बाद अपनी परंपरागत पेशा या धंधा स्वीकार करके जीवन बितानेवाली हैं। अधिकांश कंजर शादी नहीं करते। उस घर का लड़का शादी कर सकता है। इसमें 'मंगर' शादी करके 'संतो' को घर ले आता है तो सब उसे 'भाभी' कहकर पुकारते हैं। लेकिन उस घर में सन्तो का स्थान नगण्य है। कंजरों के बीच अगर कोई झगडा हुआ तो वे पुलिस को नहीं बुलाते। उनके लिए एक पंचायत है। 'रेखा' और 'हेमा' के बीच ग्राहकों को लेकर झगडा होता है तो कमला बुआ बताती है – "........हमारे कंजरों में कतल भी हो जाए फिर भी पुलिस नहीं आती है। हाँ, हमारी बिरादरी की पंचायत जो फैसला करती है, वह सिर माथे पे।"[1] अंत में पंचायत दस हज़ार रूपए देने की सज़ा सुनाता है। सालों पहले 'सुशीला' और 'माया' के बीच झगडा हुई तो पंचायत ने माया को गुनाहकार बताकर उसके बाल काटने की सज़ा सुनाई थी। कंजर औरतें वेश्यावृत्ति करने के कारण पान, शराब आदि नशीले पदार्थों का सेवन करती हैं। कमला बुआ, 'हुस्न बाग़' नामक नशीले पदार्थ को बीच-बीच में खाती हैं। इन नशीले पदार्थों के सेवन से उनका स्वास्थ्य जल्दी बिगड़ जाती है|

"पिछले पन्ने की औरतें" में सादियों से लगभग एक जैसी जीवन शैली को जी रही बुंदेलखंड के 'बेडिया जनजाति' के औरतों की दुःखद कथा को

---

[1] भगवानदास मोरवाल – रेत, पृ : 81

प्रस्तुत किया है। जन्म देने वाले माँ-बाप, भाई-बहन, अन्य सगे-संबंधी इन्हें देह-व्यापार में थकेल देते हैं। उनकी परंपरा से जुडी धंधा होने के कारण इसे अपराध नहीं मानते। उनके आसपास का वातावरण उसकी सोच जो बदलने नहीं देते। इस समाज में औरतें नाच-गाकर या वेश्यावृत्ति करके परिवार चलाती हैं। इनके घर के मर्द मद्य आदि पीकर आलसी रहते हैं। वे दलाली भी करते हैं। बेड़िनियाँ किसी धनिक पुरुष का रखैल बनकर कई महीने तक दूर जाती हैं या अपने घर में धंधा करती हैं। उसकी घरवालों को इससे कोई ऐतराज़ नहीं है। यहाँ निर्णय लेने तथा ग्राहक को चुनने का अधिकार बेड़िनी को है। उसे अपने 'सिर ढंकन' करने वाले आदमी से आर्थिक सुरक्षा के अलावा और कोई भी अधिकार की कामना नहीं है। नारीवाद को लेकर बहसें चलनेवाली इस युग में वे पातिव्रत्य, यौन शुचिता आदि को चुनौती देकर इसके अपवाद के रूप में ज़िन्दगी गुजारती हैं। वास्तव में ये लोग ही साहसी एवं आत्मविश्वासी हैं।

देवी-देवता

कंजरों ने कुल देवता के रूप में "माना गुरु" को माना है। इसके साथ वे 'नालिन्या माँ', 'देवी मारी', 'प्रभा', और 'भुइया माँ' में भी विश्वास रखते है। माना गुरु और नालिन्या माँ से कंजरों की उत्पत्ति माना जाता है। 'माना गुरु' एक आदिवासी है जिसने दिल्ली के मुसलमान बादशाह के 'मल्लू'-'कल्लू' नामक दो पहलवानों को हराया था। कंजर अपनी जिन्दगी में कुछ अच्छा या बुरा होने पर 'माना गुरु' व नालिन्या की याद करते हैं। वे इनके सामने

नतमस्तक होकर आशीष मांगती हैं। "रेत" उपन्यास में कंजरों पर पुलिस का अत्याचार चित्रित है। पुलिस इनकी बस्ती में आकर लूटपाट करते हैं, उनके मर्दों को जेल में बंद कर देते है और औरतों का यौन शोषण भी करते हैं। पुलिस के इस अन्याय से बिरादरी को बचाने की प्रार्थना करते हव कमला की माँ कहती है – "हें नलिन्या माँ, रहम कर!"[1] इसी बात को सोचकर वह माना गुरु से भी दुआ मांगती है – "हें माना गुरु! जमानत के नाम पे अब रोज-रोज तो ना जाना पड़ेगा लाल दरवाज़ा।"[2] सावित्री और रुक्मिणी ने महिला संगठन की निर्माण करने जा रही थीं तब यों प्रार्थना करती हैं – "मैंने तो मिन्नत माँग रखी है बाईजी कि अगर आज काम सध गया, तो अपने माना गुरु की ऐसी पूजा करुँगी कि पूरी गाजुकी देखती रह जाएगी।"[3] बचनो और कस्तूरी नामक कंजर औरतो थानेदार द्वारा अपने ऊपर हो रहे ज्ल्मों के बारे में चर्चा करते हुए कहती है – "पता ना देवी मारी, प्रभा और भुइयाँ माँ इनसे कब पीछे छुडाएँगी।"[4] कंजरों की भी चारों धाम है – 'कड़ा' और 'विजयगढ़' । 'कड़ा' तो इलाहाबाद (उत्तर प्रदेश) जिले के एक गाँव है जहाँ 'माना गुरु' का शव दफनाया गया था और विजयगढ़, अलीगढ (उत्तर प्रदेश) के एक गाँव है, जहाँ अपने कुल देवी देंताओं की स्मृति में एक चबूतरा है। वहाँ भादों महीने

---

[1] भगवानदास मोरवाल - रेत, पृ : 41
[2] वही , पृ : 40
[3] वही ,पृः 187
[4] वही , पृ : 52

में नौवे दशक के प्रारंभ तक मेले लगता था। ये दोनों कंजरों के पवित्र स्थान है। घर में रूक्मिणि न दिखाई देने पर सावित्री पूछती है तब कमला बताती है – "कहाँ है, गई है चारों धाम की तीरथ पर। मैंने तो कहा था कि अपने देवी-देवता कौन से कम हैं, जो तू इन इज्ज़तदारों के देवी-देवताओं को मनाने जा रही है.......और जब जाना ही है तो अपने तीर्थों पर जा। हमारे लिए तो कड़ा और विजयगढ़ ही हमारे चारों धाम है....।"[1] इसप्रकार वे अपनी देवी-देवताओं तथा तीर्थ स्थानों के प्रति अटूट श्रद्धा रखती हैं|

वेश भूषा

खानाबदोश जनजातियों की वेश भूषा में भी विशेषतायें है। "पिछले पन्ने की औरते" में बेड़िनी औरतों की वेश-भूषा का वर्णन हुआ है। वे 'घेरदार लहेंगा', 'चोली' पहनती हैं जो चाटख रंग का सुनहरे चमकीले गोटे से सजा हुआ होता है। लहंगा नाभि के नीचे से एडी तक लंबा रहता है। 'राई' नृत्य करते समय वे अपनी कमर को खुला रखती हैं। चोली के ऊपर से चुनरी ओढ़ी जाती है जो गोटे और सितारों से सजी रहती है। राई नृत्य करते समय वे अपने चेहरे को घूँघट से ढंका रखती है। इनके साथ जो वाद्य - मंडली है उनमें पुरुष हैं। वे सिर पर पाँच गज रंगीन कपडे का साफ़ा बाँधते हैं। कुर्ता और कुर्ती पर जैकट पहनते हैं। कंधे पर तौलिया डाले रहते हैं और घुटनों तक लंबी धोती कोच (कछोटा) लगाकर पहनते हैं।

[1] भगवानदास मोरवाल - रेत, पृः 283

भाषा

"पिछले पन्ने की औरतें" में बुंदेलखंड को पृष्टभूमि बनाया है। अशिक्षित खानाबदोश बेड़िनी औरतें वहाँ की आंचलिक भाषा में संवाद करती हैं। लेखिका ने इन संवादों को हिन्दी में अनुवाद करके लिखा है जैसे –

"जे तुमाए को आए? (ये तुम्हारे कौन है?)

जे! (ये)

तुमाए घरवारे हैं? (तुम्हारे पति है?)

नई, जे सो ऊंसई आए... (नहीं ये तो ऐसे ही है....)

जे सोई बेडिया आए? (ये भी बेडिया हैं?)"[1]

यहाँ आचलिक भाषा में संवाद करने वाली बेड़िनी का चित्रण हुआ है।

"रेत" में कमला बुआ कहती है – "मरे तू कह रहा हैं तो मान जाती हूँ। बैद्जी, देओ छोरी-रुकाई के पचास हज़ार!"[2] यहाँ गाजुकी की आंचलिक भाषा में कमला बुआ एवं कंजर संवाद करती हैं।

इसमें लेखक ने कुछ मुहावरों का भी प्रयोग किया है। जब कमला बुआ अपनी बूढ़ी होने के बाद भी सौन्दर्य के बारे में तथा धंधे पर जाने की बात करती है तो वैद्यजी कहती है – "यह तो वह बात हो गई कि बूढ़ी घोड़ी लाल लगाम।"[3] यहाँ वैद्यजी कमला को 'बूढ़ी घोड़ी' कहकर मज़ाक उठाता है।

---

[1] शरद सिंह – पिछले पन्ने की औरतें, पृ : 168
[2] भगवानदास मोरवाल – रेत, पृ : 15
[3] वही , पृ : 92

रूक्मिणी के राजनीति में प्रवेश करने पर घरवाले गुस्से में थी। जब उन्हें रूक्मिणी के लक्ष्य के बारे में बताया तो घरवाले मिठाई देकर उसकी स्वागत करती है। तब वंदना कहती है – "कहते हैं कि सुबह का भूला अगर शाम को घर आ गए तो उसे भूला नहीं कहते हैं।"[1] इसके अलावा 'अंगद का पाँव साबित होना', 'टस से मस होना', 'मियाँ बीबी राजी तो क्या करेगी काजी', 'कबाब में हड्डी बनना' आदि का प्रयोग भी देख सकते हैं।

लेखक ने कई प्रतीकों का भी प्रयोग किया है। थाने में केसर सिंह नामक नए थानेदार के आने पर हाहाकार मचता है तो इसे लेखक ने यों व्यक्त किया है – "लगा जैसे अचानक परिंदों की बस्ती में कोई बहेलिया घुस आया है।"[2] यहाँ कंजर को 'परिंदों' से तथा केसर को 'बहेलिये' से तुलना की है। इस प्रकार रूक्मिणी अपने जैसे कंजरों की जिंदगी को 'रेत' से तुलना करके कहती है – "बैद्जी यह रूक्मिणी तो ऐसी रेत है जिसे जैसी चाहे हवा अपने साथ उड़ा ले जाए........जैसा चाहे पानी बहा ले जाए और तो और जिसके जी में आए अपनी मुट्ठी में कैद कर ले जाए।"[3] यहाँ लेखक ने अस्तित्वहीन कंजरों की ओर इशारा किया है। कंजरों की भाभी सन्तों की दयनीय स्थिति को यों चित्रित किया है – ".....उसे अब लगता है कि वह खेत में उग आई ऐसी अनचाही खरपतवार है, जिसे पानी उसकी उपादेयता के कारण नहीं;

[1] भगवानदास मोरवाल - रेत, पृ: 244

[2] वही , पृ : 46

[3] वही , पृ : 11

अपितु दूर तक फैली फसल के कारण मिल रहा है।"[1] यहाँ चहारदीवारी में सबसे उपेक्षित जीवन बिताने वाली संतो की तुलना 'खेत की अनचाही खरपतवार' से की है|

आंचलिक शब्द

इन उपन्यासों में कई आचलिक शब्दों को देख सकते हैं जैसे –

"पिछले पन्ने की औरतें" में 'जे'(ये), 'तुमाए' (तुम्हारे), 'नई' (नहीं), 'ऊसई' (ऐसे ही), 'बामन' (ब्राह्मण), 'नांव' (नाम), 'इतई' (यहीं), 'इन्हईं' (इन्हीं), 'कभऊं का' (कभी का), 'का' (क्या), 'पतो नई' (पता नहीं), 'मोड़ा' (बेटा), 'हमई' (हमें ही), 'काए' (क्यों) आदि। "रेत" में कंजरों द्वारा 'इत्ते' (इतने), 'अइयो' (आओ), 'मरे' (मेरे), 'कित्ता' (कितना), 'कित्ती' (कितनी), 'सपथ' (शपथ) आदि शब्दों का प्रयोग करते देख सकते हैं।

नट जनजाति

आर्थिक शोषण

खानाबदोश जनजातियाँ अशिक्षित एवं घुमक्कड़ होने के कारण गरीब होते हैं। इसके साथ जमींदार, पुलिस, आदि उनका आर्थिक शोषण करते हैं, उनकी ज़मीन छीन लेते हैं। "शैलूष" में 'घुरफेंकन तिवारी' द्वारा 'हरिहर नट' और अन्य नटों की ज़मीन अपने नाम पर रजिस्टर करने का चित्रण हुआ है। चालीस एकड़ में से सोलह एकड़ तिवारी हडप लेता है। जुडावन जब घायल होता है तो उसे आदिवासी होने के कारण दवा दारू मुफ्त में मिलता है।

---

[1] भगवानदास मोरवाल - रेत, पृ: 121

लेकिन टैक्सी की किराये देने तक की पैसा नहीं होते। इन लोगों को अन्न के बिना दो-चार दिन उपवास रखने की आदत है। 'लल्लू काका' नटों पर हो रहे शोषण के बारे में बताता है – "एक एकड़ बहुत होता है बेटी, यह ज़मीन निकल गयी तो यह कबीला भूखों मर जाएगा। फैक्ट्री, मशीनें, उद्योग- धंधे बढ़ रहे हैं। हमें जबरदस्ती उजाड़कर मौत के मुख में झोंक दिया जाता है। रेणुका से लेकर अनपरा, सिंगरौली तक तुमने अपनी आँख के आगे नटों को बे-घरबार होते नहीं देखा है। मुआवजा के नाम पर जो मिलता है उससे चार दिन पीने लायक महुवे का ठर्रा भी नहीं मिल सकता।"[1] भूख प्यास से तडपकर ये गिलहरी, चूहे, गिरगिट, मेंढक, नेवले आदि को खाते हैं। नटों में अपनी दूध सूखने के कारण दूध न दे पाने वाली माँ को लेकर एक गीत प्रचलित है जो महीने भर उपवास रखने के लिए विवश नट लोगों की ओर इशारा करता है। दामोदर शास्त्री पर छुरा मारने के आरोप में पकड़ता है तो वह नटों की गरीबी के बारे में यों कहता है – "हम लोग बहुत गरीब हैं दारोगा जी, इसलिए खेल-कूद, रस्सी पर चलना आदि अनेकों करतब दिखाकर रोज़ी-रोटी कमाते हैं।"[2] वे आजीविका के लिए निरंतर संघर्षरत हैं।

---

[1] शिवप्रसाद सिंह - शैलूष, पृ : 162

[2] वही , पृ : 105

नट नारी : यौन शोषण

खानाबदोश जनजातियाँ घुमक्कड़ होते हैं। इनका अपना कोई घर नहीं होता। इसलिए कोई भी जब चाहे इन पर वार कर सकते हैं। "शैलूष" में खानाबदोश जीवन बिताने वाले नटों का चित्रण हुआ है। वे झोपड़ियों में रहते हैं। जमींदार घुरफेंकन तिवारी नटों से उनको सरकार द्वारा मिली ज़मीन छीनने के लिए कई तरह के अत्याचार करते हैं। पुलिस भी तिवारी के लिए इनकी झोपड़ियों में छापा मारते हैं। वे नट कन्याओं पर हाथ उठाते हैं और उनके साथ ज़बरदस्ती करने की कोशिश करते हैं। इसमें 'प्रतापसिंह' नामक पुलिस 'रूपा' नामक नट कन्या पर अत्याचार करने की कोशिश करता है। लेकिन रूपा एवं नट युवकों के आक्रोश के सामने प्रतापसिंह को हार मानना पड़ता है।

नट जनजाति : प्रतिरोध

"शैलूष" में नट युवतियों का साहस एवं 'सावित्री' नामक ब्राह्मण औरत का आक्रोश आदि देखने को मिलता हैं। सावित्री 'जुडावन' नट से शादी करके 'सब्वों' बनती है। वह नट समाज की अंधविश्वासों, रुढियों का विरोध करके, उन्हें शिक्षित करके शोषणों से लड़ने का आत्मविश्वास देती है। जब नट उसे देवी मानकर पैर छूते हैं तो वह इनकार करती है। उसे अपने को नटों से विशिष्ट मानने पर अफ़सोस होता है। वह उनमें एक बनकर जीना चाहती है। जुडावन से शादी करके सवर्णों के मुँह पर तमाचा मारती है। वह आदिवासी एवं पिछड़ी जातियों की समस्याओं पर गंभीर ढंग से सोच-विचार करती है। उसके जागरण से नट चोरी, डकैती जैसे जरायमपेशा नहीं करते।

कई नट घुरफेंकन जैसे सवर्णों तथा अधिकारी वर्गों के कारण ज़मीन से बेदखल हुए हैं। वह नटों को विस्थापन की भयावहता समझाती हुई कहती है – "तुम लोग देख नहीं पा रहे हो, मूरखचंदो कि यह सारा इलाका इस तरह बदल रहा है कि सीमेंट, चूना, कोयला, जस्ता, अलुमुनियम के लिए ऐसी खुदाई होगी कि तुम्हारे जैसे आदिवासियों को पैर रखने की जगह नहीं मिलेगी।"[1] वह ज़मीन छीनने वालों से अंतिम साँस तक लड़ने का आह्वान करती है। वह पढ़ी-लिखी औरत है। इसलिए सरकार से प्राप्त सेवाओं के बारे में समझाकर 'अमृत' और अन्य नट युवकों को शिक्षा के मार्ग पर ले जाती है।

सावित्री एक साहसी औरत है। वह नट औरतों को छुरी चलाना सिखाकर उनमें आत्मविश्वास जगाती है। वह युवतियों से कहती है – "मैं तुम लोगों को शपथ दिला रही हूँ कि अगर तुम्हारी अस्मत पर आंच आये, जिसकी पूरी चिंता है मेरे मन में, तो तुम्हें दुश्मन पर इस तरह हमला करना होगा कि वह जान जाए कि जुडावन के कबीले में सिर्फ खूबसूरती ही नहीं, खुद्दारी भी है।"[2] उनके उपदेश सुनकर 'रूपा', 'मूंगा', 'माला', 'सलमा' सब छूरेबाजी सीखती हैं। जब 'दामोदर शास्त्रीजी' असभ्य बातें करता है तो सलमा उस पर छूरा चलाती है। उसी प्रकार सावित्री पर हाथ उठाने वाले घुरफेंकन का कान रूपा अपनी चाकू से अलग करती है। वह कहती है – "ले हरामी जबड़ा तो नहीं गिरा था, पर तेरा एक कान सदा के लिए चला गया,

[1] शिवप्रसाद सिंह – शैलूष, पृ : 91
[2] वही , पृ : 78

तू कानकटवा तिवारी कहलायेगा। रेवती मइया के हुकुम पर कह रही हूँ।”[1] पुलिस द्वारा बेवजह नट झोपड़ियों में छापा मारने पर भी रूपा आक्रोश करती है।

इन औरतों के साथ नट युवक भी प्रतिरोध करते हैं। घुरफेंकन तिवारी द्वारा सब्वों पर अश्लील आरोप लगाने पर ‘जुडावन’, ‘सूरज’, ‘ननकू’, ‘बसावन’ आदि के नेतृत्व में तिवारी पर आक्रमण होता है और उसे माफ़ी माँगने के लिए विवश करते हैं। इस प्रकार वे सभ्य एवं सवर्ण लोगों के सामने अपनी इज्ज़त का मूल्य समझाते हैं।

नट संस्कृति

देवी-देवता

“शैलूष” में नटों की कुलदेवी ‘नथिया बंजारिन’ और ‘गुरु मान बाबा’ का ज़िक्र हैं। वे किसी भी शुभ कार्य करने से पहले इनको प्रसाद चढाते हैं। जब नटों तथा घुरफेंकन तिवारी के गुंडों के बीच लड़ाई होती है तो उसमें विजय प्राप्त करने के लिए देवी-देवता को दो सौ रसगुल्ले ‘मान बाबा’ और ‘नथिया’ को चढ़ाकर लोगों में बांटते हैं। वे ‘रेवती मइया’, ‘किसुनजी’ और ‘मखदूम साई’ के भी भक्त हैं। ननकू नट द्वारा घुरफेंकन के खिलाफ लड़ाई के लिए उतरते वक्त जय - जयकार करने का चित्रण किया है –

“बोलो, मखदूम बाबा की जै!

बोलो, मान बाबा की जै!

---

[1] शिवप्रसाद सिंह - शैलूष, पृ: 43

बोलो, नथिया बंजारिन की जै!"[1]

इसमें 'लल्लू गुरु' के नेतृत्व में मान गुरु और नथिया देवी की पूजा करने का जिक्र है – "लल्लू गुरु ने एक नारियल को लाल कपडे में लपेट दिया और अहरे से आग लेकर एक दूसरा हवन कुंड बनाया। सब तरह के विविध विधान के साथ नथिया देवी का पूजन होने लगा। हवन का धुआं नथिया देवी को प्रसन्न कर रहा था।"[2] वे अपने देवी-देवताओं के प्रति काफी श्रद्दा रखने वाले हैं।

लोक कथा

"शैलूष" में रेवतीपुर के नटों की जिन्दगी का चित्रण हुआ है। वे 'रेवती' या 'सत्ती मैया' के भक्त है। रेवती मैया को लेकर एक कथा प्रचलित है जो इस प्रकार है – घुरफेंकन के प्रपितामह की पुत्री रेवती ने सुधाकर नामक निम्न जातिवाले से प्यार करती है। बाप ने जब इसका विरोध किया तो वह तिवारी का वंश नष्ट करने की धमकी देती है। जब रेवती गर्भवती हो जाती है तो तिवारी वाले उसकी चरित्र पर ऊंगली उठाते हैं। रेवती पर सौ चाबुक लगाने की सजा सुधाकर अपने ऊपर लेता है। फिर उसकी मृत्यु हो जाती है। उसके बाद तिवारी परिवार को निरवंश होने का शाप देकर आत्महत्या करता है। इसके बाद गाँव में महामारी आ जाती है, तिवारी के घर के बेटे मरने लगते हैं। इस प्रकार तिवारी वंश का विनाश हो जाता है।

---

[1] शिवप्रसाद सिंह - शैलूष,: 147

[2] शिवप्रसाद सिंह - शैलूष, पृ : 131

दूसरी कथा 'मान गुरु' एवं 'नथिया बंजारिन' से संबंधित है। इन दोनों से नट अपनी उत्पत्ति मानते हैं। वे दोनों एक दूसरे से प्रेम करते थे। दिल्ली के सुलतान ने वीर मान से इस्लाम धर्म स्वीकारने को कहा। वह राजा का आदेश नहीं मानता है और वापस अपनी झोपडी में आता है। वह अपनी शक्ति का कारण नथिया को मानता है। इसलिए इन दोनों के रिश्ते को वे श्रद्धा से देखते हैं। वे इन्हें अपने पूर्वज मानते हैं। इसके साथ वे अपने को आल्हा-ऊदल के वंशज भी मानते हैं।

शादी

नट जनजाति की शादी एवं उससे जुडी रस्में अजीब है। सब्वों, सूरजभान नामक एक पुलिस अफसर से नट शादी के बारे में बताती है – "........हम नटों की शादी भी अजीब होती है। या तो लड़की के परिवारवाले को युद्ध में हराकर उठार लाओ, अथवा लड़की के बाप के मुंहमांगी रकम मेहर के रूप में देकर खरीद लो।"[1] सब्वों की भतीजी 'रूपा' से शादी करने के लिए 'मानिक' को एक हज़ार रूपया मेहर देना पड़ता है। शादी की तैयारियाँ व रस्में भी अजीब हैं। शादी के दिन बिरादरीवाले रात को आठ बजे उपलों के अहरे पर हांडियों में चावल, दाल, सब्जी आदि के साथ मांस, मछली भी पकाते हैं। नटों में अजीब प्रथा है कि एक नट परिवार किसी दूसरे नट परिवार का छुआ नहीं खाता है। इसलिए वे बिरादरी में चावल, दाल, आलू सब बांटते हैं और अपना भोजन खुद पकाते हैं। शादी में मानिक को सात

---

[1] शिवप्रसाद सिंह – शैलूष, पृ : 52

बार रूपा की मांग को सिंदूर से भर देना है, फिर सोने में जड़े बिल्लौरी हीरे का नेकलेस पहनाना है। इसके बाद रूपा महुवे का ठर्रा भरकर मानिक को पिलाती है और खुद भी पीती है। इसके साथ शादी की रस्में पूरी होती हैं। फिर नट कन्यायें हाथ से हाथ पकडे मानिक और रूपा की चातुर्दिक घूम-घूम कर गाकर नाचती हैं। फिर सब मिलकर दूल्हा-दुल्हन को विदा देते हैं।

लोक गीत

"शैलूष" में नटों की कुछ गीतों का भी उल्लेख है। जुडावन नामक नट सावित्री नामक ब्राह्मण युवती से शादी करता है। जब उसे अपनी अभावग्रस्त जिंदगी पर दुःख होता है तो वह गाता है –

"आहो रामा मानिक हमरो हेरइलो हो रामा
आहो रामा ओही रे जमुनवा के चिकनी मटियावा
चलत पाँव बिछलइले हो रामा
आहो रामा तोरे लेखे ग्वालिन मानिक हेरइले
मोरे लेखे चान छिपइले हो रामा।"[1]

(अर्थात- मेरा माणिक्य खो गया। उस जमुना की माटी इतनी चिकनी थी कि चलते हुए पाँव बिछला गए। अरे ग्वालिन, तेरे लिए माणिक खो गया होगा, मेरे लिए तो मेरा चाँद ही छिप गया।)

नटों में गरीबी है। इस गरीबी पर एक गीत है –

"केकरे घरे रोटिया मांगे जाई रे

[1] शिवप्रसाद सिंह – शैलूष, पृ : 9

जरत बा छतिया

कइसे के दुधवा पियाई रे

रोवत बा लरिका।"[1]

(अर्थात- छोटे शिशु को क्या मालुम कि उसकी गरीब माँ की छातियों के दूध सुख गए हैं। वह हाड चिचोर रहा है। जिसे खुद महीना भर उपवास करना पड़ा है, वह अपने प्यारे बच्चे को कैसे जिलाए?)

नट युवक-युवतियाँ भीख माँगने या करतब दिखाने के लिए गीत गाने के साथ रात को दारु पीकर ढोलक, मंजीरे, एकतारे एवं डमरू बजाकर एक साथ गीत गाते हैं–

"अमवा महुआ के बाग़ तहिरे बीच राह लगी

अमवा के लाम्बे लाम्बे पात टिकोरवा से डाल झुकी।"[2]

मानिक और रूपा की शादी पर नट कन्याओं द्वारा गीत गाने का ज़िक्र है –

"हरी मोर चलले उतर बनिजरिया

दुअरा कदंब लाइ गइले हो राम

जब जब धनिया रे मनवां उदसिहे

तब तू कदम तरै जोहिहे हो राम।"[3]

---

[1] शिवप्रसाद सिंह - शैलूष, पृः 128

[2] वही , पृ : 134

[3] वही ,पृः 251

(अर्थात- मेरे प्रिय उत्तर दिशा को नौकरी करने गए। वे द्वार पर कदंब का वृक्ष लगा गए। हे धनिया, जब - जब तुम्हारा मन उदासे, तुम इसी के नीचे खड़ी होकर मेरी बाट जोहती रहना।)

रहन-सहन

नट जनजाति घुमक्कड़ हैं। उनके लिए कोई निश्चित 'स्थान', 'घर' आदि नहीं होते। इसलिए घूम - घूमकर जहाँ पहुँचते हैं वहाँ छोटी-मोटी झोपड़ियाँ बनाते हैं। "शैलूष" में सब्वो इन नटों की जीवन शैली के बारे में बताती है – "नटों का घरद्वार तो होता नहीं, श्रीमान, इसलिए वे सब कुछ भैसों पर लादकर चलते हैं।"[1] सब्वों के प्रयासों से इनकी जिंदगी में परिवर्तन आता है। नट युवक योद्धा होते हैं। सब्वो के कहने पर नट कन्याएं भी चाकू, छुरा आदि चलाना सीखती हैं। नटों को प्रेतात्माओं में विश्वास हैं। गाँव में गोवर्धन ने 'जिरिया चमाइन' को चोरी के जुल्म में मारा था। नटों का विश्वास है कि उसकी प्रेतात्मा वहाँ है। किसी के बीमार होने पर प्रेतात्मा को दोषी बताकर सूअर की बलि चढ़ाते हैं और पूजा करते हैं। कबीलों में अगर कोई अपराध करता है तो उसे 'खंता' पर चढाने की सजा भुगतना पड़ता है – "यह बहुत बड़ी सज़ा है कबीले की। गुनाहगार के हाथों पर पीपल के हरे-हरे ढाई पत्ते रख दिए जाते हैं। फिर उसकी अंजुरी को टाँगे से बाँध दिया जाता है। खंती तो आप जानते ही होंगे हुजूर, वह लड़की के बेंट में जड़ी छः इंच लंबे लोहे का

[1] शिवप्रसाद सिंह - शैलूष: 38

तीखा हथियार होता है।”[1] इस खंते को आग में लाल कर देता है फिर अपराधी के अंजुरी में रख देता है।

वेश भूषा

नटों की वेश भूषा अलग है। “शैलूष” में ‘सलमा’ नामक नट कन्या की वेश भूषा का वर्णन है। वे भारी भरकम गहने और लहंगे एवं ओढनी कुर्ता, पहनती है। नट कन्याएं अपने साथ चाकू - छुरा आदि भी लेकर घूमती हैं। ‘ताहिरा’ नामक नट कन्या का लहंगा, कुर्ता और कमर पट्टी में खुंसा या चाकू पहनकर घूमने का चित्रण हुआ है।

भाषा

नट जनजाति घुमक्कड़ हैं और अशिक्षित भी। इनकी भाषा परिमार्जित नहीं है। इसमें आंचलिक भाषा का प्रयोग हुआ है। ‘गोवर्धन’ नामक पात्र कहता है – “सोच लो भइया, बाद में गरीब को दोस मत देना, मेरे साथ दो आदमी अउर रहेंगे।”[2] ‘लल्लू नट’ भगवान की पूजा करते हुए कहता है – “जय गुरु मान महावीर हम त्वार ख्वाटो ढवाटो है। तुमने हर विपद माय

[1] शिवप्रसाद सिंह – शैलूष, पृ : 113
[2] शिवप्रसाद सिंह - शैलूष, पृ: 86

हमारो रच्छा करी है। आज त्वार सरन में आयो हैं।"[1] इस प्रकार वे आंचलिक भाषा या बोली में आपस में संवाद करते हैं।

आंचलिक शब्द

नटों की भाषा में कई आंचलिक शब्दों का प्रयोग देख सकते हैं – जैसे 'अउर' (और), 'दोस' (दोष), 'करिए' (कीजिए), 'निरनय' (निर्णय), 'काहे' (क्यों), 'हमारो' (हमारा), 'रच्छा' (रक्षा), 'करी' (की), 'सरन' (शरण) आदि।

मारवाड़ी

'मारवार' राजस्थान का एक प्रदेश है। यहाँ के रहनेवालों को मारवाड़ी कहते हैं। वे भारत के अन्य कई प्रदेशो में फ़ैल गए हैं। वे मुखतः व्यापारी हैं। वे संयुक्त परिवार में रहना पसन्द करते हैं। वे ज्यादात्तर हिन्दु धर्म के हैं। लेकिन इनमें जैन धर्म के अनुयायी भी हैं। दोनों धर्मों के बीच शादीशुदा संबंध भी है और व्यापार संबंध भी। वे मूलतः वैश्य या बनिया जाति के हैं। मारवाड़ी वैश्या लोग कोलकत्ता, मुंबई, सिल्लुगुरी, आसाम, मेघालय, मणिपुर आदि में है। वे मुख्यतः व्यापार एवं वाणिज्य से संलग्न होने पर भी अन्य पेशे को अपनाने वाले भी हैं।

---

[1] शिवप्रसाद सिंह - शैलूष , पृ : 131

मुग़ल शासकों विशेषकर अकबर के शासन काल में ये लोग मारवार से भारत के अन्य प्रान्तों में जाने लगे। वेस्ट बंगाल, बिहार, उड़ीसा, झारखण्ड और बांग्लादेश में इसी काल में वे प्रवेश किए थे। बंगाल में नवाबों के शासन काल में मारवाड़ी बैंकिंग, व्यापार आदि में आ गए। भारत के प्रथम स्वतंत्रता संग्राम के दौरान अधिक संख्या में मारवाड़ी लोग आने लगे। जूट, कपडे, चाय, सोना और अन्य खाद्य सामग्रियों के व्यापार करने में वे प्रसिद्ध थे। मारवाड़ी समाज एवं संस्कृति पर चर्चा करने के लिए यहाँ प्रभा खेतान के “पीली आंधी”,और “छिन्नमस्ता”, एवं अल्का सरावगी का “कलिकथा वया:बाइपास” उपन्यासों को लिया गया है|

मारवाड़ी एवं व्यापार

मारवाड़ी समाज मूलतः व्यापारी है। वे जूट के कपडे, सोना-चाँदी, खाद्य सामग्री, चमडे आदि के व्यापार करते हैं। यह उनका पुरखों से चली आ रही परंपरा है। अलका सरावगी का “कलिकथा वाया बायपास” में किशोर के दादा का कलकत्ते में व्यापार करने का जिक्र है। वह अंग्रेज़ों का ज़माना था। उस समय वे भारी संख्या में राजस्थान से व्यापार के लिए कलकत्ता आये थे। ‘रामविलास’ के पिता हैमिलटन नामक अंग्रेज़ अफ़सर के साथ मिलकर व्यापार करता था। उसके बाद रामविलास अपना गाँव भिवानी छोड़कर कलकत्ता जाता है और हैमिल्टन के बेटे उसे पाट के सौदा करने के लिए आमंत्रित करता है। वह जूट का दलाली करके अमीर बन जाता है। प्रभा खेतान के “छिन्नमस्ता” में ‘प्रिया’ एवं उसका परिवार खान्दानी व्यापारी है।

प्रिया की बाबूजी जूट एवं चमड़े का व्यापार करता था। उसकी माँ का जन्म भी व्यापारी परिवार में हुआ था। प्रिया के नाना खानदानी रईस है जो 'कोलकिंग' नाम से प्रसिद्ध है। वे हीरे के व्यापारी हैं। दक्षिण कलकत्ता के लगभग सभी मारवाड़ी अमीर हैं। वे शानदार बंगलों में रहते थे। इसमें नई पीढ़ी के प्रिया चमड़े का व्यापार करती है तो उसका पति 'नरेन्द्र' विदेश से एम.बी.ए करके व्यापार में सलग्न है। उनके "पीली आंधी" में अफ़ीम,कपडे और कोयले के व्यापार करने वाले मारवाड़ी परिवार को देख सकते हैं| इसमें सेठ गुरुमुखदास के पोते 'किशन' और 'रामेश्वर' व्यापारी हैं| गुरुमुखदास का बेटा किशन और रामेश्वर की बीवियों को खानदानी व्यापार के बारे में समझाता हुआ कहता है- " दादाजी तो रतनगढ़ रहते थे| अफ़ीम का बहुत बड़ा व्यापर था| जब मालवा, अजमेर, मिर्जापुर की गद्दियों से मुनीम-गुमाश्ते लौटते, तब दादाजी बीकानेर महाराज के लिए अशर्फियों से भरा चांदी का थाल नज़राने में ले जाते|"[1] गुरुमुखदास का सुजानगढ़ के महाराज 'उमंग सिंह जी' से दोस्ती था| उनके कहने पर सुजानगढ़ में व्यापार करते हैं और बणियों के व्यापर से वह्हन परिवर्तन आता है| इस व्यापारी परंपरा को रामेश्वर का बेटा 'माधो' आगे बढाता है| वह कपडे और बाद में कोयले का व्यापार करते हैं| इस प्रकार वाणिज्य एवं व्यापार को मारवाड़ी अपनी पुश्तैनी धंधा मानते हैं।

[1] प्रभा खेतान - पीली आंधी , पृ :5-6

मारवाड़ी समाज में स्त्री

मारवाड़ी समाज में स्त्रियों की दशा अत्यंत दयनीय थी। उसे 'पिंजरे की मैना' की तरह घर की चहारदीवारों में बंद रहना पड़ता था। स्त्रियों पर कई तरह की पाबंदियाँ थीं। "कलिकथा वाया बायपास" में 'अमोलक' नामक पात्र मारवाड़ी औरतों की इस पिछड़ेपन एवं गुलामी जिंदगी से दुःखी रहता है। स्त्रियों को बाहर निकलते वक्त ओढनी पहननी पड़ती है। उन्हें दूकान से कोई चीज़ खरीदना हो तो ऊपर एक तल्ले से साडी लटकाकर नीचे दुकानदार को आवाज़ दे देती है| वह उसी साड़ी में सामन बाँध देता है जिसे वे ऊपर खींच लेती हैं। इसमें 'किशोर बाबू' अपनी पांचों बेटियों को बाहर घूमने या दूसरों के घर जाने की अनुमति नहीं देता है। उनकी छोटी लड़की जो पढ़ी-लिखी एवं प्रगतिशील विचारोंवाली है। उसे ताईजी समझाती है – "बेटी, औरतों के लिए जीवन ऐसा ही है। उन्हें तो सब कुछ सहकर जीना है। हमेशा दबकर रहना है।"[1] यहाँ एक औरत नई पीढ़ी को भी इस गुलामी को स्वीकारने का उपदेश देती हैं। मारवाड़ी समाज में पुरुषों का शासन चलता था। लड़कियों की छोटी उम्र में शादी कराई जाती है। पुरुषों का वेश्याओं के साथ संबंध होता है या उनकी एक से अधिक पत्नी होती थी। इसमें किशोर के मामा का मामी को त्यागकर वेश्या के पास जाने का चित्रण हुआ है। किशोर के नानाजी अपने बेटे का समर्थन करता है। घर में औरतों को स्थान नहीं मिलता था।

---

[1] अलका सरावगी – कलिकथा वायाबाइपास, पृ : 58

"छिन्नमस्ता" में प्रिया की माँ की शादी छोटी उम्र में हुई थी। जब वह अठाईस की हो गई तो उसके चार बच्चे भी हो गए थे। समाज में स्त्रियों को केवल भोगवस्तु मानती थी। प्रिया के ससुर का अन्य औरत के साथ संबंध था जिसमें उनकी एक बेटी भी है। इसमें प्रिया एक प्रगतिशील लड़की है जो स्वावलंबी बनने की इच्छा रखती है। लेकिन नरेन्द्र उसे तलाक की धमकी देता है। वह कहती है – "यह मत भूलो प्रिया कि मैं पुरुष हूँ। इस घर का कर्ता। यहाँ मेरी मर्ज़ी चलेगी, हाँ सिर्फ मेरी।"[1] इसमें पुरुषों का मालिकाना भाव नारी की जिंदगी को नारकीय बनाता है। मारवाड़ी समाज में विधवा विवाह कम है। बाल विवाह करने वाली मारवाड़ी औरतें कम उम्र में विधवा हो जाती है। वे रंगीन कपडे, गहने आदि नहीं पहन सकती। इसमें प्रिया की दाई माँ विधवा होने के कारण रंगीन कपडे नहीं पहनती है। "पीली आंधी" में में मारवाड़ी औरतों की दयनीय स्थिति का चित्रण हुआ है| इनके पति व्यापार के सिलसिले में सालों तक घर से दूर रहते हैं| वे पति के विरह में तड़प-तड़पकर जीती हैं| इसमें रामेश्वर की पत्नी विरह से तंग आकर बरस पड़ती है –" एक कसक,एक रीती चीख....क्यों आखिर क्यों हमारे पुरुषों को दिसावरी में जाना पड़ता है? और वह भी इतनी कं उम्र में? गाँव का नाई नहीं जाता, जोशी नहीं जाता, ठाकुर नहीं जाते, राजा साब नहीं जाते, फिर खाली हम बणिये हि क्यों जाते हैं?"[2] उपन्यास के दूसरे खंड में विधवा

---

[1] प्रभा खेतान – छिन्नमस्ता, पृ : 13

[2] प्रभा खेतान - पीली आंधी , पृ : 5

समस्या का भी ज़िक्र हुआ है| सांवर की विधवा बेटी 'रेवा' एवं रेवा की बेटी को ससुरालवाले त्यागते हैं और वे मायके वापस आती हैं| उसे अपनी अधिकारों से भी वंचित हों पड़ती है| "कलिकथा वाया बाइपास" में किशोर की माँ और भाभी विधवायें हैं। ये दोनों कम उम्र में विधवा हुई थीं। किशोर का मित्र 'शांतनु' उसकी भाभी की रंगहीन दुनिया एवं विधवा विवाह की ज़रूरत पर यों पूछता है – "तुम्हारे मारवाड़ियों में भी पहला विधवा विवाह हुए तेरह साल हो गए हैं। तुम क्या चाहते हो तुम्हारी भाभी का जीवन कैसा हो? तिल-तिलकर जलते हुए वह सती हो?"[1] किशोर की भाभी को रंगीन साडी, गहने आदि पहनने की इजाजत नहीं है। शुरू-शुरू में किशोर ने भी इस अन्याय का विरोध किया था। लेकिन उम्र के बढ़ने के साथ वह भी मारवाड़ी समाज की परंपरा को मानने लगते हैं और भाभी के गुलाबी रंग की साडी पहनने पर उसे डांटता है।

मारवाड़ी स्त्री : प्रतिरोध

पुरुषवर्चस्ववादी मारवाड़ी परिवार में स्त्रियों की हैसियत कम है। घर में लड़कों को जितनी स्वतंत्रता मिलता है उतना लडकियों को नहीं मिलते। लड़कियों का बाल विवाह कराया जाता है। उनको शिक्षा से भी वंचित होना पड़ता है। इनमें नई पीढ़ी की लड़कियाँ जो थोडा पढ़ी-लिखी होती है अपने स्वत्व को पहचानकर प्रतिरोध करती है। वे परंपरा एवं व्यवस्था के खिलाफ आवाज उठाती हैं। वे पढ़-लिख कर स्वावलंबी होने की इच्छा रखती हैं।

[1] अलका सरावग - कलिकथा वाया बाइपास, पृ : 61

अल्का सरावगी के “कलिकथा वाया बाइपास” में किशोर की छोटी बेटी मर्दवादी परंपरा का विरोध करती है। उसे घर की चहारदीवारों में गुलाम की तरह बंद रहना पसन्द नहीं है। अमोलक की माँ पुरुषों का वेश्याओं के पास जाने के विरुद्ध आन्दोलन करती है तो उसे समाज वेश्या घोषित करता है। फिर भी वह समाज की इस कुप्रथा के विरुद्ध आन्दोलन चलाती है।

“छिन्नमस्ता” में प्रिया को घर में कई तरह के शोषण सहना पड़ा। उसकी माँ उससे नफरत करती थी, भाई ने उसका यौन शोषण भी किया था। जब उसकी शादी होती है तो पति नरेन्द्र से भी मानसिक एवं शारीरिक शोषण सहना पड़ा। वह पत्नी को भोग वस्तु मानता था। प्रिया की माँ एवं जीजी को भी अपने - अपने पति एवं ससुरालवालों से दुःख झेलना पड़ा था। इसलिए वह इन सबका विरोध करती है। वह चमड़े का व्यापार करके देश-विदेश में घूमकर अपना प्रतिरोध ज़ाहिर करती है। पति ने जब उसे व्यवसाय छोड़ने को कहा और तलाक की धमकी दी तो वह कहती है – “नरेन्द्र मैं व्यवसाय रूपए के लिए नही कर रही, हाँ चार साल पहले जब मैंने पहले पहल काम शुरू किया था, मुझे रूपयों की भी ज़रुरत थी| पर आज मेरे व्यवसाय मेरी आइडेंटिटी है। यह आए दिन की विदेशों की उड़ान....... यह मेरी जिन्दगी के कैनवाज़ को बड़ा करती है।”[1] प्रिया पुरुषों द्वारा बनाये प्यार, ईमानदारी, समर्पण, आदि आदर्शों को भ्रम मानती है। “पीली आंधी” में ‘सोमा’ नामक सशक्त आधुनिक मारवाड़ी नारी का चित्रण किया है| पढी-

[1] प्रभा खेतान – छिन्नमस्ता, पृ : 10

लिखी सोमा को शादी के बाद घर में बैठना पड़ता है| समलैंगिक पति से प्यार भी नहीं मिलता था| वह गोतम से कहती है –“हाँ, गौतम! मैं अपने पैरों पर खडी हो सकती हूँ| शायद इस घर से बाहर गौतम तुमको एक हज़ार रूपए की नौकरी नहीं मिले,लेकिन मुझे मिल जाएगी|”[1] यहाँ सोमा का आत्मविस्वास देख सकते हैं| अंत में वह अपने अध्यापक ‘सुजीत सेन’से सम्बन्ध रखती है और गर्भवती होती है| वह घरवालों को सच्चाई बताकर सुजीत के साथ ‘लिविंग टुगेदर’ का सम्बन्ध रखती है| इस निर्णय के बारे में वह सुजीत से कहती है –“ हां सुजीत, रूंगटा हाउस का महत्व बहुत बड़ा है| ओंची शान है| लेकिन मेरी नहीं| मुझे किसी भी निर्णय का अधिकार नहीं| मैं यहाँ कुछ भी नहीं| कुछ भी नहीं| सुजीत मैं मरना नहीं चाहती| जीना चाहती हूँ| जीना.......”[2] यहाँ पर सोमा की जीवन के प्रति ललक एवं चाहत देख सकते हैं| वह अपनी ज़िंदगी अपनी मर्जी से जीने का सहस दिखाती है| इसमें वह सफल भी हो जाती है|

मारवाड़ी समाज में छुआछूत

मारवाड़ी समाज हिन्दू एवं जैन धर्म में विश्वास रखनेवाले हैं। ये लोग निम्न जाति के लोगों, ईसाई एवं मुसलमान लोगों को अछूत मानते हैं। ये धार्मिक बातों को महत्व देनेवाले लोग हैं। वे निम्न जाती के देखने या छूने को अशुद्ध या अपवित्र मानते हैं। “कलिकथा वाया बाइपास” में ‘रामविलास’ के

---

[1] प्रभा खेतान - पीली आंधी , पृ : 248
[2] प्रभा खेतान - पीली आंधी , पृ: 241

दूर के रिश्ते के भाई ने अपनी माँ को ले कर एक बार कलकत्ता आया था। लेकिन वह कलकत्ते में शांति से नहीं रह पाती है। वह कहती है – "यह कैसा शहर है जहाँ टट्टी का हाथ धोने की मिट्टी के भी पैसे लगते हैं? मेहतर कमरे के सामने से आता-जाता है? और ये अशुद्ध पानीवाली कलें इनका पानी पीने के काम में कैसे लिया जा सकता है?"[1] "छिन्नमस्ता" में नीचे जात की 'हरिया' द्वारा रसोई में प्रवेश करना पाप मानती है। इस कारण प्रिया की माँ उसे डांटती है। उसी प्रकार घर में मेहतर के आने जाने के लिए अलग रास्ता है। इनको देखने से भी मारवाड़ी अपने को अपवित्र मानते हैं। दूसरे धर्मावलंबियों के प्रति भी यही दृष्टिकोण है। प्रिया की भाभी एवं भाई बाहर घूमने जाते हैं तो भाभी खाना नहीं खाती है। क्योंकि वहाँ भोजन एक मुसलमान ने बनाया था। उसी प्रकार ईसाई धर्म की 'राधा' को प्रिया के घर की रसोई में आने की इजाजत नहीं है। "पीली आंधी" में हरमुख रायजी और परिवारवाले दूसरे जाति व धर्म के लोगों से कुछ भी लेते नहीं| जब छोटी बहु पड़ोसियों के घर से पानी लेने की बात करती है तो सास माना करती है –" किसी से कुछ कहना मत, लेकिन राजा साहब के घर तो भक्ष्य-अभक्ष्य सब कुछ बनता है| अपने उनका छुआ हुआ पानी भी नहीं पी सकते|"[2] किशन अपने परिवार के साथ जब धनबाद जाता है तो भीखन नमक निम्न जाति का व्यक्ति उनको रहने के लिए मारवाड़ी परिवार का इन्तज़ाम करता है| भीखन

[1] अलका सरावगी – कलिकथा वाया बाइपास, पृ : 41
[2] प्रभा खेतान - पीली आंधी ,पृ : 8

कहता है –"कहीं न कहीं से लावा,खांई या सत्तू का जोगाड़ करना पडेगा, वैसे तो आप बनिए लोग हम नीची जाट का छुआ खाते नहीं हो|"[1] इस प्रकार मारवाड़ी कट्टर धार्मिक भावना रखनेवाले हैं।

मारवाड़ी संस्कृति : विश्वास / अंधविश्वास

मारवाड़ी समाज में कई विश्वास एवं अंधविश्वास प्रचलित हैं। वे हिन्दू रीति-रिवाजों को मानते हैं। वे 'शनि देवता', 'कस्तूरी माता', 'सीताराम', 'लच्छमनिया', 'सती देवता', 'पितर देवता', 'बालाजी भगवान्', 'हनुमान' (लंगडिया बाबा) आदि में विश्वास रखते हैं। "कलिकथा वाया बायपास" में घर में कई तरह की संकट आने पर किशोर एवं माँ का शनि के मंदिर जाने तथा शनि महाराज के लोटे में सरसों का तेल डालने एवं पूजा करने का ज़िक्र हुआ है। "छिन्नमस्ता" में प्रिया की शादी न होने पर सत्ती देवता की प्रार्थना करने उनके मंदिर में चूड़ा-चुनडी चढाने का चित्रण हुआ है।

इस समाज में अंधविश्वास भी है। "कलिकथा वाया बायपास" में किशोर के मामा का दूसरी शादी करना इसलिए ज़रूरी बताया है क्योंकि वह मांगलिक था। उसका मंगल ग्रह इतना कड़ा था कि शादी के तुरंत बाद मर जाता। जब किशोर बाबू बाइपास सर्जरी के बाद बीमार होता है तो पत्नी एक पंडित के पास जाती है। उसके कहने पर घर के उत्तर पूर्व कोने में स्थित नारियल के पेड़ को काटने की निर्णय लेता है। किशोर की पत्नी इससे सहमत नहीं हुई तो पंडित दूसरा रास्ता बताता है। मकान के उत्तर-पूर्व कोने में एक

[1] प्रभा खेतान - पीली आंधी ,पृ : 8: 24

मिट्टी के बड़े, चौड़े मूँह के बर्तन में पानी भरवाकर रखने से घर में हमेशा धन संचित रहेगा। उसकी पत्नी अगले दिन से ही ऐसा करती है। "छिन्नमस्ता" में प्रिया की माँ टोना-टोटका में विश्वास रखती है। उसका मानना है कि उसके बड़े बेटे को उचित वधु इसलिए नहीं मिली क्योंकि ताई ने फेरे के वक्त जो रूपए वारा था, उसमें टोटका किया था। इस प्रकार वे साधू-संतों एवं टोना-टोटका को भी मानते हैं।

रहन-सहन

मारवाड़ी समाज धर्मावलम्बी एवं स्वाभिमानी समाज है। वे मौज-मस्ती के लिए कर्ज नहीं लेते। "कलिकथा वाया बाइपास" में किशोर का बेटा किस्तों पर गाडी खरीदता है तो किशोर नाराज होता है। उन्हें किसी से कर्ज लेना पसन्द नहीं है। वे कई पर्व एवं रस्मों को निभाने वाले हैं। "छिन्नमस्ता" में कुछ पर्वों का ज़िक्र हुआ है जैसे प्रिया के बाप की मृत्यु का वार्षिकी मनाना जिसे 'बरषोदी वार्षिकी' कहता है। उसी प्रकार हनुमान के मंदिर में पूजा करके प्रसाद चढाने का 'प्रसाद महोत्सव', सति माता के 'भादों की मावस' आदि। भादों की मावस में सति देवता को चढाने वाले चूड़ा-चूनड सुहागन ननद या ब्याही हुई बेटी या भांजी को दिया जाता है।

मारवाड़ी समाज की स्त्रियाँ भारी घाघरा पहनती थी, ओढना, हाथों में चूड़ा पैरों में कड़ा भी पहनती थी। घाघरे में चाँदी लगाती थी। यह उनकी परंपरागत कपडे हैं। पुरुषों के लिए भी परंपरागत कपडे हैं। पुरानी पीढ़ी की

औरतें घाघरा ही पहनती थीं। विधवाओं को रंगीन कपडे पहनने की अनुमति नहीं है। "पीली आंधी" में किशन की पत्नीकी वेश-भूषा का वर्णन हुआ है –" चटख रंग के गुलाबी घाघरे पर हरी लहरिये का ओढना, जिस पर छोटे-छोटे सच्ची चांदी के कटोरी वाले तारे जेड थे, अंगी की बाहां पर चौड़ा सुनहला गोटा चमक रहा था,पैरों में चांदी की बिछिया और कडा, कमर में सोने की भारी तगड़ी, गले में सोने का सतलड़ा हार, गोरी कलाईयों में सोने-मीने की पछेली और लाल चूड़े से कोहनी तक भरी हुई थी| बोरला, फ़ोणी, नाक का जडाऊ नाथ घूंघट की झीनी आड़ से चमक रहा था|"[1] वे सोने-चांदी एवं मोती के आभूषण पहनती थीं| मारवाड़ीयों के अपने भोजन सामग्रियाँ हैं जैसे 'दाल-बाटी' और 'चूरमा', 'सूखे संगर की मिर्चीविहीन सब्जी' और 'लहसुन की चटनी', मूँग-उड़द-चना-अरहर और छिलकेवाली मूँग को मिलाकर बनानी वाली गाढ़ी दाल आदि। इस भोजन का ज़िक्र "छिन्नमस्ता" में हुआ है।

एंगलो- इन्डियन्स

भारतीय इतिहास में कई जातियाँ एक दूसरे से मिल-जुलकर नई नस्लें बनायी हैं। उन्हें सामाजिक स्वीकृति भी हासिल हुई है। लेकिन कुछ नस्लें समय की गति में पिछ्डकर रह गईं। वे अपनी सभ्यता और संस्कृति सफल रूप से नहीं बना पाए। इनमें भारत के 'एंग्लो इन्डियन' समुदाय मुख्य है। भारत में वाणिज्य - व्यापर के लिए पुर्तगाली, डच, फ़्रांस, अंग्रेज़ आदि आए थे। इन लोगों ने भारतीय महिलाओं के साथ शादी की या शारीरिक संबंध

[1] प्रभ खेतान - पीले आंधी , पृ : 1-2

रखे। इनसे उत्पन्न बच्चे, जिसके पिता विदेशी और माँ भारतीय मूल की है 'एंग्लो इन्डियन' कहलाने लगे। भारत में सन 1503 में पुर्तगाल कूटनीतिक 'अलफंसो द ऐल्ब्युर्क्क' ने भारतियों के बीच पुर्तगालियों की जडें ज़माने के लिए अथक प्रयास करते थे। पहले पुर्तगाली कारिंदों के लिए जो भारत में कारोबार संभाल रहे थे पुर्तगाली औरतों का जत्था नियमित तौर पर भेजती रही थी ताकि शारीरिक भूख के लिए उन्हें तडपना न पड़े। धीरे-धीरे महिलाओं की जत्था भेजना काफी खर्चीला हो गया तो एलेब्युर्क्क ने अफसरों से भारतीय लड़कियों से वैवाहिक संबंध रखने का आदेश दिया था। सन 1510 ई में ऐलब्युर्क्क ने गोवा को भारत में पुर्तगालियों का सत्ता केन्द्र बनाया। इस पुर्तगाली सत्ता को कायम रखने के लिए पुर्तगालियों व भारतीय महिलाओं से नाजायज़ संतानों को धरती पर लाना अनिवार्य हो गया। पुर्तगालियों के डर से लोग हराम में अपनी औरतों व लड़कियों को छोड़कर भाग रहे थे। तब पुर्तगाली अफ़सर इन औरतों से शारीरिक संबन्ध रखने लगे। इनसे पैदा हुए नाजायज़ बच्चे 'हरामी' बन गए।

पुर्तगाली बाप और भारतीय माँ से पैदा हुए बच्चे 'मेस्टाइस' कहलाते थे और भारतीय पिता तथा पुर्तगाली स्त्री से जन्मे बच्चे 'सेस्टाइस' कहलाते थे। इस प्रकार एंग्लो इन्डियन का सूत्रपात पुर्तगालियों ने ही किया। बाद में डच आ गए। उन्होंने पुर्तगालियों को परास्त कर सन 1663 में कोचीन पर कब्ज़ा किया और अपनी जीत के प्रतीक के रूप में सन 1665 में 'क्वीलोन' में अपना एक किला भी बनवाया। डच के बाद ईस्ट इंडिया कंपनी स्थापित करते हुए

अंग्रेज़ों ने शासन किया। पुर्तगालियों की तरह डच एवं अंग्रेज़ भी भारतीय महिलाओं के साथ शारीरिक संबंध रखे। इस प्रकार एंग्लो इंडियन समुदाय की आबादी बढ़ती गई। सन 1911 में सरकारी तौर पर अंग्रेज़ों ने 'ऐंग्लो इंडियन' समुदाय के रूप में इन्हें विधिवत मान्यता दी। इन पुर्तगालियों व अंग्रेज़ों ने एंग्लो इन्डियन्स को अपने साथ नहीं रखते थे। वे इधर-उधर भटकने के लिए अभिशप्त थे। अंग्रेज़ों की कृपा पाने के लिए इन लोगों ने अंग्रेज़ों सरीखे नाम रख लिए और उनके चाल-चलन को अपना लिया। 17 वी 18 वी सदी में भारत में राजपूत, मराठा, मुग़ल और सिख लोग आपस में बुरी तरह लड़ रहे थे। अंग्रेज़ों ने अपने आश्रित राजाओं की मदद करने के लिए युद्ध में सहायता दी। उन्होंने अपनी सैन्य संख्या बढाने के लिए ऐंग्लो इन्डियन्स को काफी संख्या में सेना में बहाल किया था। अंग्रेजों का विश्वास था कि उनकी नस्ल की एंग्लो इन्डियन्स काफी वफादार रहेगी। युद्ध में जीत हासिल होने पर राजपूत, मराठा, मुग़ल और सिख लोग आपस में बुरी तरह लड़ रहे थे। अंग्रेज़ों ने अपने आश्रित राजाओं की मदद करने के लिए युद्ध में सहायता दी। उन्होबे अपनी सैन्य संख्या बढाने के लिए एंग्लो इन्डियन को काफी संख्या में सेना में बहाल किया था। अंग्रेजों का विश्वास था कि उनकी नस्ल की एंग्लो इन्डियन काफी वफादार रहेगी। युद्ध में जीत हासिल होने पर भारी संख्या में सेना में भर्ती करवाया गया| उस समय ऐंग्लो - इंडियन बच्चों को इंग्लैंड तक पढने भेजे जाते रहे और पढ़ –लिखकर भारत वापस

लौटने पर कंपनी पर ऊँची तनख्वाह की नौकरी भी दी जाती थी | सन 1600 से 1985 तक ऐंग्लो इंडियन की हालत बेहतर थी | 14 मार्च सन 1786 को एक आदेश ज़ारी की गई कि ऐंग्लो इंडियन्स को पढाई करने इंग्लैंड नहीं भेजेंगे| इस प्रकार उन्हें पढाई एवं नौकरी से बेदखल किये गए | सन 1791 में एक और आदेश ज़ारी हुआ कि नेटिव इंडियन्स के बच्चों को कंपनी की सिविल या सैन्य सेवा में बहाल नहीं किया जायेगा | सन 1795 के तीसरे आदेश के अनुसार जिनके माँ-बाप दोनों यूरोपियन नहीं है, सेना मैं छोटे-मोटे काम के अलावा कोई नौकरी नहीं दी जाएगी| 'लार्ड कलाईव' के समय में सन 1776 में सेना में विद्रोह हो गया था और अंग्रेजों को लगा की ऐंग्लो-इंडियन सैनिक भी विद्रोह न कर बैठे| इसी डर ने एंग्लो-इन्डियन की स्थिति को और भी बदहाल बना दिया | इन पर यहाँ तक पाबंदी लगा दी गयी कि ये कहीं ज़मीन भी नहीं खरीद सकते | इन्हें खेती, व्यापार आदि से दूर रखा|

एंग्लो- इंडियन ने अपने समुदाय की समस्यावों को ब्रिटीश संसद में रखने केलिए प्रयास किया, पर उनके पेटीशन को कूडेदान में फेंक दिया गया | अंत में 1833 में सरकार को एक एक्ट पारित करना पड़ा जिसके अनुसार ऐंग्लो - इंडियनस को सरकारी नौकरियों में रखना पड़ा| सन1851 में भारत में ट्रेन व टेलीग्राफ की कठिनाई भरी नौकरियों में ऐंग्लो-इंडियन को नियुक्त

किया था| बाद में भारत के लोगों के साथ अंग्रेजों को निरंतर संघर्ष झेलना पड़ा | अंत में वे भारत छोड़ने को विवश हुए तो ऐंग्लो - इंडियनस को भी भारत के 'नेटिव' बताकर यहीं छोड़ दिया | इस प्रकार हर तरफ़ से उपेक्षित समुदाय को 'हेनरी गिडनी' और 'मि.फ्रैंक एंथोनी,' जैसे लोगों ने सन 1941 में संगठित करने का प्रयास किया| सं 1941 में भारत में 'अल्प संख्यक' के रूप में इस समुदाय को मान्यता मिली| लोक सभा से लेकर देश के कई प्रान्तों की विधान सभा में इस समुदाय को राजनीतिक प्रतिनिधित्व देने के लिए आरक्षण का इंतजाम किया गया |

मि.मैक्लुसकी ने ऐंग्लो–इंडियन केलिए दक्षिण बिहार में "मैकलुस्कीगंज" नामक गॉव बसाया | लेकिन सन 2000 में अलग झारखण्ड प्रांत बनने के बाद यह अब झारखंड का गॉव है | यह दुनिया के एकमात्र एंग्लो-इन्डियन गाँव है| यह एक छोटा सा गॉव है | मगर इसके बसने की वजह पुर्तगाल और इंग्लैंड से लेकर कोचीन तक फैली है | क्योंकि कोचीन में भी पुर्तगाली शासक आकर बसे थे | इसलिए कोचीन में भारी संख्या मैं ऐंग्लो- इंडियन है | सन 1947 को स्वतंत्रता प्राप्त होने पर सारे एंग्लो - इंडियन जश्न मनाये थे | क्योंकि वे भी भारत को अपनी मातृभूमि मानते थे| आज भी वे भारत को अपना जन्म देश अपने को 'भारतीय नागरिक' मानते

हैं| अल्पसंख्यक होने के करण इन्हें विदेशी बताकर मुख्यदारा से दूर रखते आ रहे हैं| विकास कुमार झा ने “मैकलुस्कीगंज” उपन्यास में उनकी समस्याओं पर विस्तृत विचार किया है |

भारत से विस्थापन

ऐंग्लो- इंडियन को भारत में संदेह भरी दृष्टि से देखने तथा भारतीय के रूप में अपनाने से इंकार करने के कारण गंज से कई एंग्लो- इंडियनस आस्ट्रेलिया,हांगकोंग, कानडा,न्यूज़ीलैंड आदि यूरोपीय एवं विदेशी देशों में पलायन करने लगे हैं| इस कारण गंज में इस समुदाय की संख्या घटती जा रही थी| ‘डेनिस मेगावत’, ‘एटकिंस’ परिवार, ‘कैबरल’ परिवार, ‘रॉबर्ट कैस्टलरी’ का परिवार आदि अनगिनत परिवार अपना घर-संपत्ति बेचकर हमेशा के लिए विदेश में बस गए हैं| पुरानी पीढी के लोग जो गंज की स्थापना के समय से वहाँ थे , वे गंज से बेहद प्यार करते थे | वे गंज से दूर जाना नहीं चाहते थे| लेकिन नई पीढी इससे भिन्न है| ‘रॉबर्ट कैस्टलरी’ की दोनों बेटियाँ ऑस्ट्रेलिया में हैं| उनकी जिद की वजह से रॉबर्ट को गंज छोड़ना पड़ता है| उसका घर ‘गोविन्द दास स्वामी’ नामक एक डॉक्टर खरीदता है| ‘मि.आर. ई.थॉप’ साहब जो गंज से बेहद प्यार करता था अपने

बेटे 'वाल्टर' की जिद की वजह से ऑस्ट्रेलिया चला जाता है| उसी प्रकार 'मि.पीकॉक' जिसका गंज में एकड़ में फ़ैली संपत्ति एवं ज़मीन है उसे बेचकर एकलौते बेटे के पास इंग्लैंड चला जाता है | वह अपना ज़मीन 'नरेश चन्द्र बाहरी' को बेचता है| इसमें 'डेनिस मेगावन' अपनी शादी के बाद नौकरी एवं अच्छी ज़िन्दगी की कामना लेकर गंज छोड़कर होगकांग चला जाता है | उसके मन में गंज के प्रति प्रेम था | जब उसका बाप मर जाता है तो वह सालों बाद गंज वापस आता है |अपनी पत्नी 'लीजा' का दवाब और अन्य कारणों से पुश्तैनी घर बेचने का निर्णय लेता है | डेनिस से उसका आदिवासी मित्र 'बहादूर' बताता है –" इस गॉव के जो भी बचे –खुचे ऐंग्लो इंडियन लोग हैं ,वे बेशक बिघर रहे हैं और जब उन्हें घबराहट ज्यादा सताती है ,तो वे घर द्वार बेच कर चला जाते हैं | पर हम गरीब आदिवासी टूट-बिखर कर भी, घबराकर भी कहाँ भागेंगे डेनिस........?"[1] यहाँ मुख्यादारा से उपेक्षित जीवन बिताने केलिए विवश दो समुदायों की तुलना की है| इनमें से ऐंग्लो इंडियन को ज्याता डरपोक , निष्क्रिय साबित किया है| वे अपने स्वत्व को गंज में बचाए रखने की बजाय पलायन की रास्ते को चुनते हैं |

[1] विकास कुमार झा - मैकलुस्कीगंज , पृ : 247

पलायन की इस प्रक्रिया ने ऐंग्लो - इंडियन समुदाय की एकता को नष्ट कर दिया गया है| वे छिन्न –भिन्न हो गयेहैं | 'मि.मिलर' बताता है – " ऐंग्लो इंडियन समुदाय ने तो मुश्किलों का कभी सामना करना सीखा ही नहीं मुश्किल देखी और भागते रहे| इतना भागे कि यह मुट्ठी भर का समुदाय बुरी तरह छिन्न-भिन्न होता चला गया | आने वाले दशकों में तो यह समुदाय कहीं ढूँढे से भी नहीं मिलेगा |"[1] ऐंग्लो-इंडियन ने अपनी विडम्बनाओं को चुनौती के रूप में कभी नहीं स्वीकारा| इसलिए आज भी वे अभिशप्त ज़िन्दगी गुज़ारते हैं| वे दूसरों से उपेक्षित होने तथा अपहसित होने पर असुरक्षा का अनुभव करते हैं और इन लोगों से दूर चले जाते हैं| 'गंज' से कई परिवार इसप्रकार विस्थापित होने केलिए विवश हुए हैं |

अन्य समस्याएं

"मैकलुस्कीगंज" मुख्यधारा समाज से दूर है| प्रशासक ,राजनीतिज्ञ, सरकार किसी का भी ध्यान इनकी ओर नहीं है | इस गॉव में कई समस्याएं हैं जिससे ऐंग्लो-इंडियन को गुज़ारना पड़ते हैं| उनमें प्रमुख है- 'बेरोज़गारी'| अंगेजों के समय में सेना,रेल, टेलीग्राफ,तार आदि क्षेत्रों में उन्हें नौकरी प्राप्त

[1] विकास कुमार झा - मैकलुस्कीगंज , पृ : 247

थी| उनके शासन काल के बाद इनको भी नौकरियों से निकाल दी गयी हैं | पुरानी पीढी सेना, रेल, नेवी आदि में काम करनेवाले हैं| लेकिन नई पीढी इन नौकरियों से दूर हैं| बेरोज़गारी के कारण गंज को छोड़कर विदेश जानेवाले लोगों की संख्या अधिक हैं| गंज की अनगिनत समस्याओं के बारे में 'मिसेज ग्रिपथाप' बताती है –" आस-पास के इलाके में टी.बी के ढेर सारे मरीज हैं| पर डॉक्टर यहाँ रहे तब न | वेटनरी डॉक्टर तक यहाँ नहीं रहते, जबकि यहाँ उसकी डिस्पेंसरी है| बिजली अक्सर गायब रहती है | टेलीफोन हरदम डेड | हाँ,बच्चों की पढाई-लिखाई केलिए गनीमत है कि कैथोलिक मिशनरी वालों ने बहुत पहले से एक स्कूल खोल रखा है |"[1] 'जेम्स पेंटोनी' नामक इंग्लैंड युवक ईंट के भट्ठे की अल्प वेतन वाली नौकरी से अपनी आजीविका चलाते हैं | 'मिस्टर एंड मिसिसस टेक्सोरिया' की बेटी 'किट्टी' को माँ–बाप की मृत्यु के बाद कर्ज से झूझनी पड़ती है| इस कर्ज से पीछा छुडाने केलिए वह अपने नाना के बंगले एवं ज़मीन को महाजन को सौंपती है |

गरीबी के साथ पानी एवं बिजली की खिल्लत भ गंज में है| गंज घने जंगल के बीच स्थित है| वहां के रास्ते पर सालों से बिजली नहीं है| सरकार एवं राजनीतिज्ञों ने इनकी ज़रूरतों को पूरा करने की कभी कोशिश नहीं की |

---

[1] विकास कुमार झा - मैकलुस्कीगंज ,पृ : 138-139

इसलिए गंजवाले खुद इसकेलिए उपाय ढूंढते हैं| वे सब अपने मकान के मुख्य सड़क पर और मेन गेट पर एक लैंप पोस्ट बनवाकर ,प्रत्येक परिवार से शाम को बत्ती जलाने का निर्देश देता है| वे इस केलिए पुराने लालटनों का इस्तेमाल करते हैं| आज़ादी के पहले गंज में लैंप पोस्ट था जो अब पूरी तरह ढह चुके थे | अधिकारीयों ने इनके लिए अभी तक नया लैंप पोस्ट बनाकर नहीं दे पाए- " अन्धकार के स्तूप बने वर्षों से ढहे – टनमनाये ये अभिशप्त लैंप पोस्ट और यह 'गंज'? ऐंग्लो-इंडियन समुदाय का एक ध्वस्त लैंप पोस्ट!"[1] गंज के अभावग्रस्तता में तड़पते लोगों की ओर लेखक इशारा करते हैं |

नई पीढ़ी कोयला कारखानों में काम नहीं करते थे | इनकी पिछडेपन का यह भी एक कारण है | 'कोलोनाइजेशन सोसिटी ऑफ़ इंडिया' ने ऐंग्लो – इंडियन को सही रेट पर रोजमरे की ज़रूरतों वाले सामान दिलाने केलिए एक स्टोर खुलवाया था| इसके बंद होने के बाद बाहर से लोग आकर घटिया सामान ऊँचे दामों पर बेचने लगे| उनकी उदासीनता के करण 'फाउण्डर्स डे' तक नहीं मनाते | खुद ऐंग्लो-इंडियन इसके प्रति उपेक्षा भाव रखते हैं तो सरकार भी उपेक्षा करते हैं | गंज में किसी की तबीयत अचानक ख़राब होने

[1] विकास कुमार झा - मैकलुस्कीगंज , पृ :325

पर उन्हें मीलों दूर जाना पड़ता है | क्योंकि वहाँ आस-पास अस्पताल की सुविधा तक नहीं है|

ऐंग्लो - आदिवासी संबंध

'मैकलुस्कीगंज' नामक गॉव बिहार के घने जंगल के बीच स्थित है| वहां इनके आलावा उरॉव, मुण्डा आदिवासी भी बसते हैं | मि.मैकलुस्की ने रॉची-पलामू क्षेत्र के बीच के वन क्षेत्र में जहां कंका, लपड़ा और हेसालंग नामक छोटे-छोटे आदिवासी गॉव थे, 'गंज' की स्थापना की थी | पहले आदिवासी लोग इनसे डरते थे| धीरे-धीरे इनकी अंग्रेज़ी भाषा,पोशाक एवं रहन- सहन को ये लोग स्वीकार करने लगे और इन लोगों के बीच आत्मीयता जागी| 'डेनिस' नामक पात्र अपने आदिवासी मित्र 'बहादुर' से गहरा संबंद रखता है| उसकी बेटी 'नीलमणि' उसे चाचा पुकारती थी| ऐंग्लो-इंडियन और आदिवासी लोगों के बीच मित्रता के साथ वैवाहिक संबंध भी अधिक मात्र में हुआ है | डेनिस का बेटा 'रोबिन' की शादी 'नीलमणि' से होती है | जेम्स पेंटोनी के पिता 'मि.एडली चार्ल्स पेंटोनी' ने गिरिडीह की 'फिलोमिना' नामक आदिवासी लडकी से शादी की थी| उसकी माँ से जेम्स बहुत खुश था| बाद में जेम्स पेंटोनी ने भी 'सूसन' नामक आदिवासी लड़की को अपनी बीवी बनाता है| ऐंग्लो-इंडियन में शुरू-शुरू में एक 'साहबी काम्प्लेक्स' था| वे

इसलिए आदिवास्यों को दूर रखता था| इनके बीच के विवाह संबंध इनके बीच आत्मीयता लाती है - "मि.मेरीडिथ ने एक आदिवासी लड़की से शादी की .....मि.शेरार्ड ने भी अपनी आदिवासी आया सोमरी को बीवी बना लिया| चाट्टी नदी के पास कोलपाडा की सोमरी देखने में कुछ खास नहीं थी| पता नहीं क्यों, मी.शेरार्ड उस पर बुरी तरह फिदा हो गये थे .....| और मि.आर .जी. स्पार्क्स की बेटी मेरी ने जब गॉव के के ही एक साहू बिरादरी के लड़के राम सेवक से शादी कर ली तो दोनों तरफ से काफी चीख पुकार मची | पर इन रिश्तों के करण एक अच्छी बात ज़रूर हुई की गाँव में 'इन्फीरियर'...'सुपीरियर' का कम्प्लेक्स बहुत कुछ खत्म हो गया ...|"[1] इस प्रकार इन लोगों के बीच की आत्मीय संबंध मज़बूत होने लगे |

आदिवासी लोग कभी आया, नौकर ,मजदूर आदि के रूप में ऐंग्लो-इंडियन के साथ जुडे रहते हैं| मि .पार्किसन के यहाँ 'खुशिया पाहन' नामक आदिवासी नौकर बनकर आता है | पार्किसन की मृत्यु के बाद भी खुशिया पाहन उनके घर जाकर, तस्वीर का अभिवादन करता है और कहता है –" ई नैनन के यही विशेष, यह भी देखा ....वह भी देखा | पार्किसन साहब को

[1] विकास कुमार झा - मैकलुस्कीगंज ,पृ : 63

पाकर क्या नहीं देखा |"[1] ग्यारह वर्ष की उम्र में खुशिया वहाँ गया था और पार्किसन और बीवी उसे बेटा मानते थे | पार्किसन की मृत्यु के बाद भी उसके बेटे उसे हर महीना पेंशन के रूप में पाँच सौ रूपया भेजते हैं | बॉनर भवन के 'मिस बॉनर' जो बूढी और अविवाहित है अपने घर में 'मरियम' नामक आदिवासी लड़की को आया बनाकर रखती है | मारियम से बिछुड़ने के दर्द न सहन कर पाने के कारण कई बार मिस .बॉनर उसकी शादी टालती है | फिर भी वह उसकी शादी केलिए जेवर खरीदकर रखती है|

गॉव में अशिक्षा, बेरोज़गारी, गरीबी,पानी का अभाव आदि आदिवासी एवं ऐंग्लो-इंडियन दोनों की समस्याएं हैं| इसलिए युवा आदिवासी लोग एक संगठन स्थापित करता है तो ऐंग्लो- इंडियन युवक भी इसमें शामिल होकर शोषणों के विरुद्ध आवाज़ उठाते हैं| रॉबिन को जब झूठे इल्ज़ाम में पुलीस गिरफ्तार करते हैं तो नीलमणि के नेतृत्व में आदिवासी भी आन्दोलन करते हैं | इस दृश्य को देखकर लेखक बताते हैं- " गोरे-गोरे अंग्रेज़ साहब – मेमसाहब जैसे लोग .....काले-काले आदिवासी, सब एक संग

[1] वही , पृ: 121

कदमताल करने के आतुर ......|"[1] इस प्रकार वे इतना घुलमिल गए हैं कि अलग- अलग करके इनको पहचानना कठिन होता है |

ऐंग्लो – मुस्लिम संबंध

गंज में विभिन्न तरह के लोग हैं जो एक दूसरे से मिलजुलकर रहते हैं| यहाँ जाति- धर्म-नस्ल को लेकर भेदभाव नहीं है | ऐंग्लो-इंडियन और मुसलमानों के बीच के आत्मीय संबंद के कई उदहारण हैं| जब 'मोहम्मद लात्तीफ' का बेटा 'अल्ताफ' बीमार हो जाता है तो मि.'रेफेल' उसे लेकर पटना तक जाता है | लत्तीफ के अनुपस्तिती में वह कहता है – " लत्तीफ नहीं है तो क्या , मैं जाऊँगा पटना अपने ग्रंडसन को लेकर और बिलकुल चांगा करके लाऊँगा |"[2] इस घटना के बाद दोनों परिवारों के बीच आत्मीय संबंध स्थापित होता है | पत्नी की मृत्यु के बाद मि .रेफेल को अल्ताफ अपने परिवार में ले आकर दादाजी की तरह देखभाल करता है| मुस्लिम परिवार में रहने के करण गॉववाले उसे 'मोहम्मद रूबिन रेफेल' पुकारते हैं| अल्ताफ केलिए लड़की देखना, 'नाज़नीन' नामक लड़की से शादी तय करना आदि मि. रफेल ही करता है | इसप्रकार 'सोबराती' मि .थॉप साहब के घर के आया

[1] विकास कुमार झा - मैकलुस्कीगंज ,पृ : 435

[2] विकास कुमार झा - मैकलुस्कीगंज ,पृ : 435

बनकर काम करती थी| उस समय जब जवाव थी थॉप साहब और उसकी बीवी उससे बहुत प्यार करते थे | बाद में जब दोनों की मृत्यु होती है तो थॉप साहब के बेटे अपने घर के देखभाल सोबरती से करने को कहते हैं | फिर सोबरती अपने परिवार के साथ उसी बंगले में रहने लगती हैं | रेलवे स्टेशन पर चाय की कैंटीन चलानेवाली 'मिसेज कारनी', 'मजीद' को अपना बेटा मान लेती है| मृत्यु के बाद शावसंस्कार करने का अधिकार मजीद को देती है और कैंटीन भी मजीद के नाम लिख देती है| कार्नी जिस साइकिल लेकर कैंटीन आती थीं, वह आज भी मजीद के पास है | मजीद के बच्चों ने साइकिल चलने की ज़िद की तो मजीद डॉटकर कहता है – " हरगिज़ नहीं , | यह करनी आंटी की यादगारी है | इसे कोई नहीं छुएगा |"[1] वह इसे अपनी माँ से भी ज्यादा प्यार करता था |वह अपनी कैंटीन का नाम "कारनी टी स्टाल" रखता और वहां वहाँ कारनी की एक तस्वीर भी लगा देता | वह हमेशा कारनी के बारे में सोचता है – " उसे लगता है , कारनी आंटी उसकी पिछले जन्म की माँ थीं| किस मजहब का वह और किस मज़हब की कारनी आंटी....पर.....|"[2]

[1] विकास कुमार झा - मैकलुस्कीगंज ,पृ :130
[2] वही , पृ : 136

इसप्रकार ये लोग सभी प्रकार के भेदभावों को नकारकर आपसी प्रेम एवं भाईचारे में विशवास रखकर ज़िन्दगी गुज़ारते हैं|

ऐंग्लो इंडियन और अस्तित्व

'मैकलुस्किगंज' नामक गॉव जो बिहार प्रांत के दक्षिणी हिस्से में राँची से आगे बेहद ख़ामोशी से आबाद दुनिया का एकमात्र ऐंग्लो- इंडियन गाँव है| वे अपने गंज को दुनिया के सामने अपने अस्तित्व की मज़बूत कड़ी मानते हैं| लोग इन ऐंग्लो-इंडियन को भारतीय मानने केलिए तैयार नहीं हैं| इसलिए इन्हें 'लिविंग घोस्ट' और गंज को 'घोस्ट टाउन' कहकर अपमानित करते रहते हैं| ऐंग्लो-इंडियन अपनी नस्ल को ईश्वर की क्रूर मज़ाक समझते हैं| 'लार्ड कर्जन' जो अंग्रेज़ था वह गर्व से कहता था कि इसप्रकार वे ईश्वर ने ब्रिटीशों वा इंडियनस को बनाया और हमने ऐंग्लो-इंडियन को| इसप्रकार वे अपने स्वत्व को लेकर निरंतर संघर्षरत है| इस समुदाय के भीतर भी पहचान या स्वत्व संघर्ष है| पुर्तगालियों की नाजायज़ संतानों को 'लूजो इंडियनस कहते थे | पुर्तगाली जब गोवा छोड़कर जाने लगे तो इनकी समस्यायें बढ़ गईं | अंग्रेजों के शासन काल में उनहोंने 'मिक्स्ड रेस' के औरतों से भी शारीरिक सबंद रख के बच्चे पैदा की| इस प्रकार इंडो – पोर्चुगीज़ ब्रिटीश कम्युनिटी भी कायम हुई| इन लोगों को पहचान लेना मुश्किल है| विदेशी शासकों ने अपने

काम सुख मिटाने केलिए जो कुछ किया उसका परिणाम ऐंग्लो - इंडियनस भुगत रहे हैं |

डेनिस अपने बेटे शॅबिन से ऐंग्लो – इंडियनस को विदेशी मानकर उनको मुख्यधारा से दूर रखकर देखनेवाले लोगों के प्रति गुस्सा प्रकट करते हुए कहता है-" हम न अंग्रेज़ थे , न ही इंडियन .....|......हरदम अधूरे ! हमारी चमड़ी में अंग्रेजों की सी गोराई थी .....| हमारे ये बाल ब्रिटीश साहबों की तरह सुनहले थे.......हमारी जुबान अंग्रेजी थी.......पर शॅबिन ,खून हमारा हिन्दुस्तानी था....|"[1] अग्रेजों ने इनको हमेशा ठुकरा दिया| हिन्दुस्तान में इन्हें कचड़ा मानते है| डेनिस अस्तित्वहीन एक समुदाय की पीड़ा को उजागर करता है| मि.मिलर ने भी इन स्वत्व हीन जीवन बिदाने केलिए अभिशप्त समुदाय के बारे में यों कहता है - " शक , हूणों और मुगलों की तरह अपनी कम्युनिटी इस देश में ठीक से 'मिक्स' नहीं हो पायी|"[2] इस प्रकार ऐंग्लो-इंडियन मुख्यधारा समाज की नज़र में विदेशी है| मि. मिलर इस समुदाय को 'एक संतप्त नस्ल' या 'एक कर्सिड रेस' कहा है | रॉबिन द्वारा ऐंग्लो-इंडियनस पर एक किताब लिखने का प्रोत्साहन देकर डेनिस इन

---

[1] विकास कुमार झा - मैकलुस्कीगंज ,पृ :28
[2] विकास कुमार झा - मैकलुस्कीगंज ,पृ:247

अस्तित्वहीन समाज को मुख्यधारा से जोड़ने का प्रयास किया है| मि. मैकलुस्की ने संतप्त समुदाय केलिए गंज के स्थापना करके मुख्यधारा समाज में अपना स्थान बनाया दिया था| रॉबिनब के नेतृत्व में 'फाउंडर्स डे' मानना तथा देश –विदेश के ऐंग्लो –इंडियानों को बुलाना इसी अस्तित्व बोध का परिणाम है |

एंग्लो-विद्रोह

ऐंग्लो इंडियन अंग्रेजों व भारतियों से हमेशा उपेक्षित रहे| अंग्रेजों ने उनकी शक्ति एवं बुद्धि का इस्तेमाल किया| उन्होंने इन्हें सम्माननीय पद एवं अधिकार नहीं दिए| इन्हें नौकरियों से बिना वजह निकाल दिए गए| सन् 1919 में 'मोंदेग्यु – चेम्सफोर्ड' की रिपोर्ट आई तो भारतीयों को भी सरकारी सेवाओं में अवसर मिलने की संभावना उत्पन्न हुई| एंग्लो-इंडियनस इस वजह से सबसे चिड़ते थे| धीरे –धीरे उन्हें अपने अधिकारों केलिए मांग करने के लिए एक नेता की ज़रुरत महसूस हुई| एंग्लो इंडियनस का एक एसोसिएशन " एंग्लो-इंडियन अंपायर लीग के प्रेसिडेंट - इन -चीफ के रूप में मि. एर्बाट आ गये| उसके बाद 'हेनरी गिडनी' ने इस एसोसिएशन को "ऑल-इंडिया एंग्लो-इंडियन एसोसिएशन" की शक्ल दे दी| ऐंग्लो –इंडियन लोगों ने भी गिडनी का काफी विरोध किया| उन्होंने बंगल विधान परिषत के

चुनाव केलिए मि .ई .टि मैकलुस्की प्रख्यात वकील एल. टी. मेग्वायर को उमीदवार बनाया| गिडनी के बाद मि .फ्रांक एन्यनी ने इस समुदाय केलिए कार्य किया|

आगे मि .मैकलुस्की ने "मैकलुस्की की स्थापना करके एंग्लो – इंडियन को भारतीय मिट्टी में अपने अस्तित्व की जडें ज़माने में मदद की| उन्होंने 'शतू महाराजा' की ज़मींदारी में पड़े दस हज़ार एकड़ ज़मीन 13 अक्तूबर सन् 1933 को रजिस्टर्ड कराकर सन्1923 को लगभग साढ़े तीन सौ एंग्लो–इंडियन परिवार इस इलाके में रहने लगते हैं| पुर्तगाली शैली में नए-नए पक्के घर बनते हैं| मैकलुस्की का सपना इस गंज में खेती-बाड़ी करके गंज को 'गॉडेस ओफ़ एग्रिकल्चर कहलाना था| उन्होंने हमेशा कहा –"हमारे विचार दूसरों के लिए आदर्श बन जाएगा .....एंग्लो इंडियन समुदाय अपने मोक्ष के गान से आनंद की आपूर्ति करेगा .....|"[1] इसप्रकार सबसे उपेक्षित इस संतप्त समुदाय को मुख्यधारा से जोड़ने केलिए निरंतर सघर्ष करता है| वह एंग्लो-इंडियन के साहबी कंप्लेक्स को लेकर बुरी तरह चिंतित थे| इस मानसिकता से मुक्ति दिलाने केलिए उन्होंने खेती-बाड़ी की ओर लोगों को अग्रसर किया |

---

[1] विकास कुमार झा - मैकलुस्कीगंज ,पृ :35

'मैकलुस्की' के समान प्रगदिशील विचारों के लेकर रॉबिन आता है| वह 'फाउण्डस डे' मानने तथा एंग्लो-इंडियनों में नई उम्मीद जगाने की कोशिश करता है| इसे मानाने केलिए देश-विदेश के कई लोग मदद करते हैं| गंज के सुधर केलिए वे कुछ भी करने को तैयार रहते हैं| इसप्रकार सरकार एवं अधिकारीयों की नज़रों से ओझल यह गॉव पुनः जीविद हो उठता है| रॉबिन के नेतृत्व में सारा परिवार एक बार फिर जाग उठते हैं| दुति भगत नामक नेता के षड्यंत्र में पड़कर रॉबिन जब पुलिस के गिरफ्तार में आ जाता है तो गंज के लोग उसे छुड़ाने केलिए राँची तक पैदल चलते हैं| इसप्रकार उदासीन एंग्लो–इंडियनस अपने ऊपर हो रहे शोशानो के खिलाफ आवाज़ उठाने लगते हैं| मैकलुस्की की 'गॉडेस ऑफ़ एग्रीकल्चर' वाली सपने को पूरा करने केलिए रॉबिन कृषि वैज्ञानिकों को बुलाकर कार्यशाला चलता है| फिर जैविक खाद का उपयोग करके खेती करने का प्रशिक्षण गॉववालों को को देता है| इसप्रकार खेती में गंज काफी सफलता प्राप्त करता है| सब्जियों की खेती में भी 'गंज' पीछे नहीं था| 'अकेले गंज' पूरे झारखंड को सब्जी खिला सकता था| इसके साथ शहद का कारोबार भी अच्छी तरह चल रहा था| किट्टी के बबलू एवं कैंटीन मजीद के बेटे जिब्राइल जो नई पीढी के है ऐसे कामों से दूर भागते थे| अब वे मधुमक्खी पालन अभियान में मज़ा ले रहे थे| डेयरी के

चलते गाँव में दूध की भी कमी नहीं थी| इसप्रकार रॉबिन ने उस गॉव वालों को नई ज़िन्दगी दे देता है| उसे नई रास्ता दिखता है| इसप्रकार एंग्लो-इंडियन में आत्मविश्वास बढ़ जाता है|

एंग्लो एवं राजनीति

स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद 'अल्पसंख्यक' होने की मान्यता मिलने के साथ राजनीति में भी आरक्षण मिला| आजादे के बाद "ऑल इंडिया एंग्लो-इन्डियन एसोसियेश" के प्रेसिडेंट मि.फ्रैंक एंथोनी की परिश्रम स्वरुप देश के प्रथम प्रधानमंत्री 'जवाहरलाल नेहरु' ने भारत में रह रहे एंग्लो-इन्डियन समुदाय के अधिकारों की सुरक्षा के लिया संविधान के आर्टिकल -79 के तहत इस समुदाय के दो लोगों को देश की लोकसभा में और एक-एक प्रतिनिधि को हरेक प्रांत की एसेंबली में नामजद करने का अधिकार दिया जो आज भी जारी है| आजादी के बाद बिहार एसेंम्बली के सदस्य के रूप में 'मि. हेक्टर एंगस ब्राउन' को हि एम.एल. ए के रूप में चुना है| वह आज़ादी के बाद से अबतक के तीसरे एंग्लो-इन्डियन एम.एल.ए है| 'मि.माइकेल मोरिस' ही बिहार एसेंबली का प्रथम एम.एल.ए नामजद हुआ था| 'मि.ब्राउन' 1969 से बिहार में लगातार एम.एल.ए होते आ रहे है| वे दिखने में अंग्रेज़ था और बातचीत भी अंग्रेजी में करते थे| इसलिए बाकी एम.एल.ए इनसे दूर रहते

थे| 'मि.मोरिस' की मृत्यु के बाद 'मिसेज़ ओसिया' नमक औरत ही एम.एल.ए बनी थी| इन दोनों के बाद ही 'मि.ब्राउन' आता है| वह अच्छा आदमी है| वह दुनिया में अकेला है ओर उसका कोई पार्टी से संबंध भी नहीं है| 'मि.मिलर' के अनुसार वह इस देश की एक सबसे अल्पसंख्यक आबादी के बिहारी प्रतिनिधि है| के अनुसार वह बिहार के एंग्लो इंडियन प्रतिनिधि है| उनके परिश्रम के कारण गंज में अच्छी-अच्छी सड़कें आ गई| वे पानी-बिजली की समस्या पर भी गहरे विचार कर रहे हैं| गंजवालों को मि.ब्राउन पर पूरा विश्वास है|

बिहार एसेम्बली में 325 सीट है| वे बगैर चुनाव लडे नामजद कर सकते हैं| इनमें एक सीट एंग्लो-इडियन का है| यानी 325 वीं सीट में बिना चुनाव लाडे एंग्लो-इंडियन समुदाय एक प्रतिनिधि जिसे "एंग्लो-इंडियान एसोसियेशन" खड़ा करता है, नामजद किया जाता है| मि.ब्राउन को इसलिए वोट मांगकर घर-घर नहीं घूमना पड़ा था| ब्राउन की मृत्यु के बाद मि.रोजारियो एम.एल.ए बने| सान् 2000 के बिहार विधानसभा चुनाव में सात दिन के लिए 'नितीश कुमार गद्दी' पर आ गये और बिहार मुख्यमंत्री बने| सात दिन के बाद 'राबडी देवी' मुख्यमंत्री बनी| सात दिन की सत्ता की

सारी ताकत लगाकर नितीश कुमार ने ‘अल्फ्रेड रोज़ारियो’ की जगह बिहार विधान सभा की 325 वीं सीट पर ‘सेंट डॉमनिक स्कूल’ के संचालक मि.जोजफ पिचली गलस्टॉन को नामजद किया| आज भी वह ही एम.एल.ए पड़ पर है|

एंग्लो-संस्कृति

एंग्लो-इडियनस की संस्कृति अंग्रेजों की संस्कृति है| उनकी ‘वेश-भूषा’, ‘भाषा’, ‘भोजन’, ‘रहन-सहन’ आदि में पाश्चात्य शैली का प्रभाव देख सकते हैं| वे हिन्दी के साथ-साथ अंग्रेज़ी भाषा का भी प्रयोग करते हैं| इनके घर, बंगला आदि पुर्तगाली शैली का है| इनके नाम अंग्रेज़ी ढंग का है जैसे- ‘मि.फिल कॉलिंस’, ‘मिलर’, ‘मि.जोहांस एलोन’, ‘मि.रेफेल’, ‘डैनिस मैगावत’, ‘मिस्टर ब्रायन मैगावत’, ‘मिसेज़ ऐलिस टामलिन’, ‘डैनी मेरिडेथ’, ‘एडली चार्ल्स पैंटोनी’, ‘मि.नोएल गार्डन’, ‘मि.विलियम पॉल गार्डन’, ‘मिस्टर आर्थर जॉन थ्रिपथॅप’ आदि| वे ईसाई धर्मावलम्बी हैं और ईसा मसीहा में विश्वास रखते हैं| वे पश्चिमी ढंग के साहबी कपडे पहनते हैं और औरतें गाउन पहनती हैं| इनके जीवन में नृत्य,संगीत, शराब आदि का महत्वपूर्ण

स्थान हैं| इनकी शादियाँ अंग्रेजों की तरह चर्च में होती है| इनकी सांस्कृतिक विशेषताओं पर आगे चर्चा की जायेगी|

रहन-सहन

एंग्लो-इंडियन्स उत्सवधर्मी लोग हैं| वे छोटी-छोटी खुशियों को भी धूमधाम से मनाते हैं| मि.मैगावत, डैनिस के और बाद में उसके पोते रॉबिन के जन्मदिन धूमधाम से मानाते हैं| उन्होंने गंज के सभी लोगों को बुलाकर बड़ी पार्टी दी थी| कभी-कभी इनकी उत्सवधर्मिता एवं खर्चीला स्वाभाव इन्हें गरीबी की ओर थकेल देता है| एंग्लो-इंडियन्स के खर्चीले स्वाभाव के कारण अपने बच्चों को अच्छी शिक्षा तक नहीं दे पाते हैं| दूसरे विश्वयुद्ध में भाग लेने के कारण एंग्लो-इन्डियनस को काफी पैसे मिले थे| लेकिन अपने खर्चीले स्वभाव ने उन्हें कर्ज़दार बना दिया था| वे लोग अंग्रेज़ी साहबों की टाट के रहन सहन को अपनाकर उसी तरह जीने में गर्व महसूस करते हैं| सुन्दर सहाबी कपडे, बढ़िया शराब, भोजन, बड़े-बड़े बंगले आदि के पीछे भागते हैं| इनके जीएवन शैली के बारे में लेखक ने लिखा है-" सचमुच, एंग्लो-इंडियनों की जीवन शैली अद्भुत रही है| अलमस्त और बेफिक्र निरंतर

उत्सवमय....|"[1] इनकी हर क्षेत्र में पश्चिमी प्रभाव देख सकते हैं| क्रिकेट, हॉकी, टेनिस एवं बैडमिंटन उनके प्रिय खेल हैं| पुराने ज़माने में क्रिसमस के दिनों वयस्कों केलिए 'बॉक्सिंग' का आयोजन में होता था| "वुडलैंड क्लब" में डेनिस और बैड्मिन्दन प्रदियोगितायें होती थीं | 'हॉकी' गंज का घरेलू खेल बन गया था|

ऐंग्लो-इंडियन समाज में औरतों को काफी स्वतंत्रता थी| वे साज-सज्जा में अधिक ध्यान रखती थीं| उनकी वेश-भूषा एवं साज सज्जा में अंग्रजों का प्रभाव देख सकते हैं| 'मिसेज टॅमलिन' का पुराना तस्वीर इसकी ओर संकेत करता है| औरतों के वेश-भूषा के बारे में लेखक ने लिखा है –"वैसे भी एंग्लो-इंडियन महिलाएं अपनी साज-सज्जा के लिए हमेशा से कुछ ज्याता ही सचेत रही है – रॉबिन इससे अपरिचित नहीं है| 'रूज़', 'लिपस्टिक' और 'आयब्रो पेंसिल' कोई महिला आज अपने पर्स में लेकर चलती होंगी, पर एंग्लो–इंडियन समुदाय की महिलाएं उस ज़माने से अपने पर्स में यह सब लेकर चलती रही थीं जब भारत में महिलओं केलिए कठोतरम पाबंदियां थीं और औरतों 'सती' बनाई जाती थीं|"[2] ये औरतें 'बॉब कट' या 'ब्वायकट' ही

---

[1] विकास कुमार झा - मैकलुस्कीगंज ,पृ :62

[2] विकास कुमार झा - मैकलुस्कीगंज ,पृ:275-276

रखती है| उन्हें सुंदर चटकीले कपडे पसंद हैं| लेकिन वे गहनें अधिक पहनती नहीं हैं|

ये लोग 'कृषि','व्यवसाय' आदि करते हैं| वे खेती-बाड़ी या भैंस-गायों का फार्म या छोटे –मोटे दूकान चलाकर आजीविका चलाते थे| लेकिन नई पीढ़ी इन लोगों से दूर रहते हैं| वे विदेश जाकर ऊंचे ओहदे एवं तनख्वाह में काम करना चाहते हैं| इन छोटी-मोटीकामों से मूँह मोड़ने के कारण अधिकांश नई पीढ़ी बेरोजगार हैं|

त्योहार

ऐंग्लो-इंडियन ईसाई धर्मावलम्बी है| वे 'क्रिसमस' धूमधाम से मनाते हैं| डेनिस जो हांगकांग में रहता है वह गंज के दिनों के क्रिसमस की याद करता है –" क्रिसमस में भी क्या रौनक रहती थी मैकलुस्कीगंज में| गाँव के बड़े-बुजुर्ग मि.ई.पायर क्रिसमस के अवसर पर 'क्लउन' यानी जोकर बनकर कितना आनंद बिखेरते थे| क्रिसमस को ज्यादा बच्चों का ही उत्सव माना जाता है|........क्रिसमस के अवसर पर होनेवाले 'सिंड्रेला डांस' का भी जोड़ नहीं था|"[1] पुराने ज़माने में क्रिसमस की समाप्ति के अगले दिन वयस्कों

[1] विकास कुमार झा - मैकलुस्कीगंज , पृ : 59

के लिए 'बॉक्सिंग' का आयोजन होता था| उसी दिन राट को गंज में नृत्य-संगीत का कार्यक्रम होता था| गाँव के सभी एंग्लो-इन्डियन दम्पति देर रात 'हाईलैंड गेस्ट हाउस' में झूम-झूम कर नाचते थे, और गाते थे| उस दिन बैडमिन्टन प्रतियोगिताएं भी होता था| गाँव में क्रिसमस के साथ-साथ 'ईस्ट'र भी मनाते हैं| अप्रैल महीने में मनानेवाली ईस्टर ईसाई समुदाय का "वसंत पर्व" कहा जाता है|

अन्य समारोह

सन् 1935,अगस्त-2 को तत्कालीन ब्रिटिश सरकार ने एक एक्ट के ज़रिए एंग्लो-इन्डियन समुदाय को विधिवत मान्यता दी थी| तब से यह दिन 'वर्ल्ड एंग्लो-इन्डियन डे' के रूप में मनाया जाता है| इस अवसर पर छोटे-मोटे कार्यक्रमों का आयोजन होता है| अपने छोटे बजट में वे गाँव के बच्चों को स्लेट-पेंसिल, चाँकलेट आदि बांटते हैं|

उसी प्रकार रॉबिन के नेतृत्व में नवम्बर-3 को 'मि.मैकलुस्की' जिसने गंज की स्थापना की थी, की याद में 'फाउंडर्स डे' मनाने तथा देश-विदेश के सभी एंग्लो-इंडियनस को गंज गंज बुलाने का निर्णय लेते हैं| उस दिन 'राजनीति', 'संगीत', 'कला', 'खेल' आदि क्षेत्रों में अपना अलग अस्तित्व

बनानेवाले एंग्लो-इन्डियन लोगों को भी न्योता भेजते हैं| गंजवाले इस दिवस का पूरा फायदा उठाकर गंज एवं गंज निवासियों के उद्धार के लिए भी प्रयास करते हैं| इन में 'डॉनबांसको' स्कूल की एक शाखा का गंज में शुरू करना, अपने निजी घरों में छात्र-छात्राओं को रहने की सुविधा देना, अपने घर में पेइंगगेस्ट को रखकर आमदनी कमाना आदि प्रमुख उद्देश्य थे| रॉबिन के अचानक पुलिस पकड़ के ले जाने के कारण उस दिन 'फाउंडर्स डे' नहीं माना पाते हैं| अगले दिन वे इसे मनाते हैं| पंचायत भवन के खुले मैदान में विशाल पंडाल सजाते हैं| उसके चरों तरफ 'लाल-पीले'...'हरे-नीले' पताकों की झालरें थीं| पूरा वातावरण हजारों रंगील बल्बों की रौनक से चमक रहा था| आदिवासी कलाकारों की नृत्य-संगीत का भी आयोजन किया था| यह दिवस एंग्लो-इंडियनों में नई उमंग जगाती है| इसप्रकार आज़ादी के बाद गंज को दूसरी आज़ादी मिलती है|

शराब

एंग्लो-इंडियन्स उत्सव एवं अन्य खुशियों के अवसरों पर शराब पीते हैं| दक्षिण बिहार के 'सघन जंगल' के बीच के गंजवाले' अंग्रेज़ी दारू एवं 'महुए की शराब' या 'कॉकटेल' पीकर जशन मनाते थे| यह उनकी अनिवार्य

चीज़ और जीवन के अभिन्न अंग बं गयी थी| आजादी के पहले अंग्रेज़ी दारू बेचने का लाइसेंस किसी को नहीं था| उनकी शराब के प्रति आसक्ति पर 'मि.मेंडेज' कहते हैं –" इस गाँव के लोगों ने अब तक जितने रूपये का दारू पीया है, अगर उतने का सिल्वर खरीदा जाए तो गाँव को सिल्वर के एक लेयर से ढंक दिया जाता|"[1] जब रॉबिन पहली बार गंज आता है तो उसकी आने की खुशी में 'उम्दा रम' देते हैं| सस्ती शराब होने के कारण वे 'रम' को खरीदते हैं| गंज के 'मि. जॉनाथन वार्डन' जो अविवाहित था, नौकरी छोड़कर गंज आता है| वह पूरा दिन महुए का शराब पीकर धुत रहता है| अंत में एक दिन वह मर जाता है| इसप्रकार शराब कभी-कभी इनकी ज़िंदगी तक छीन लेता है| फिर भी वे शराब के बिना नहीं जी पाते हैं| क्योंकि यह उनकी संस्कृति के साथ घुलमिल गयी थी|

[1] विकास कुमार झा - मैकलुस्कीगंज ,पृ :61

भाषा

इस उपन्यास में कुछ मुहावरों का प्रयोग हुआ है जैसे- 'जिसका खायेंगे, उसका गायेंगे', 'जोखा अनाज खाएं', और 'मल्हार गायें', 'जेकर राज सेकर दोहाई', 'परालब्ध पहले बना', 'पाछे बना शरीर', आदि|

लेखक ने गंज के प्राकृतिक सौन्दर्य का काफी वर्णन किया है| घने जंगलों वाले गंज के वृक्षों को देखकर उन्हें इतना करीब देखकर रॉबिन सोचता है – " एक दूसरे से गूंथे, आलिंगनबद्ध लगते हैं|"[1] उसी प्रकार 'इलोना घोष' के गेट के भीतर एक आमरूद का पेड़ है उसकी तुलना- "रात भर जगे ऊंघते चौकीदार"[2] से की है| रॉबिन अपने कमरे की खिड़की से बाहर का सौन्दर्य देखता है| गंज की प्रकृति एवं दृश्यों को उसने "केलाइडॅस्कोप"[3] कहा है , जिसको घुमाने से नाना प्रकार के रंग-बिरंगे सुंदर आकर सब बनते दिख पड़ते हैं और अपना आकार भी बदलते रहते हैं| गंज की प्रकृति भी हर पल अपना रूप बदलकर सबको चकित करती है| आगे बारिश की हल्की झिर-झिरी के बीच से सूरज की रोशनी आने पर इसकी तुलना " महल के झरोखे पर हीरे-मोती की लडीवाली झालर के पीछे से

---

[1] विकास कुमार झा - मैकलुस्कीगंज ,पृ :334
[2] वही ,पृ :335
[3] वही ,पृ :338

सजी-धजी रानी का बाहर निहारने से" [1] की है| आगे मिस. बॉनर गंज की तुलना -" पंखुड़ियों में चुपचाप सिमटे पराग"[2] से की है और उसमें रहनेवाले लोगों को "फूल की सूख कर झरनेवाली पंखुड़ी"[3] से की है|

शब्द

इसमें एंग्लो-इन्डियन पात्रों के संवादों में कई अंग्रेज़ी शब्दों का प्रयोग करते देख सकते हैं| जैसे –'नॉवेल', 'स्टोरी', 'अननेचुरल', 'फारचुनेट', ' इंट्रेस्टिंग', 'अ ब्लडी ट्रूथ', ' अपार्टमेंट', 'एजेंट', 'आर्डर', 'ग्रैंड मदर', 'आंटी', 'लाईसेंस', 'डेथ', 'गुड बाय', 'कम्प्लेक्स', सेलेब्रेशन', 'कंपीटीशन', 'थ्रिलिंग', 'नॉवेल्स', 'ब्लैक डूइंग अफसर' आदि|

लिंग अल्पसंख्यक

दलित, आदिवासी, मुस्लिम तथा अन्य हाशिएकृत समाज को मुख्य धरा समाज से विस्थापित होने की सजा भुगतना पड़ता है| लेकिन समाज में कुछ ऐसे लोग भी हैं जिन्हें यह सर्वप्रथम यह समस्या अपने परिवार से ,अपनों से भुगतना पड़ता है और वह वर्ग है 'हिजड़ा' और 'थर्ड जेंडर'| इनमें 'नपुंसक', 'उभयलिंगी', 'समलैंगिक' आदि आते हैं| इनमें सारा समाज,यानि

---

[1]विकास कुमार झा - मैकलुस्कीगंज ,पृ:340
[2] विकास कुमार झा - मैकलुस्कीगंज , पृ :386
[3] वहीँ

कि तमाम स्त्री-पुरुष नफ़रत करते हैं | हिजड़ों का एक अलग संस्कार है| वे पुरुषों जैसा दिखता है, लेकिन व्यवहार, नाम, वेश-भूषा ,स्त्रीयों जैसा है| उसी प्रकार इसके उलटे भी होते हैं| अर्थात स्त्री जैसे दिखानेवाले ,किन्तु व्यवहार वेश-भूषा आदि पुरुषों जैसा होता है | इनका एक अलग संस्कार हैं |

हिजड़ा

समाज में व्यक्ति अपने स्वभाव ,आचरण और कर्म से पहचाना जाता है और इस तरह वह लोगों के बीच अपनी अलग पहचान बनाते हैं| इसके साथ उनकी समस्याएं और जीवन संघर्ष भी औरों से काफी भिन्न हैं| वे निरंतर अपमानित और अपहासित एक वर्ग हैं| वे स्वछ जीवन से वंचित ,पुल्लिंग और स्त्रीलिंग की कोटि में न आने के कारण आम आदमी के समान शिक्षा और नौकरी के अधिकारों से वंचित, परिवार से परित्यक्त , कदम-कदम पर यौन उत्पीडन से ग्रस्त और पुलिस के अन्यायों से पीड़ित जन विभाग हैं|

मानव संस्कृति जितनी पुरानी है उतनी ही पुरानी है हिजड़ों की संस्कृति| नपुंसक दुनिया भर में मौजूद थे| राजा-महाराजों के दरबार में तथा रानी के अंतपुर में पहरेदार के रूप में इन्हें नियुक्त किये थे| प्राचीन चीन

के राजाओं ने हिजडावों को अपने पडोसी देशों जैसे कोरिया, कम्बोडिया, मध्य एशिया आदि के राजाओं को तोहफे में देते थे| प्राचीन चीन षाङ, ताङ, हान,मिङ,क्विंङ आदि साम्राज्य में हिजड़ों को सविशेष स्थान प्राप्त था|

ईसाई धर्म में नपुंसकों को भगवान का वरदान मानते थे | इटली में विश्वास था कि नपुंसकों को परियों जैसा स्वर है| इसलिए चर्च में गीत गाने केलिए 1902 तक नपुंसकों को रखते थे| बाद में नपुंसकों व जबरदस्ती हिजड़ा बनाए गए बच्चों पर ‘वत्तिक्कान’ ने रोक लगाई | ईसाई धर्म में कई नपुंसक पादरी जन्म लिया है | हाल ही में ‘भारती’ नामक हिजड़ा पादरी बनी है |

नपुंसकों केलिए अंग्रेज़ी में 'यूनक '(Eunch) शब्द का प्रयोग किया है| 'बिस्तर ' अर्थ देनेवाली ग्रीक शब्द 'यूनाक्कोस’ और लैटिन शब्द 'यूनाक्स' से ‘यूनक’ बना है| अमेरिका के गोत्र वर्ग नपुंसकों को ‘बेरडाषस’ (Berdashes)कहते हैं| फिलिपीन के 'बल्लस'(Bakles), ओमान निवासी ‘त्सनित्स’ (Xanits), आफ्रीका के 'सेरेर्स' (Serrers) भी नपुंसक हैं| भारत में नपुंसक ,’हिजड़ा’, ‘किन्नर’ ,’थिरुनन्गै’ आदि नामों से जाने जाते हैं| ‘थर्ड जेंडर’ अथवा ‘तीसरी योनी’ को पश्चिमी देशों में जितनी मान- सम्मान एवं मान्यता

मिल रही है उतनी भारत में नहीं मिल रहा है| यहाँ के हिजड़े अत्यंत दर्दनाक स्थिति में ,मानवाधिकारों से वंचित एक अभिशप्त जीवन गुज़र रहे हैं| आज इनको जेंडर संकट के कारण किसी भी क्षेत्र में प्रवेश नहीं है| सरकार एवं कानून द्वारा इनकी स्थिति में थोड़ी बहुत बदलाव आ गई है|भारत के उच्चतम न्यायालय ने 15 अप्रैल 2014 को इन्हें 'तीसरी योनी ' या 'थर्ड जेंडर ' के रूप में मान्यता दी|उसी प्रकार ' सेक्स ' (Sex) के स्थान पर 'जेंडर ' (Gender) शब्द को इस्तेमाल करने को कहा| अप्रैल 2015 में राज्यसभा में एक बिल पारित किया | इसके अनुसार इन्हें सरकारी नौकरियों में 2% आरक्षण, बेरोज़गार भत्ता, पेंशन आदि देने लगा |इस प्रकार के कानूनी सुरक्षा ने इनकी ज़िन्दगी में तथा समाज के प्रति इनकी सोच में बदलाव लाया| अलाहाबाद उच्च न्यायलय ने 21 अप्रैल 2015 को 'राशन कार्ड, देकर 'गृहनाथ' या 'गृहनायिका' की दर्जा भी प्रदान की| 2015 में ही यु.पी.एस.सी (Union Public Service Commission) ने सिविल सर्विस परीक्षा के आवेदन पत्रों में हिजड़ों केलिए अलग कॉलम रखा| इनको संबोधित करने केलिए 'Mx' शब्द को स्वीकार किया| यू.जी.सी (Union Grant Commission) ने सुप्रीम कोर्ट के द्वारा पारित कानून के कारण सभी विश्वविद्यालयों के आवेदन पत्रों में हिजड़ों

केलिए अलग कॉलम रखने का आदेश दिया| हाल ही में केरला विश्वविद्यालय के आवेदन पत्रों में यह कॉलम रखा है| 2014 को ही इन्हें 'वोटर आईडी कार्ड' (Election ID Card) मिला | इससे 16 वीं लोकसभा केलिए डाले जा रहे मतदान में इन्हें अपनी भूमिका निभाने का अवसर मिला| इस कार्ड मिलने के साथ-साथ 'बैंक खाता' से लेकर 'पैन कार्ड' (Pan Card), 'ड्राइविंग लैसेंस' (Driving Licence), स्टडी केलिए एडमिशन और सरकारी योजनाओं का लाभ मिलने में दिक्कतें नहीं होगी| तमिलनाडु में सबसे पहले इनके केलिए 'वेलफेयर बोर्ड' (Welfare Board) स्थापित की| केरल पहली राज्य है,जहां इनके लिये 'ट्रांसजेंडर पालिसी'(Transegender Policy)लाया| 'संगमा', 'सखी','सहोदरी', 'आस्तित्वा', 'सेक्सुअल माइनॉरिटी फोरम' आदि कई संगठन इनकी सुरक्षा एवं अधिकारों केलिए निरंतर संघर्षरत हैं |

आज हिजड़ा समाज में काफी बदलाव आये हैं | वे आज शिक्षित होकर मुख्यधारा समाज से अपने को जोड़ने लगे हैं| आज हर क्षेत्र में इन्हें देख सकते हैं| "स्वप्ना" प्रथम UPSC परीक्षा देनेवाली प्रथम हिजड़ा है तो "भानु" नामक तमिल हिजड़ा इंजिनीयरिंग कॉलेज में प्रवेश पानेवाला प्रथम हिजड़ा है| "भारती" भारत की प्रथम ट्रांसजेंडर पादरी है| "शबनम मौसी"

सन 1999 में भोपाल के प्रथम ट्रांसजेंडर विधायक बनी तो 2014 में तमिलनाडु में "भारती कन्नम्मा" उम्मीदवार चुन ली गई | पहली ट्रांसजेंडर न्यूज़ रीडर थी कोयम्बत्तूर की “पत्मिनी प्रकाश”| इन्होंने नृत्य, वीणा वादन तथा मॉडलिंग में हूनर दिखाई है| “निक्की अनन्या चावला” पहली ट्रांससेक्सुअल मेकअप कलाकार है| उसी प्रकार आसाम की “जानमनी दास” और "रंजू रंजिमार" भी ब्यूटीशियन के रूप में प्रसद्ध हैं| वे फिल्म दुनिया के एवं बड़ी-बड़ी मॉडलों के ब्यूटीशन हैं| तमिलनाडु की एस.आई “प्रतीका”, बंगाल के कृष्णनगर वीमेंस कॉलेज की प्रिंसिपल“मनोबी बंदोपाध्याय”, सहोदरी फाउणडेशन के संस्थापक, अभिनेता एवं फिल्म निर्माता "कल्कि सुब्रह्मण्यम", रायगढ के मेयर “मधु”, पहली ट्रांसजेंडर पत्रकार “पुनीता महेश्वरी” आदि वे इने-गिने व्यक्तित्व हैं जो सभ्य समाज के साथ कदम मिलाकर चल रही है |

इन सबके बावजूद भारत की हिजड़ों की समस्याएं अनगिनत हैं| अधिकाँश हिजड़े सीलन भरी अंधकारमय कोठरियों में जीवन बिताने केलिए विवश हैं| परिवार से, नौकरी एवं शिक्षा से और मूलभूत अधिकारों से वंचित इस वर्ग की मूलभूत समस्याओं को ‘यमदीप’(नीरजा माधव), ‘तीसरी ताली’ (प्रदीप सौरभ), ‘किन्नर कथा’(महेंद्र भीष्म), ‘गुलाम मंडी’(निर्मला

भुराडिया),'पोस्ट बॉक्स नॉ:203,नाला सोपारा'(चित्रा मुद्गल), और 'तीसरे लोग'(गीतांजलि चट्टर्जी) उपन्यासों के आधार पर आगे विचार किया जाएगा |

जेंडर समस्या

हिजड़े असामान्य लिंगी होने के साथ समाज के मुख्यधारा से दूर हैं| सभ्य समाज की नज़र में वर्जित लिंगी होने का अकेलापन इनमें अधिक है| समाज की नज़र में स्त्री और पुरुष ही प्रथम और दूसरे लिंगी है| बाकी सब 'तीसरी लिंगी' होते हैं| स्त्रीलिंग और पुल्लिंग ही समाज में स्वीकृत है | इन दोनों की कोटी में न आनेवाले हिजड़े मुख्यधारा से दूर है | हिजड़ों का हिजडत्व उनका दोष नहीं हैं | फिर भी वे नौकरी, शिक्षा, परिवार सभी क्षेत्रों से निष्कासित हो रही है| उन्हें स्कूल-कॉलेजों में भर्ती नहीं मिलती बैंक में खाता खोल नहीं सकती, सरकारी नौकरी नहीं मिल सकती, बच्चे गोद नहीं ले सकती, किराये पर मकान तक नहीं मिलती| नीरजा माधव ने "यमदीप" में इन समस्याओं पर प्रकाश डाला है| इसमें नाजबीवी को अपने भाई-भाभी की घृणा व उपहास सहना पड़ता है| नाज़बीवी और अन्य हिजडे 'सोना' नामक

अनाथ बच्ची को गोद लेती हैं तो समाज वहां भी धकल देता है| हिजड़ों द्वरा एक बच्ची को गोद लेना सबसे बड़ा पाप बताया जाता है|

निर्मला भुराडिया के “गुलाम मंडी" में ‘अनारकली’, ‘रमीला’, ‘रानी’, ‘अंगूरी’ आदि को घर इसलिए छोड़ना पड़ा क्योंकि वे बाहर कुछ है और अन्दर कुछ | इसमें ‘राजू’ जो बाद में ‘रानी’ बनी कहता है - " मैं घरवालों के खिलाफ नहीं जाना चाहता था, मगर मैं क्या करता? मुझे लगता था, मेरा खोल तो आदमी का है पर भीतर जो है , तो एक लड़की है | धीरे -धीरे मैं समझने लगा था कि मेरे शरीर लड़के का है मगर आत्मा लड़की की है पर और कोई यह बात समझ नहीं पा रहा था |”[1] यह संघर्ष अधिकाँश हिजड़े को आत्महत्या तक ले जाती है | "तीसरी ताली" में गौतम साहब को जो बच्चा हुआ उसका पुरुषांग अविकसित था| उसमें सेक्सुअल ऑर्गन को विक्सित करनेवाले होरमोन्स अपनी भूमिका नहीं निभाई थी | इसलिए उसके अन्दर स्त्रैण भाव जाग उठती है | परिवार उसे 'विनीत' नाम रखता है और बेटे की तरह पालता है| लेकिन वह अपने को स्त्री मानता था -" उसे लगता कि उसके पिता उसे जबरिया लड़का बनाने पर तुले है| वह अपनी बहनों की तरह ही

[1] निर्मला भुराडिया - गुलाम मंडी , पृ : 72

अपने को लड़की मानता था | उसे लड़कों के कपडे पहनने में परहेज होने लगा | घर में जब कोई न होता तो वह अपनी बहनों की पैंटी-ब्रा पहन लेता| बिंदी लगाता| शीशों में घण्टों अपने-आपको निहारता|"[1] कुछ ऐसे लोग भी हैं जो बाहर से स्त्री जैसा दिखता है पर उनमें स्त्रैणता नहीं होती| "पोस्ट बॉक्स नं:203" के 'बिमली'बताता है - " स्त्रैण लक्षण मुझमें कभी नहीं रहे| अब भी नहीं है और जो लक्षण मुझ में नैन है, उन्हें सिर्फ इसलिए स्वीकारूँ कि मेरी बिरातरी के शेष सभी , उन-हाव भावों को अपना चुके हैं?"[2] इस प्रकार शरीर और मन की भावनाओं में विविधता होने का कारण "तीसरे लोग " के 'किसना' को भी संघर्षों की गुज़ारना पड़ता है - " उस पितृहीन अभागे लड़के किसना को विधाता ने भले ही किसी कमनीय षोडषी सा गठन और गजगामिनी चाल दी थी, परन्तु वह मन से और आत्मा से एक सम्पूर्ण पुरुष था| रुचियाँ उसकी लड़कियों सी अवश्य थि पर भावनाएं थींपुरुष की |"[3] इन हिजड़ों को मुख्यधारा समाज की संकुचित मामासिकता के कारण अपने अस्तित्व को छुपाकर रखना पड़ता है| भारतीय संविधान में हर नागरिक को

---

[1] प्रदीप सोरभ - तीसरी ताली , पृ : 82

[2] चित्रा मुद्गल - पोस्ट बॉक्स नं : 203-नाला सोपारा , पृ : 10

[3] गीतांजलि चट्टर्जी - तीसरे लोग ,पृ : 45

सम्मान के साथ जीने का अधिकार है| लेकिन जेंडर समस्या केकारण हिजड़ों को अपना अस्तित्व छुपाना पड़ता है|

पारिवारिक विस्थापन

हिजड़ा समाज हमेशा त्यागे गए, सताए गए और अपमानित समाज हैं| इनको अभिशप्त सबसे पहले माँ-बाप, भाई-बहन आदि ही मानते हैं| उनका सबसे बड़ा दुःख परिवार से बिछुड़ने का है| महेंद्र भीष्म के "किन्नर कथा"में राजकुमारी होने पर भी 'सोना' को परिवार से बिछुड़ना पड़ा| 'तारा' नामक हिजड़ा भी अमीर है| लेकिन उसके घरवाले उसे नरक में थकेल देते हैं| इनकी बेघर होने की नियति पर लेखक ने लिखा है- " प्रत्येक हिजड़ा अभिशप्त है, अपने परिवार से बिछुड़ने के दंश से| समाज का पहला घात यहीं से उस पर शुरु होता है| अपने ही परिवार से, अपने ही लोगों द्वारा उसे अपनों से दूर कर दिया जाता है| परिवार से विस्थापन का दंश सर्वप्रथम उन्हें ही भुगतना होता है|"[1] प्रत्येक माँ-बाप अपने मूक-बधिर, विकलांग बच्चों को बर्दाश्त कर सकते हैं पर हिजड़ों को नहीं| वे कभी इन्हें मार दिया जाता

[1] महेंद्र भीष्म - किन्नर कथा , पृ : 41-42

है, कभी कूड़े-कचड़े में फेंक दिया जाता है और कभी हिजड़ा बस्ती में दे दिये जाते हैं|

"यमदीप" में 'नाज़बीवी' इसलिए घर छोडती है क्योंकि उसके भाई को समाज में अपमानित होना पडा, बहन की शादी टूटने लगी| उसके माँ-बाप उससे प्यार करते थे| एक दिन घर पर ओं करने पर भाई गुस्से में कहता है-" तुम परिवार में रह नहीं सकती, हम रख भी नहीं सकते| इसलिए यह समझ ले कि तुम अनाथ हो| कोई नहीं तुम्हारा दुनिया में|"[1] "गुलाम मंडी" में 'अनारकली','अंगूरी', 'रानी' आदि को परिवारवालों ने थक्का देकर घर से बहार कर दिया है| यह लोग घर से बिछुड़ना नहीं चाहते थे| "तीसरी ताली" की आनंदी आंटी की बेटी 'निकिता' को स्वयं हिजड़े आकर अपनी बस्ती ले जाते हैं| क्योंकि वे उस बेटी का दुःख अच्छी तरह जानते हैं| लेकिन हिजड़ा बस्ती के तौर-तरीके देखकर उसकी बेटी डर जाती है और आत्महत्या कर लेती है| "पोस्ट बॉक्स नं:203" की 'बिमली' को घर से फेंक दिया गया है| वह अपनी माँ को चिट्ठी लिखकर कहती है –" जिस नरक में तूने और पापा ने धकेला है मुझे, वह एक अँधा कुआं हैं जिसमें सिर्फ सांप-बिच्छू रहते हैं|"[2]

[1] नीरजा माधव - यमदीप , पृ : 82

[2] चित्रा मुद्गल - पोस्ट बॉक्स नं : 203-नाला सोपारा , पृ : 11

इसप्रकार परिवार से परित्यक्त हिजड़े आत्महत्या कर लेती है या यौन शोषण आदि का शिकार होकर जीवनपर्यंत नारकीय जीवन बिताते हैं|

सामाजिक घृण

समाज हिजड़ों के साथ दोहरा व्यवहार करते हैं| इनको हिजड़ा कहकर इनको हिजड़ा कहकर संबोधित करनेवाले तथा घृणा करने वाले सबसे पहले इनके माँ-बाप एवं भाई-बहन ही है| शादी-जन्मदिन आदि के अवसरों पर मंगलकारी हिजड़े,उसके बाद अमंगलकारी बन जाते हैं| समाज इनकी छाया से डरते हैं और इन्हें दूर भगाते हैं| समाज इन लोगों को मज़ाक की दृष्टि से देखते हैं | वे इनको नीचा दिखने व गाली देने की कोई भी मौका नहीं गंवाते हैं| लोगों में यह विश्वास भी है कि हिजड़े उनके बच्चों को उठाकर ले जायेंगे और जननांग काटकर हिजड़े बनायेंगे| लोग बच्चों के मन में हिजड़ों के प्रति नफरत एवं दर पैदा करते हैं नीरजा माधव के "यमद्वीप" में 'मानवी' नामक पत्रकार इन हिजड़ों की जेंडर समस्या पर यों सोचती है - " न पुरुष न स्त्री ....या फिर शायद पुरुष और स्त्री -दोनों ही| यानी अर्धनारीश्वर ...नहीं ...पूरी देह का विभाजन ऐसा नहीं इनका कि यह संज्ञा दी जा सके| कहीं दाड़ी - मूंछ पूरे चेहरे पर तो कहीं उरोजों का उभार संपूर्ण स्त्री की तरह |"[1]

[1] नीरजा माधव - यमदीप , पृ : 160

भगवान ने इनके शरीर एवं मन को अपूर्ण बनाकर इनसे बहुत बड़ा मज़ाक करके अधूरा और अपमानित जीवन जीने केलिए विवश किया है| इसमें न ही इनकी कोई गलती है ,ना माँ - बाप की| वे ज़िन्दगी भर समाज एवं भगवान द्वारा दिए गए दंड भोगने केलिए अभिशप्त है | समाज इनकी बाहरी साज – श्रृंगार देखकर घृणा करने लगते हैं| इसमें नाज़बीवी जब सोना की स्कूल जाती है तो बच्चे उसे देखकर डरकर भाग जाते हैं और अध्यापक उस पर मज़ाक करते हैं| नाज़ इसको देखकर गुस्सा एवं दुःख के साथ कहती है–" हम आसमान से तो नहीं टपके हैं न? आप ही की तरह किसी माँ की कोख से जन्मे हैं| हाड-मांस का शरीर लिए| हमें तो अपने आप पर दुःख होता है इस जीवन पर| आप लोग भी दुखी कर देते हो|"[1] मानवी जब हिजड़ों की इंटरव्यू लेने की बात करती है तो उसके साथी पुरुष इस उद्यम से पीछा हटने का उपदेश देते हैं| हिजड़े हर क्षेत्र में उपेक्षित है| समाज की इस उपेक्षा के बारे में 'महताब' गुरु नाज़ के माँ- बाप को समझाती है –" किसी स्कूल में आज तक किसी हिजड़ा को पढ़ते-लिखते देखा है? किसी कुर्सी पर हिजड़ा बैठा है? पुलिस में, मास्टरी में,कलेक्टरी में........किसी में भी?....अरे इसकी दुनिया

[1] नीरजा माधव - यमदीप , पृ : 50

यही है|"[1] "पोस्ट बॉक्स नं:203" में 'विनोद उर्फ़ बिमली' कहती है –" जननांग विकलांगता बहुत बड़ा दोष है लेकिन इतना बड़ा भी नहीं कि तुम मान लो कि तुम धड का मात्र वही निचला हिस्सा भर हो| मस्तिष्क नहीं हो, दिल नहीं हो, धड़कन नहीं हो , आँख नहीं हो| तुम्हारे हाथ-पैर नहीं हैं| हैं, हैं, हैं, सब वैसा ही है, जैसे औरों के है|"[2] सामजिक घृणा के कारण जब परिवार इन्हें छोड़ते हैं तो वे अपनी पूरी ज़िंदगी नरक में जीते हैं| मुख्यधारा समाज को इनके स्वत्व के बारे में समझ होनी चाहिए|

अशिक्षा

ज्यादात्तर हिजड़े अशिक्षित होते हैं या तो बीच में ही पढाई छोड़ देते हैं| क्योंकि स्कूल में भर्ती करने के लिए अलग कॉलम नहीं थी| अब धीरे-धीरे बदलाव आ रहा है| आज सभी आवेदन पत्रों में स्त्री-पुरुष के अलावा 'अन्य' कॉलम है| उपन्यास में कई पात्रों को देख सकते हैं जो हाइस्कूल तक पढ़कर पढ़ाई छोड़ दी हो| "गुलाम मंडी"में 'हमीदा' नामक हिजड़ा इसके बारे में यों कहती है-" बड़े मज़े से कह रही है स्कूल जाने की उम्र हो गयी थी| कोई भर्ती करता क्या पाठशाला में? पहले पूछते मेल कि फीमेल| अपनी वो शर्मिला है

---

[1] नीरजा माधव - यमदीप , पृ: 94

[2] [2] चित्रा मुद्गल - पोस्ट बॉक्स नं : 203-नाला सोपारा , पृ : 50

न, चोरा बनके भर्ती हुई थीं, तो बहनजी ने एक दिन चड्डी उतरवा ली थी उसकी और जूते मार के स्कूल से निकलवा दिया था उसको|"[1] भारतीय संविधान में हर नागरिक को शिक्षा प्राप्त करने का अधिकार है| फिर भी हिजड़े अपने जेंडर के कारण इस मूलभूत अधिकार से वंचित होते हैं|

"यमदीप" में 'नाज़बीवी' जो अच्छी घराने की थी, पड़कर डॉक्टर बनने की इच्छा थी| मगर घरवाले उसे स्कूल न भेजकर प्राइवेट या घर में ही बिठाकर पढ़ाना चाहते हैं| इसलिए उसे बीच में पढ़ाई छोडनी पड़ती है| पापा उससे आर्थिक तंगी की झूठी कहानियाँ बताते हैं| यहाँ समाज का डर, उपहास व घृणा की वजह से शिक्षा से वंचित रहना पड़ता है| "तीसरी ताली" में निकिता को उसकी माँ आनंदी पढ़ाना चाहती है| किन्तु छठी कक्षा में पढ़ाने के लिए लड़के एवं लड़कियों के स्कूल जाने पर भी दाखिला नहीं मिलता है| स्कूल के अधिकारी कहते हैं – " यह स्कूल सामान्य बच्चों के लिए हैं, बीच वाले बच्चों को दाखिला देने से स्कूल का माहौल ख़राब हो जाता है|"[2] आनंदी को उसे घर पर ही पढ़ाई जारी करनी पड़ती है| गौतम साहब की बेटी 'विनीता' भी हिजड़ा होने के कारण शिक्षा से वंचित रही| लेकिन

---

[1] निर्मला भुराडिया - गुलाम मंडी , पृ : 69
[2] प्रदीप सोरभ - तीसरी ताली , पृ : 42

उसका बाप उसे शहनाज़ ब्युटीशियन इन्स्टीटयूट में ट्रेनिंग के लिए भेजता है| "पोस्ट बॉक्स नं:203" में बिमली को घर पर बिठाकर पढ़ाने की बात होती है| बिमली स्कूल की होशियार छात्रा थी| जब घर पर किसी को उसकी ध्यान रखने का समय नहीं होता तो उसे होस्टलवाले स्कूल में भर्ती करवाने की चर्चा होती है| विनोद उर्फ़ बिमली पढाई जारी रखने के लिए अपने परिवारवालों से भीख मांगता है –" पप्पा, में घर में बैठकर नहीं पढूंगा| सबके साथ पढूंगा| अपनी ही कक्षा में बैठकर| मुझे स्कूल जाना है|"[1] जेंडर समस्या एवं मुख्यधारा समाज की संकीर्ण मानसिकता के कारण अधिकाँश हिजड़ों को शिक्षा से वंचित रहना पड़ता है| शिक्षा न मिलने के कारण वे अच्छी नौकरी पा नहीं सकते हैं| इन कारणों से आजीविका के लिए उन्हें वेश्यावृत्ति, बधाई देना आदि परम्परागत धंधा करना पड़ता है|

यौन शोषण

हिजड़ों के प्रति मुख्यधारा समाज की घृणा जो है वह रात तक चलता है| रात के बाद वे सब इनका बारी-बारी से यौन शोषण करते हैं| इनमें पुलिस, उच्च अधिकारी वर्ग, ज़मींदार और अन्य सभी समझने वाले लोग शामिलहैं| वे इनके साथ अमानवीय व्यवहार करते हैं जब इनका यौन

---

[1] चित्रा मुद्गल - पोस्ट बॉक्स नं : 203-नाला सोपारा , पृ : 15

शोषण या बलात्कार होता है तो कानून में शिकायत दर्ज करने या मुजरिमों को सज़ा देने की गुंजाईश नहीं है| इसलिए लोग इस कमी का भरपूर लाभ उठाते हैं| हर हिजड़े की ज़िंदगी में बचपन से ही बलात्कृत होने की दुखद कथा सुनाने को होती है| "तीसरे लोग" के गंवार लड़का 'किसना' में स्त्रैणता अधिक है| माँ एवं गांववाले इसे एक बीमारी समझता है| गाँव के 'मिसिर चाचा' उसका यौन शोषण करता है| एक दिन मिसिर चाचा के आलावा दो-तीन लोग मिलकर बलात्कार करता है| "पोस्ट बॉक्स नं:203" में हिजड़ों को पुलिस पकड़कर उनका यौन शोषण करने का ज़िक्र हुआ है| उन्हें थाने में ले जाकर बलात्कार करते हैं –" दूसरी सुबह जाकर छूटे| चंदा की बाँहों पर दरिन्दगीभरी खरोंचे खून से छलछलाई हुई थीं| सोनिया का निचला होंठ कटा हुआ था|"[1] पुलिस मुख्यधारा की बात सुनकर इनका शोषण करते हैं|

"गुलाम मंडी" में 'अंगूरी' नामक हिजड़ा पुलिस द्वारा यौन शोषण की शिकार होती है| उसकी मालकिन ने अश्लील गालियाँ देने के इल्ज़ाम में पुलिस से पकड़वाया था| उन्होंने बुरी तरह मारने के साथ रेप भी किया था| इसके साथ 'रानी' नामक हिजड़ा का जो पहले राजा था मनोज नामक युवक

---

[1] चित्रा मुद्गल - पोस्ट बॉक्स नं : 203-नाला सोपारा , पृ : 51

द्वारा यौन शोषण होता है| अंत में सत्तर रूपये के लिए 'चमेली' नामक हिजड़े को बेचता है| वहां रानी से धंधा करवाती है| अंत में उसका मानसिक संतुलन बिगड़ जाती है| हिजड़ों के लिए अलग पुलिस थाना नहीं है| इटली के एम्पोली शहर में सन् 2010 को थर्ड जेंडर के लिये अलग जेल बनवाया गया है| लेकिन भारत में ये सुविधाएं नहीं हैं| पश्चिमी देशों में हिजड़ों के लिए अलग-अलग पेशाब घर, जेल, क्लब ,अस्पताल, आदि कई सुविधाएं हैं|

वेश्यावृत्ति

हिजड़ों को समाज की मुख्यधारा से दूर रखा है| वह शिक्षा एवं अन्य मूलभूत अधिकारों से वंचित है | अशिक्षा, आर्थिक तंगी,परिवार से विस्थापन, अन्य कामों में न लगाना आदि की वजह से अधिकांश हिजड़ों को यौनकर्मी बनना पड़ता है| इस कारण उन्हें सामजिक सम्मान नहीं मिलता है| कई हिजड़ों को वेश्यावृत्ति से नफरत है| वे नाच-गाकर सम्मान से जीने की इच्छा रखती हैं| "यमदीप" के 'महताब गुरु' वेश्यावृत्ति के खिलाफ है| वेश्यावृत्ति से कई लोग एड्स और अन्य गुप्त बीमारियों से ग्रस्त हुए हैं| इन सबसे अपने साथियों को बचने के लिए 'गिरिया'(रखैल पुरुष) रखने की प्रथा है| नाजबीवी रामसरन नमक विधुर की 'कोती'(रखैल हिजड़ा) बन जाती है|

उसे प्रतिमाह पांच सौ रूपये मिलता है| गिरिया को वे अपना पति मानते हैं| लेकिन कुछ हिजड़े गिरिया के होते हुए भी अन्य लोगों से भी सम्बन्ध रखती हैं| नाज़बीवी अपने गिरिया के जाने पर दूसरे के साथ सम्बन्ध नहीं रखती है| वह अपने को वेश्या की तरह जीना पसंद नहीं करती है| वहीं दूसरी ओर 'सबीहा' नमक हिजड़ा जो खाते-पीते परिवार की थी, वेश्यावृत्ति करके सुख-संपन्न ज़िंदगी गुज़ारती है| वह इसप्रकार पेट की आग बुझाने के लिए यह धंधा करने को मजबूर होती है|

"गुलाम मंडी" में हिजड़ों को जानबूझकर वेश्यावृत्ति करने के लिए मजबूर करने वाले 'ललन गुरु' को देख सकते हैं| वह इसप्रकार करके पैसा कमाना चाहता है| वह अंगूरी जैसे कई हिजड़ों को मुम्बई के रेड लाइट एरिया में बेचता है| इसप्रकार वह वेश्या बन जाती है| अंत में अंगूरी एड्स बीमार बन जाती है| "तीसरे लोग" के किसना जो स्त्रैण स्वाभाव के कारण घर छोड़ा था, शहर में आकर वेश्यावृत्ति करने लगता है| वह अपने मित्र की बातों में आकर पैसा कमाने की लालच में यह सब करता है| अंत में वह एड्स बीमार बनकर मर जाता है|

"तीसरी ताली" में दिल्ले के 'कंजी मार्ग' पर हिजड़ों की खोज में आनेवाले बड़े-बड़े अमीरों का चित्रण किया है| इन हिजड़ों की एक चाची होती है जो बूढ़ी है| धंधा करने वाले निशचित राशी उसे देते हैं| 'विनीता' दिल्ली आकर वेश्यावृत्ति करती हैं| पुलिस भी इसमें इनका साथ देते हैं| लेखक इसके सम्बन्ध में लिखते हैं- " अँधेरे में जो हिजड़े शौकीनों को हूर की परी लगते हैं,वही दिन की रोशनी में बदसूरत दीखते हैं| फिर चाहे वे जितने औरताना अंदाज़ में हों|"[1] दिल्ली का 'कर्ज़न रोड' जो कनाट प्लेस पर है,वेश्यावृत्ति करने वाले हिजड़ों का स्वर्ग मन जाता है| "पोस्ट बॉक्स नो:203" के 'सायरा' नामक हिजड़ा वेश्यावृत्ति करके एक घंटे के पंद्रह सौ रूपये कमाते है| कुछ लोग वेश्यावृत्ति से अमीर बनने की सपना देखी है|

बुढापा

बुढ़ापा हर इन्सान के लिए एक अभिशाप है| कोई भी इससे बच नहीं सकता| बुढ़ापे में पहुचते ही वह शारीरिक-मानसिक रूप से थक जाता है| वह कई बीमारियों से ग्रस्त होते हैं| बाजारवाद के इस युग में पनपी 'यूज़ एंड थ्रो'संस्कृति ने नयी पीढी के मन में बूढ़े माँ-बाप के प्रति नफरत पैदा की है|

---

[1] प्रदीप सोरभ - तीसरी ताली , पृ : 86

अपने माँ-बाप को चूसकर धन-संपत्ति हड़पने के बाद उन्हें वृद्धाश्रम में थकेल देते हैं| हिजड़ों के लिए बुढापा एक समस्या है| खासकर इसलिए कि वे वेश्यावृत्ति करनेवाली हैं| बुढ़ापे में उनका शरीर क्षीण पड़ जाता है, शिथिल हो जाता है और उसका रूप-सौन्दर्य नष्ट हो जाता है| जब येबूढा हो जाते हैं तो कभी-कभी यौन रोगों से भी ग्रस्त होते हैं| हिजड़े समाज में बूढ़े हिजड़ों को 'गुरु' बना दिया जाता है| तब से वह नायक बन जाता है और सब अपनी कमाई का एक हिस्सा उसे सौंपते हैं| "तीसरी ताली" में बूढ़े हिजड़ों को 'मौसी' पुकारने की प्रथा की ओर इशारा किया है| इसमें 'कला मौसी' बूढ़े होने पर नाच-गाने की धंधा छोड़ने के लिए विवश होती है| उसकी मंडली से अन्य हिजड़े दूसरी मंडली में जाने लगे तो वह बुरी तरह टूट जाती है और सड़क पर भीख मांगने के लिए विवश होती है| जो गुरु बन जाता है वह राणी की तरह शासन करती है|

"यमदीप" में गुरु महताब को इसप्रकार चुना गया है| वह दिन भर घर में बैठकर मुर्गा-मुर्गियों को दाना खिलाती है और दूसरों के लिए गोश्त या हलवा बनाकर खिलाती है| सब उसको आदर से देखते हैं| अन्य बिरादरी की तुलना में हिजड़े इन बूढ़े-असहाय-बीमार हिजड़ों की सेवा-शुश्रूषा करना

अपना कर्तव्य समझते हैं| बचपन से परिवार से बिछुड़े 'सोबराती' नामक एक हिजड़ा यौन रोगों से ग्रस्त होती है तो नाजबीवी और अन्य हिजड़े बारी-बारी उनकी सेवा करती है| वेश्यावृत्ति करने वाले हिजड़े जब यौन बीमारियों से पीड़ित होती है तो उसका बुढ़ापा काफी दर्दनाक होती है|

अस्मिता एवं संघर्ष

हिजड़ा समाज स्वत्व संघर्ष से निरंतर सामना करने वाले लोग हैं| एक व्यक्ति को या तो स्त्री बनना है या पुरुष,यह समाज की संकुचित सोच का परिणाम है| इस सोच के अपवाद के रूप में जीनेवाले हिजड़ों पर शोषण होना स्वाभाविक है| इनका स्वत्व या जेंडर समस्या काफी जटिल है| आज वे अपने स्वत्व को पहचानकर मुख्यधारा समाज से लड़ने लगे हैं|

"यमदीप" में नाज़बीवी अपना अस्तित्व पहचानती है| वह अपनी माँ से मिलने जाते समय स्त्री की तरह साज-श्रुंगार करती है| वह सफेद सलवार-कमीज़,कानों में छोटी टॉप्स,गले में चेन,हाथों में सफ़ेद कड़े,लाल बिंदी एवं होठों पर लिपस्टिक लगाकर निकलती है| उसे समाज से डर नहीं| उसे सिर्फ अपने माँ-बाप के अपमानित होने का डर है| "किन्नर कथा" में तारा के मन में प्रकृति एवं ईश्वर द्वारा उसके जैसे हजारों हिजड़ों को अभिशप्त बनाने के

कारण दुःख एवं निराशा है| फिर भी वह उस सच्चाई को स्वीकार करती है| जब सोना उसके हाथ में आ जाती है तो उसे दुःख होता है पर वह अपने तथा सोना के स्वत्व को स्वीकारती है-"घर,परिवार,समाज से बहिष्कृत,तिरस्कृत और त्रासदी लिए हुए| जब तक कि जीवन है,त्रासदियाँ उनके साथ हैं,वह जो न नर है,न नारी है,है तो सिर्फ और सिर्फ एक 'हिजड़ा',यही उसकी पहचान है,यही कटु सत्य है|"[1] जब तक समाज में,कानून में कोई बदलाव नहीं आता, तब तक उनका अस्तित्व यही है| प्रत्येक हिजड़ा इसे पहचानती है| इनमें आज कई हिजड़े हैं जो अपने इस स्वत्व को स्वीकार करके कामयाबी की बुलंदियों को छुआ है| प्रत्येक हिजड़ा यह चाहती है कि उन्हें अपने नामों से पुकारा जाय, न कि किसी अश्लील शब्दों से| तारा कहती है-" हमें 'हिजड़ा' कहकर न पुकारा जाए ,आखिर हम सब भी तो इंसान हैं| हमारे भी नाम हैं, हमें स्त्री समझा जाए,हमें हमारे नामों से पुकारा जाए|"[2] इन किन्नरों का न कोई धर्म होता है न ही जाति| हिन्दू,मुस्लिम,ईसाई सब इस समाज में सम्मिलित होने पर इस पथ के गामी बन जाते हैं|

---

[1] महेंद्र भीष्म - किन्नर कथा , पृ : 51
[2] वही पृ : 94

"तीसरी ताली" में कई ऐसे पात्र है जो अपने स्वत्व को ताकत बनाकर आगे बढ़ी है| अपने कमजोरी को छिपाकर,परंपरा को तोड़कर मुख्यधारा से जुड़कर आगे बढ़ती है| 'विजय' जो एक फोटोग्रेफर है,ऐसा ही एक पात्र है| वह मंजू से कहता है- "दुनिया के दंश से बचने के लिए मैंने लगातार लड़ाई लड़ी और खुद को स्थापित किया| मै नाचना-गाना नहीं,नाम कमाना चाहता था| भगवन राम के उस मिथक को झुठलाना चाहता था,जिसके कारण तीसरी योनि के लोग नाचने गाने के लिए अभिशप्त हैं.......परिवार और समाज से बेदखल हैं|"[1] समाज की हँसी-मज़ाक को नज़रंदाज़ करके "पोस्ट बॉक्स नं:203" की 'पूनम' अपना स्वत्व स्वयं निर्धारित करती है| उसमें स्त्रैणता है और वह अपने को स्त्री मानती है| उसे समाज की परवाह नहीं है| उसकी इस स्वत्व बोध के बारे में 'बिमली उर्फ़ विनोद' चिट्ठी में लिखती है-" यह चमत्कृत करता है| त्रिशंकु अवस्था में जीने इनकार कर उसने स्वयं अपना लिंग अपनी मर्जी से निर्धारित कर लिया है| वह भूल रही है और शायद पूरी तरह भूल जाना चाहती है कि वह एक

[1] प्रदीप सोरभ - तीसरी ताली , पृ : 195

किन्नर है|"[1] इसप्रकार हिजड़े अपने असित्व को स्वयं पहचानती है और स्थापित करती है|

हिजड़ा एवं प्रतिरोध

हिजड़ा न स्त्री है न पुरुष| इस कारण मुख्यधारा समाज से उपेक्षित है| आज वे अपने स्वत्व को स्वीकार करके समाज से संघर्ष करने लगे हैं| जीने के लिए, मान-सम्मान के लिए ,स्वतंत्रता एवं मानवाधिकारों के लिए वे आज संघर्षरत हैं| आज इनको आगे ले जाने के लिए 'संगमा','साखी','आस्तिवा' आदि कई संगठन चालू है| उच्चतम न्यायालय द्वारा इन्हें 'थर्ड जेंडर' के रूप में मान्यता मिली और शिक्षा व नौकरी में आरक्षण मिला| ये सब इनके आत्मविश्वास को बढाया|

सामाजिक घृणा से घायल हिजड़े प्रतिरोध एवं विद्रोह करने लगे हैं| "यमदीप" में स्कूल की अध्यापिकाओं द्वारा मज़ाक उठाने पर नाजबीवी उनसे कहती है- " जब हम धंधे पर नहीं होते बहनजी,तो इस तरह का मज़ाक हमारे सीने में गोली की तरह लगता है| हम आसमान से तो नहीं टपके हैं न? आप

[1] चित्रा मुद्गल - पोस्ट बॉक्स नं : 203-नाला सोपारा , पृ : 104

ही की तरह किसी माँ की कोख से जन्मे हैं|"[1] अपने साथ अभद्र व्यवहार करनेवालों से 'बहनजी; संबोधित करके बात करती है| समाज ये भूल जाते हैं या अनजान रहते हैं कि वे जन्म से उपेक्षित वर्ग है| जन्म से लेकर अनाथ है| उन्हें नौकरी न देनेवाला या उनके साथ अजूबे की तरह व्यवहार करनेवाला समाज ही है| हिजड़ा हमेशा अपने लिए मानवीय व्यवहार की कामना करता है|

"गुलाम मंडी" में 'रानी' नामक एक हिजड़ा है जिसे पारिवारिक विस्थापन, अशिक्षा,यौन शोषण, भूख सब सहनी पडी| फिर भी वह समाज के आगे आती है| इसमें कल्याणी नामक मॉडल भी मदद करती है| 'ह्यूमन ट्रैफिकिंग' पर स्टडी करने के लिए अमेरिका जाने तथा कई एन.जी.ओ से मिलकर काम करने का मौका मिलता है| उपन्यास में कल्याणी की गोद ली गयी बेटी जानकी को जो ट्रैफिकिंग की शिकार हुई थी, ढूंढ निकालने में भारी योगदान देती है| भारत में जितनी घृणा तथा उपहास उसे मिला उठाना विदेश में नहीं मिलता है| यह उसका आत्मविश्वास बढाता है| अंगूरी से भी

[1] नीरजा माधव - यमदीप , पृ: 50

कल्याणी एवं उसका परिवार भद्र व्यवहार करता है| ऐसे सम्बन्ध भी उनको आम लोगों की तरह प्रगति पथ पर ले जाते हैं|

"तीसरी ताली" में 'विनीता' भी काफी संघर्षों से गुज़रकर वेश्यावृत्ति छोड़कर स्वावलंबी बनती है| उसके बाप ने ब्यूटिशियन की ट्रेनिंग दिला दी थी| इसप्रकार उसे 'चौधरी' नमक पुलिस की सहायता से नौकरी मिलती है| फिर वह 'गे वर्ल्ड' नमक ब्यूटी पार्लर खोलती है| धीरे-धीरे उसकी ज़िंदगी सँवरने लगती है| 'गे वर्ल्ड' समलैंगिकों के लिए कार्यरत नाज़ फाउंडेशन का अड्डा बन जाता है| बड़े-बड़े कार्यकर्ताओं के साथ सम्बन्ध बढ़ता है| वह पेज थ्री के सर्किल में आ जाती है और फैशन शो में जज बनती है| बहुत सारे पैसे और नाम कमाती है| "पोस्ट बॉक्स नं:203"के बिमली उर्फ़ विनोद किसी से हमदर्दी नहीं चाहता| वह अपना अधिकार चाहता है- " मैं किसी तरह की बेचारगी से चिपके नहीं रहना चाहता था| पास बैठे हुए लोगों के बेचारगी ओढ़े चेहरे मुझे परेशान कर रहे थे|"[1] वह अपनी योग्यता के आधार पर पढाई करता है और नौकरी पा लेता है|

[1] चित्रा मुद्गल - पोस्ट बॉक्स नं : 203-नाला सोपारा , पृ : 38

हिजड़ा संस्कृति

हिजड़ों का मंगलकारी रूप

समाज में हिजड़ों से जुड़े हुए कई विश्वास प्रचलित हैं| लोग जन्मदिन, मुंडन, शादी, त्योहार-पर्व पर इन्हें बुलाते हैं| वे तालियाँ बजाकर, ढोलक एवं मंजीरा बजाकर नाचते-गाते हैं और आशीष देते हैं | उनका विश्वास है कि यह आशीष पीढ़ियों तक काम आयेगा और उसी प्रकार वे अगर नाराज़ हुए तो उन्हें श्राप देंगे | शुभ मौकों पर इनको घर में घुसने देने पर वे आनेवाली कष्टों को अपने सिर पर ले लेते हैं| उन्हें रोकने पर अमंगल होता है| प्रदीप सौरभ की “तीसरी ताली” में सिद्धार्थ एन्क्लेव हाउसिंग सोसाइटी में गौतम साहब को बच्चा होने पर हिजड़ों का झुण्ड आकर नाचते-गाते हैं| गौतम साहब शगुन नहीं देता हैं तो बिंदिया बद्दुआ देकर यों कहती है- “ हिजड़ों को शगुन नहीं देंगे तो लल्ला हिजड़ा निकलेगा|”[1] उसी कॉलोनी के मयंक अपने घर में जुडुआ बच्चे होने पर हिजड़ों को बुलाता है| बच्चों को अपनी गोद में लेकर आशीर्वाद देने के लिए दस हज़ार रूपये तक दे देता है| हिजड़ों को धन-धान्य,शगुन देने पर भगवान् बुरे नज़रों से बचाता है| निर्मला भुराडिया की “गुलाम मंडी” में ‘अंगूरी’ और उसके साथी हिजड़ों के साथ किसी के यहाँ बेटे

[1] प्रदीप सोरभ - तीसरी ताली , पृ : 11

होने पर जाने तथा हथेलियों और ढोलक की भोंडी सी थाप के साथ मर्दाना आवाज़ में बाधाई गीत गाने का ज़िक्र किया है| वे नाचने-गाने के बाद अपना नेग मांगते हैं| हज़ार-दो हज़ार या उससे भी ज्यादा पैसा लोग देते हैं| कुछ हिजड़े अच्छी रकम न मिलने पर गालियाँ देते हैं या घाघरा उठाती हैं| यहाँ घरवाले द्वारा दो हज़ार न देने पर अंगूरी द्वारा घाघरा उठा देने की धमकी देती है | उनके श्राप के भय से लोग भारी रकम देते हैं| सामान प्रसंग का चित्रण नीरजा माधव की "यमदीप" में है| अग्रवाल आंटी की नाती होने पर नाज़बीवी और उसकी टोली ढोलक पीटकर,तालियाँ बजाकर आती हैं| "किन्नर कथा" में जैतपुर के रजा जगतराज की बेटी रूपा की शादी पर उसकी बहन 'चंदा' जो हिजड़ा है,द्वारा 'राई' नृत्य करने का उल्लेख किया है| इस दिन राजमहल में उन्हें सम्मान के साथ स्वागत करते हैं| वे नाच-गाकर लोगों का मनोरंजन करते हैं| खुशी के मौके पर उन्हें इसलिए बुलाया जाता है क्योंकि उनसे आशीष मिलता है| तब समाज इन्हें मंगलकारी मानते हैं| इस समारोह के बाद वे अमंगलकारी बन जाते हैं|

देवी-देवता

हिजड़े कई देवी-देवताओं में विश्वास रखते हैं| उनके कुछ ख़ास देवी-देवतायें हैं | वे 'बहुचर माता' एवं 'अर्वान देव' को ज़्यादा मानते हैं| इनके अलावा वे शिव और कृष्ण की भी पूजा करते हैं| गुजरात में माँ बहुचर देवी का मंदिर है| इसी स्थान पर अर्जुन ने हिजड़ा रूप धारण किया था| सलिए विश्वास है कि जो किसी को भी हिजड़ा रूप या लिंग परिवर्तन करा देना हो हो तो मंदिर आना है| क्योंकि देवी लिंग परिवर्तन की शक्ति रखती है| मंदिर इसर में कई मुर्गियां हैं जो देवी की शाही सवारी मानी जाती हैं| प्रत्येक हिजड़े के घर में बहुचर माई के मंदिर या पूजा घर होत्ते हैं| हर दिन वहां पूजा होती हैं| निर्मला भुराडिया ने "गुलाम मंडी" में हिजड़ों के घर एवं पूजाघर का वर्णन किया है- "भीतर एक सीलासा कमरा था| वहां लकड़ी की एक पाटी बनी थी जिसके सामने अगरबत्ती स्टैंड पर चार-पांच अगरबत्तियां जल रही थीं| पाटी पर किसी देवी की तस्वीर थी,जो मुर्गे पर सवार थीं| समीप ही एक कटोरी में कुछ चिरौंजी दाने रखे थे और तस्वीर पर गुडहल का एक फूल चढ़ा था| अंगूरी ने जैसे आज्ञा दी "प्रणाम करो दीदी, ए बुचर माता

है| हमारी कुलदेवी|"[1] यहाँ इस कुलदेवी के प्रति हिजड़ा जमात की श्रद्धा प्रकट होता है| ये लोग अर्जुन पुत्र अर्वान देवता को माननेवाले हैं| तमिलनाडु के 'कूथान्डावार' मंदिर में अर्वाण के सिर के हिस्से की मूर्ती है| "किन्नर कथा" में गुरुधाम के अंगन में बहुचर माँ के छोटा स मंदिर का दृश्य है – " मुर्गी के ऊपर सवार चार भुजाधारी माँ बहुचर देवी एक हाथ में त्रिशूल,दूसरे में तलवार,तीसरे में चूड़ियाँ तो चौथे में धार्मिक ग्रन्थ धारण किये हुए थीं| गले में पुष्पमाला, सिर पर श्री लिखा मुकुट धारण किये हुए खुले केशों में माँ की मूर्ति सजीव दृष्टिगोचर हो रही थी|"[2] वे हर दिन उनकी पूजा-अर्चना कराके,फूलों की माला पहनाती हैं |

मृत्यु संस्कार

हिजड़ों का मृत्यु काफी विचित्र संस्कारएवं अलग है| किसी हिजड़े की मृत्यु होने पर वे शव को दफनाया जाता है| इसमें उनका तर्क यह है कि वे ईश्वर की संतानें हैं, उन्हें भी दैवीय शक्तियां प्रदत्त हैं| साधू-संत-महात्माओं को उनकी महानता के कारण भूमि के अन्दर समाधि दी जाती है| उसीप्रकार हिजड़े भी इसी बात का पालन करते हैं| यह भी ख़ास दिलचस्प है कि हिजड़े

[1] निर्मला भुराडिया - गुलाम मंडी , पृ : 13
[2] महेंद्र भीष्म - किन्नर कथा , पृ : 58

की मृत्यु होने पर कोई शोक नहीं मनाते| मृत्यु के तीसरे-चौथे दिन नाच-गाना होती है| "तीसरी ताली", "किन्नर कथा" एवं "गुलाम मंडी" में शावसंस्कार का वर्णन हुआ है| हिजड़ा अगले जन्म में हिजड़ा बनना नहीं चाहते| इसलिए मृत्युपर्यंत आधी रात को श्मशानघाट में ले जाकर,चप्पलों से मारकर,श्राप देकर दफनाया जाता है| शवयात्रा मध्यरात्रि के बाद शुरू होती है| "तीसरी ताली" में लिखा है- " दिल्ली में आमतौर पर हिजड़े के शव को रात को डंडों से मारते, उस पर चप्पल- जूते बरसाते और सड़क पर खींचते हुए शम्शाम घाट ले जाते हैं| इस तरह शव को श्मशान में ले जाने के पीछे मान्यता यह है कि मरनेवाला दोबारा तीसरी योनि में जन्म नहीं लेगा|"[1] वे चाहते हैं कि अपनी इस अशुभ यात्रा को कोई न देखें| उनकी अमंगल छाया किसी पर न पड़े|

निर्मला भुराडिया की "गुलाम मंडी" में सौ साल की हिजड़ा गुरु की शवसंस्कार का वर्णन किया है| वे कफ़न में लाश को पेट के बल पर लिटाकर फिर उल्टे रखते हैं| फिर अपनी- अपनी कमर में बांधे जूते-चप्पलों से पीटते हैं| पीटने के बीचों-बीच कह रहे थे कि अगले जनम में हिजड़ा न बंनाना|

---

[1] प्रदीप सोरभ - तीसरी ताली , पृ : 147

हिजड़ों में मृत्युसंस्कार पर रोने-धोने की परंपरा नहीं| क्योंकि वे मानते हैं कि इस अभिशप्त जीवन से उसे मुक्ति मिल गयी जो खुशी की बात है| समाज द्वारा प्राप्त घृणा,तिरस्कार,उपहास आदि वे चप्पलें मारकर व्यक्त करते हैं| हिन्दू, मुसलमान, ईसाई या कोई भी धर्मावलम्बी क्यों न हो सबका दाहसंस्कार एक ही कब्रिस्तान में सामान रूप से करवाते हैं| "तीसरी ताली" में एना मौसी को जूतों से इसलिए न पीटा गया कि वह संत बनकर माया-मोह से मुक्ति पा ली थी| इसके साथ मृत्यु के एक साल बाद श्राद्ध मनाया जाता है| यह बहुत बड़ा सम्मलेन समारोह होता है जिसमें नाच-गाना एवं चर्चाएँ होती है|

त्योहार एवं पर्व

हिजड़ों का एक मुख्य उत्सव है-'कूथांडवार महोत्सव'| तमिलनाडु के विल्लुपुरम जिले के कुवांगम गाँव के कूथांडवार मंदिर में प्रत्येक वर्ष के अप्रैल-मई महीने में अठारह दिन का उत्सव है| इसमें सम्मिलित होने के लिए देश-विदेश से हज़ारों हिजड़े आते हैं| इस उत्सव में सरे किन्नर अर्जुन पुत्र 'अर्वान' की पूजा करते हैं| इस उत्सव में वे अर्वान से शादी करके, मंगल सूत्र पहनती हैं| मंदिर के पुजारी मंगलसूत्र पहनाते हैं| उस दिन वे रंग-बिरंगी

साड़ी, चूड़ियाँ आदि पहनकर सज-धज कर आती हैं| उस रात नाच-गाना भी होती है| अगली सुबह अर्वान की बलि-चढ़ने के बाद उनकी मृत्यु का शोक मनाते हैं, चूड़ियाँ फोड़ते हैं| पुजारी प्रत्येक किन्नर की मंगलसूत्र फरसे से काटते हैं| वे 'हाय-हाय' करके सिर तोड़कर चीखते-रोते हैं| यह सदियों से आ रही परंपरा है| इस उत्सव में समलैंगिक भी आते हैं| इस दिन उन्हें हिजड़ो से यौन सम्बन्ध स्थापित करने की पूरी आज़ादी रहती है| "किन्नर कथा" एवं "तीसरी ताली" में इस उत्सव का वर्णन देख सकते हैं| "तीसरी ताली" प्रदीप जी ने लिखा है- " देश भर से हजारों हिजड़े जमा होते हैं तमिलनाडु के विल्लुपुरम जिले के साल-भर सोये रहने वाले गाँव कुवागम में| रिश्ते-नाते से दूर रहने वाली तीसरी योनि के इन लोगों को यहाँ एक दिन के लिए सुहागन बनने का मौका मिलता है मंदिर में| इस तरह उनकी शादी करने की मुराद भी पूरी हो जाती है|"[1] इस उत्सव में सौन्दर्य प्रतियोगिताएं होती है, जिसमें 'मिस कुवागम' को चुनता है| इसके साथ गायन व नृत्य प्रतियोगिताएं कथा वाचन आदि होती है| सुहागन बनने से पहले एक दिन 'फैशन शो' होती है| देश के नामी मॉडल हिजड़े आती हैं| वे आकर्षक कपडे

[1] प्रदीप सोरभ - तीसरी ताली , पृ : 181

पहनकर 'कैटवाक' करती हैं| मेले के महात्म्य का वर्णन करके कथावाचक चलता है| यह सुनना इस मेले का मुख्या लक्ष्य है| मंदिर की प्रमाणिक कहानी, महाभारत-पूरण प्रसंग आदि सुनाते हैं| मेले में हिजड़ों से संबंधित साहित्य बिकनेवाले दूकान, श्रृंगार प्रसाधनों का दूकान आदि देख सकते हैं| इस उत्सव में बकरी की बलि चढ़ती है, नृत्य-गाना आदि भी होती है|

"किन्नर कथा" में केरल के 'आयप्पा और चामय्या-बिलकू उत्सव', कर्णाटक के 'येल्लामा देवी उत्सव', गुजरात के 'माँ बहुचर देवी का उत्स आदि का ज़िक्र किया है| "यमदीप" में अहमदाबाद के 'बेसरा माता' यानी हिजड़ों की देवी के उत्सव का वर्णन हुआ है हर साल मनाते हैं| बहुचर देवी और बेसरा माता माता दोनों एक ही है| गुजरात के इसी स्थान पर जहां यह मंदिर खड़ा है , अर्जुन ने हिजड़ा रूप धारण करके 'बृहन्नला' कहलाए थे| इस उत्सव के बारे में नाज्बीवी बताती हैं- "………तो वर्ष में एक बार हम सब लोग जुटते हैं| भंडारा करते हैं, नाचते-गाते हैं| यानी एक साथ दो-चार दिन रहते हैं|"[1] इतने बड़े भण्डार के लिए वे पहले से ही धन इकट्ठा करने लगते हैं|

[1] नीरजा माधव - यमदीप , पृ :164

अपनी कमाई का बड़ा हिस्सा बेसरा माता के नाम पर गुरूजी के पास जमा करते हैं|

रहन-सहन

हिजड़ों को मुख्यधारा समाज घृणा एवं उपहास भरी दृष्टिकोण से देखते हैं| इसलिए वे इन लोगों से दूर, शहर के पीछे वाली बस्तियों या जंगल में या ऐसी जगह पर रहते हैं जहां सभ्य लोग न आते हो| उन्हें सीलन भरी, बदबूदार नालों वाली, अंधेरी कोठरियों वाली किसी गंदी मुहल्ले या बस्ती में कीड़ों की तरह रहना पड़ता है| "किन्नर कथा" में यह बस्ती राजमार्ग से दो फर्लोंग अन्दर जंगल के एक पुरानी शिकारगाह पर है जिसे वे 'डेरा' या 'गुरुधाम' कहते हैं| राजाओं ने इन्हें दान में कई एकड़ ज़मीन दी थी| वहीं पर वे खेती बड़ी करके अन्न व सब्जियां उगाते हैं| 'कमलेश' नामक एक ड्राइवर भी उनकी मदद करते है| इनके अर्थ की कोई कमी नहीं है| लेकिन बाकी उपन्यासों में इनकी बस्ती बदबूदार माहौल में स्थित है| "यमदीप" में एक हिजड़ा बस्ती का वर्णन किया है| यह बस्ती हुकुलगंज की पतली गली में, वरुण नदी के किनारे स्थित है| यहाँ निम्नवर्गीय, अछूत लोग रहते हैं- " गली में दोनों तरफ कहीं चौड़ी, कहीं संकरी नाली बजबजाती हुई समानांतर बह

रही थी| दोनों तरफ मिट्टी और नोनछा-खाई घर की दीवारों से सीलन भरी बदबू ढलती धूप के साथ उमस रही थी| कहीं-कहीं दरवाजे के सामने ही गली में कोई बच्चा बैठा नाली में शौच कर रहा था तो कहीं दोपहर की नींद लेकर अलसाए युवा और बुज़ुर्ग अपने ढीले-ढाले पजामे की एक टांग ऊपर उठाये लघु शंका|"[1] इतनी दमघोंटू वातावरण में वे हर पल जीते हैं| सूअर और बच्चे एक साथ इस गन्दगी में खेलते हैं| इस बस्ती में अँधेरा होने के कुछ देर बाद ही सभी खा-पीकर सो जाते हैं और सवेर नौ-दस बजे तक सोते रहते हैं|

"गुलाम मंडी" में भी छोटी-मोटी झोंपड़ियों में इनके रहने का चित्रण मिलता है| वे एक साथ रहते हैं| वहां जाति-धर्म का कोई भेद नहीं है| "यमदीप" की नाज़बीवी पहले नंदरानी थी| ये सिर्फ नाम बदलते हैं| जाति-धर्म आदि को कोई महत्व नहीं देते हैं| इस में छोटे-छोटे झोंपड़ियों में रहनेवाले हिजड़ों का चित्र देख सकते हैं| संकरी गली के दोनों किनारे अँधेरे-सीलन भरी कोठरियां थीं| घरों में रहस्यमय और विचित्र वातावरण था| वे कौवों को पालते हैं| कौवों में वे अपने को देखते हैं| घर के अन्दर टी.वी, अलमारी, साज-श्रुंगार के साधन, ढोलक, शीशा था और घर के अन्दर देवी

---

[1] नीरजा माधव - यमदीप , पृ : 15

का मंदिर भी होता है| "तीसरी ताली" में 'बेरसराय' गाँव के हिजड़े बस्ती का चित्रण है| 'डिम्पिल' के डेरे में दस-बारह कमरे थे, जहां वे एक साथ रहते हैं| इनके घर में दुधारू जानवर भी थे| इस डेरे में जो मंदिर है वह काली का है|

नाच-गाना

हिजड़े मुख्य रूप से नाच-गाने को अपना धंधा बना दिया है| किसी भी खुशी के मौके पर वे ढोलक-मंजीरा पीटकर, तालियाँ पीटकर नाचते-गाते हैं| दूसरों के खुशियों पर नाचने-गाने के साथ अपनी ज़िंदगी की छोटी-मोटी खुशियों को भी मनाते हैं| "यमदीप" में सोना के घर आने पर ढोलक-घुंघरु की ताल के साथ बेसुरे स्वर में गाते है-:

" मोरी रनियां होSS

नन्द घर बाजेला बधइया SS ...कन्हइया अवतरलै हो SS"[1]

जब नाज़ की माँ-बाप हिजड़ा बस्ती में आते है तो वे गीत-गाकर, ढोलक पीटकर नाचती हैं| बात-बात में वे तालियाँ बजाती हैं| प्रत्येक हिजड़ों का अलग-अलग क्षेत्र हैं जहां वे ही नाच-गाकर धंधे कर सकते हैं, वहां

[1] नीरजा माधव - यमदीप , पृ : 23

दूसरे प्रवेश नहीं कर सकते हैं| "किन्नर कथा" में सोना की बहन 'रूपा' की शादी पर तारा एवं चंदा और अन्य हिजड़ों द्वारा राई नृत्य करके लोगों के मनोरंजन करने का चित्रण हुआ है| चंदा घाघरा-चोली पहनकर, कमर लचकाकर, श्रृंगार भरी मुद्राओं के साथ नाचती हैं| इसप्रकार शुभ वेलाओं में वे नाच-गाकर लोगों को उत्तेजित करती-रहती हैं| इनकी बात-बात पर तालियाँ पीटने की वजह के बारे में सोनिया कहती है- "ये हमारा लहजा है साब! नाच-गाकर पेट पालते हैं, बधाईयाँ देते हैं, ताली पीटकर हम ऊपर वाले से सबके लिए खुशियाँ मांगते हैं|"[1] यहाँ हिजड़ों का समाज के प्रति प्रेम देख सकते हैं| भगवान् ने उनको समाज की नज़र में अधूरा बनाया, उसी भगवान को वे अधिक मानते भी हैं| वे उनसे घृणा करने वाले समाज की भलाई के लिए ताली पीटते हैं जो उसी समाज की नज़र में घृणित या मज़ाक की बात है|

लोक-कथा

हिजड़ों से सम्बन्धित कई लोक-कथाएँ प्रचलित हैं| इनमें उनका जन्म,त्योहार-पर्व आदि से जुडी कथाएँ भी हैं| प्रदीप सौरभ की "तीसरी ताली" में हिजड़ों के नाचने-गाने तथा श्रीराम द्वारा आशीष प्राप्त होने की

[1] महेंद्र भीष्म - किन्नर कथा , पृ : 90

कथा बताते हैं| इसमें 'मंजू' नमक हिजड़ा 'विजय' से यह कथा कहती है| 'भगवन राम' ने 'रावन' को मारकर अयोध्या लौटते समय भारी जश्न हुआ था| रात भर नाच-गाने के बाद श्रीराम जी ने सभी नर-नारियों से अपने-अपने घरों को लौटने को लौटने को हा| हिजड़े नर-नारी में शामिल न होने के कारण वहीं ठहरे| बाद में हिजड़ों के बारे में श्रीराम जी को पाता चला तो उन्होंने आशीष दिया और नाचने-गाने का वरदान भी दिया| महेंद्र भीष्म के "किन्नर कथा" में संसार में हिजड़े के जन्म को लेकर प्रचलित एक कथा का ज़िक्र है| यह "तीसरी ताली" वाली कथा के सामान ही है| इसमें वनवास प्रसंग का वर्णन है| वनवास के लिए जाते समय नर-नारियों ने जब उनका अनुगमन किया तो सबों से वापस घर लौटने का उपदेश देता है| उन्होंने हिजड़ों के बारों में कुछ नहीं कहा| जब 14 साल के वनवास के बाद वे लौट आये तो उनकी प्रतीक्षा में हिजड़े बैठे थे| इन्हें देखकर खुश होकर आशीष देता है कि जब पृथ्वी पर कलयुग आएगा तब वे राज करेंगे|

हिजड़ों का प्रमुख उत्सव हैं-'कूथांडावार महोत्सव'| इस उत्सव में वे अर्जुन के पुत्र अर्वान से ब्याह रचाते है, उनकी पूजा करते हैं| तमिलनाडु के हिजड़े अपने को 'अरुवानी' कहलाना पसंद करते हैं| इस उत्सव एवं विश्वास

के पीछे एक कथा है- पांडवों को कुरुक्षेत्र युद्ध में जीत सुनिश्चित करने के लिए किसी अच्छे योद्धा की बलि माँ कालि के चरणों में दी जानी थी, जिसके लिए अर्जुन व नागकन्या से उत्पन्न पुत्र अर्वान तैयार हो जाता है| पर उसकी एक शर्त थी कि उसे बलि देने से पुर्व की रात एक सुन्दर स्त्री से विवाह करना है| इसके लिए कोई स्त्री तैयार नहीं हुए तो भगवान् विष्णु ने मोहिनी का रूप धारण करके अर्वान से शादी की| शादी के अगले दिन उसकी मृत्यु होती है और मोहिनी विधवा होती है| इस कथा के अनुसार हर हिजड़े कूथांडावार उत्सव में एक दिन के लिए अर्वान से शादी करके सुमंगली बनती है तो दूसरे दिन सफ़ेद कपडा पहनकर, मंगलसूत्र तोड़कर विधवा बन जाती है|

हिजड़ों की देवी है- 'बहुचर माता',जिसे 'मुर्गा देवी' भी कहा जाता है| वह मुर्गी पर सवार करती है| मुसलमान और हिन्दू धर्मावलम्बी हिजड़े सामान रूप से इस देवी को मानने के पीछे एक कथा है- जो "किन्नर कथा" में चित्रित किया है| अलाउद्दीन खिलजी की सेना जब माँ बहुचर देवी के मंदिर को नष्ट करने के लिए आये तो सैनिकों ने मंदिर की मुर्गियों को खा लिया| देवी के बुलाने पर सारी मुर्गियां सैनिकों का पेट फाड़कर देवी के समक्ष उपस्थित हुईं| उन सैनिकों के प्राण बाख गए, जिन्होंने मुर्गियां नहीं खाई थी| वे सैनिक देवी के अनुयायी बन गए और देवी को खुश करने के लिए स्त्री वेश

धारण कर लिया| माँ बहुचर देवी ने उन्हें हिजड़ा रूप प्रदान कर उन सभी को भक्त बनाया| वे सैनिक मुस्लिम थे| इसलिए स्वेच्छा से हिजड़ा बनने की इच्छा रखने वाले मंदिर में आते-जाते हैं| इसप्रकार इतिहास-पुराण के प्रसंगों से वे अपने अनुकूल प्रसंगों को सामने लाकर उसे अपनी परंपरा में शामिल करते हैं|

रीति-रिवाज़: चुनरी रस्म

हिजड़ों की बस्ती में नए सदस्य आने पर 'चुनरी रस्म' मनाया जाता है| इस रस्म के पूर्ण होने के बाद गुरु उस सदस्य को अपना 'चेला' घोषित करता है| इसके बाद वह उस बिरादरी का सदस्य बन जाता है| ज्यादात्तर हिजड़े अपने माँ-बाप के या समाज की घृणा से दुःखी होकर घर छोड़कर यहाँ आ जाते हैं| इनके पास आने के बाद उसका नाम,धर्म सब बदल जाता है| "किन्नर कथा" में राजकुमारी सोना तारा की चेला या बेटी बन जाती है| उसका नाम 'चंदा' कर दिया जाता है| "यमदीप" में नंदरानी रघुवंशी नामक हिजड़ा महताब गुरु की चेला बन जाने पर 'नाज़बीवी' नाम स्वीकारती है| उस दिन को वह यों याद करती है-" महताब गुरु ने उसके दोनों हाथों में लड्डू थमाकर और अपने आँचल के पास गिलास का दूध उसके मूंह से लगाकर अपनी भावी पीढ़ी के रूप में स्वीकार कर लिया था| वह अवाक इस

समुदाय का रीति-रिवाज़ देख रही थी| दूसरे जिलों से आये तथा अपनी बस्ती के कई हिजड़ों ने उसे उपहार दिए और नाच-गाने के बीच उसे समुदाय में शामिल कर लिया गया था|"[1] ये विचित्र आचार लोगों को अजीब माहौल में ले जाते है| वे डरने लगते हैं| "तीसरी ताली" में चुनरी रस्म के विचित्र रस्मों से डरके निकिता नामक हिजड़ा आअत्महत्य करती है| चुनरी रस्म के बाद वह भी इस बिरादरी का सदस्य बन जाएगा और उसे सब कुछ करना पडेगा जो दूसरे करते हैं| इसके बाद ही वेश्यावृत्ति, नाच-गाने का धंधा आदि स्वीकार कर सकती हैं| 'ज्योति' नामक हिजड़े की चुनरी रस्म निकिता अपनी आँखों से देखती है| ये ज्योति का पुरुषांग बिना किसी सुरक्षा सामग्री के काटते हैं| इसे 'खतना' कहते हैं| हर बिरादरी में खतना एक्सपर्ट होता है| वह उसे तख़्त पर लिटाकर ,अण्डकोष को तार से कसकर बांधकर, उसका पेंट खिसकाकर पुरुषांग को एक ही झटके में काटता है| घंटों तक खून बहता है| उनका विश्वास है कि इस रक्त के बहाने पुरुष का पुरुषत्व बह जाता है और नारीत्व के गुण का प्रवेश कर जाते हैं| फिर लड़की के गुटके के ज़रिए घाव को बंद कर दिया जाता है, ताकि पेशाब का रास्ता खुल रहे| फिर खतना एक्सपर्ट गुटके के आसपास टांकों के ज़रिए उस छेद को योनि का आकर दे

[1] नीरजा माधव - यमदीप , पृ : 81

देता है| इसके बाद जख्म पर गरम तेल डाला जाता है और जडी-बूटियों का लेप लगाया जाता है| हिजड़ा बनाने की यह प्रक्रिया तब पूरी होती है जब हिजड़ा बननेवाला पुरुष एक सिल पर बैठकर जोर लगाकर उसके गुदा भाग से रक्त बहायें | इसे हिजड़ा अपना पहला 'रजोधर्म'(मेन्सेज़) माना जाता है|

इसप्रकार के अपरिष्कृत एवं असुरक्षित रीति-रिवाजों ने कई हिजड़ों की जन ली है| आज वे डॉक्टर के पास जाकर उनमें थोड़ी सुधर आ गाई है|

गुरु

हिजड़ों के एक गुरु होते हैं जो काफ़ी बूढ़े होते हैं| वह उनके मार्गदर्शक एवं नेता होता है| हिजड़ा समाज में उनकी ही बात चलती है और उनका अनुशासन सर्वोपरि है| वह जो भी निर्णय लेता है वह सर्वोपरि एवं सर्वसम्मत होता है| हिजड़े अपनी कमाई का एक निश्चित भाग गुरु को अर्पित करता है| प्रत्येक गुरु के कई चेले होते हैं| गुरु-चेले के बीच माँ-बेटी जैसा सम्बन्ध एवं आत्मीयता देख सकते हैं| हिजड़ा बस्ती का नाम 'गुरुधाम' है| "किन्नर कथा" में तारा 'गुरुमाई' है और चंदा उसकी चेला है| वह सबका नायक है| "पोस्ट बॉक्स नो:203" में गुरु को 'सरदार' कहा है| "गुलाम मंडी" में सौ वर्षीय हिजड़ा गुरु को देख सकते हैं| बुढ़ापे में उनको इतना इज्ज़त दिया जाता है

कि शायद ही किसी अन्य समाज के बूढों को मिले| उनका हर दिन इस गुरु के चरण स्पर्श से शुरू होती है| जब गुरु मर जाता है तो वे तुरंत ही दूसरे गुरु का चुनाव करते है| गुरु के बिना वे अपने को दिशाहीन समझते है| गुरु के गले में बाघ नख की माला होती है जो उत्तराधिकारी को दे दिया जाता है| इसके साथ हिजड़ों को भरी संपत्ति का रखवाला भी बन जाती है| इस रस्म को 'ताजपोशी' कहते हैं|

"यमदीप" में लेखिका ने लिखा है- " गुरूजी पूरे शहर के हिजड़ों के गुरु हैं| हिजड़ा समुदाय में उनकी ही बात चलती है| उनका अनुशासन ही सर्वोपरी है| उनका निर्णय सर्वमान्य है| कब,किसे, किस क्षेत्र में नाचना-गाना है? किसी के बीमार होने पर किसे उसकी सेवा-टहल करनी है? उसकी कमाई न होने पर भी उसका एक हिस्सा गुरूजी के पास सुरक्षित हो जाता है| वैसे भी अपनी कमाई का एक मोटा हिस्सा गुरूजी के पास ईमानदारी से जमा कर देना शहर के तमाम हिजड़ों का प्रतिदिन का नैतिक दायित्व है| इस कर्तव्य से कोई भी हिजड़ा मुक्त नहीं हो सकता|"[1] गुरु दूसरों की भावनाओं

---

[1] नीरजा माधव - यमदीप , पृ : 16

का बहुत ख्याल रखती है| उसे बाहर काम पर नहीं जाना हैं| उसका दायित्व सभी सदस्यों को एक साथ ले जाना तथा मार्गनिर्देश करना है|

गिरिया

वेश्यावृत्ति करने पर या बहुत सारे लोगों के साथ असुरक्षित यौन सम्बन्ध रखने के कारण वे 'गिरिया' रखते हैं| 'गिरिया' वे होते हैं जिन्हें हिजड़े अपना पति माँ लेते हैं| समलैंगिक भी कई बार गिरिया बन जाते हैं| गिरिया कभी-कभी हारमोनियम-ढोलक भी बजाते हैं| वी इनके लिए आम औरतों की तरह करवाचौथ से लेकर सभी व्रत रखते हैं जो पति के लिए रखे जाते हैं| "तीसरी ताली" में लेखक ने इन गिरियों पर प्रकाश डाला है| उन्होंने लिखा है – "हिजड़े मूछवालों को ही गिरिया बनाना पसंद करते हैं| मूछों से वे उनकी मर्दानगी महसूसकरते हैं और उनका अपने स्त्री होने का अहसास भी पुख्ता हो जाता है|"[1] ये गिरिये इनको महीने में खर्च के लिए निश्चित पैसा भी देते हैं| "यमदीप" में महताब गुरु के कहने पर सभी लोग गिरिया रखते हैं| नाज़बीवी का गिरिया रामसरन नामक एक विधुर है जो प्रतिमाह उसे पांच सौ रूपए देता है| गिरियों के होते हुए अन्य पुरुषों के साथ सम्बन्ध रखने

---

[1] प्रदीप सौरभ - तीसरी , पृ : 44

वाले हिजड़े भी है| उसी प्रकार गिरिया के मर जाने या छोड़कर जाने पर विधवा जैसी ज़िंदगी बिताने वाले भी इनमें हैं|

हिजड़ों से जुड़े हुए शब्द

"यमदीप" में हिजड़ा समाज एवं संस्कृति से जुड़े कुछ शब्दों का उल्लेख मिलते हैं| जैसे :-

कोती - स्त्री वेशधारी हिजड़ा

ताल - पुरुष वेशधारी हिजड़ा

गिरिया - रखैल पुरुष

खैरगल्लै - हिजड़ों के बंटे क्षेत्र में अतिक्रमण करनेवाले

पनके - अपने क्षेत्र में गाने-बजाने वाले

छिबरी - लिंग रहित हिजड़े

समलैंगिक

हिजड़ों के साथ-साथ स्वत्व संघर्ष का सामने करने वाले एक वर्ग है 'समलैंगिक'| इसमें 'गे'(पुरुष का पुरुष के साथ सम्बन्ध) और 'लेस्बियन'(स्त्री का दूसरी स्त्री से सम्बन्ध) अआते हैं| लैंगिकता को लेकर मुख्या धरा समाज से भिन्न एक विचार रखने वाले ए लोग 'लिंग अल्पसंख्यक' हैं| ऐसे लोगों को उपहास भरी दृष्टी से देखते हैं| दुनिया भर में ऐसे लोगों पर तथा इनकी स्वतंत्रता पर चर्चाएँ हो रही हैं| भारतीय संस्कृति में माँ-बाप और बच्चे हैं|

इस व्यवस्था में इससे भिन्न किसी दूसरा व्यक्तित्व घुस नहीं सकता| भारत,ग्रीक,रोम आदि देशों के इतिहास में प्राचीन काल से ही समलैंगिकता के प्रचलित होने का उदहारण मिलते हैं| 'लेस्बियनिसम' का सम्बन्ध ग्रीक से है| बी.सी. 7वीं शती में ग्रीक में 'साफो' नामक एक प्रसिद्ध कवयित्री रहती थी| "एयजियन" नामक सागर में स्थित 'लेस्बोस' नामक द्वीप में वह रहती थी| उनका कई औरतों के साथ प्रेम सम्बन्ध था| उन्होंने अपनी कविताओं में इस प्रेम को वाणी दी| इसप्रकार औरत का औरत के प्रति आकर्ष अथवा 'फीमेइल होमोसेक्सुअलिटी' को 'लेस्बियनिसम' नाम मिला| बाद में नारीवाद के उदय के साथ-साथ 'लेस्बियन फेमिनिजम' भी जन्म लिया| इसके अनुसार लिंग अथवा जेंडर के आधार पर स्त्रियों के ऊपर हो रहे अत्याचारों का विरोध शुरू हुआ| पुरुषवर्चस्ववादी समाज में पुरुषों द्वारा स्त्रियों पर हो रहे शोषणों एवं उसे घर की चहारदीवारी में बंद करके रखने की संकुचित मानसिकता, नारी को केवल बच्चे जन्मे तथा घर-गृहस्थी संभालनेवाली एक वास्तु के रूप में देखने की दृष्टि का विरोध करने लगा| वे यह निर्णय लेने लगे कि औरत, मर्दों के बिना भी जी सकती हैं| वे अपने

अधिकारों की मांग करने लगे और अपनी इच्छाओं को प्रकट करने भी लगे| इसी खुली विचारों ने 'लेस्बियन फेमिनिज़म' को जन्म दिया|

अधिकांशतः गे और लेस्बियन्स जन्मजात ही होते हैं| शरीर में होरमॉन की मात्र में असंतुलन होने पर, इसप्रकार के व्यवहार करते हैं| प्राचीन काल से हर समाज में गे और लेस्बियन थे| समाज में मौजूद इन इकाईयों कू आज संकुंचित दृष्टि से देख रहे हैं| इनमें गे, लेस्बियन , बायसेक्सुअल , ट्रांसजेंडर , आदि आते हैं| यहाँ गे और लेस्बियन समस्याओं पर चर्चा किया जाएगा| "मछली मरी हुई" (राजकमल चौधरी), "तीसरे लोग"(गीतांजली चट्टरर्जी), "तीसरी ताली"(प्रदीप सौरभ) और "गुरुकुल"(अनिता राकेश) उपन्यासों के आधार पर इनकी समस्याओं पर विश्लेषण किया जाएगा|

सामाजिक उपेक्षा

समाज समलैंगिकता को एक बीमारी या मानसिक असंतुलन मानते हैं| मुख्यधारा समाज के अनुसार यह दवाई या 'शॉक ट्रीटमेंट' के द्वारा ठीक किया ज सकता है| "गुरुकुल" में जब पार्थ कहता है कि गे का मतलब प्रसन्न व्यक्ति से है, तब कर्नल समाज की दृष्टिकोण के बारे में समझाता है – " हाँ,

आज गे जाति प्रसन्न जाति नहीं रही| वह समाज के नाम पर एक धब्बा मन जाता है|"[1] भारत जैसे देशों में समलैंगिकता के विषय से लोग अनजान हैं| "मछली मरी हुई" में समलैंगिक 'शीरी' को उसका पति 'विश्वजीत' रघुवंश नामक डॉक्टर के पास ले जाता है| इसके बारे में रघुवंश निर्मल को चिट्टी लिखता है – " 'शीरी मेहता' होमोसेक्सुअल थी| ऊंची सोसाइटी की कितनी ही लडकियां उसके पीछे-पीछे भागती थीं| विश्वजीत मेहता कई बार शीरी के साथ मेरे पास आये थे| उसका यह रोग दूर करना चाहते थे| मेरे पास कोई इलाज नहीं था, मैंने शीरी को दूसरे डॉक्टरों के पास भेजा था| वह जाना नहीं चाहती थी|"[2] मुख्यधारा समाज द्वारा निर्धारित विवाह प्रथा के अंतर्गत ये लोग नहीं आते| हमारे यहाँ विवाह बच्चे जनने के लिए करते हैं| समलैंगिक सम्बन्ध में बच्चे उत्पन्न नहीं होते| इसलिए इसे अप्राकृतिक घोषित कर दिया गया| अमेरिका जैसे विक्सित देशों में समलैंगिकता को एक अतिसामान्य प्रवृत्ति मानकर और समलैंगिकों को आम आदमी का दर्जा देकर उन्हें स्वीकार कर चुका है| यूरोप के देशों में समलैंगिको के अपने सैकड़ों संसथान और क्लब मौजूद हैं | वहाँ 'गे क्लब' तक है| "तीसरे लोग के"

---

[1] अनिता राकेश - गुरुकुल ,पृ : 73

[2] राजकमल चौधरी - मछली मरी हुई ,पृ : 134

'फाल्गुनी' अपने पति 'स्मारक' को बीमार समझती है| क्यूंकि वह 'गे'है| जब स्मारक से इसकी इलाज करने की बात करती है तो स्मारक उसे समझता है – " फाल्गुनी,इलाज तो बीमारी का होता है| समलैंगिकता कोई रोग नहीं एक प्रवृत्ति है| एक बिहेवियर....अऽ....कैसे ......समझाऊ तुम्हें ? मैं पैदाइशी स्मलिंगिक हूँ ,जिस में मेरा कोई दोष नहीं | दूसरे पुरुषों की तरह मेरी भी मानसिकता ,मेरी सोच भी नार्मल है| फरक इतना है किमेरी तरह तीसरे किस्म के लोग दोहरी ज़िन्दगी जीते है|"[1] इसप्रकार भारत जैसे कुछ देशों की सोच समलैंगिकों को असुरक्षा में फंसा देता है| वे अस्तित्व के संकट में पड़ जाते है|

"तीसरी ताली" में समलैंगिकों को लेकर धार्मिक पुरोहितों व अन्य सभ्य कहे जानेवाले लोगों की राय दिलचस्प हैं| इसमें दिल्ली हाईकोर्ट द्वारा भारतीय संविधान की धरा 377 को मानवीय अधिकारों का हनन कहकर, उसे अवैध घोषित करती है| मुल्ला-मौलवी, पंडित-पुजारी, फादर-पादरी, नेता-अभिनेता सबने मिलकर इस फैसले का विरोध किया| लेखक इसका कारण यों बताते हैं –" कुछ का मानना था कि इस फैसले से बच्चों के यौन शोषण तथा एचआईवी व एड्स के संक्रमण के मामले बढ़ जायेंगे.....पूरा

[1] गीतांजलि चटर्जी - तीसरे लोग पृ : 69-70

समाज बजबजा उठेगा| कुछ का मानना था कि ऐसा होने से भारतीय संस्कृति मिट्टी में मिल जाएगी| कोई भी धर्म समलैंगिकता को मान्यता नहीं देता|"[1] हाल ही में सुप्रीम कोर्ट ने धारा 377 को अवैध घोषित किया| इस धरा के अनुसार अप्राकृतिक यौन सम्बन्ध अपराधी प्रवृत्ति है| 2012 को दिल्ली हाईकोर्ट ने इसको वैध घोषित किया था| आज सुप्रीम कोर्ट के अनुसार समलैंगिकों को समाज में मान्यता नहीं है| इससे जन्मजात समलैंगिक जिनको हर नागरिक की तरह अपने जीवन साथी चुनने तथा अन्य सभी मानवाधिकारों के हकदार है, संकट में पड़ गए हैं| भारतीय समाज,धर्म इसे घृणित प्रवृत्ति या बीमारी मानते हैं|

पारिवारिक घृणा

समाज के साथ प्रत्येक परिवार की सोच भी इस विषय में संकुचित है| "तीसरे लोग" में 'लवली' नामक एक समलैंगिक अपने परिवारवालों की उपेक्षा को याद करके कहती है – " अगर में पैदाइशी समलैंगिक हूँ तो इसमें क्या मैं कसूरवार हूँ? फिर उन्होंने तो मुझे जन्म दिया था, पर मैंने कब चाहा था कि मैं एक तीसरे लोगों वाला जीवन जियूं| आप ही बताओ फिर मेरे

[1] प्रदीप सौरभ - तीसरी ताली , पृ : 128-129

किस दोष के कारण उन्होंने मुझे त्याग दिया| कसूरवार मैं नहीं वो हैं, मेरे माँ-बाप|"[1] परिवार की उपेक्षा हर किसी को निराशा में थकेल देते है|

उपन्यास में स्मारक 'गे' है और वह पढ़ा-लिखा भी है| लेकिन समाज एवं परिवार की प्रतिक्रिया से डरकर वह अपना अस्तित्व छिपाता है| इसलिए उसे फालगुनी से शादी तक करना पड़ता है| स्मारक के अनुसार 'ट्रांस्वेस्टीज़' नमक मनोरोग वाले लोग अपनी रूचि बदलने के लिए समलैंगिकता को अपनाते हैं| इन लोगों की वजह से जन्मजात समलैंगिक घृणा एवं संदेह के शिकार बनते हैं| स्मारक इस सन्दर्भ में फालगुनी से कहता है –" जानती हो फाल्गू जोगिया के पति विप्लव पटेल जैसे कुंठित मनोवृत्तिवाले लोग ही हमारी तरह जन्मजात समलैंगिकों को बदनाम करते हैं| जिस दिन समाज उनकी विकृति और हमारी प्रवृत्ति को अलग-अलग दृष्टिकोण से देखेगा उस दिन समाज में हमारे जैसे लोगों को भी सम्मान की नज़र से देखा जाएगा|"[2] विकृत मानसिकता को जन्मजात समलैंगिकों के व्यवहार से तुलना करके नहीं देखना है| "गुरुकुल" में 'पार्थ' के अनुसार समलैंगिकों को अपने अस्तित्व के बारे में परिवारवालों को समझना चाहिए|

---

[1] गीतांजलि चटर्जी - तीसरे लोग पृ : 96

[2] वही पृ : 124

तब कर्नल उसे समझाता है – " इतना आसान भी नहीं है पार्थ| और अगर बता दें तो परिवार से निष्कासित कर दिए जाते हैं, क्योंकि समाज ऐसा चाहता है, और माँ-बाप एक वारिस भी चाहते हैं|"[1] बचपन में माँ-बाप अपने बच्चों को समझने में गलती कर देते हैं| जो बच्चा इसप्रकार के स्वत्व संघर्ष से गुज़रते हैं, उन्हें ठीक तरह से न समझने के कारण वे कभी-कभी आत्महत्या कर लेते हैं या घर से भाग जाते हैं| कई बच्चे ऐसे भी हैं जो अपने माँ-बाप के लिए अपने अस्तित्व को छुपाते हैं| वे अपनी संवेदनाओं तथा भावनाओं के साथ समझौता करते हैं|

"तीसरी ताली" में 'अनिल' जो सुविमल के पार्टनर है बचपन से ही पुरुष के संसर्ग का आदी हो चुका था| उसका लड़कियों के प्रति कभी भी आकर्षण नहीं हुआ| छठी कक्षा में पढ़ते समय उसने अपने गुरूजी के साथ सम्बन्ध बनाया| एक बार अनिल का भाई गुरूजी और अनिल को आलिंगनबद्ध होकर एक दूसरे का चुम्बन करते देखकर गुरूजी को बुरी तरह पीटता है| उसके भाई ने यह नहीं सोचा कि अनिल ऐसा क्यों है| समाज इस समलैंगिक प्रवृत्ति से अज्ञात है| उसीप्रकार इसमें 'यास्मीन' और 'जुलेखा'

---

[1] [1] अनिता राकेश - गुरुकुल ,पृ : 73-74

समलैंगिक हैं जो शादी करके एक साथ जीना चाहती हैं| लेकिन उनके परिवारवाले दोनों के लिए योग्य शौहर की तलाश करने लगते हैं| इसलिए दोनों घर से भाग जाती हैं| फिर समलैंगिक शादी जो भोपाल में हुई थी, उसके बारे में पाता चलने पर कानूनी शादी करने का फैसला करती हैं| मजिस्ट्रेट दोनों की शादी की इजाज़त तो नहीं दी, पर पुलिस सुरक्षा के साथ दोनों को साथ रहने की छूट दी| बाद में दोनों के पिता एवं परिवारवाले उन्हें अपनाते हैं| दोनों ने एक साथ अपनी बेटियों से कहा –" बेटी, घर चलो| हम तुम्हारी शादी को मान्यता देते है|"[1] इसप्रकार बदलाव आने के बाद देश के हर हिस्से में ऐसी शादियों को मान्यता देने लगी|

गे और उनका संघर्ष

गे का अस्तित्व जन्मजात है| इसलिए ही उसे इलाज करके नहीं बदल सकता| समाज एवं परिवार इन्हें बीमार की तरह देखने पर ये कई प्रकार के संघर्षों से निरंतर जूझते हैं|

"तीसरे लोग", "गुरुकुल",और "तीसरी ताली" में गे लोगों का चित्रण किया है| "तीसरे लोग" में स्मारक गे है| उसके बाह्याचार से इसका पाता

[1] प्रदीप सौरभ - तीसरी ताली , पृ : 132

नहीं चलता| उसे किसी भी सुन्दर लड़की को देखने पर भी आकर्षण नहीं होता| उसको पुरुषों के प्रति आकर्षण है| लेखिका स्मारक के इस अस्तित्व के बारे में बताती है – "अर्धनारीश्वर की जो कल्पना हम चित्रित करते हैं,वह तो प्रत्येक मनुष्य के भीतर छुपी है| एक वह रूप, जो प्रकट है और दूसरा पहलू वह जो उजागर नहीं होता| स्मारक के साथ भी ईश्वर ने कुछ ऐसा ही बायोलोजिकल बाइंडिंग (जीववैज्ञानिक दायित्व) में हेर-फेर की थी| एक सुदर्शन सुपुरुष व्यक्तित्व के लिए शरीर को जिन अंग-प्रत्यंगों की आवश्यकता होती है, वह तमाम सम्पदा स्मारक के साथ थी| फिर भी उसकी आत्मा, उसकी प्रवृत्ति, पौरुषता को स्वीकारने में अक्षम थी| 15-16 वर्ष की वयःसंधी में उसके साथ के दूसरे लड़कों के भीतर नारी शरीर के रहस्यों को जानने, खोजने एवं भोगने की प्रबल आकांक्षा उन्माद की पराकाष्ठा पर पहुँच जाती है, तब स्मारक को आकृष्ट आकृष्ट करती थी पुरुष की हि बलिष्ठ भुजाएं, लोमष छाती|"[1] स्मारक जैसे 'गे' लोग पुरुष की खुरदरी हथेलियों स्पर्श या फिर बलिष्ठ बाहुपाश की कल्पना मात्र से वह उत्तेजित हो उठता था| जब ये लोग अपने इस अस्तित्व को पहचान लेते हैं तब अंतर्मुखी हो जाते हैं| इन्हें समाज की उपेक्षा, अवहेलना एवं उपहास का डर लगे रहते हैं|

---

[1] गीतांजलि चटर्जी - तीसरे लोग , पृ : 28

इसमें लेखिका ने स्मारक के मन की निराशा को यों व्यक्त किया है –" आईने में अक्स एब्सॉल्यूटली नॉर्मल, हेल्दी पुरुष का होता है, पर मन का प्रतिबिम्ब कुछ और रूप दर्शाता है| मैंने कभी भी नहीं चाहा ऐसा दोहरा व्यक्तित्व, पर मैं मजबूर हूँ दोहरी ज़िंदगी जीने को|"[1] भारतीय समाज में गे लेस्बियनों को मान्यता नहीं मिली है| दुनिया में कई ऐसे देश हैं जहां समलैंगिकता अपराध नहीं है| वहां उनकी शादियाँ होती हैं| यूरोप में ऐसे लोगों के हर दो साल में ओलम्पिक खेल होते हैं| सिडनी से लेकर डेनमार्क तक सामूहिक विवाह के आयोजन होते हैं| वहां समलैंगिक उपेक्षा या असुरक्षा का भाव नहीं सहते| इस करण वे मुख्यधारा से समाज के आगे हि आते हैं| भारत में स्थिति भिन्न है|

"तीसरी ताली" में 'सुविमल भाई' और 'अनिल' गे हैं| दोनों को औरत के प्रति आकर्षण नहीं है| सुविमल समाज के डर से 'रति' से शादी करता है पर वह कभी भी रति के साथ खुश नहीं हो पाता है| वह अनिल के साथ शारीरिक सम्बन्ध जारी रखता है| लेखक ने सुविमल के मानसिक स्थिति व संघर्षों का चित्रण करते हुए लिखा है – " विवाह के बाद भी वह रति से दूर रहते| दिखाने के लिए एक कमरे में रहते, पर रति की सुहागरात तक नहीं हो पायी| सुविमल भाई के मन की मुराद ज़रूर पूरी हो गयी थी, लेकिन रति विवाह के बाद भी कुंवारी की कुंवारी बनी हुई थी| सुविमल भाई को औरतों

---

[1]गीतांजलि चटर्जी - तीसरे लोग , पृ: 70

के गंध से नफरत थी|"[1] समलैंगिक पुरुष हमेशा दूसरे पुरुषों के साथ सम्बन्ध बनाना चाहते हैं| इनकी इस चाहत को समाज गलत नज़रिए से देखते हैं| "गुरुकुल" में 'कर्नल' एक समलैंगिक है| उसे परिवार व समाज को दिखाने के लिए की वह 'नॉर्मल' है, एक लड़की से शादी करना पड़ता है| इस शादी से न कर्नल खुश रह पाता है और न ही उसकी पत्नी 'संतोष'| 'पार्थ' जब गे का औरत के प्रति दृष्टिकोण के बारे में पूछता है तो वह बताता है कि गे लोग जीवनसाथी के रूप में औरतों को पसंद नहीं करता| लेकिन उन्हें औरतों से घृणा नहीं है| वह बताता है – " औरतें बहुत पसंद हैं, लेकिन सेक्स के लिए नहीं|"[2] इसप्रकार सोचनेवाले कर्नल जैसे गे लोग जब शादी करते हैं तो वैवाहिक जीवन संघर्षमय हो जाता है| कर्नल और स्मारक निरंतर इस संघर्ष से गुज़रते हैं कि वे अपनी पत्नी को खुश नहीं रख पाए हैं और इसके लिए अपने को गुनाहकार मानते हैं|

लेस्बियन और संघर्ष

गे को जिन-जिन संघर्षों से गुजरने पड़ते हैं उसीप्रकार लेस्बियनस को भी बहुत कुछ सहनी पड़ती हैं| पुरुषप्रधान समाज में औरतें चहारदीवारी में बंद रहने के लिए अभिशप्त हैं| जब कोई लेस्बियन अपना स्वत्व प्रकट करती है तो उसे और भी बहुत कुछ सहना पड़ता है| समाज और परिवार की चंगुल में फंसी औरत को अपनी इच्छाएं दबाकर दूसरी ज़िंदगी अपनानी

[1] प्रदीप सौरभ - तीसरी ताली , पृ : 67
[2] अनिता राकेश - गुरुकुल , पृ : 74

पड़ती है| वह इस ज़िंदगी में कभी खुश नहीं रह पाती है| भारतीय समाज की संकुचित मानसिकता के करण कई औरतों को घुटन भरी ज़िंदगी गुजारनी पड़ती है|

"मछली मरी हुई" में 'शीरी सेल्स्बर्ग' नामक पात्र लेस्बियन है| उसके बचपन के अनुभवों तथा पुरुषों के प्रति नफरत ने उसे समलैंगिक बनाया है| जब शीरी पाँच-छः साल की थी तब माँ एक बच्चे को जन्म देकर मर जाती है| उसकी बड़ी बहन 'सुसी' के अनुसार पिता की वजह से उसकी माँ गर्भवती हुई है और मर गयी है| इस घटना ने उसके मन में पुरुषों के प्रति नफ़रत पैदा करती है| धीरे-धीरे वह सुसी के साथ शारीरिक संमंध रखने लगती है| बाद में जब 'विश्वजीत मेहता' और 'निर्मल पद्मावत' से शादी होने पर भी खुश नहीं हो पाती है| शीरी की इस घुटन के बारे में लेखक लिखते हैं –" शीरी पुरुष नहीं चाहती है| चाहती है अपनी हि जैसी कोई युवती| वह स्वयं को चाहती है|"[1] इस बीच जब रघुवंश की बेटी 'प्रिया' से शारीरिक संबंध रखती है तब उसे वही खुशी मिलती हैं जो सुसी से मिला था|

"तीसरी ताली" में 'यास्मीन' और 'जुलेखा' पुरुष गंध से नफरत करती थीं| जुलेखा अपने पिता का माँ के प्रति हिंस्रात्मक व्यवहार देखकर पुरुष्विद्वेषी हुई थी| इसके साथ यास्मीन ममेरी भाई 'आलम' द्वारा उसके साथ ज़बरदस्ती करने की कोशिश होने पर पुरुष से नफरत करने लगती है| लेखक बताता है – " इनमें पुरुष से घृणा करने का जुलेखा का किस्सा अलग

---

[1] राजकमल चौधरी - मछली मरी हुई , पृ : 108

था, जबकि यास्मीन पक्की औरतखोर थी| औरत को पाते ही वह उसे निचोड़ लेती थी| खूबसूरत औरत देखते ही उसके नथुने फडफड़ाने लगते.....उसकी गंध को सूंघने के लिए|"[1] भारतीय समाज में लेस्बियन की दर्दनाक स्थिति के बारे में बताया है- "........लेकिन 'पुरुषप्रधान' समाज होने के नाते यह पुरुषों की तरह अपना साथी ढूँढने कहीं नहीं निकल सकतीं......आखिर ठहरीं तो महिला हि न......शादी हो जाए तो क़यामत, न हो तो व्यर्थ.....हाँ पढी-लिखी फिर भी अपना रास्ता ढूँढ लेती हैं, लेकिन मध्यवर्गीय ....."[2] कर्नल के अनुसार गे से ज्यादा लेस्बियन जटिल एवं दर्दनाक स्थिति में जीती हैं| इसप्रकार समझौता करते-करते औरतें निराशा में डूब जाती हैं| वे कठिन मानसिक तनाव एवं हीं ग्रंथि के शिकार होती हैं|

लड़कों का यौन शोषण

समाज में जन्मजात समलैंगिकों के साथ स्वाद बदलने या विकृत मानसिकता के चलते इस प्रवृत्ति को अपनानेवाले भी हैं| कई गाँवों में ज़मींदार पिछडी जाति की लड़कियों को रखैल बनाकर रखने के साथ 'लौंडों' को भी रखते हैं| ये लौंडे दलित जाति के गरीब लड़के होते हैं| वे इन ज़मींदारों की सेवा करके, जनाना कपडा पहनकर नाच-गाकर मनोरंजन करके आजीविका चलाते हैं| कभी-कभी ये लोग लड़कों के साथ ज़बरदस्ती भी करते हैं| "तीसरे लोग" के 'मिसिर चाचा' और जोगिया के पति 'विप्लव' इसका उत्तम उदहारण हैं| 'किसना' नामक लड़का जो स्त्रीयोजित कपड़ा

[1] प्रदीप सौरभ - तीसरी ताली , पृ : 121
[2] अनिता राकेश - गुरुकुल , पृ : 81

पहनना एवं व्यवहर करना पसंद करता है, मिसिर चाचा के नौकर के रूप में काम करता है| वह एक दिन भेडिये की तरह आक्रमण करता है| उसको धमकी देकर बार-बार फ़ायदा उठाता है| एक बार मिसिर चाचा के साथ तीन –चार राजनेता मित्र भी उसका क्रूर बलात्कार करता है| इसके बाद वह शहर जाकर वेश्य्यावृत्ति को अपनाता है और अंत में एड्स बीमार बनकर मर जाता है| पश्चिमी देशों में अश्वेत लड़कों का यौन शोषण साधारण सी बात है| स्मारक जब विदेश जाता है तब वहाँ यौन शोषण से उत्पीडित नाबालिग बच्चों से मिलता है| भारतीय शहरों में कई पुरुष वेश्याएं हैं| इन्हें 'जिगोलो' कहते हैं|

"तीसरी ताली" में 'चितकबरी'सपलायेर नामक एक हिजड़ा है जो कॉल गर्ल सप्लायर है| उसके पास आनेवाले पुरुष ग्राहक लड़कियों से ज्यादा कमसिन लड़कों की मांग करते हैं| उसी प्रकार गाँव में ठाकूर और भूमिहारों द्वारा लड़कों का यौन शोषण भी चित्रित किया है| 'बलिया' जिले के बाबु श्यामसुन्दरदास के कई लौंडें हैं| जिनमें 'ज्योति' नामक लौंडा उनका प्रिय था| वह मर्दाना कपडा पहनकर, नाच-गाकर मनोरंजन करता है| एक बार किसी ने उस लौंडे की छेड़छाड़ की तो श्यामसुंदर उसे धक्का देकर बाहर निकालता है| उसे बाद में शरीर तक बेचकर जीने की नौबत आती है| इसप्रकार लड़कियों की तरह लड़के भी भोग की वस्तु बनने की दुःखद स्थिति को चित्रित किया है| इसमें 'जगरूप सिंह' नामक ज़मींदार के कई लौंडें हैं| जिनमें से एक को कई लोग बलात्कार करते हैं| लेकिन ज़मींदार उस लौंडे

की पूरी सेवा-शुश्रूषा करता है| लेकिन बहुत कं लौंडों को ऐसी किस्मत मिलती है| गाँव में लौंडों को 'हाथी' कहता है|

समलैंगिक और मानवाधिकार

समलैंगिकता कोई मनोरोग नहीं, एक प्रवृत्ति है| समाज, क़ानून, व्यवस्था आदि इस प्रवृत्ति को समझे बगैर, उन पर विकृत मानसिकता की मुहर लगाते हैं और सभ्य समाज के हिस्सा मानने से इनकार करता है| आज हमने सभी क्षेत्रों में बहुत तरक्की की है| लेकिन 'थर्ड जेंडर' एवं समलैंगिकों को सामजिक कोढ़ समझ रहे हैं| यह हमारी संकुचित मानसिकता को दर्शाती हैं| आज दिल्ली-मुम्बई जैसे बड़े-बड़े शहरों में तथा युवा पीढी में ऐसी विकृत मानसिकता है कि वे दैहिक क्षुधा का स्वाद बदलने के लिए इस समलैंगिकता को अपनाते हैं| इनकी तुलना जन्मजात समलैंगिकों से हरगिज़ नहीं कर सकते| पश्चिमी देशों में जन्मजात समलैंगिकों के लिए सरकार द्वारा कई योजनायें लागू की हैं, वहां के क़ानून ने इसको मान्यता भी दी है| भारत में समलैंगिकता को अपराध माना है| यहाँ का क़ानून इसे मान्यता नहीं देता| आई.पी.सी.धरा 377 के अनुसार कोई आपसी सहमती से भी समलैंगिक सम्बन्ध बनाता है तो उसे अपराध माना जाएगा| इसमें दस साल से लेकर उम्र कैद तक की सज़ा हो सकती है| सुप्रीम कोर्ट ने 11 दिसंबर 2013 को दिल्ली हाईकोर्ट के इस फैसले को खारिज कर दिया था, जिसमें आपसी सहमति से बनाए गए ऐसे संबंधों को अपराध नहीं माना गया था| समलैंगिकता को अपराध करार देने के फैसले पर पुनर्विचार करने के लिए जो

याचिकाएं दी, उस पर 2014 में जस्टिस.एच.एल.दत्तु और जस्टिस.एस.जे.मुखोपाध्याय की बेंच ने पुनर्विचार याचिकाओं को ख़ारिज किया था| अब इनकी ज़िंदगी में सुधार लेने के लिए सरकार को क़ानून में बदलाव लाना चाहिए|

"तीसरी ताली" में नाज़ फाउण्शन द्वारा समलैंगिकों को कानूनी अधिकार देने के लिए दिल्ली हाईकोर्ट में याचिका दाखिल करने का ज़िक्र किया है| नाज़ फाउण्शन लम्बे समय से धारा 377 को हटाने की मांग कर रहा था| इस धारा की आड़ में पुलिस इनको परेशान करती थी| इसमें 'विनीता' के ब्यूटीपार्लर भी पुलिस के निशाने पर था| इसमें हाईकोर्ट द्वारा इनके पक्ष में फैसला सुनाते हैं- " एक सौ पाँच पन्नों का अपना फैसला सुनाते हुए जब जज ने स्थापित मान्यताओं से हटकर कहा कि समलैंगिकता को अपराध करार देने वाली धारा 377 मौलिक अधिकारों का हनन है..........मानवीय गरिमा के खिलाफ ....समानता के अधिकारों की गारण्टी के खिलाफ है, इसलिए इस धारा को यह अदालत अवैध घोषित करती है|"[1] कोर्ट के आँगन में देश-विदेश के हिजड़े एवं समलैंगिक इकट्टे थे| वे यह फैसला सुनकर खुश होते हैं| इस फैसले से चोरी-छिपे रहनेवाले समलैंगिकों को बाहर आने का मौका मिला| उन्हें अब पुलिस का डर नहीं है| चोरी-छिपे होनेवाली 'गे पार्टियां' सार्वजनिक हो गयीं| चाणक्यपुरी के

---

[1] प्रदीप सौरभ - तीसरी ताली , पृ : 127

डिस्कोथिक में मंगलवार को गे और गुरूवार को लेस्बियन पार्टी हर सप्ताह होने लगी|

इस फैसले के खिलाफ मुल्ला- मौलवी, पंडित-पुजारी, फादर-पादरी, नेता-अभिनेता सब आवाज़ अथाते हैं| क्योंकि उनके अनुसार इससे भारतीय संस्कृति नष्ट हो जाएगी, यौन शोषण तथा एड्स फ़ैल जाएगा| इसप्रकार के भ्रामक विचारों के कारण समाज इनको मानवाधिकारों से वंचित रखता है| यास्मीन और जुलेखा शादी की अर्जी अदालत में पेश करती हैं| इसपर मजिस्ट्रेट फैसला सुनाता है- " दोनों बालिग़ हैं और उन्हें अपनी मर्जी से जीवन यापन करने की पूरी आज़ादी है, लेकिन क़ानून के हाथ बंधे हुए हैं| वह ऐसी शादी की इजाज़त नहीं देता|"[1] यहाँ के इस व्यवस्था ने समलैंगिकों को असाधारण बना दिया| अमेरिका जैसे यूरोपीय देशों में समलैंगिकों को आम आदमी का दर्जा प्राप्त हैं| वहां हीं भावना या असुरक्षा नहीं है| वहां की क़ानून व्यवस्था, सरकार, खुले विचार आदि इसके पीछे की वजहें हैं| "तीसरे लोग" का 'स्मारक' अपने अस्तित्व को परिवारवालों व समाज से इसलिए छुपाता है, क्योंकि यहाँ ऐसे लोगों को मनोरोगी का दर्जा प्राप्त है| वह अमेरिका में 'गे क्लब' में जाकर ऐसे लोगों के साथ समय बिताते हैं| इसप्रकार की सुविधायें भारत में नहीं हैं| "गुरुकुल" में'कर्नल' ने भी भारत के गे एवं उनके प्रति क़ानून के संकुचित दृष्टिकोण का पर्दाफाश किया है| भारत में समलैंगिकता एक अपराध है| अगर गे पकडे गए तो दस साल की

[1] प्रदीप सौरभ - तीसरी ताली , पृ : 131

कैद और जुर्माना मिलता है| भारत के संविधान में सेक्शन 322 के अंतर्गत समलैंगिकता घोर अपराध है| इस क़ानून के तहत समलैंगिक शादी एवं संबंधों को वैधता प्राप्त नहीं होती है| कर्नल बताता है –" पुलिस गे लोगों के अड्डे जानती है और वैसे भी दो मर्दों को हाथ में हाथ दिए देखकर गिरफ्तार करने का आर्डर भी रखती है| नतीजा, यह एक क्रिमिनल की तरह निरंतर भय में जीते हैं और पुलिस के लिए एक हराम की कमाई का एक ओर जरिया बं जाता है|"[1] हमारे संविधान एवं क़ानून गे एवं लेस्बियन कम्यूनिटी को 'सिक', 'मेंटली इल', या 'डिजीज्ड' मानते हैं| आज भी इसमें विधिवत निर्णय नहीं हो पाया है| सुप्रीम कोर्ट ने निर्णय लेने की ज़िम्मेदारी पार्लमेंट को सौंपा है| समलैंगिक आज भी इस अधिकार की मांग कर रहे हैं| 23 मई 2015 को जनमत के द्वारा आयरलैण्ड में समलैंगिकता को विधिवत बानाया, 2014 मई को इंग्लैण्ड में भी वैधता प्राप्त हुई| भारत में 2015 को एक माँ ने अपने समलैंगिक बेटे 'हरीष अय्यर' के लिए एक दूल्हे का विज्ञापन अखबार में दिया था| मुम्बई में इसी साल में समलैगिक बच्चों के माँ-बाप ने धारा 377 को वैध बनाने की मांग करते हुए मुम्बई में 'प्राइड परेड' किया था| इस प्रकार देश-विदेश में मानवाधिकार के लिए मांग करने लगे हैं|

---

[1] अनिता राकेश - गुरुकुल , पृ : 75

निष्कर्ष

सूचना प्रौद्योगिकी के इस युग में भारत की सांस्कृतिक बहुलता को नकारात्मक दृष्टि से देखने की प्रवृत्ति उत्पन्न हुई है| नव-उपनिवेशवादी आर्थिक नीतियों व फासिस्ट शक्तियों के विध्वंसात्मक प्रवृत्तियों ने नागरिक अधिकार, धर्म निरपेक्षता आदि शब्दों को खोखला बना दिया| उसने भारत की सांस्कृतिक विशेषताओं को सांस्कृतिक भिन्नता में बदल दिया है| भारत का अस्तित्व ‘बहुजातीय’ और ‘बहु सांस्कृतिक’ देश का है| धर्म, जाति, लिंग, भाषा एवं नस्ल के आधार पर विभिन्न बहुधा सामजिक व्यवस्था को साम्राज्यवादी शक्तियों ने अल्प संख्यक बताकर और भी चौड़ी करने की कोशिश में है| समकालीन उपन्यासों में इनकी अस्मिता, संस्कृति एवं समस्याओं पर गंभीर ढंग से चर्चा-परिचर्चा हुई है| समकालीन उपन्यासकारों ने यह साबित करने कि कोशिश की है कि ये अल्प संख्यक या लघु संस्कृति भारतीय संस्कृति को किस तरह पूर्ण बनाती है और भारतीय संस्कृति के निर्माण एवं विकास में इनका क्या योगदान है?

उपसंहार

उपसंहार

भारत एक बहुसांस्कृतिक देश है जहाँ मुख्यधारा नाम की कोई केंद्रीकृत धारा नहीं हो सकती| भारत में सभी संस्कृतियों का स्वतंत्र अस्तित्व है| वे एक दूसरे से संवाद करके एक दूसरे से कदम मिलाकर आगे बढ़ती हैं| हमारी संस्कृति विस्तृत भू-भाग तक फैली हुई तथा सहस्राब्दियों तक व्याप्त अनोखी संस्कृति है| इसलिए इसमें जीवन की विभिन्न धाराएँ एवं कई उतार-चढ़ाव देखे जा सकते हैं| इसमें समाज के विभिन्न स्तरों की 'आस्था', 'रीति रिवाज़', 'अनुष्ठान', 'कला', 'त्योहार', 'पर्व', 'दर्शन' आदि समेटे हुए हैं| भारत में जाति,धर्म, नस्ल से लेकर लिंग तक कई अस्मिताएँ हैं| समाज द्वरा निर्मित ये सांस्कृतिक व वैचारिक विविधतायें काफी पुरानी हैं| भारतीय संस्कृति के मूल में सारे वैषम्यों के बावजूद परस्पर सौहार्द का भाव विद्यमान रहा है| विश्व में भारत की सम्मानजनक प्रतिष्ठा उसकी सामासिक संस्कृति के कारण ही रही है | भारत की साझी दृष्टि ने भिन्नताओं को विशेषताओं के रूप में देखने की सकारात्मक सोच दी है |

आज भारतीय संस्कृति के सभी पक्ष भूमंडलीय सांस्कृतिक वर्चस्व के आक्रमण के शिकार हैं| संस्कृति आज बाजारू हो गई है | उसके सभी मूल्य उत्पाद में परिवर्तित हो गए हैं| उत्तर आधुनिक दौर के सांस्कृतिक राष्ट्रवाद ने

जिसकी जडें उपनिवेश काल की ‘फूट डालो राज करो’ की नीति में देखी जा सकती हैं, आज विकराल रूप धारण कर लिया है| यह भारत की सांस्कृतिक बहुलता को नकारात्मक दृष्टि से देखकर उसे ‘उच्च-निम्न’, ‘मुख्य-गौण’, ‘सभ्य-असभ्य’ जैसे खेमों में बांटकर रख रहा है| यह भारत की भिन्न-भिन्न अस्मिताओं को ‘जाति’, ‘धर्म’, ‘समुदाय’, ‘लिंग’ आदि से जोड़कर देखता है| आज प्रत्येक व्यक्ति की पहचान ‘हिन्दू’, ‘मुस्लिम’, ‘सिख’, ‘जैन’, ‘बौद्ध’, या ‘भंगी’, ‘चमार’, आदि परकेन्द्रित है| बहुसंख्यक समाज को परिधि पर फेंका गयाहै| वे विकास से बहिष्कृत समाज हैं| उच्च वर्ग की सामंती सोच ने इन्हें मूलभूत अधिकारों से वंचित रखते हुए इनका निरंतर शोषण करती रही| वर्तमान दौर में वे अपने स्वत्व को पहचानकर अपने ऊपर हो रहे शोषणों का विरोध करने लगे हैं| अभिजन लोगों ने वंचितों को संवेदन विहीन बनाकर उनका स्वाभिमान छीन लिया| वर्चस्ववादी लोगों ने यह भ्रम पैदा किया कि उनकी संस्कृति ही सच्ची एवं श्रेष्ठ है| सच्चाई यह है कि भारतीय संस्कृत्ति केवल अभिजात संस्कृति नहीं है| इन लघु संस्कृतियों या छोटी- छोटी सांस्कृतिक इकाईयों के मेल से ही भारतीय संस्कृति की अवधारणा पूर्ण हो सकती है| बहु- सांस्कृतिकता को संरक्षण देने पर ही सांस्कृतिक स्वतंत्रता संभव होती है|

वर्तमान दौर में समाज व इतिहास द्वारा निर्मित इन भेदभावों को निरस्त करके 'विविधता में एकता'लाने की कोशिश हो रही है|

रचनाकार अपनी रचानाओं के मध्यम से सामजिक रूढ़ियों व विसंगतियों को तोड़ते हैं| वैसे ही वे नए मूल्यों को प्रतिष्ठित कर पाते हैं| यह संस्कृति के विकास केलिए अनिवार्य है| साहित्य और संस्कृति के बीच अटूट संबंध है| रचनाकार अपने रचना कर्म के माध्यम से संस्कृति को अभिव्यक्ति देते हैं| वरेण्य वर्ग की संकुचित मानसिकता के माहौल में उपेक्षित एवं हाशिएकृत जन-समुदाय को समकालीन हिंदी उपन्यासकारों ने वाणी दी है| भारत की छोटी-छोटी अस्मिताओं को प्रकाश में लाकर उनके जीवन संघर्ष एवं अनोखी संस्कृति को प्रकाश में लाने का महान कार्य इन रचनाकारों ने किया है| वैसे उन्होंने सिद्ध किया कि भारतीय संस्कृति कितनी विशाल एवं विराट है| भारतीय संस्कृति की श्रेष्ठता को बनाए रखने केलिए छोटी-छोटी अस्मिताओं का सम्मान करना चाहिए| इन रचनाकारों ने अपनी रचानाओं के माध्यम से यह सन्देश देने का प्रयास भी किया है कि विभिन्न 'धर्म' ,'जाति', 'नस्ल', 'लिंग' व 'अस्मिताओं' का सम्मान कर सकता है| प्रत्येक व्यक्ति को प्रत्येक सांस्कृतिक इकाइयों के स्वतंत्र अस्तित्व को स्वीकारना होगा| समकालीन हिंदी उपन्यासकारों ने अपनी रचानाओं के ज़रिए इस अनिवार्य तथा कालिक माँग को वाणी दी है|

परिशिष्ट

परिशिष्ट

शोध छात्रा के प्रकाशित शोध लेख

1. कोणार्क:भारतीयता का प्रतिरूप -अनुशीलन –जनवरी2012
2. शोषक के चंगुल में प्रकृति और मानव -अनुशीलन-जनवरी 2013
3. जन जीवन का कवि:भवानीप्रसाद मिश्र -अनुशीलन-जुलाई2013
4. रामविलास शर्मा और यथार्थोंमुखी जीवन दृष्टि -अनुशीलन-जनवरी2014

प्रपत्रप्रस्तुति

1. समकालीन कथा साहित्य में हाशिएकृत वर्गकी सांस्कृतिक चेतना,

   (विषय:-समकालीन हिन्दीकथा साहित्य में सांस्कृतिक चेतना,सरकारीब्रेन्ननकॉलेज, अक्तूबर2013)

2. पारिस्थितिक विमर्श के सन्दर्भ में गगन घटा घहरानी,

   (विषय:अस्सियोत्तर हिन्दी साहित्य बहुआयामी सन्दर्भ,एस.एस.यु.एस,रीजनलसेंटर,जनवरी 2013)

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

आधार ग्रन्थ

1.अपवित्र आख्यान	-	अब्दुल बिस्मिल्लाह राजकमल प्रकाशन प्रा.लि. 1-बी, नेताजी सुभाष मार्ग, नई दिल्ली-110 002 पहला सं.2008
2.आज बाज़ार बंद है	-	मोहनदास नैमिशराय साक्षरा प्रकाशन,बी-32, कैलाश कालोनी, ईस्ट ज्योति नगर के पीछे, शाहदरा, दिल्ली-110 093, सं.2011
3. कलिकथा वाया:बाइपास	-	अलका सरावगी आधार प्रकाशन प्राइवेट लिमिटेड 67, सेक्टर-16, पंचकूला-134 113, सं.1998
4.काला पहाड़	-	भगवानदास मोरवाल राधाकृष्ण प्रकाशन प्राइवेट लिमिटेडजी-17, जगतपुरी, दिल्ली- 110 051 पहला सं.1999

5.किन्नर कथा	-	महेंद्र भीष्म सामयिक बुक्स, 3320-21जटवाड़ा, दरियागंज, एन.एस.मार्ग, नई दिल्ली-110 002 प्रथम सं.2011
6.गगन घटा घहरानी	-	मनमोहन पाठक प्रकाशन संसथान, 4715/21, दयानंदमार्ग,दरियागंज, नईदिल्ली-110 002, प्र.सं.1991
7.गुरुकुल(एक अधूरी कहानी)	-	अनिता राकेश राधाकृष्ण प्रकाशन प्रा.लि. 7/31, अंसारी मार्ग,दरियागंज, नई दिल्ली-110 002, प्र.सं.2008
8.गुलाम मंडी	-	निर्मला भुराडिया सामायिक प्रकाशन, 3320-21,जटवाड़ा, नेताजी सुभाष मार्ग, दरियागंज, नईदिल्ली-110 002, प्र.सं.2014
9.ग्लोबल गाँव के देवता	-	रणेंद्र भारतीय ज्ञानपीठ, 18, इन्स्टीटयूशनल एरिया, लोदी रोड, नई दिल्ली-110 003, प्र.सं.2009

10.छप्पर	-	जयप्रकाश कर्दम राहुल प्रकाशन, 30/64,गली नं.8, विश्वास नगर, शाहदरा, दिल्ली-110 032, दूसरा(संशोधित)सं.2003
11.छिन्नमस्ता	-	प्रभाखेतान राजकमल प्रकाशन प्रा.लि. 1-बी, नेताजी सुभाष मार्ग, नईदिल्ली-110 002 पहला सं.1993,पहलीआवृत्ति.1999
12.जख्म हमारे	-	मोहनदास नैमिशराय वाणी प्रकाशन,4695, 21-ए, दरियागंज, नई दिल्ली-110002, प्र.सं.2011
13.जिंदा मुहावरे	-	नासिरा शर्मा वाणीप्रकाशन,4695, 21ए,दरियागंज, नई दिल्ली-110 002, प्र.सं.2001
14.झीनी-झीनी बीनी चदरिया	-	अब्दुलबिस्मिल्लाह राजकमल प्रकाशन प्र.लि. 1-बी, नेताजी सुभाष मार्ग,

		नई दिल्ली-110 002
		प्र.सं. 1987, द्वि.सं.1990
15.ठीकरे की मंगनी	-	नासिरा शर्मा
		किताब घर, 24, अंसारी रोड, दरियागंज, नई दिल्ली-110 002
		प्र.सं.1989, द्वि.सं.1996
16.तर्पण	-	शिवमूर्ती
		राजकमल प्रकाशन प्रा.लि.
		1-बी, नेताजी सुभाष मार्ग,
		नई दिल्ली-110 002
		पहला सं.2004
17.तीसरी ताली	-	प्रदीप सौरभ
		वाणी प्रकाशन,4695, 21-ए,
		दरियागंज, नई दिल्ली-110 002,
		प्र.सं.2011
18.तीसरे लोग	-	गीतांजलि चट्टर्जी
		सामायिक प्रकाशन, 3320-21,
		जटवाड़ा, नेताजी सुभाष मार्ग,
		दरियागंज, नई दिल्ली-110002,
		प्र.सं.2010
19.तुम्हें बदलना ही होगा	-	सुशीला टाकभौरे
		सामायिक प्रकाशन,3320-21,

जटवाड़ा,नेताजी सुभाष मार्ग,

दरियागंज, नई दिल्ली-110 002,

प्र.सं.2015

20.त्रिशूल	-	शिवमूर्ति राजकमल प्रकाशन प्रा.लि. 1-बी, नेताजी सुभाष मार्ग, नई दिल्ली-110 002 पहला सं.1999
21.धार	-	संजीव राधाकृष्ण प्रकाशन प्राइवेट लिमिटेड 2/38, अंसारी मार्ग, दरियागंज, नई दिल्ली-110 002, प्र.सं.1990
22.धूणी तपे तीर	-	हरिराम मीणा साहित्य उपक्रम, प्र.सं.2008
23.नरककुंड में बास	-	जगदीश चन्द्र राजकमलप्रकाशनप्रा.लि. 1-बी, नेताजी सुभाष मार्ग, नईदिल्ली-110 002, प्र.सं.1994
24.परिशिष्ट	-	गिरिराज किशोर राजकमल प्रकाशन प्रा .लि. 1-बी, नेताजी सुभाष मार्ग, नईदिल्ली-110 002, प्र.सं.1984

25.पिछलेपन्नेकीऔरतें - शरदसिंह

सामायिकप्रकाशन, 3320-21,

जटवाड़ा, नेताजीसुभाषमार्ग,

दरियागंज,नई दिल्ली-110 002,

पहला.सं.2005

26.पीली आंधी - प्रभा खेतान

लोकभारती प्रकाशन,

15-ए, महात्मा गांधी मार्ग,

इलाहाबाद-1, प्र.सं.1996

27.पोस्ट बॉक्स नं203,नाला सोपारा - चित्रा मुद्गल

सामायिक प्रकाशन, 3320-21,

जटवाड़ा, नेताजी सुभाष मार्ग,

दरियागंज, नई दिल्ली-110002,

प्र.सं.2016

28.पाँवतले की दूब - संजीव

वाग्देवी प्रकाशन,

पॉलिटेक्निक कॉलेज के पास,

बीकानेर-334 003,

प्र.सं.2005

29..मछली मरी हुई - राजकमल चौधरी

राजकमल प्रकाशन प्रा .लि.

1-बी, नेताजी सुभाष मार्ग,

नई दिल्ली-110 002,प्र.सं.1994

30.मुखड़ा क्या देखे	-	अब्दुल बिस्मिल्लाह राजकमल प्रकाशन प्रा .लि. 1-बी, नेताजी सुभाष मार्ग, नई दिल्ली-110 002,सं.1996
31.मैकलुस्कीगंज	-	विकास कुमार झा राजकमल प्रकाशन प्रा.लि. साइंस कॉलेज के सामने, अशोक राजपथ, पटना-800 006 पहला सं.2010
32.मोरी की ईंट	-	मदन दीक्षित शिल्पायन, 10295, लेन नं.1, वैस्ट गोरखपार्क, शाहदरा, दिल्ली-110 032, सं.2016
33.यमदीप	-	नीरजा माधव सुनील साहित्य सदन, 3320-21, जटवाड़ा, दरियागंज, नई दिल्ली-110 002, प्र. सं.2009
34.रेत	-	भगवानदास मोरवाल राजकमल प्रकाशन प्रा .लि. 1-बी, नेताजी सुभाष मार्ग, नई दिल्ली-110 002

पहला.सं.2008, दूसरा सं.2009

35.शैलूष - डॉ.शिवप्रसाद सिंह
नेशनल पब्लिशिंग हाउस, 23,
दरियागंज, नई दिल्ली-110 002,
सं.1989

36.सावधान!नीचे आग है - संजीव
राधाकृष्ण प्रकाशन प्राइवेट लिमिटेड
2/38, अंसारी मार्ग, दरियागंज,
नईदिल्ली-110 051
प्र.सं.1986, दूसरा सं.2000

आलोचनात्मक ग्रन्थ

1. अकेले होते लोग(वृद्धावाथापर केन्द्रितवैज्ञानिकदस्तावेज़) - स्वातितिवारी
वाणी प्रकाशन, 21-ए, दरियागंज,
नई दिल्ली-110 002,
प्र.सं.2006

2. आज़ादी एक अधूरा शब्द है - राजकिशोर
साहित्य सदन, नैपियर रोड,
कानपूर कैन्ट, 208 004
प्र.सं.1991

3. आदमी, बैल और सपने - रामशरण जोशी
कल्याणी शिक्षा परिषद,
3320-21, जटवाड़ा,
दरियागंज, नई दिल्ली-110 002

4. आदिवासी स्वर और नई शताब्दी - रमणिका गुप्ता

वाणी प्रकाशन, 21-ए, दरियागंज,
नई दिल्ली-110 002,
प्र.सं.2002

5. आदिवासियों की पारस्परिक स्वशासन व्यवस्था एवं पंचायती राज(सन्दर्भझारखण्ड) - सुधीर पाल(सं)
वाणी प्रकाशन, 21-ए दरियागंज,नई दिल्ली-110 002,प्र.सं.2007

6. आधुनिकभारत:परंपरा औरभविष्य - आलोक मेहता(सं)
सामायिक प्रकाशन, 3320-21,
जटवाड़ा, नेताजी सुभाष मार्ग,
दरियागंज, नई दिल्ली-110 002,
प्र.सं.2008

7. आधुनिक भारत में सामाजिक परिवर्तन - एम.एन,श्रीनिवास
राजकमल प्रकाशन प्रा .लि.
1-बी, नेताजी सुभाष मार्ग,
नई दिल्ली-110 002
प्र.सं.1967

8. आधुनिक साहित्य में दलित विमर्श - देवेंद्र चौबे
ओरियंट ब्लैकस्वान प्राइवेट लिमिटेड
1/24 आसफअली रोड,
नई दिल्ली-110 002
प्र.सं.2009

9. आधुनिकता और उपनिवेश - कृष्ण मोहन
वाणी प्रकाशन, 21-ए, दरियागंज,

		नई दिल्ली-110 002, प्र.सं.2006
10. आधुनिकता का उत्तरोत्तर	-	कैलाश वाजपेयी सारांश प्रकाशन प्राइवेट लिमिटेड, 142-ई, पॉकेट-4, मयूर विहार फेज़-1दिल्ली-110 091 प्र.सं.1999
11. आलोचना की सामाजिकता	-	मैनेजर पाण्डेय वाणी प्रकाशन, 21-ए, दरियागंज, नई दिल्ली-110 002, प्र.सं.2005
12. आधुनिकता पर पुनर्विचार	-	अजय तिवारी भारतीय ज्ञानपीठ, 18, इन्स्टीटयूशनल एरिया, लोदी रोड, नई दिल्ली-110 003, प्र.सं.2012
13. आधुनिक भारत में जाति	-	एम.एन.श्रीनिवास राजकमल प्रकाशन प्रा .लि. 1-बी, नेताजी सुभाष मार्ग, नईदिल्ली-110 002 पहला.सं.2001
14. इस्लाम में धार्मिक चिंतन की पुनर्ररचना	-	डॉ.मुहम्मद इकबाल अनु.मुहम्मद शीस खान राधाकृष्ण प्रकाशन प्राइवेट लिमिटेड 7/31-अंसारी मार्ग,दरियागंज, नईदिल्ली-110 002, प्र.सं.1996

15. उत्तर-आधुनिकता और
दलित साहित्य - कृष्णदत्त पालीवाल
वाणी प्रकाशन, 21-ए, दरियागंज,
नई दिल्ली-110 002,
प्र.सं.2008

16. उपन्यास और वर्चस्व
की सत्ता - वीरेन्द्र यादव
राजकमल प्रकाशन प्रा .लि.
1-बी, नेताजी सुभाष मार्ग,
नई दिल्ली-110 002
प्र.सं.2009

17. कथा विवेचना और
गध्यशिल्प - रामविलास शर्मा
वाणी प्रकाशन, 21-ए, दरियागंज,
नई दिल्ली-110 002,
प्र.सं.1982&1999

18. कलाओं की मूल्य दृष्टि - हेमन्त शेष(सं)
वाणी प्रकाशन, 21-ए, दरियागंज,
नई दिल्ली-110 002,
प्र.सं.2009

19. कहानी:समकालीन
चुनौतियां - शम्भू गुप्त
वाणी प्रकाशन, 21-ए, दरियागंज,
नई दिल्ली-110 002,
प्र.सं.2009

20. किस प्रकार की है यह
भारतीयता - यू.आर.अनंतमूर्ती
राधाकृष्ण प्रकाशन प्राइवेट लिमिटेड
7/31-अंसारी मार्ग,दरियागंज,

नई दिल्ली-110 002
प्र.सं.2004

21. केंद्र और परिधि - सच्चिदानंद हीरानंद वात्स्यायन'अज्ञेय'
नेशनल पब्लिशिंग हाउस,
2/35,अंसारी रोड, दरियागंज,
नई दिल्ली-110 002
प्र.सं.1984

22. कृति,विकृति और संस्कृति - सत्यप्रकाश मिश्र
लोकभारती प्रकाशन,पहली
मंजिल,दरबारी बिल्डिंग, महात्मा
गांधी मार्ग, इलाहाबाद -211001,
प्र.सं.2010

23.गांधी, आंबेडकर लोहिया और भारतीय इतिहास की समस्याएँ - डॉ.रामविलास शर्मा
वाणी प्रकाशन, 21-ए, दरियागंज,
नई दिल्ली-110 002,प्र.सं.2000

23. गांधी मेरे भीतर - राजकिशोर
वाणी प्रकाशन, 21-ए, दरियागंज,
नई दिल्ली-110 002,
प्र.सं.2010

24. जाति व्यवस्था(मिथक, वास्तविकता और चुनौतियां) - सच्चिदानन्दसिंहा
अनु.अरविंद मोहन
राजकमल प्रकाशन प्रा .लि.
1-बी, नेताजी सुभाष मार्ग,

नई दिल्ली-110 002
प्र.सं.2006,दूसरा सं.2009

25. तीसरा यथार्थ - शंभुनाथ
प्रभा प्रकाशन, 72, पूराबल्दी
कीटगंज, इलाहाबाद-211003
प्र.सं.1984

26. दलित,अल्पसंख्यक सशक्तीकरण- संतोष भारतीय(सं)
राजकमल प्रकाशन प्रा .लि.
1-बी, नेताजी सुभाष मार्ग,
नई दिल्ली-110 002
प्र.सं.2008

27. दलित चेतना और
समकालीन कहानी - डॉ.रमेश कुमार
निर्माण प्रकाशन, 19/ए, रामनगर
लोनी रोड, शाहदरा,
दिल्ली-110 032
प्र.सं.1998

28. दलित चेतना की कहानियाँ:
बदलती परिभाषाएं - प्रो.राजमणि शर्मा
वाणी प्रकाशन,4695,
21-ए, दरियागंज,
नई दिल्ली-110 002,
पहली आवृत्ति.2010

29. दलित साहित्य के आधार तत्व- हरपाल सिंह 'अरुष'
भारतीय पुस्तक परिषद्
175-सी, पॉकेट-ए, मयूर विहार
फेज़-2, नई दिल्ली-110 091
प्र.सं.2011

30. दलित साहित्य:
बुनियादी सरोकार - कृष्णदत्त पालीवाल

वाणी प्रकाशन, 4695,
21-ए, दरियागंज,
नई दिल्ली-110 002,
प्र.सं.2009

31. दलित साहित्य:
वेदना और विद्रोह - शरणकुमार लिम्बाले(सं)
अनु.सं.डॉ.सूर्यनारायण रणसुभे
वाणी प्रकाशन, 21-ए, दरियागंज,
नई दिल्ली-110 002,
प्र.सं.2010

32. दसवें दशक के
आंचलिक उपन्यास - डॉ.बृजेश कुमार शर्मा,
जवाहर पुस्तकालय,
हिन्दी पुस्तक एवं वितरक, सदर
बाज़ार,मथुरा(उ.प्र.)-281
001प्र.सं.2008

33. दुर्ग द्वार पर दस्तक - कात्यायनी
परिकल्पना प्रकाशन, 3/274,
विश्वासखंड, गोमतीनगर,
लखनाऊ-226 010
प्र.सं.1997

34. देवदासी या धार्मिक
वेश्या? एक पुनर्विचार - प्रियदर्शिनी विजयश्री
अनु.विजय कुमार झा
वाणी प्रकाशन, 4695,
21-ए, दरियागंज,

नई दिल्ली-110 002,
प्र.सं.2010

35. धरती की पुकार - सुन्दरलाल बहुगुणा
राधाकृष्ण प्रकाशन प्राइवेट लिमिटेड
7/31-अंसारी मार्ग,दरियागंज,
नई दिल्ली-110 002
प्र.सं.1996, पहली आवृत्ति.2007

36. धर्म और सांप्रदायिकता - नरेंद्र मोहन
प्रभात प्रकाशन, 4/19,आसफ अली
रोड, नई दिल्ली-110 002
प्र.सं.1996

37. धर्म के आर-पार औरत - नीलम कुलश्रेष्ठ(सं)
किताब घर प्रकाशन,4855-
56/24,अंसारी रोड, दरियागंज, नई
दिल्ली-110 002
प्र.सं.2010

38. नदी,नारी और संस्कृति - विद्यानिवास मिश्र
प्रभात प्रकाशन,
चावडी बाज़ार, दिल्ली-6
प्र.सं.1993

39. नारी अस्मिता के विविध आयम- डॉ.एम.षण्मुखन
हिन्दी विभाग, कोच्चिन विज्ञान व
प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय,कोच्चि,
केरल-682 022 प्र.सं.2008

40. परंपरा, सर्जन और उपन्यास - विनोद तिवारी
लोकभारती प्रकाशन,15-ए, महात्मा
गांधी मार्ग, इलाहाबाद -1,
प्र.सं.2004

41. पर्यावरण और हमारा जीवन - प्रेमचंद 'मधुवाल'

कविता बुक सेंटर, ई-5/13,
लाजपतराय, दिल्ली-110 051
प्र.सं.2002

42. पर्यावरण की चुनौतियाँ समस्याएँ तथा समाधान - डॉ. वी. के.शर्मा
आर्य पब्लिकेशन्स,A-20, गली नं-4,
हरदेव पुरी,100 फुटा रोड, पंजाब
नेशनल बैंक के सामने,
दिल्ली-110 093
प्र.सं.2012

43. पर्यावरण प्रदूषण - गोपीनाथ श्रीवास्तव
सुनील साहित्य सदन, ए 101, उत्तरी
घोंडा, यमुना विहार रोड,
दिल्ली-110 053
प्र.सं.2001

44. पॉपुलर कल्चर के विमर्श - सुधीश पचौरी
वाणी प्रकाशन, 21-ए, दरियागंज,
नई दिल्ली-110 002,
प्र.सं.2011

45. प्राचीन भारत की प्रमुख जातियों का इतिहास - कवि आत्मा
परिक्रमा प्रकाशन, डी-1/13,पूर्वी
गोकलपुर, लोनी रोड,
दिल्ली-110 094
प्र.सं.2010

46. बाज़ार और समाज: विविध प्रसंग - गिरीश मिश्र
स्वराज प्रकाशन, 7/14, गुप्ता लेन,
अंसारी रोड, दरियागंज,
दिल्ली-110 002 प्र.सं.2009

47. बंद गलियों के विरुद्ध

(महिला पत्रकारिता की यात्रा) - मृणाल पाण्डे,क्षमा शर्मा(सं)

राजकमल प्रकाशन प्रा .लि.
1-बी, नेताजी सुभाष मार्ग,

नई दिल्ली-110 002
प्र.सं.2001

48. भारत:इतिहास और संस्कृति - गजानन माधव'मुक्तिबोध'
राजकमल प्रकाशन प्रा .लि.
1-बी, नेताजी सुभाष मार्ग,
नई दिल्ली-110 002
प्र.सं.2014

49. भारत और पश्चिम संस्कृति
के अस्थिरसन्दर्भ - रामस्वरूप चतुर्वेदी
लोकभारती प्रकाशन,पहली मंजिल,
दरबारी बिल्डिंग, महात्मा गांधी
मार्ग, इलाहाबाद -211 001
प्र.सं.1999

50. भारत का इतिहास
(1000ई.पू.से 1526 तक) - रोमिला थापर
राजकमल प्रकाशन प्रा .लि.
8- नेताजी सुभाष मार्ग,
नई दिल्ली-110 002
प्र.सं.1975

51. भारत की जनजातियाँ - डॉ.शिवकुमार तिवारी
नार्दर्न बुक सेंटर, 4221/1,अंसारी
रोड, नई दिल्ली-110 002
प्र.सं.1992

52. भारत में उपनिवेशवाद और
राष्ट्रवाद - बिपन चन्द्र
अनामिका पब्लिशर्स एंड डिस्ट्रीब्यूटर्स, 29ए , पॉकेटडी, दीप एन्क्लेव,
अशोक विहार, दिल्ली-110 052
प्र.हिन्दी.सं.1996

53. भारतीय अस्मिता
और हिन्दी - शंभुनाथ
सामायिक प्रकाशन, 3320-21,
जटवाड़ा, नेताजी सुभाष मार्ग,
दरियागंज, नई दिल्ली-110 002,
प्र.सं.2012

54. भारतीय समाज में प्रतिरोध
की परंपरा - मैनेजर पाण्डेय
वाणी प्रकाशन, 21-ए, दरियागंज,
नई दिल्ली-110 002,
प्र.सं.2013

55. भारतीय साहित्य का
सांस्कृतिक पक्ष - रोहिताश्व
शिल्पायन, 10295, लेन नं.1, वैस्ट
गोरखपार्क, शाहदरा,
दिल्ली-110 032
प्र.सं.2011

56. भारतीय साहित्य के
इतिहासकीसमस्याएँ - रामविलास शर्मा

वाणी प्रकाशन,4697/5, 21-ए,
दरियागंज, नई दिल्ली-110 002,
प्र.सं.1986

57. भारतीय संस्कृति - नरेंद्र मोहन
प्रभात प्रकाशन, 8/19 आसफ अली
रोड, नई दिल्ली-110 002
प्र.सं.1999

58. भारतीय संस्कृति - संतोष कुमार चतुर्वेदी
लोकभारती प्रकाशन,पहली मंजिल,
दरबारी बिल्डिंग, महात्मा गांधी
मार्ग, इलाहाबाद -211001,
प्र.सं.2011

59. भारतीय संस्कृति का गौरव - आचार्य चतुरसेन
सन्मार्गी प्रकाशन, 16 यू.बी, बैंगलो
रोड, जवाहरनगर, दिल्ली-110 007
प्र.सं.1996

60. भारतीय संस्कृति के आधार स्रोत - डॉ.रामशरण गौड़
स्वराज प्रकाशन, 146, डी-16,
सेक्टर-7, रोहिणी,
दिल्ली-110 085 प्र.स.1998

61. भारतीय संस्कृति के स्वर - महादेवी वर्मा
राजपाल एण्ड सन्ज़, कश्मीरी
गेट,दिल्ली, प्र.सं.2008

62. भारतीय संस्कृति पर इस्लाम का प्रभाव - ताराचंद
अनु.सुरेश मिश्र
ग्रन्थ शिल्पी(इंडिया) प्राइवेट
लिमिटेड

बी-7,सरस्वती कामप्लेक्स, सुभाष चौक, लक्ष्मी नगर, दिल्ली-110 092 प्र.हिन्दी.सं.2006

63. भारतीयता की पहचान - विद्यानिवास मिश्र
वाणी प्रकाशन, 21-ए, दरियागंज,
नई दिल्ली-110 002,
प्र.सं.1994

64. भाषा,साहित्य और देश - हज़ारीप्रसाद द्विवेदी
भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, 18,
इन्स्टीटयूशनल एरिया, लोदी रोड,
नई दिल्ली-110 003,प्र.सं.1995

65. भूमंडलीकरणऔरभारत: परिदृश्यऔरविकल्प - अमित कुमार सिंह
सामायिक प्रकाशन, 3320-21,
जटवाड़ा, नेताजी सुभाष मार्ग,
दरियागंज, नई दिल्ली-110 002,
प्र.सं.2009

66. भूमंडलीकरण,ब्रांड संस्कृति और राष्ट्र - प्रभा खेतान
सामायिक प्रकाशन, 3320-21,
जटवाड़ा, नेताजी सुभाष मार्ग,
दरियागंज, नई दिल्ली-110 002,
प्र.सं.2010

67. भूमंडलीकरण:विविध आयाम - डॉ.ब्रज कुमार पाण्डेय
विनोद बुक सेंटर, एल 20/13,गली
नं-5, प्रथम तल, प्र.सं.2008

68. मुख्यधारा और दलित
साहित्य - ओमप्रकाश वाल्मीकि
सामायिक प्रकाशन, 3320-21,
जटवाड़ा, नेताजी सुभाष मार्ग,
दरियागंज, नई दिल्ली-110 002,
प्र.सं.2009,दूसरा सं.2010

69. मुस्लिम मानस और हिन्दी
उपन्यास - डॉ.मुहम्मद फीरोज़ खान
अनंग प्रकाशन, दिल्ली-110 053
प्र.सं.2003

70. मेरे समय के शब्द - केदारनाथ सिंह
राधाकृष्ण प्रकाशन प्रा.लि.
7/31, अंसारी मार्ग, दरियागंज,
नई दिल्ली-110 002, प्र.सं.1993

71. लिंग भाव का मनोवैज्ञानिक
अन्वेषण:प्रतिच्छेदी क्षेत्र - लीला दुबे
अनु.वंदना मिश्र
वाणी प्रकाशन, 21-ए, दरियागंज,
नई दिल्ली-110 002,
प्र.सं.2004

72. लोक साहित्य और संस्कृति - दिनेश्वर प्रसाद
जयभारती प्रकाशन
447 पीली कोठी, नई बस्ती
कीडगंज, इलाहाबाद-211
003,प्र.सं.1989

73. लोकायत और जनजातीय
संस्कृति - रामप्रवेश सिंह
एस.एस.पब्लिशर्स एंडडिस्ट्रीब्यूटर्स,
डी-31, ब्रिज बिहार, सूर्यनगर,
गाजियाबाद(उ.प्र.), प्र.सं.2012

74. विश्वभाषा हिन्दी संस्कृति
और समाज - हजारीप्रसाद द्विवेदी
प्रभात प्रकाशन, 4/19 आसफ अली
रोड, नई दिल्ली-110 002,
प्र.सं.1999

75. वृद्धावस्था में सुख-शांति
से कैसे जीयें - आचार्य कृष्णकुमार गर्ग
एम.एन.पब्लिशर्स एंड डिस्ट्रीब्यूटर्स,
w-112, ग्रेटर कैलाश-1,
नई दिल्ली-110 048, प्र.सं.2003

76. वैदिक साहित्य और संस्कृति - वाचस्पति गैरोला
संवर्तिका प्रकाशन, 33/9,
करेलाबागकालोनी, इलाहबाद-3,
प्र.सं.1969, द्वि.सं.1970

77. वैदिक संस्कृति और सभ्यता - डॉ.मुंशीराम शर्मा
ग्रंथम, रामबाग, कानपुर,
प्र.सं.1987

78. सत्ता,समाज और बाज़ार - विमल कुमार
सामायिक प्रकाशन, 3320-21,
जटवाड़ा, नेताजी सुभाष मार्ग,
दरियागंज, नई दिल्ली-110 002,
प्र.सं.2007

79. सत्ता,संस्कृति और
नवसाम्राज्यवाद - अजय वर्मा
शिल्पायन, 10295, लेन नं.1,
वैस्ट गोरखपार्क, शाहदरा,
दिल्ली-110 032, प्र.सं.2012

80. स्त्री उपेक्षिता(एक अध्ययन) - सीमोन द बोउवार
अनु.प्रभा खेतान

सरस्वती विहार, जी.टी.रोड,
शाहदरा, दिलशाद गार्डन,
दिल्ली-110 095, दू.सं.1991

81. स्त्री विमर्श का लोकपक्ष - अनामिका
वाणी प्रकाशन, 21-ए, दरियागंज,
नई दिल्ली-110 002,प्र.सं.2012

82. स्त्रीत्ववादी विमर्श: समाज और साहित्य - क्षमा शर्मा
राजकमल प्रकाशन प्रा.लि.
1-बी, नेताजी सुभाष मार्ग,
नई दिल्ली-110 002, प्र.सं.2002

83. सप्तपर्णा - महादेवीवर्मा
लोकभारती प्रकाशन,पहली मंजिल,
दरबारी बिल्डिंग, महात्मा गांधी
मार्ग, इलाहाबाद -211001,
प्र.सं.2008

84. सफाई देवता(वाल्मीकिसमाजकी ऐतिहासिक,सांस्कृतिक,सामाजिकपृष्टभूमि)- ओमप्रकाश वाल्मीकि
राधाकृष्ण प्रकाशन प्रा.लि.
7/31, अंसारी मार्ग, दरियागंज,
नई दिल्ली-110 002
प्र.सं.2000

86. सभ्यता से संवाद - शंभुनाथ
वाणीप्रकाशन,4697/5, 21-ए,
दरियागंज,

नई दिल्ली-110 002,प्र.सं.2008

86.समकालीन आलोचना की

भूमिका(निबंध संग्रह) - डॉ.मंजुल उपाध्याय (सं)
साहित्यागार, एस.एम.एस.हाईवे,
जयपुर, प्र.सं.1991

87.समकालीन उपन्यासों का

वैचारिक पक्ष(हिन्दी तथा मराठी
बृहत उपन्यासों के तुलनात्मक
विमर्श के सन्दर्भ में) - डॉ.अर्जुन चव्हाण
वाणी प्रकाशन,4697/5, 21-ए,
दरियागंज, नई दिल्ली-110 002,
प्र.सं.2006

87. समकालीन परिवेश और
प्रासंगिक रचना संदर्भ - अशोक हज़ारे,डॉ.सोनटक्के
विकास प्रकाशन,127/145, साकेत
नगर, कानपूर-208 014

88. समकालीन साहित्य चिंतन- डॉ.रामदरश मिश्र, महीप सिंह(सं)
ज्ञान गंगा, 205-सी चावडी बाज़ार
दिल्ली-110 006 ,प्र.सं.1995

89. समकालीन हिन्दी उपन्यास - एन.मोहनन
वाणी प्रकाशन,4697/5, 21-ए,
दरियागंज, नई दिल्ली-110 002,
प्र.सं.2008

90. समकालीन हिन्दी उपन्यास
की आधुनिका - डॉ.प्रतिभा पाठक
हिमाचल पुस्तक भण्डार, सरस्वती
भण्डार, गांधीनगर, दिल्ली-110
031 प्र.सं.1992

93 .समकालीन हिन्दी
उपन्यास की भूमिका - डॉ.रणवीर संग्रा
जगतराम एण्ड सन्स,1X/221,नेन बाज़ार, गांधीनगर, दिल्ली-110 031, प्र.सं.1986

94 . समकालीन हिंदी उपन्यास:
समय और संवेदना - डॉ. वी.के अब्दुल जलील(सं)
वाणी प्रकाशन, 21-ए, दरियागंज, नई दिल्ली-110 002,
प्र.सं.2006

95 . समकालीन हिन्दी
उपन्यास:समय से साक्षात्कार- डॉ.एलाङ्म विजयलक्ष्मी
राधाकृष्ण प्रकाशन प्रा.लि.
7/31, अंसारी मार्ग, दरियागंज, नई दिल्ली-110 002
प्र.सं.2006

96 . समकालीन हिन्दी कहानी - एन.मोहनन(सं)
शिल्पायन, 10293, लेन नं.1, वैस्ट गोरखपार्क, शाहदरा,
दिल्ली-110 032, प्र.सं.2007

97 . समकालीन हिन्दी कहानी
का इतिहास - डॉ.अशोक भाटिया
भावना प्रकाशन, 109A, पटपडगंज,दिल्ली-110 091,प्र.सं.2003

98 . समकालीन हिन्दी दलित
साहित्य:एकअध्ययन- डॉ.जीतूभाई मकवाणा
दर्पण प्रकाशन,6, शंकर पार्क,

नडियाद-387 001, प्र.सं.2004

99.समकालीनताऔरसाहित्य - राजेशजोशी
राजकमल प्रकाशन प्रा.लि.
1-बी, नेताजी सुभाष मार्ग,
नई दिल्ली-110 002
प्र.सं.2010

100.साठोत्तरी हिन्दी उपन्यास - डॉ.रामजी तिवारी(सं)
परिदृश्य प्रकाशन,6, दादी संतुक
लेन, धोबी तालाब, मुम्बई-400002
प्र.सं.2000

101.साम्राज्यवाद का उदय और अस्त- अयोध्या सिंह
प्रकाशन संसथान, 4715/21,
दयानंद मार्ग, दरियागंज,
नई दिल्ली-110 002, प्र.सं. 2002

102.साहित्य और संस्कृति - अमृतलाल नागर
राजपाल एण्ड सन्ज़, कश्मीरी गेट,
दिल्ली, प्र.सं.1994

103.साहित्य और संस्कृति - डॉ.राजेश सिंह
अनुराग प्रकाशन, चौक,
वराणसी-221 001, प्र.सं.2001

104.साहित्य और हमारा समय- कुँवरपाल सिंह
वाणी प्रकाशन, 21-ए, दरियागंज,
नई दिल्ली-110 002,प्र.सं.2002

105.साहित्य का खुला आकाश - विद्यानिवास मिश्र
प्रभात प्रकाशन, 8/19 आसफ़ अली
रोड, नई दिल्ली-110 002,
प्र.सं.1996

106.संस्कृति और समाजवाद - सच्चिदानन्द सिंहा
वाणी प्रकाशन, 21-ए, दरियागंज,
नई दिल्ली-110 002, प्र.सं.2004

107संस्कृतिऔरसाहित्य - डॉ.हेतु भरद्वाज
मंथन पब्लिकेशन्स, त्रिवेणी नगर,
गोपालपुरा बाईपास, जयपुर,
प्र.सं.2004

108.संस्कृति का इतिहास
(भारतीय संस्कृति के सन्दर्भ में)- डॉ.जगदीश नारायण दूबे
वाराणसेय संस्कृत संस्थान,
सी.27/64, जगतगंज, वाराणसी,
प्र.सं.1988

109.संस्कृति का पांचवां अध्याय - पं.किशोरीदास वाजपेयी शास्त्री
वाणी प्रकाशन, 21-ए, दरियागंज,
नई दिल्ली-110 002, प्र.सं.2007

110.संस्कृति की उत्तरकथा
(भारतीय विपर्ययऔर
पुनर्निर्माण के प्रश्न) - शंभुनाथ
नवोदय सेल्स, 21-ए, दरियागंज,
नई दिल्ली-110 002, प्र.सं.2000

111.साम्प्रदायिक राजनीति
तथ्य एवं मिथक - राम पुनियानी
अनु.रामकिशन गुप्ता
वाणी प्रकाशन, 21-ए, दरियागंज,
नई दिल्ली-110 002, प्र.सं.2005

112.सांप्रदायिकता,आतंकवाद
औरजनमाध्यम - जगदीश चतुर्वेदी
अनामिका पब्लिशर्स एंड डिस्ट्रीब्यूटर्स प्रा.लि,4697/3, 21-ए, अंसारी रोड,दरियागंज, नईदिल्ली-110 052 ,प्र.सं.2005

113.हव्वा की बेटी - दिव्या जैन
वाग्देवी प्रकाशन, सुगन निवास, चन्दन सागर, बीकानेर-334 001, प्र.सं.2000

114.हिन्दी उपन्यास का इतिहास - गोपाल राय
राजकमल प्रकाशन प्रा.लि. 1-बी, नेताजी सुभाष मार्ग, नई दिल्ली-110 002 प्र.सं.2002

115.हिन्दी उपन्यास-जनवादी परंपरा - कुँवरपाल सिंह, अजय बिसारिया(सं)
नवचेतन प्रकाशन, जी-5, गली नं-16, राजापुरी, उत्तमनगर, दिल्ली-110 059

116.हिन्दी उपन्यास:राष्ट्र और हाशिया - शंभुनाथ
वाणी प्रकाशन, 21-ए, दरियागंज, नई दिल्ली-110 002,प्र.सं.2016

117.हिन्दी कहानी और मुस्लिम समाज - डॉ.दीपिका रानी
संजय प्रकाशन, 4378/4 डी.हाउस, अंसारी रोड, दरियागंज, नई दिल्ली-110 002, प्र.सं.2009

.118.हिन्दी कहानी का
समकालीन परिदृश्य - डॉ.वेदप्रकाश अमिताभ
कुंजबिहारी पचौरी, जवहर
पुस्तकालय, सदर बाज़ार, मथुरा,
सं.2005

119.हिन्दी के आंचलिक
उपन्यासों में मूल्य संक्रमण - वेदप्रकाश अमिताभ
वाणी प्रकाशन, 21-ए, दरियागंज,
नई दिल्ली-110 002, प्र.सं.1999

120.हिन्दी में भूमंडलीकरण
का प्रभाव और प्रतिरोध - सूरज पालीवाल
शिल्पायन, 10295, लेन नं.1, वैस्ट
गोरखपार्क, शाहदरा,
नईदिल्ली-110 032, प्र.सं.2008

121.हिमालय - महादेवी वर्मा
लोकभारती प्रकाशन,पहली मंजिल,
दरबारी बिल्डिंग, महात्मा गांधी
मार्ग, इलाहाबाद -211001,
प्र.सं.2008

अंग्रेज़ीपुस्तकें

122.A cultural History of India - A.L.Basham(Editor)
Oxford University Press,
YMCA Library building,
Jaising Road,
New Delhi-110 001
First Edition -1975

123.An Advanced History Of India - -R.C.Majumdar,
H.C.Raychaudhari,
Kalikingar Datta
Macmillan India Ltd, 2/10
Ansari Road, Daryaganj,
New Delhi-110 002,
First edition-1949

124.Annihilation of caste - Dr.B.R.Ambedkar
Prabuddha Bharat
Pustakalya
Panchsheel Nagar,
Nagppur-17,

125.Castes in India - Dr.B.R.Ambedkar
Prabuddha Bharat
Pustakalya
Panchsheel Nagar,
Nagppur-17,
First edition-1945

126.Culture and society (1780-1950) - Raymond Williams
Chatto & Windus ltd.
42,William iv street,
London,W.C.2.&Clarke,

Irwin&co.ltd,Toronto

First edition-1958

127.Feminism,A paradigm shift- Neeru Tandon
Atlantic publishers
&Distributers(p).Ltd, B-2,Vishal Enclave,
Opp.Rajouri Garden,
New Delhi-110 027
First edition-2008

128.Gender,Power and Organisations:An Introduction- Susan Halford&Pauline Leonard

PALGRAVE,175 Fifth avenue,Newyork-10010

First edition-2001

129.Multiculturalism, Liberalism and Democracy - Rajeev Bhargava,

Amiya kumar Bhagachi&

R.Sudarshan

Oxford University Press,YMCA Library building,Jaising Road,

New Delhi-110 001

First edition-1999

130.Sexual sites,Seminal Attitudes(sexualities ,masculinities&culture in south Asia) - Sanjay Sreevastava(editor)
Sage publications India Pvt.Ltd.,B-42 Panchsheel enclave,
New Delhi-110 017,First edition-2004

131.50 Key concepts in Gender studies - Jane Pilcher&
Imelda Whelehan
Sage publications ltd,1 Oliver's yard,55 city road, London
First edition-2004

मलयालम पुस्तकें

132.अकलंगलिले मनुष्यर - रवीन्द्रन
मातृभूमि बुक्स
प्र.सं.2004

133.अवन्-अत्=अवळ - एस.बालभारती
अनु.षाफी चेरुमाविलाई
डी.सी.बुक्स, कोट्टयम,
केरला-686 001, प्र.सं.2013

134.आसीड(लेस्बियनप्रणयत्तिन्टे
अम्ललहरी) - संगीता श्रीनिवासन्
डी.सी.बुक्स, कोट्टयम,
केरला-686 001, प्र.सं.2016

135.इंडिया चरित्रम्(पहल भाग) - प्रो.ए.श्रीधरमेनोन
डी.सी.बुक्स, कोट्टयम,
केरला-686 001, प्र.सं.1971

136.ओरु मलयाली हिजडयुडे
आत्मकथा - जेरीना
लिटमस,आन इंप्रिंट ओफ़
डी.सी.बुक्स,कोट्टयम,
केरला-686 001,प्र.सं.2006

137.ओरु हिजडयुडे
आत्मकथा - ए.रेवती
अनु.दया.जे
डी.सी.बुक्स, कोट्टयम,
केरला-686 001, प्र.सं.2013

138.गोत्रसत्यंङल - टी.वी.अच्चुतवार्यर
ओल्टर मीडिया,ब्रह्मस्वं मठं बिल्डिंग
एम.जि.रोड,त्रिश्शूर-680 001,
प्र.सं.2003

139.दलित देशीयता(जनतकलुड़े
तुल्यतयुम फेडरलइंडियुम) - के.के.एस.दास
फेडरल इंडिया बुक्स,कोट्टयम
केरला, प्र.सं.2002

140.दलित साहित्य प्रस्थानम् - के.सी.पुरुषोत्तामन्

केरल साहित्य अकादमी,

त्रिश्शूर-680 020, प्र.सं.2008

141.देवदासी तेरुवुकलिलूड़े - पी.सुरेन्द्रन
ग्रीन बुक्स प्राइवेट लिमिटेड
लिट्टिल रोड, अय्यन्तोल,
त्रिश्शूर-680 003, प्र.सं.2005

142.देवदासिकलुम हिजडकलुम - पी.सुरेन्द्रन
डी.सी.बुक्स, कोट्टयम,

केरला-686 001, प्र.सं.2011

143.मून्नाम लिंगम(लिंग
नीतिक्कायुल्ला निलविलिकल) - षाजी जोसफ़

चिंता पब्लिकेशन्स,
तिरुवनंतपुरमप्र.सं.2015

144.मुस्लिम राज्यचरित्रम - ओ.अबु
केरल भाषा इंस्टिटयूट,
तिरुवनंतपुरम,केरला, प्र.सं.1974

145.रंडुपेणकुट्टिकल - वी.टी.नंदकुमार
डी.सी.बुक्स, कोट्टयम,

केरला-686 001, प्र.सं.1974

146.रति रहस्यम - जीवन जोब तोमस
डी.सी.बुक्स, कोट्टयम,

केरला-686 001, प्र.सं.2013

147.हिजडकलुड़े पोरुल - पी.सुरेन्द्रन
डी.सी.बुक्स, कोट्टयम,

केरला-686 001, प्र.सं.2008

पत्र-पत्रिकाएँ

हिन्दी

1. आजकल - मई 1981
2. आजकल - दिसंबर 1982
3. आजकल - अप्रैल 1986
4. आजकल - जून 1986
5. आजकल - जुलाई 1986
6. इन्द्रप्रस्थ भारती - जनवरी-मार्च 2001
7. इन्द्रप्रस्थ भारती - जनवरी-मार्च 2003
8. इन्द्रप्रस्थ भारती - अप्रैल-जून 2004
9. कथादेश - जुलाई 2010
10. कथादेश - अगस्त 2010
11. कथादेश - मार्च 2011
12. चिंतन-सृजन - जनवरी-मार्च 2013
13. दस्तावेज़ - जनवरी-मार्च 2002
14. दस्तावेज़ - अप्रैल-जून 2003
15. दस्तावेज़ - जुलाई-सितंबर 2003
16. नई धरा - अप्रैल-मई 2011
17. पंचशील शोध समीक्षा - अप्रैल-मई 2011
18. पंचशील शोध समीक्षा - जुलाई-सितंबर 2013
19. पल-प्रतिपल - जून-सितंबर 2013
20. भाषा - जनवरी-जून 2003
21. भाषा - जुलाई-अगस्त 2006
22. भाषा - जुलाई-दिसंबर 2009
23. भाषा - जुलाई-दिसंबर 2010
24. मधुमति - अगस्त 1996
25. मधुमति - अक्तूबर 1996
26. मधुमति - जून 2011

27. वाक् - जुलाई-सितंबर 2012
28. वागर्थ - नवम्बर 1998
29. वागर्थ - अगस्त 2000
30. वागर्थ - दिसंबर 2000
31. वागर्थ - सितंबर 2001
32. वागर्थ - जून 2002
33. वागर्थ - दिसंबर 2008
34. वागर्थ - फरवरी 2014
35. समकालीन भारतीय साहित्य - जनवरी-फरवरी 2013
36. समीक्षा - जनवरी-मार्च 2009
37. संग्रथन - जुलाई 2011
38. हंस - दिसंबर 2009

समाचार पत्र

1. नवभारत टाइम्स - 23 जून 2013
2. नवभारत टाइम्स - 28 अगस्त 2013
3. नवभारत टाइम्स - 29 जनवरी 2014
4. नवभारत टाइम्स - 28 फरवरी 2014
5. नवभारत टाइम्स - 27 अप्रैल 2014
6. नवभारत टाइम्स - 8 जनवरी 2015
7. नवभारत टाइम्स - 5 फरवरी 2015
8. नवभारत टाइम्स - 18 जून 2015
9. नवभारत टाइम्स - 19 जून 2015
10. नवभारत टाइम्स - 18 अगस्त 2015
11. नवभारत टाइम्स - 19 अगस्त 2015
12. नवभारत टाइम्स - 21 अगस्त 2015
13. नवभारत टाइम्स - 23 अगस्त 2015
14. नवभारत टाइम्स - 8 अक्तूबर 2015
15. नवभारत टाइम्स - 3 नवंबर 2015

16.	नवभारत टाइम्स	-	12 फरवरी 2016
17.	नवभारत टाइम्स	-	23 मार्च 2016
18.	नवभारत टाइम्स	-	9 नवंबर 2016

अंग्रेजी

1.	द हिन्दू	-	14 मार्च 2014
2.	द हिन्दू	-	14 मई 2014
1.	द हिन्दू	-	29 सितंबर 2014
2.	द हिन्दू	-	7 दिसंबर 2014
3.	द हिन्दू	-	1 मार्च 2015
4.	द हिन्दू	-	25 अप्रैल 2015
5.	द हिन्दू	-	24 मई 2015
6.	द हिन्दू	-	8 जुलाई 2015
7.	द हिन्दू	-	9 जुलाई 2015
8.	द हिन्दू	-	7 दिसंबर 2015
9.	द न्यू इंडियन एक्सप्रेस	-	13 अप्रैल 2015

मलयालम

1.	देशाभिमानी	-	17 अप्रैल 2016
2.	देशाभिमानी	-	25 मई 2016
3.	देशाभिमानी	-	23जुलाई2017
4.	पच्चक्कुतिरा	-	जनवरी 2014
5.	पच्चक्कुतिरा	-	मई 2014
6.	भाषापोषिणी	-	सितंबर 2012
7.	मातृभूमि	-	जनवरी 2015
8.	मातृभूमि	-	17 अप्रैल 2016
9.	मातृभूमि	-	1 मई 2016
10.	माध्यमम्	-	2 मार्च 2012
11.	माध्यमम्	-	5 अगस्त 2013

12.	माध्यमम्	-	27 जून 2016
13.	माध्यमम्	-	17 अप्रैल 2017

समाचार पत्र

1.	मलयाल मनोरमा	-	2 फरवरी 2014
2.	मलयाल मनोरमा	-	7 दिसंबर 2014
3.	मातृभूमि	-	9 जून 2013
4.	मातृभूमि	-	19 जुलाई 2013
5.	मातृभूमि	-	5 अप्रैल 2014
6.	मातृभूमि	-	25 मई 2014
7.	मातृभूमि	-	27 जुलाई 2014
8.	मातृभूमि	-	21 सितंबर 2014
9.	मातृभूमि	-	2 दिसंबर 2014
10.	मातृभूमि	-	14 अप्रैल 2015
11.	मातृभूमि	-	8 मई 2015
12.	मातृभूमि	-	21 मई 2015
13.	मातृभूमि	-	7 जुलाई 2015